੧ਓ

श्री वाहेगुरु जी की फतह॥

श्री गुरु नानक चमत्कार

(द्वितीय भाग)

भाई साहिब भाई वीर सिंह

भाई वीर सिंह साहित्य सदन
नई दिल्ली

श्री गुरू नानक चमत्कार

(द्वितीय भाग)

अर्थात्

जीवन चरित्र

साहिब श्री गुरू नानक देव जी

जैसा कि

उनके चरणों को प्राप्त पुरुषों के प्रसंगों द्वारा विदित हुआ

लेखक

भाई साहिब डा० वीर सिंह

'सुन्दरी', 'राणा सूरत सिंघ' इत्यादि ग्रन्थों के प्रणेता

२००१

भाई वीर सिंह साहित्य सदन

नई दिल्ली

श्री गुरू नानक चमत्कार (द्वितीय भाग)
भाई साहिब भाई वीर सिंह

हिन्दी में प्रथम संस्करण : १९६४
द्वितीय संस्करण : १९८३
तृतीय संस्करण : २००१

प्रकाशक :
भाई वीर सिंह साहित्य सदन,
भाई वीर सिंह मार्ग,
नई दिल्ली

मुद्रक :
भाई वीर सिंह प्रैस,
भाई वीर सिंह मार्ग,
नई दिल्ली

मूल्य : ९०/-

प्रकाशकीय

(द्वितीय भाग)

संत कवि भाई साहिब डाः वीर सिंह जी की इस रचना 'श्री गुरू नानक चमत्कार' को हिन्दी पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए हमें अति हर्ष हो रहा है। 'श्री गुरू नानक चमत्कार' के हिन्दी रूपान्तर का यह द्वितीय भाग है। इस रचना के पहले तथा द्वितीय भाग का प्रथम प्रकाशन कर्मवार १६६२ तथा १६६४ में हुआ था। मूल रूप में 'श्री गुरू नानक चमत्कार' पंजाबी भाषा में दो भागों में प्रकाशित है। हिन्दी में इसी रचना के चार भाग बना दिये गये हैं।

भाई साहिब डाः वीर सिंह जी पंजाबी साहित्य के एक सर्वतोमुखी मूर्धन्य साहित्यकार हैं, जिन्होंने पंजाबी काव्य एवं भाषा को उन्नति के शिखर पर पहुँचा दिया। 'श्री गुरू नानक चमत्कार' भाई साहिब जी की गद्य-रचना है। इसमें श्री गुरू नानक देव जी का जीवन-वृत्तान्त है। भाई साहिब की इच्छा थी कि समानता के उपदेशक, ईश्वर प्रेमी, जगततारक गुरू नानक देव जी की जीवन-लीलाओं एवं उपदेशों को पंजाबी भाषा से अपरिचित अन्य भारतवासियों तक भी पहुँचाया जाए। इस दृष्टि से भाई वीर सिंह साहित्य सदन की ओर से यह प्रयास किया गया है।

अनुवाद मूल रचना की अपेक्षा एक कठिन कार्य है। पर इसको सफल बनाने के लिए भरसक यत्न किया गया है। पुस्तक की भाषा और शैली अत्यन्त सरल रखी गई है, जिससे साधारण पाठक भी पूरा लाभ उठा सकें। बहुत सीमा तक मूल लेखक की ही भाषा ले ली गई है। मूल रचना में आए प्रचलित फारसी और अरबी के कुछ शब्द भी ले लिए गये हैं। गुरूवाणी की प्रामाणिकता बनाए रखने की दृष्टि से उन्हें गुरूमुखी से ज्यों का त्यों देवनागरी लिपी में दे दिया गया है।

हमारा विश्वास है कि भाई साहिब भाई वीर सिंह जी की मूल रचना का यह अनुवाद हिन्दी पाठकों को भी उसी तरह उत्प्रेरित करेगा, जैसे कि यह पंजाबी पाठकों को करता आया है।

भाई वीर सिंह साहित्य सदन,
नई दिल्ली।

डाः जसवंत सिंह नेकी
आनरेरी जनरल सैक्रेटरी

विषय – सूची

अदेशी दाता की पहली उदासी

पहली उदासी तो उस समय आरम्भ हुई जब गुरू जी ने दुकानदारी और सुलतानपुर के उद्यान को छोड़कर, सुलतानविंड के पास बेर की झाड़ी में, जहाँ इस समय अमृतसर नगर स्थित है, निवास करते हुए सैदपुर संडियाली में जाकर तपस्या की और भाई लालो आदि का उद्धार करके जगत् का उद्धार करने के लिए चल पड़े। पर पुरातन जन्म साखी में पहली उदासी का शीर्षक यहां पर ही है -.दिल्ली से चलते समय, और यहां पर पहरावा यों बताया है -

पहले पूर्व की ओर प्रस्थान किया । उस समय मरदाना साथ था । तब पवन का आहार किया । बाबा का पहरावा - एक अंबुआ वस्त्र, एक सफ़ेद वस्त्र था। एक पैर में जूता, दूसरे में खड़ाऊं, गले में कफ़नी, सिर पर कलन्दरी टोपी, हड्डियों की माला और मस्तक पर केशर का तिलक।

यह पहरावा हिन्दुओं तथा मुसलमानों का मिलाजुला और उन दोनों से मज़ाक करने वाला है। जिस प्रकार जमा तथा खर्च की ओर पड़ी हुई एक-सी दो राशियां यह बताती हैं कि शेष शून्य है उसी प्रकार दोनों किये हुए वेश बताते हैं कि गुरू बाबा किसी वेश में नहीं थे। इस मिलेजुले वेश से हिन्दुओं और मुसलमानों, दोनों को चकित होना था। इस वेश में जाते हुए वे अभी दिल्ली से दूर नहीं गये थे कि आगे सुखपाल में शेख वजीद आता हुआ मिला। उसका प्रसंग इस प्रकार है -

१८ शेख वजीद सय्यद

यहां से अब गुरू जी घर को नहीं लौटे, दिल्ली से ही आगे को चल पड़े। वेश अद्भुत प्रकार का फकीरों का-सा था। किसी एक मत की कोई बात नहीं थी। जाते-जाते मार्ग में एक स्थान पर बैठकर कीर्तन सुना और फिर विश्राम करने के लिए बैठ गये। दूर सामने एक और छायादार वृक्ष था। थोड़े समय के पश्चात् इसके नीचे एक पालकी आकर ठहरी। पालकी में एक वैभव वाला पीर था। छ: कहारों ने यह पालकी उठाई हुई थी। पीरजी इस सुखपाल में यात्रा कर रहे थे। इनका नाम वजीद[१] था।

---

१. वजीद का मूल अरबी पद बायज़ीद है। यह इनमें कई हुए हैं। इस नाम का एक फकीर ईरान में हुआ है। एक पंजाब में बजीदा के नाम से प्रसिद्ध है, जिसके पंजाबी छन्द लोगों को याद हैं। पर वजीद यही था या कोई और हिन्दुस्तानी फकीर था, इस बात के लिए खोज की आवश्यकता है।

पालकी में से उतरकर आप टहलने लगे और कहारों ने बिछौना कर दिया। आप लेट गये। तब कुछ कहार तो पैर दबाने लग गये; कुछ पंखा झुलाने लगे। एक कहार पानी लेने के लिए कुएं की ओर गया। मरदाना ने उन्हें देखा और गुरू जी से पूछने लगा - "क्यों जी! ईश्वर एक है या दो?" बाबा जी ने हंसकर कहा - "मरदाना! ईश्वर एक है।" तब मरदाना ने कहा - "यह जो पालकी में चढ़कर आया है वह किसकी पैदाइश है और जो पालकी उठाकर लाये हैं वे किसकी पैदाइश हैं? एक तो यह चढ़कर आया है, दूसरे थक गया है। एक तो वे चलकर आये हैं और दूसरे वे पैर दबा रहे हैं और फिर और काम भी कर रहे हैं।

गुरू जी - भाई! जिनका चलने का स्वभाव है वे चलते हुए भी नहीं थकते। चलने से भूख लगती है। खाते हैं और स्वस्थ रहते हैं। बैठने वाले बैठने के कारण थक जाते हैं, भूख मर जाती है, यदि थोड़ा खाएं तो शक्ति कम हो जाती है और शरीर शीघ्रता से ही थकने लगता है। यदि अधिक खाएं तो स्वस्थ नहीं रह पाते। तब भी शरीर शीघ्र थकने लग जाता है। "चलता-फिरता ना मरे, बैठा ही मर जाय।"

मरदाना - पर श्रीमान्! सुखपाल में तो इसीलिए चढ़ा था, कि न थके। अब चाहे वह थका हुआ है या नहीं, पर पड़ा-पड़ा पैर दबवा रहा है।

गुरू जी मुस्कराये और कहने लगे - मरदाना! इस बेचारे को दो थकानें हैं, यदि दबवाये न तो क्या करे? पिछले जन्म में तप किये, हठ योग कीं क्रियाएँ की, रातों में जागा, सर्दी सही, शीतल जल में स्नान किये, तीर्थ-यात्राएँ कीं कि सिद्धि प्राप्त हो, अतः थक गया[१]। अब तप का फल मिला है - राजाओं जैसा भाग्य मिला है, इसके प्रबन्ध करने में और इससे मिले सुखों तथा भोगों में भी थकान होती है। दुहरी थकानें हैं, यदि बेचारा दबवाये न तो और क्या करे? (हंस पड़े)।

मरदाना - फिर यह क्या बात हुई कि यहां पर कोई सुखी है, कोई दुःखी है, इसका क्या कारण है?

गुरू जी - कारण तो ईश्वर जाने। कारणों का कारण वह स्वयं है। पर देहधारी कर्म करता है। कर्म भला होता है अथवा बुरा, दोनों का संस्कार अंदर अंकित हो जाता है और उसके अनुसार स्वभाव बनता है। स्वभाव सुख-दुःख का दाता है। फिर जो बोया जाता है वही उत्पन्न होता है। यदि पीड़ा बोओगे तो पीड़ा उत्पन्न होगी, सुख बोओगे तो सुख उत्पन्न होगा। सो बोने वाला अपने कर्मों के कारण ही दुःख-सुख प्राप्त करता है। जो तप, हठ, पुण्य, दान, राजसी

---

१. जो वाक्य बाबा जी ने बिलास से कहे, जन्मसाखी में एक श्लोक है -

पूरन जनम के तप ए पाले सहिआं डंगु।
तब के थके नानका अबै मंडावनि अंगु।।

ठाठ-बाठ के लिए करते हैं वे राजा का जैसा भाग्य प्राप्त करके फिर जुल्म तथा कुकर्मों में लग जाते हैं। वह स्वभाव जिसको साधा नहीं गया था, उन कर्मों के कारण फिर दु:खों का अधिकारी हो जाता है। इसलिए तप से राज्य और राज्य से नर्क मिलता है[१]।

मरदाना - किये हुए कर्म किसी ढंग से नष्ट भी होते हैं?

श्री गुरू जी कहने लगे - कर्म के संस्कार अन्दर परिपक्व होकर बैठते हैं। कर्म की पड़ी हुई रेखाएँ और लेख मिटते नहीं[२]। पर सज्जन! कर्म तो जीव ने देह धारण करके किये हैं और जिस वस्तु का आदि है उसका अन्त भी है। सो कर्म नष्ट भी हो जाते हैं। जैसे आग लगने से ईंधन के ढेर जल जाते हैं[३], वैसे ही प्रभु में प्रेम करने से कर्म जल जाते हैं। यदि मनुष्य परमेश्वर से लौ लगाये, अपने ध्यान में ईश्वर को रखे तो अन्दर पड़ी हुई कर्मों की संस्कारी रेखाएँ धुल जाती हैं[४]। सुख-दुख, गेह, जन्म-मरण, कर्मों के अनुसार हैं। पर मुक्ति परमेश्वर की कृपा पर है[५]। कृपा उन पर होती है जो कृपा के पात्र हैं। कृपा को कौन प्राप्त कर सकता है? जो कृपालु के साथ प्यार करता है। प्रेम की लगन में आकर्षण है, जो प्रियतम को भी जाकर आकर्षित करती है। प्रेम - अदृश्य, ईश्वर, स्वामी के साथ प्रेम - उसकी याद के साथ प्रेम है, उनके गुणों को वह कीर्तन द्वारा स्मरण करता है। उसकी कृपा स्वच्छन्द विचरती है। पर मार्ग यह है: ईश्वर के स्मरण में रहना, प्यार में रहना, जगत में यथाशक्ति शुभ कार्य करना, नेकी करना, भलाई बांटना, बुराई से संकोच करना।

श्री गुरू जी ने इस साखी में जो उपदेश दिया है, वह प्रश्न प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में उठता रहता है। गुरू जी ने अपनी वाणी में बताया है कि कर्म करने से जो रेखाएँ तथा लेख बन जाते हैं, मिटते नहीं। पर मिट भी जाते हैं। जीव ने देह धारण करके कर्म किये हैं। देह धारण करने से पहले कर्म कहां पर था, जिसने देह प्रदान की! सो कर्म का आदि[६] है। फिर जीव सीमाबद्ध है। इसका समय समाप्त होता है। अत: कर्म असीम नहीं हो सकते। सो आदि वाली वस्तु का अन्त है और

---

१. दानं परा पूरवेण भूचंते महीपते।।
विपरीत बुध्यं मारत लोकह नानक चिरंकाल दुख भोगते।।२४।। (सलोक सहस कृती महला ५)

२. करमा ऊपरि निबड़ै जे लोचै सभु कोइ ।। (गऊड़ी महला १)

३. लोकां मत को फकड़ि पाइ।।
लख मड़िया करि एकठे एक रती लै भाहि।। (आसा महला १)

४. हरि का नामु धिआइ सुणि सभना नो करि दानु।।
जनम करम मलु उतरै मन ते जाइ गुमानु।। (बारह माहा महला ५)

५. करमी आवै कपड़ा नदरी मोखु दुआरु ।। (जपुजी)

६. जब कछु न सीओ तब किआ करता कवन करम करि आइया। (सूही महला ५)

सीमाबद्ध वाली वस्तु के लिए समाप्त होना है। समाप्ति का मार्ग यह है कि कर्म तो जीव शुभ करे, जिससे आगे को अशुभ कर्मो के संस्कार और न बढ़ें और कर्मों के सिर कर्म[1] सत्संगी[2] व्यक्ति करे और ईश्वर के कीर्तन में रस ले, उसके गुण गाये[3]। यों ईश्वर पर जाकर मन टिकेगा। उसकी पवित्रता मन को पवित्र करेगी। अग्नि से दूर जाने पर सर्दी लगती है। अग्नि के निकट आने पर गर्मी लगती है। बुरे कर्मों तथा भूल के कारण परमेश्वर से बिछुड़ना होता है, दूर जा पड़ना होता है। भलाई करके तथा याद करके उसके निकट जाना होता है। निकट जाकर सुख की प्राप्ति होती है। फिर हर समय का हरि–कीर्तन यह है कि उसकी याद में सहज का स्वभाव बनकर स्थित हो जाये। याद प्यार होती है। पर याद सहज में स्थित होना अभ्यास द्वारा होता है, सो उसकी याद का अभ्यास उसके नाम के साथ किया जाता है। नाम जपा जाता है और मन को उसकी हुजूरी (उपस्थिति) में उसकी अनुभूति करने के यत्न में रखा जाता है –

'है हजूरि हाजरु अरदासि ।।
सुखु दुखु साचु करते प्रभ पासि।।'

(आसा महला १)

यों कर्म तथा कर्मों के फल मिट भी जाते हैं।

सूचना – इसी प्रसंग को संक्षेप में लेखक ने कविता में भी लिखा है। जिसका सरल हिन्दी अनुवाद यह है –

सयाना शेख सुखपाल में चढ़कर आ रहा था, उसने एक वृक्ष के नीचे आकर ठिकाना किया। दरी बिछवाकर वह लेट गया और जो कहार उठाकर लाये थे, उनसे अपना शरीर दबवाने लगा। कोई उसको दबाता था कोई मुक्कियाँ मार रहा था और कोई पंखा लेकर उसे झल रहा था। तब गुरू नानक देव जी जगत् का उद्धार करने के लिए जा रहे थे, उनके साथ मरदाना कन्धे पर रबाब लेकर चल रहा था। मरदाना ने हँसकर पूछा, 'हे गुरू जी! यह क्या आश्चर्यजनक बात है, कि एक तो शेख सुखपाल में चढ़कर आया है, जिसके कारण उसको कोई थकान नहीं हो सकती, और दूसरे अपना शरीर दबवा रहा है, मानो थक कर आया हो। पंखे झुलाकर हवा की जा रही है, सेवा हो रही है यह क्या उलटी माया है? जो चलकर आये और उठाकर लाये हैं वे फिर सेवा कर रहे हैं और जो सुख के साथ सुखपाल में आया है उसकी सेवा की जा रही है।

---

१. हरि कीरति साध सँगति है सिरि करमन कै करमा।। (सोरठ महला ५)

२. साध संगति पाई परम गते।। (मलार रविदास)

३. गुन गावत तेरी उतरसि मैलु।। (गउड़ी सुखमनी महला ५)

गुरू जी ने कहा, कि यह एक तपस्वी है और तप करता-करता थक गया है, उस थकान को दूर करने के लिए दबवा रहा है। अब इसे राज-काज की थकान हर समय रहती है। ये व्यक्ति! पूर्वकालिक तथा अबकी, दो प्रकार की थकानों के दु:ख सहन कर रहा है। तप से राज्य और राज्य से नरक मिलता है और संसार में नंगे ही आना होता है। दु:ख तथा सुख अपने कर्मों के कारण मिलता है और मुक्ति नाम में लौ लगाने से मिलती है। यह सुनकर मरदाना चरणों पर झुक गया और मुख से 'धन्य-धन्य' कहने लगा। फिर सदगुरू जी जगत का उद्धार करने के लिए आगे चल पड़े।

सूचना - दिल्ली से चलकर अनेकों स्थानों पर ठहरते हुए गोरखमता तें आ पहुँचे।

□ □

१९ अदेशी ज्योति और श्री नानक मता

: १ :

हे मेरे स्वामी! बन्धन की नदी आ गई है, इससे धक्का देकर हमें पार कर दो! हे स्वामी! हमारे पापों की ओर मत देखो, और हमें प्रसन्नता के स्थान पर पहुँचा दो! मेरे अन्दर अगम्य की गांठ पड़ी हुई है और मैं अपना बल लगा कर थक गया हूँ: मेरे कर्म बुरे हैं पर आप कृपा करो और मुझे बन्धनों से मुक्त कर दो!

(लेखक की पंजाबी कविता से अनुवाद)

दिन व्यतीत हो गया है, दिन का राजा पश्चिम में जाकर धरती की ओर अन्तिम तथा लालसा-भरी दृष्टिपात करता हुआ धरती से ओझल हो गया है। दिन के अस्त होने के फलस्वरूप अन्धेरा छा रहा है और एक सफेद-सा प्रकाश पड़ रहा है। अभी सांयकाल नहीं हुआ, पर हो रहा है। एक वन सा है, पर कुछ आबादी सी भी परे दीख रही है, आबादी किसकी है? न कोई बाल है न बच्चा, न स्त्री न पुरूष। वृक्षों के झुंड हैं, कहीं बीच में कुटिया है और कहीं बाहर कनफटे योगियों के आसन हैं, धूनियां हैं और चबूतरे हैं।

दूर पर एक पीपल का वृक्ष है, उसके चारों ओर एक कच्चा सा चबूतरा है। पीपल खड़ा है, पर पत्ते सूखे हैं, उसके नीचे कोई बैठा है। हैं, कोई? हाँ, कोई कहना बे-अदबी है। पर जिनकी कुटिया के निकट बैठा है वे आपस में 'कोई आया है' ही कह रहे थे। इस उजाड़ आबादी की ओर से एक और मूर्ति ढलते हृदय से सिर झुकाये आ रही है, श्री सुन्दर 'कोई' जी के समक्ष आकर खड़ी हो गई है और कुछ विनती कर रही है कि जिसका सारांश उपरोक्त छन्द में है इस हृदय की पीड़ा की पुकार सुनकर सुन्दर अदेशी 'कोई जी' मुस्कराये :

मरदाना! जब मन 'बन्धन' में आ जाता है तब पहले कोई कारण घटित होता है। उस कारण की खोज करनी चाहिए, उस कारण का आदि अन्त देखा जाय और उसका निरीक्षण किया जाय। फिर उसको विचार की तुला पर तोला जाय ठीक ढंग से तोल चुकने से ही कई बार बन्धन दूर हो जाते है।

मरदाना – पातशाह! कभी यों भी कुछ बनता नहीं।

श्री गुरू नानक देव जी – फिर अगम्य का कोई कारण होता है, पर होता अन्दर ही है। अपने ही कुकर्मों के – कोई भूले हुए छिपे हुए पर किये हुए कर्मों के – चिन्ह अन्दर होते हैं, जो उभर उभर कर तंग करते हैं। किये गये कर्मों का ही दु:ख सुख होता है, चाहे आज के चाहे कल के चाहे पहले के। इसका उपाय नाम है, कीर्तन है वाणी का पाठ है, अरदास, सतसंग, दान, स्नान, सुन्दर सुहावनी नदियों, वनों, नहरों, पर्वतों के प्राकृतिक दर्शन, अमृत वेला में नाद, पक्षियों का उल्लास और उनके मीठे–मीठे एक–दो तीन स्वर वाले राग, स्नान। हां नाम तथा वाणी का अभ्यास और प्राकृतिक सुन्दरता और प्रकृति के चाव उल्लास के स्पर्श में खिल जाना।

मरदाना – अब मेरे साथ क्या घटना घटी?

गुरू जी – क्या कहीं तेरा अनादर हुआ है? वहाँ पर तूने आगे से अपमान नहीं किया, पर 'होगा कहीं' भी नहीं कर सका, सो तेरे अन्दर 'न सहन की जा सकने वाली' और 'न फेंकी जा सकने वाली निज अपमान की पीड़ा दब गई है। फिर तेरे मन ने 'इस कारण की ओर' रुख नहीं किया और चेतना ने सहायता नहीं की। सो स्वाभाविक रूप से ही तेरी नाम वाली खिली हुई सुरत दब गई है और तेरी प्रसन्नता भी चली गई है!

मरदाना – बलिहारी आप के वचनों की! यही बात हुई है।

गुरू जी – कैसे?

मरदाना – पातशाह! सारे योगियों के पास जा चुका हूँ, किसी ने आग की एक चिनगारी तक नहीं दी, दो लकड़ियां तक नहीं दीं, पाव भर अन्न तो कोई देता ही क्या, कहते हैं हम अतिथि हैं। फिर मीठा बोल भी नहीं बोलते। झिड़कने को आते हैं। पातशाह! भूखे भी नहीं बैठे, पदार्थ भी पास रखे हैं। इनसे तो गृहस्थी भला, यदि कोई अतिथि आ जाये तो हजार प्रकार की सेवा खातिर करता है। इन जैसा कोई अपरिचित अतिथि आ जाये तो मुट्ठी भर आटा तो दे देता है।

गुरू जी– फिर मरदाना! यही तो देखने और इसी का सुधार करने के लिए तो हम चले हैं। तुमने दु:ख क्यों माना? दु:ख अन्दर घुसाया तो 'गाँठ' पड़ी, 'गाँठ' पड़ी तो नाम गया, नाम गया तो प्रसन्नता गई, प्रसन्नता गई तो जीवन मे क्या रह गया ? केवल जलना । जैसे चूल्हे में ईंधन के जलने की क्रिया हो रही

है वैसे ही शरीर में अन्न जलने की क्रिया है। केवल जलना धरती के अन्दर हो रहा है जिसको ज्वालामुखी कहा जाता है। केवल जलना पशुओं पक्षियों में हो रहा है, यदि हाथ लगायो तो पत्थरों से भी अधिक गर्म लगते है, है न तपन उनमें भी ? पर केवल जलना अमर जीवन नहीं है। जीवों के अन्दर जो जलना हो रहा है वह शारीरिक जीवन के लिए तपन उत्पन्न करता है। जब किसी कारण जीव के अन्दर से अग्नि शान्त हो जाती है तब फिर जीवन वहाँ पर नहीं दीखता। वृक्ष, पक्षी, मनुष्य का जो साधारण जीवन है सो एक प्रकार का जलना है, संसार जलने के आसरे ही कायम है। जीवन में एक जागृति आजी है। सो यदि जीवन उस प्रसन्नता में खिलता है तो जीता है, यदि नहीं खिलता तो उसमें प्रसन्नता आती है केवल जलता है[१]। यह प्रसन्नता का जीवन अमर प्रसन्नता की जीवन हो जाता है। मनुष्य जीये अथवा मरे, प्रसन्नता वालों की प्रसन्नता साथ रहती है। जो वास्तविक ईश्वरीय प्रसन्नता की दशा में आ गया, वह यहाँ पर और वहाँ पर (इहलोक तथा परलोक) में प्रसन्नता से रहता है। इसलिए हे मरदाना ! साईं के प्यार में प्रसन्न रहना वास्तवविक जीवन है[२]।

मरदाना – बलिहारी आप की सूझ पर, बलिहारी आप के वचनों पर। डोम कब का आप के साथ है, समझा भी है, हाथ–पांव भी मारता है पर फिर पैर फिसल जाते हैं। आप के वचन ही अमर प्रसन्नता है, प्रकृति के सुहावने राग हैं, पातशाह! मैं अब फिर खिल आया हूँ, नयन खुल आये हैं, रक्त का चक्कर ऐसा लगता है कि सरर–सरर कर उठा है, नाम का तार चौंक उठा है, जीवित हो गया है। बलिहारी आप की अनुकम्पा पर। 'सति सुहाण सदा मनि चाऊ' आप ने कई बार कहा है, पर यह नुकता अनाड़ी के पल्ले ही नहीं पड़ता। (ठण्डे तथा लम्बे लम्बे श्वाँस लेकर) पातशाह! यह क्या होता है, कि जब मन में किसी एकाग्रता के पश्चात् सुख होने लगता है तो ठण्डे श्वाँस आते हैं ?

गुरू जी – तुझे बताया था न कि सुरता पुरुष (स्मरण वाले) नाम में जीते हैं। उनके अन्दर अपने नाम रंग के साथ चाव उत्पन्न होता है। यह वात सहन करना कठिन है, असह्य वस्तु है। न सहन कर सकने के कारण भूलें हो जाती हैं। भूलों के कारण 'गाँठ' पड़ जाती है, अन्दर घुटन हो जाती है। दबे हुए अवों की भाँति घुटा हुआ मन अपने आप को खाता है। जब सुरत वाले पुरूषों की 'गाँठ' खुले, तो नाम की अमर रौ चलने लगती है और प्रसन्नता लौट पड़ती है, तब उस समय, हे मरदाना ! सुरत मानों पर्वतों के भार के नीचे से निकलती है और सुख

---

१. जैसा कि गुरू अर्जुन देव जी ने कहा है :-
"बिन सिमरन जो जीवनु बलना सरप जैसे अरजारी" (टोड़ी महला ५)

२. नानक भगतां सदा बिगासु ।। (जपुजी)

के श्वाँस लेती है। वे ठण्डे श्वाँस सुख के, और लौटकर ठण्ड प्रदान करने वाले श्वाँस होते हैं, वे अन्दर सहूलियत फैलाते हैं और उनके साथ–साथ फिर प्रसन्नता के जीवन की रौ स्पष्ट रूप से चल पड़ती है। सावधान रहा कर[1]।

मरदाना – आप की कृपा ही सावधान रख सकती है, डोम तो उसी 'गांठ' की ओर फिर–फिर जाता है। देखो हे पातशाह ! अभी मुझे आप ने अच्छा किया है, अभी फिर यह विचार आ रहा है, कि रात आ रही है ठण्ड है, कैसे व्यतीत होगी?

गुरू जी – कभी तो संकल्पों की नदी को पार भी किया कर । एक क्षण के लिए संकल्प को पटक दे, स्मरण में आ जा, अन्तस में झाँक और संकल्प को रोक, साईं का नाम ले। अनुभव कर कि उसमें लग रहा हूँ जिसका नाम जिह्वा पर है ! अपने अन्दर आ जा[2] एक क्षण के लिए आ जा, हाँ आप में स्थित हो जा। देख अब जो तू 'है' मात्र है, सो साईं की 'है' में लग रहा है। इस रंग में रहने दे अपने आप को, चिन्ताओं को रोक दे, साहस बटोर रात अपने आप व्यतीत हो जायेगी। यह है 'भेंट' यह है 'साईं के साथ मिलन' यह है 'ईश्वर में भरोसा' – 'साईं जी के गले लग'[3]। सो इस दशा में होकर विचार कर कि जिसके कण्ठ से लगे हैं अब उसको चिन्ता है रात की। कभी तो चिन्ता का त्याग कर, टिकाव में आकर देख कि ईश्वर की प्रकृति क्या करती है। यदि तू चिन्ता ही करना चाहता है तो कर, तुझे कोई रोकता नहीं, पर साथ बुद्धि दौड़ा और प्रबन्ध कर। पर एक तो नाम का त्याग न करना। दूसरा यदि तुम्हारे प्रयत्न पूरे न हों तो उनका दुःख न मनाना, तब तो प्रसन्नता थोड़ी अधिक बची रहेगी। यदि तू उनके सफल न होने पर उदास हुआ, कुढ़ता रहा अथवा पूरे होने पर अहंकार करने लगा तो प्रसन्नता चली जायेगी; नाम का प्रभाव बन्द हो जायेगा, अथवा अति मन्द पड़ जायेगा, फिर सुरत में 'गाँठ' पड़ जायेगी। तब तू दुःखी होकर कहेगा, दुःखों में सारी आयु व्यतीत हो गई, दिन को दुःख, रात को दुःख, संसार दुःख रूप है। यहाँ पर क्यों दुःख है ? हाय दुःख !'

मरदाना – और भला पातशाह ! जैसे आपने कहा है, मन नाम में आप की कृपा से एकाग्र हो गया, फिर जो आवश्यकता तथा कमी आ जाती है वह क्या अपने–आप पूरी हो जायेगी ?

गुरू जी – बहुत बार हो जाती है। पर यदि न हो तो सुरत की आत्मिक प्रसन्नता तो बची रहती है, नाम तथा सुरत का तार तो चलता रहता है, न । वह जो आवश्यकताओं का पूरा होना था वह तो वैसे ही रहा। वह तो कभी बुद्धि के

---

१. यह सारी वार्तालाप 'सति सुहाणु सदा मनिचाऊ' की प्राप्ति की खुली व्याख्या है।

२. अंतरि वसै न बाहरि जाइ।। (सूही महला १)

३. इक भाइ इक मनि नामु वसिआ सतिगुरू हम मेलीआ ।। (बिलावल महला १)

द्वारा भी पूरा होता है, कभी पूरा नहीं होता। इस अन्दर में से मिले रहने से यदि पूरा न हुआ तो अन्दर का जीवन कण तो नहीं मारा जाता और यदि हम चाहें कि वह पूरा ही हो तो नाम में लगना है तो यह प्रेम और प्रेम भक्ति न होकर विनिमय और सौदा-सा हो गया ।

मरदाना - फिर क्या बुद्धि तथा उद्यम का प्रयोग न करें ?

गुरू जी - फिर तूने वही अन्ट-सन्ट बात की है, जोकि सोई हुई सुरत वाले करते हैं। बुद्धि लगाओ, उद्यम करो, क्यों न करो ? मूर्खता तथा आलस की तो कभी भी शलाधा नहीं की गई। हम तो सुरत वाले पुरुषों की बात कर रहे हैं; जो टिकाव की दशा में जाकर आत्मचाव की दशा में जाते हैं अथवा जो अन्दर प्रसन्नता सजीव करते हैं [१], वे जगत जीवन को कैसे सुखी बनाते हैं। अब तू इस अपने साथ घटी अपनी बात पर ही सोच कि उद्यम तथा बुद्धि का तू प्रयोग कर आया है, पर निष्फल, नाम तथा प्रसन्नता खो आया है । उद्यम तथा बुद्धि बुरी नहीं, प्रसन्नता खो बैठना बुरी बात है । अब अन्य कोई बुद्धि या उद्यम चलता है तो चला, पर प्रसन्नता को संभालना । यदि प्रसन्नता न खोई तो तू अमर जीवन में जीवित है । गहरी सोच कि जिस जीवन के साथ तू चिपक रहा है उसको नहीं पर प्रसन्नता का जीवन, जो अमर जीवन है, वह रहेगा। यदि बुद्धि तथा उद्यम की भाग-दौड़ समाप्त हो गई तो नाम सम्भाल, आराम से प्रसन्नता में रह। 'हरि को अन्दर बसा' [२]। अन्दर बसाने से आपा अपने-आप ही स्वामी के स्पर्श में चला जाता है । बैठ जा इस आन्नद में । देख कि रात आगे आ रही है, यदि कुछ खाने को आ गया तो ईश्वर की कृपा, यदि न आया तो इसी रंग में बैठा रह, साईं से पृथक तो न होगा, एक वस्तु तथा अमूल्य वस्तु तो पास रह जायेगी न, क्यों बात कुछ समझ में आती है क्या ?

मरदाना -बलिहारी आपके धैर्य की जो मुझ मूर्ख के साथ समय काटते हो, काटते ही नहीं, बल्कि प्यार करते हो और फूस की झोंपड़ी को हाथीदाँत के परनाले लगाते हो। बलिहारी आपके नाम की, आपकी प्रसन्नता की, आपके उस परमतत्व की जिसका स्पर्श, प्रसन्नता की दशा में जाने से मिलता है अथवा जिसके हुज़ूर में मन हाजिर करने से उसका स्पर्श मिलता है और स्पर्श प्रसन्नता देता है। लो अब कृपा करो जिससे आपका लगाया पौधा रात को लहलहाता रहे। यह कहकर मरदाना 'सत् करतार' कहकर बैठ गया, टिककर नाम में जुड़कर। कुछ समय के पश्चात बैठे हुए को नींद आ गई। नींद में शरीर अपने-आप शिथिल हो गया। चद्दर जो ओढ़ रखी थी, सारे शरीर के ऊपर नींद में ही लिपट गई।

---

१. नानक भगता सदा विगासु । (जपुजी)

२. होहु दइआल क्रिया करि हरि जीउ हरि सिउ रहा समाई । (सारंग महला १)

जब तीन पहर रात व्यतीत हो गई तो अभ्यासी मरदाना की नींद खुल गई। क्या देखता है कि नाम जारी है और सुरत सुखी है, थोड़ी-थोड़ी सर्दी लग रही है पर बहुत नहीं। फिर आँखें खोलकर आकाश की ओर देखता है और कहने लगता है, उठ रे मन ! रबाब बजा, कीर्तन कर समय हो गया है जब उठा तो क्या देखता है कि पास ही धूनी जल रही है, अग्नि धधक रही है, कुछ लकड़ियां अभी और पास पड़ी हैं, देखकर चकित हो गया । फिर क्या देखता है कि गुरू जी का आसन पड़ा है पर आप नहीं हैं। थोड़े समय के पश्चात आप आ गये तब मरदाना ने पूछा - पातशाह ! यह आग कहाँ से आ गई ? गुरू जी हँसकर बोले - जिस दाता से लगकर तू सो गया था, उसकी अनुकम्पा[१] है, उसी ने किसी के मन में दया भर दी होगी ।

मरदाना - कैसे हुई ?

गुरू जी - मरदाना, तू तो थका हुआ था, थोड़े समय में ही सो गया। अभी कोई देर नहीं हुई थी कि वन की ओर से कोई एक व्यक्ति आया, गोह मारकर गुजारा करने वाला शिकारी; उसके सिर पर लकड़ियों का एक बोझ था, हाथ में जलती हुई दीणी (मशाल)[२] थी। उसी ने हमें देखा और लकड़ियों का बोझा नीचे उतारकर आकर पास बैठ गया और बड़े प्यार के साथ कहने लगा, 'साधु जी ! तुम रात कैसे व्यतीत करोगे, धूनी नहीं है ?' तब हमने कहा, 'व्यतीत हो जायेगी'। तब उसने कहा, 'मैं धूनी लगा दूँ क्या?' हमने कहा 'तुम परिवार वाले हो, आज तुम्हें शिकार भी नहीं मिला, इन लकड़ियों को बेचकर ही तो तुम्हें अन्नजल लेना होगा' तब वह कहने लगा, 'हम निम्न श्रेणी के लोग हैं, हमारा व्यवसाय भी निम्न है, पर हे साधु जी महाराज ! यह देखकर मेरे मन में एक कसक-सी उठती है कि तुम रात बाहर काटो और सर्दी सहन करो। मेरे घर में ईंधन है और दो-चार दिन मेरा निर्वाह हो जायेगा। माँ, पत्नी और बच्चे भूखे नहीं रहेंगे, प्रार्थना स्वीकार करो' तब हमने कहा, 'यदि तेरे अन्दर भाव हो आया है तो अच्छा।' मरदाना ! अन्दर भाव का आना उच्च जीवन का जन्म होता है। तब, हे मरदाना ! उसने धूनी लगा दी; कुछ लकड़ियाँ पास रख दीं और आप दूसरी मशाल जलाकर शेष लकड़ियाँ साथ लेकर चल दिया ।

मरदाना - पातशाह ! इतने साधारण हृदयों में भी आपकी करामात चुभ जाती है। ऐसे मन में भी दया आ जाती है। बलिहारी आपके अचल हृदय की, बलिहारी आपके साईं के प्यार की, बलिहारी आपके स्वामी की, आपके कर्तव्यों की। पातशाह! उस भाव वाले व्यक्ति पर कृपावन्त हुए होंगे। आप तो बहुत कोमल हृदय वाले हैं। हाय मेरी नींद, मैं क्यों सो गया ? मैं भी सीधे-सादे मन

---

१. अचिंत कंम करहि प्रभ तिनकै जिन हरि का नामु पिआरा ।। (सोरठ महला ३)

२. तेल वाली लकड़ी जिसको जंगल में जंगली लोग रात को जला कर दीए का काम लेते हैं ।

का भाव देखता, उसके आत्मसमर्पण का दान देखता, आपका उसको स्वीकार करना और कृपा करके उसका उद्धार करना देखता ।

गुरू जी – मरदाना ! तू बहुत थका हुआ था, अच्छा हुआ जो तू सो गया था ।

मरदाना – पातशाह ! यह बताइए कि उस पर अनुकम्पा हुई अथवा नहीं ? आप तो बहुत कृपा करने वाले हैं ?

गुरू जी – मरदाना ! उसका भाव स्वीकार हुआ है, अब वह साईं की ओर लगेगा, भजन करेगा, किसी जन्म में बड़ा महापुरुष होकर कईयों का उद्धार करेगा।[१]

मरदाना – बलिहारी आपकी अनुकम्पा पर । मुझे क्या पता था कि जो मुझे आग और लकड़ियाँ नहीं मिलीं, इसने किसी के मन में भाव उत्पन्न करने और उसके उद्धार तथा उस द्वारा अनेकों के उद्धार का कारण बनना है। पातशाह ! मुझे आज्ञानुसार चलने का पाठ पढ़ा दो ! इस गुरमुख की भाँति अपने इस दास का उद्धार भी कर दो ।

गुरू जी – मरदाना ! कहो धन्य करतार और अब लगा दो कीर्तन का रंग ।

२

योगियों को रात ही पता चल गया था कि यद्यपि उन्होंने आग नहीं दी थी फिर भी पीपल के वृक्ष के नीचे धूनी लग गई है। अब प्रतिदिन के कीर्तन ने बता दिया कि कोई ईश्वरीय संगीत यहाँ पर होता रहता है और यह भी दीखने लगा कि सूखे पीपल में कोंपलें फूट पड़ी हैं और वह हरा हो रहा है[२] तब योगी हैरान हुए। पहले तो क्रोधित हुए थे कि यह कौन साधु आ गया है जो कनफटा तो है नहीं पर लगता है साधु जैसा। अत: धूनी न लगाने देने से ही वे समझते थे कि भगा देंगे। बल्कि एक स्थान पर लिखा है कि योगी धूनी छीनकर ले गये थे। पर अब जब पीपल को हरा होता देखा तो घबराये कि यह तो कोई कलावान पुरुष है जिसके बैठने से सूखा हुआ वृक्ष हरा हो गया है । हैरान थे कि यह योगी नहीं है, फिर करामाती है, इसको कैसे अपने मार्ग में ले आयें, जो इसके किये हुए तप का लाभ हमें मिले। यह विचार कर गुरू जी के पास आकर बैठ गये और पहली बात

---

१. यह इस महापुरुष की अपनी बताई हुई किसी समय की आपबीती है जब वे पूर्ण गुरू प्यारे गुरमुख होकर इसी पंजाब की धरती में रंग लगा गए हैं।

२. पुरातन जंन्मसाखी में 'बड़' लिखा है, पर अन्य साखियों में, 'श्री गुरू नानक प्रकाश' और 'तवारीख खालसा' में पीपल का वृक्ष लिखा है, जिस वृक्ष को बाद में योगियों ने जलाया था और फिर श्री गुरू हरि गोबिन्द जी ने हरा किया था, वह यही था और यह पीपल ही है। इस पीपल के ही पत्ते प्रसाद में वहां से आते हैं।

यह चलाई कि हे बालक ! तू किसका चेला है, दीक्षा किससे ली है, किस सर्राफ़ के काँटे चढ़ा है ? किस कसौटी पर पूरा उतरा है ? तब गुरू बाबा ने उत्तर दिया :-

मेरा मन ही तोलने के लिये मेरी तुला है, चित्त ही बाट है, वाहिगुरू की सेवा सर्राफ है - तोलने वाला, परखने वाला वही है। हृदय में उस स्वामी को तोलता हूँ। चित्त इसी अभ्यास में लगा रहता है। मेरा गुरू वह आप है, क्योकि मैंने तोलने वाला, तुला, बाट और तरांजू उसी को पहचाना है। जीव का मन तो अन्धा है, इसका झुकाव नीचे की ओर है और यह अपने-आप में स्थिर नहीं होता, परदेशियों की भाँति भटकता है - संकल्प-विकल्प में। सो तुम ही बताओ कि केवल इस मार्ग के, कि उसमें सदा लौ लगी रहे, चित्त को एकाग्र करने का और कोई मार्ग है? यही मार्ग है यही रास्ता है। गुरू जी ने इसमें भाव यह बताया है कि मेरा गुरू अकाल पुरुष है और मेरा मन साधक और जिज्ञासु है। यह प्रश्न-उत्तर स्वयं गुरू जी ने सूही महला १ घर ७ में इस प्रकार वर्णन किया है :-

सूही महला १

कउण तराजी कवणु तुला तेरा कवणु सराफु बुलावा ।।
कउणु गुरू कै पहि दीखिया लेवा कै पहि मुलु करावा ।।
मेरे लाल जीऊ तेरा, अन्तु न जाणा ।।
तूं जल थलि महीअलि भरिपुरि लीणा तूं आपे सरब समाणा।।१।। रहाउ।।
मनु तराजी चितु तुला तेरी सेव सराफु कमावा ।।
घट ही भीतरि सो सहु तोली इन बिधि चितु रहावा ।। २ ।।
आपे कंडा तोलु तराजी आपे तोलणहारा ।।
आपे देखै आपे बूझै आपे है वणजारा ।। ३ ।।
अंधुला नीच जाति परदेसी खिनु आवै तिलु जावै ।।
ताकी संगति नानकु रहदा किऊ करि मूड़ा पावै ।। ४ ।।

तब सिद्धों ने कहा, यह बात तो समझ ली है, यह तो तुम ने सिद्ध पुरुषों की अवस्था कही है, तुम साधक और तपी मालूम होते हो, पर अभी तुम स्वतन्त्र लगते हो, अब तुम योगी का वेष धारण करके दीक्षा लो, योग सब से उत्तम मार्ग है, योगी बनो, दीक्षा लो, मुंदरा पहनो और किसी के हो कर रहो, ऐसे ही रहना ठीक नहीं है। तब गुरू जी ने उत्तर दिया - चिह्नों के धारण करने से योगी नहीं बना जा सकता। गुदड़ी, डंडा, भस्त, मुंदरा, सिर का मुंडन, सिंगी बजाना, इनके धारण करने का नाम योग नहीं है। योग बातों द्वारा नहीं हो सकता, फिर चिताओं तथा मसानों में जा बैठना योग की प्राप्ति नहीं है, न ही देशों, परदेशों में घूमना, तीर्थों पर स्नान करना ही योग है। न शरीर को अकड़ाकर, आंखे मूंदकर या किसी

वस्तु पर दृष्टि जमा कर बैठ जाने का नाम ही योग है, जिसको तुम 'तारी' कहते हो।

योगी - फिर योग किस का नाम है ?

गुरू जी - पहले सतगुरू से भेंट हो, फिर संशय-संदेह दूर हों, दौड़ने वाले मन को बांधकर रखा जाए और मन में ही मन से परिचय प्राप्त हो कि मन नाम जपे, अर्थात् नाम जपते समय यदि मन भागे तो उसको रोकने वाला मन ही हो। यदि मन एकाग्र हो तो मन ही विश्वास करके सुखी होने वाला हो, फिर अमृत टपकता है। वह इस तरह कि सहज की समाधि, लग जाती है जो रस-रूप होती है। हठ की समाधि नहीं पर सहज की समाधि, अर्थात् उठते-बैठते, चलते-फिरते गृहस्थ जीवन में ही मन स्वाभाविक रूप से साईं में लौ लगाये रखे और आत्मिक उल्लास में रहे। सिंगी में से फूँक द्वारा बजाकर शब्द निकालते हो, वह शब्द नहीं है। पर शब्द तो वह है जो बिना बजाये ही बजे और जिसका फल निर्भय पद की प्राप्ति हो। इस प्रकार का योग प्राप्त करके फिर वनों में पर्वतों में छिपकर न बैठें पर माया, जो सुरमे की भांति काली है और काला करने वाली है, उसमें बसें, इस प्रकार की जुगत प्राप्त करें कि बीच में निवास करते निरंजन रहें अर्थात् माया अपनी कालिमा न लगा सके। यह जीवन जीते जी मर रहने का जीवन है, अर्थात् जो मन माया के मोह में जीवित है, वह माया में निवास करता हुआ माया के मोह से अतीत कर्तार के साथ लौ लगी के जीवन में जिये। न तो वनों में भागकर माया से बचा जाय और न माया के बीच में रह कर पतन की ओर जाया जाय, यह जीवित मरना है। यह वार्तालाप सतगुरू जी ने एक शब्द में वर्णन किया है :-

सूही महला १ घरू ७

१ ओअंकार सतिगुरू प्रसादि

जोगु न खिंथा जोगु न डंडै जोगु न भसम चड़ाईअै ।।
जोगु न मुंदी मूंडि मुडाइअै जोगु न सिंडी वाईअै ।।
अंजन माहि निरंजनि रहीअै जोगु जुगति इव पाईअै ।।
गली जोगु न होई ।
एक दृष्टि करि समसरि जाणै जोगी कहीअै सोई ।। १ ।। रहाऊ ।।
जोगु न बाहरि मड़ी मसाणी जोगु न ताड़ी लाईअै ।।
जोगु न देसि दिसंतरि भविअै जोगु न तीरथि नाईअै ।।
अंजन माहि निरंजनि रहीअै जोगु जुगति इव पाईअै ।।
सतिगुरू भेटै ता सहसा तूटै धावतु वरजि रहाईअै ।।
निझरु झरै सहज धुनि लागै घर ही परचा पाईअै ।।
अंजन माहि निरंजनि रहीअै जोग जुगति इव पाईअै ।।३।।
नानक जीवतिआ मरि रहीअै ऐसा जोगु कमाईअै ।।

वाजै बाझहु सिंङी वाजै तऊ निरभऊ पदु पाईअै ।।
अंजन माहि निरंजनि रहीअै जोगु जुगति तऊ पाईअै ।।

लगता है कि सिद्ध समझ गये कि गुरू जी बात पूरी पते की कहते हैं और इन्होंने कोई नई ऊँची बात चलाई है। ये चर्चा द्वारा हमारे मार्ग पर चलने वाले नहीं, इनको किसी दूसरे ढंग से काबू में किया जाना चाहिए। तब रात को जब योगियों में मदिरा का दौर चलने का समय आया तो गुरू जी को बुलावा भेजा और भंगरनाथ ने आप प्याला भरकर गुरू जी की ओर बढ़ाया। तब सदगुरू जी ने पूछा : भंगरनाथ ! यह क्या है और इसके पीने का क्या फल है ?

योगी – यह रस का प्याला है इसके पीने से समाधि लगती है, फिर मस्ती में अमृत की धारा टपकती है और अनहद शब्द बजता है और उस मस्ती में दर्शन होता है।

गुरू जी – योगी जी ! यह जो तुमने रस वनाया है, यह तो औषधियों का रस है और नशा देता है और बुद्धि का नाश करता है फिर यह नशा चढ़कर बावला वनाकर उतर जाता है और बाद में हानि होती है। इसकी मस्ती में जो शब्द होता होगा, वह मस्तिष्क की खुश्की होगी, जो नशे में दर्शन होंगे वह भ्रान्ति होगी । अपने ही सोचे–समझे देखे हुए सामान रूपधारी होते हैं। जहां पर होश का नाश हो वहां पर शब्द, ज्ञान तथा दर्शन कहां ? वहां पर तो तमोगुण होगा । हे भंगरनाथ ! हमने जो सुरा वनाई है, सो सुनो – 'ध्यान' की औषधि डाली है' और 'करनी' की 'लाग' डाली है, 'प्रेम' का लेपन और 'ज्ञान' की अग्नि जलाई है, 'भाव' का बरतन है 'सुरत' की नाल है, इस प्रकार यह सुरा खींची गई है। फिर खींचकर हमने इसे 'दया' की सुराही में डालकर रखा है, और 'सहज' के प्याले में डालकर पिया है। इसका फल यह है कि आठों पहल नशा चढ़ा रहता है। उस नशे का रूप क्या है – कि प्रत्येक स्थान पर, हर रंग में कर्तार दीखता है, अपने अस्तित्व तथा अपने आनन्द में, सुगन्धि की भांति व्यापक तथा सूक्ष्म, पर प्रतीति देने वाला । यह दर्शन असीम आनन्द दे रहा है हमारी यही रौ सदा लौ है। यही हमारी सुरा है[२]।

इस समय जो बातचीत चली थी वह लम्बी हो गई, जिसमें गुरू जी ने उनका प्याला पीने से इन्कार कर दिया और न वे ही युक्तियों से गुरू जी को मना सके,

---

१. पुरातन जन्मसाखी में प्रसंग यहां पर समाप्त होता है। अन्य साखियों में – गुरू नानक प्रकाश और तवारीख खालसा में आगे और प्रसंग चलता है जिसका सारांश आगे दिया है।

२. जिन पुस्तकों में यह वार्तालाप लिखा है, वहां पर छन्दों में है, पर गुरू जी की युक्तियां वहां पर गुरुवाणी की नहीं हैं। वे श्री गुरू ग्रन्थ साहब में भी नहीं आईं और प्राय: बातचीत में कोई–कोई तुक श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी की भी है। हमने यह सारांश इस बातचीत में दिया है।

अन्य विषयों पर भी वार्तालाप में वे विजय प्राप्त न कर सके । तब वे खीझ गये। हार का फल खीझ तो प्रसिद्ध है ही। पहले तो आपको डरा-धमका कर दुर्व्यवहार करके भगा न सके। दूसरे उनको मदिरा पिलाकर मस्त करके अपने साथ न मिला सके। तीसरे चर्चा में हरा न सके । अब चौथा खेल उन्होंने यह रचाया कि जो वे अपने आपको नाटकों-चेटकों में तगड़े समझते थे, उनमें गुरू जी को शक्तिहीन सिद्ध करें। गुरू जी, सिद्धियों तथा करामातों को मुक्ति के मार्ग में सुखदायी नहीं, बल्कि बनधन बताया करते थे। सतनाम में सहज समाधि लगी रहने को आप वास्तविक करामात बताते थे। आप अनादि से ही अवतार होकर आये थे, सदा अकाल पुरुष की लौ में निवास करते थे। शक्तियां तो आपके समक्ष हाज़िर थीं, जिनका आप प्रयोग नहीं करते थे। यदि कभी किसी आत्मिक शक्ति का प्रयोग किया है, तो वह केवल परोपकार के लिये अथवा किसी के मन को हठ (जिद्द) से निकालने के लिये या योगियों आदि को उनकी सिद्धियों की तुच्छता बताने के लिये। एकाग्र मन शक्तिवान होता है और यहां पर तो स्वामी के साथ सदा जुड़े हुए मन वाले अनादि से आये दाता जी थे। सिद्ध शक्तियों का बल लगाने लगे। तवारीख खालसा में लिखा है कि जब सिद्धों ने अपनी गुदड़ियां और मृगचर्म मानसिक शक्तियों द्वारा वायु में उड़ाईं तब मरदाना ने कहा : महाराज ! इनको सीधो करो और इनका मान हनन करो अन्यथा मुझे लाज आयेगी। तब गुरू जी की खड़ांव उड़ी और योगियों के समान आगे-आगे भागने लगी । जब सिद्धों ने हार मान जी तब खड़ांव भी नीचे उतरी ।

श्री गुरू नानक प्रकाश में लिखा है कि रात को जब गुरू जी की धूनी का सामान योगियों ने भाई बाला से छीन लिया तब गुरू जी के सामने चार मेंगनों से अटूट धूनी लग गई। जब सिद्धों ने देखा कि गुरू जी के सामने बड़ी धूनी लगी है तब उन्होंने माया की आंधी चलाई, पर प्रभाव उल्टा पड़ा कि सिद्धों की अपनी धूनी तो उस वायु के आगे उड़ गई पर गुरू जी की धूनी लगी रही। सवेरे सर्दी के मारे सिद्ध आग की खोज करने लगे। शक्ति भी लगाई पर आग न जली। अन्त में हार कर भरथरि को भेजा कि जाकर गुरू जी से आग ले आये, पर गुरू जी ने कहा, "भरथरि योगी ! गोरख की खड़ांव और मुंदरा लाकर दे तब उसके बदले में आग दी जायेगी।" सो आवश्यकता के मारे इन दोनों के बदले में भरथरि अग्नि ले गया। ऐसा करने से, लिखा है कि गोरख की शक्ति चली गई। लज्जा के कारण चितवृत्ति 'संयम' में जाने से रह गई होगी। गोरख को उदास देखकर भंगरनाथ गुस्से से पास आया और तूंबा आगे रखकर कहने लगा कि दूध से भर दीजिये। गुरू जी ने भरा तो पानी के साथ, पर वह दूध हो गया। भंगरनाथ उसको योगियों के

---

१. 'धारणा, ध्यान समाधि' तीनों की एकता को संयम कहा जाता है।

पास ले गया और सारे आपस में बांटकर पीने लगे। लिखा है कि सारे पीकर तृप्त हो गये, पर दूध समाप्त न हुआ। इस प्रकार और कई परीक्षाएँ और करामातों की परख हो चुकी, पर सिद्ध विजय प्राप्त न कर सके। जब गुरू जी के सत्य की शक्ति पर विजयी न हो सके, तब अनुमान है कि उन्होंने सोचा कि ये शक्तियां जो मन को संयम पर दृढ़ करने से मिलती हैं, जिनको योग दर्शन में विभूतियों का नाम दिया है, हमारे पास गुरू नानक देव जी से कम हैं, उनको भ्रम हुआ कि इसने (गुरू जी) उनसे अधिक भारी योग साधना की है, तब फिर सोचने लगे कि यह स्थान गोरखमता हमारा भारी अड्डा है, कहीं इनकी शक्ति द्वारा यह स्थान हमारे से छिन न जाये। जैसे वाराणसी संस्कृत पंडिताई का भारी अड्डा था, इस प्रकार उस समय गोरखमता कनफटे योगियों की राजधानी थी। यहां पर इनका अड्डा था और किसी विशेष अवसर पर सारे एकत्र होते थे और मेला भी लगता, उस समय इनकी बहुत पूजा होती थी। यह अवसर अब वही था कि जिस समय वे गुरू जी को अपना चेला बनाकर लोगों में अपनी विजय दिखाना चाहते थे। पर हर बात में उनकी हार होने के कारण अब उनको लोगों की आँखों में हल्का करना चाहते थे। उन्हें यह भी चिन्ता हो रही थी कि यदि वे हारते ही गये तो उन्हें वहां से चलना पड़ेगा। क्योंकि यदि गुरू जी ने वहां पर ठिकाना बना रखा तो जो उनके अपने अनुयायी है। सो सब उनसे हट कर उधर चले जायेंगे। फिर एक तो अड्डा उनके हाथों से निकल जायेगा, दूसरे बदनामी होगी। जब पहले ही दाव में उनका कोई बस नही चला था तो उन्होंने सोचा कि किसी ढंग से गुरू जी को वहां से भेज दिया जाये जिससे उनका स्थान बना रहे। यह सोचकर उन्होंने एक दिन सतगुरू जी को वहां से चले जाने को कहा। गुरू जी ने कहा कि सारी धरती ईश्वर की है और हमारा किसी विशेष ठिकाने के साथ लगाव नहीं, चले जायेंगे पर तुम हमें जैसे भेजते हो, वैसे हमारा जाना कठिन है। हम यहां इस स्थान पर अधिकार जमाने और तुम्हें निकालने के लिये नहीं आये। हम देखते फिरते हैं कि जगत में सच की अमावस्या की रात हो रही है, कोई ऐसा स्थान ठिकाना है जहां पर सत्य का प्रकाश भी हो ? इसलिये कई स्थान देखकर हम यहां पर आये हैं कि क्या तुम्हें अपनी महत्ता तथा अपनी पूजा की ही चिन्ता है कि सृष्टि हमारे पीछे लगी रहे और पूजा होती रहे और तुम्हारी शक्तियों के भय के नीचे लोग दबे रहें या तुम निर्वासित होकर जगत का उद्धार कर रहे हो? जो हमने तुम लोगों में देखा है, यह पहली बात है। यह दशा अन्धकार की है। तुम्हारा धर्म तो था आप ईश्वर के साथ जुड़ना, मन की वासनाओं को बस में करना, फिर मन को मारकर इसको मुरदा न कर देना बल्कि मन को सिद्ध करके एक स्वतन्त्र उड़ते हुए पक्षी की भांति आनन्द तथा प्रकाश में बसा देना और इसको किसी भयानक तथा विकारी कैद में न रहने देना। स्वतन्त्र पक्षी की भांति होना और अंधेरे, मैले स्थान, नालियों, गड्ढों और गन्दे स्थानों पर कदम न रखना। अब हमारा कहा मानो इस मार्ग का त्याग

करो, नाम जपो, जागो, प्रसन्नता की दशा में आओ, जगत को जगाओ, नाम के आंचल के साथ लगा दो और आत्मिक प्रसन्नता की झोली धारण करो। तुम्हें जो यह भय खा रहा है कि कहीं तुम्हारी पूजा समाप्त न हो जाये, सो हे सज्जनों! हमें पूजा की आवश्यकता नहीं है। चिन्ता मत करो, हमें तो चले जाना है, पर तुम्हारे साथ विचार करके जायेंगे ।

पर इस संधि के आगे भी योगियों के मन ठीक ओर न आये, बल्कि कहने लगे कि पहले स्थान के स्वामित्व का निर्णय कर लो। गुरू जी ने कहा कि हमें तो कोई अच्छा नहीं। योगी कहने लगे कि यदि पूजा करवाना चाहते हो तो शक्ति दिखाओ और सारा न्याय शक्ति पर ही रहा, किसी हाकिम के पास नहीं चलते धरती से ही पूछ लेते हैं कि हे धरती तू योगियों की है कि गुरू नानक जी की ? जब गुरू जी मुस्कराये और कहने लगे :-

'शकति वान एको जगतेशा । हमारै बिखै न पायत लेशा ।
अजमत को अहंकार तुमारे । हमहिं दिखावहु देखनहारे[१]।

(श्री गुरू नानक प्रकाश)

तब सिद्धों ने आवाज दी: 'हे धरती, यदि तू हमारी है तो बोल पड़ कि तू हमारी है। तीन बार कह दे जिससे कोई संशय न रहे।' यह कह चुकने के पश्चात धरती में से दबे हुए स्वर में आवाज आई, 'मैं सिद्धों की हूं।' दूसरी बार फिर सिद्धों ने पूछा । फिर आवाज आई, 'मैं निश्चय ही सिद्धों की हूं और किसी की नहीं।' सिद्ध चकित होकर दिखा रहे थे और अहंकार कर रहे थे कि अब हमने गुरू नानक देव जी को शक्ति से पराजित कर दिया है। अब फिर वनकर सिद्ध बोले 'कहो धरती तू किसकी है? तीसरी बार बोल जिससे निर्णय हो जाय'। इस समय गुरू जी बोले 'अरे ! अभी तक तू बोलने योग्य ही रह गया है ?' इसके पश्चात् सिद्ध जोर लगा कर थक गये पर आवाज न आई। गुरू जी शीघ्रता से उठे। जहां पर से आवाज आ रही थी वहां पर जा खड़े हुए, घास फूस जो ऊपर पड़ा हुआ था उसे हटाया। सिद्ध भी शीघ्रता से वहां पर पहुंचे। गुरू जी ने उस स्थान को खोदने के लिये कहा। सिद्ध खोदना भी नहीं चाहते थे और उनको शीघ्रता भी थी। अन्त में लज्जित होकर खोदा, तो नीचे से एक सिद्ध चेला मरा हुआ पड़ा दीख रहा था। बात यह थी कि रात को सिद्धों ने बालक को गड्ढा खोदकर धरती में बैठाया था और ऊपर से छत्त सी डालकर, मिट्टी बराबर करके घास फूस ऊपर बिखेर दिया था। आवाज के लिये एक छोटा सा छेद रखा हुआ था, कि जब धरती से पूछेंगे तो यह आवाज जो बालक देगा धरती की मानकर उनकी करामात मानी जायेगी, पर सिद्धों को इस बात का पता नहीं था कि यह खेल उलटा पड़ेगा। जगत गुरू जी ऐसी चालाकियों में आने वाले नहीं थे। आप जानते थे कि योगी माया में खेल

---

१. हमें दिखाओ हम तो देखने वाले हैं ।

रहे हैं। विभूति भी एक माया है पर उसमें कपट तो नहीं है और अब यह इतने छोटे उतरे हैं कि छल और साथ नाटक करके उसको सिद्धि बताने लग पड़े हैं । सो गुरू जी ने कलई खोल दी ।

वास्तव में करामात की परिपाटी जो साधु चलाता है, वह दुःखी होता है। यदि किसी अभ्यासी पुरुष में कोई एकाग्रता के कारण अथवा किसी अनुकम्पा के कारण कोई मानसिक बल आ भी जाए जो स्वस्थ नियम यही है कि वह उसको मन की एकाग्रता के लिए प्रयुक्त करे तो सुखी रहता है, यदि वह उसे अपना ऐश्वर्य और लोगों में मान बढ़ाने के लिए प्रयुक्त करे तो जैसे प्रत्येक वस्तु प्रयुक्त करने से व्यय होती है वैसे वह शक्ति भी व्यय होती है। जब उसको बार-बार प्रयुक्त करके साधु लोग कम कर लेते हैं, तो फिर साधु को वनावट तथा छल हथकंडे करने पड़ते हैं। जैसे यूरोप, अमेरिका में कई 'मीडियमों' (माध्यमों) ने शक्ति हर जाने के पश्चात कई बार छल भी किए और कई बार पकड़े गए हैं । इस प्रकार जब कोई एक आधी बात किसी तरह किसी साधक की सीधी पड़ जाए, तो कभी तो आप दुःख सहन करता है। या फिर दम्भ, कपट और वनावट के साथ सिद्धि लगाता और गुरूत्व जताता है। पहले तो वह माया के एक अन्धेरे में होता है कि वह बड़ा वने, फिर वह झूठ, छल और कपट के नीच कर्मों में पड़कर अपने अन्तर को और मलिन कर लेता है। कई लोग फिर पैसों पर बोलने वाले चेले रखते हैं जो लोगों में करामातों का शोर मचाते हैं और भोले लोगों को फंसाते हैं और कई बार योगियों के उपरोक्त कपट की भांति कई प्रकार की वनावटें और ऐसी बातें प्रयुक्त करते हैं जो जादू तथा तमाशे वाले नाटकों और चालाकियों से करके दिखाते हैं। माया बुरी है, मुक्ति की इच्छा वाले साधक सन्त, जिज्ञासु, महात्मा कभी इस मार्ग पर न चलें। साईं में लौ लगे, जीवन के कर्तव्य सत्य पर टिकें, फिर जो कर्तार करे वह हो। साधक पुरुष अपने नाम-रंग में रहे, किसी के भले के लिये कर्तार आप इस में होकर कुछ कौतुक करे तो अहंकार न करे, बल्कि डरे कि यह कौतुक कहीं तुझे और बड़े अहंकार में न फंसा दे । आप नाम जपें। यदि दूसरों को नाम जपाए तो आज्ञा समझकर, आज्ञा होने पर जपाए, करामात तथा दिखावे की लालसा न करे। जगत में योगियों के उपरोक्त समाचार की भांति आजकल भी कई पाखण्ड हो रहे हैं, जिज्ञासुओं को समझकर चलना चाहिए ।

---

१. जैसे अभी-अभी एक योगी, प्रोफेसर 'रामन' के समक्ष कील-कांटे और विष खाकर नहीं मरा था पर बार-बार ऐसा करने से बल हार गया और एक परीक्षा के समय मर गया। इसीलिए एकाग्रता के साधन करने वालों को सदगुरू जी की आज्ञा है :-

जे कोऊ अपुनी ओट समारै ।।
जैसा बितु तैसा होइ वरतै अपुना बलु नहीं हारै ।।

बात क्या, जब योगियों का भेद खुल गया जो उलटी बात हो गई कि जो थोड़ी बहुत शक्ति हठ–तप करके प्राप्त की थी वह भी उड़ गई। कवि सन्तोख सिंह जी ने लिखा है कि योगी हार खाकर यों बैठे हैं –

आप आपने आपस बैसे।
चोर नारि जिऊं तूशनि तैसे ।। (नानक प्रकाश)

अत: लगता है कि जब यह कलई खुल गई तो जो लोग वहां पर थे, सबके मुंह उधर से हट गए और, सारे गुरू जी की ओर झुक गए। योगी एक–एक करके लज्जा के कारण खिसक गए। यह भी अनुमान है कि भरथरि आदि जो भले योगी थे उनका गुरू जी की ओर झुकाव हो गया। और आगामी भेंटों में बढ़ता–बढ़ता ऐसा हो गया कि भरथरि के बारे में तो सवैयों में लिखा है कि भरथरि गुरू जी के गुण उच्चारण करता, फिर सदैव उनके साथ ही रहा। बात क्या कि योगी चले गए और लोगों ने उस स्थान का नाम 'गोरखमता' की बजाय 'श्री नानक मता' रख दिया जो आज तक प्रसिद्ध है। यह भी लिखा है कि जो सिद्ध बालक धरती में छिपा हुआ था और मृतक निकला था सो गुरू जी की कृपा द्वारा चैतन्य हो गया था।

: ३ :

गुरू जी वहां से भी अब आगे को चल दिए। वहां पर लोग, जो गुरू के उपदेश के साथ इस मार्ग पर चले, वे श्रद्धालु हो गए। उनमें से कोई एक त्यागी व्यक्ति वहां पर ठहर गया और कुटिया वनाकर रहने लगा और वह स्थान यात्रा का स्थान वन गया। उत्तर प्रदेश में नानक पंथी लोग कई स्थानों पर हैं। इनका आरम्भ यहीं से ही और इसी से ही हुआ लगता है। बाद में यह स्थान उदासी सन्तों का ठिकाना वन गया । अब तक वहां पर डेरा वना हुआ है और आम लोग तथा गुरू नानकपंथी मानते रहे हैं। पर योगियों का क्रोध न मिटा। छठे सदगुरू जी के

१. सिध आसण सभ जगत् दे नानक आदि मते जे कोआ ।। (वारां भाई गुरुदास)

२. बालक को आत्मिक बल द्वारा जीवित कर देना गुरूजी की आत्मिक शक्ति के सामने कठिन नहीं था, जैसे 'सतिगुरि मेरा मारि जीवालै (भैरऊ महला ५), पर यदि इसकी व्याख्या स्वाभाविक ही खोजनी हो तो विचार यों भी चल सकता है= बालक का मारना अथवा मरणांतक हो जाना, नीचे गड्ढे में वायु के गन्दे हो जाने के कारण स्वाभाविक बात थी और गुरू नानक देव जी का उसकी आवाज को थिरकता हुआ पाकर शीघ्रता से गड्ढे को खुदवाना और उसको समय पर वायु पहुंचाना और बचा देना या बन्द हो चुके श्वाँस वायु दोबारा जारी कर देना, प्रकृतिक कृपा है। आजकल भी श्वाँस रोककर ताजा मर चुके व्यक्ति को श्वाँस जारी करवा देते हैं।

समय योगियों ने फिर धावा बोल दिया और यहां पर अपना बल प्राप्त किया। साधु जो गुरू के स्थान की सेवा करता था, अकेला था और उसका कोई बस न चला। उसने सदगुरू जी की आराधना आरम्भ कर दी। ऐसी लौ लगाई कि श्री सदगुरू जी को आकर्षण हुआ। आपको अपने स्वामी श्री गुरू नानक देव जी के पवित्र किए स्थान का अपमान किस तरह अच्छा लग सकता था। कहां पर पंजाब और कहां पीलीभीत पांच-छ: सौ कोस की दूरी, पर आप चल पड़े। पचास सवार और डेरा साथ ले लिया। पड़ाव करते इस ठिकाने पर आ पहुंचे ।

योगियों को पता चल गया था कि छठे गुरू जी अपने आदि गुरू साहब का चिह्न मिटता देखकर आ गए हैं और उनके आगे कोई बस नहीं चलेगा। अत: उन्होंने वहां से प्रस्थान करने का निश्चय किया, पर जाने से पहले उस पीपल को, जिसके नीचे गुरू जी बैठे थे और उसकी चारों ओर यादगार खड़ी थी, कांटे रखकर, आग लगाकर जला दिया और गुरू जी के पहुंचने से पहले आप भाग गए ।

सदगुरू जी ने पहुंचकर वहां पर डेरा जा लगाया; जो स्थान गुरू नानकपंथी साधु का छिन गया था उसका उस पर दोबारा अधिकार करवा दिया और अपने दो-चार शूरवीर रखकर पक्का प्रवनध कर दिया। बाद में जब बाबा श्रीचन्द जी (गुरू नानक देव जी का पुत्र) के मांगने पर गुरू जी ने उन्हें अपने बड़े पुत्र बाबा गुरुदित्ता जी दे दिये तब उन्होंने उदास मार्ग की शोभा बढ़ाई। उदासी सम्प्रदाय के प्रचार के काम का सारा सेहरा बाबा गुरुदित्ता जी के सिर है। चार धूनी अर्थात् चार बड़े प्रचारक अथवा नेता आपने ही पैदा किए, इस तरह यह ठिकाना भी फिर इन उदासियों के अधीन आया, जो अब तक है ।

श्री गुरू नानक देव जी का हरा किया हुआ पीपल का वृक्ष, जिसके नीचे आप उन दिनों ठहरे थे और जहां पर बैठकर सत्य की विजय करके दिखाई थी, और जहां पीपल हरा किया था, उस चिह्न का मिट जाना सदगुरू जी को अनुचित लगा। आपने बहुत सारा केशर रगड़वाकर हाथ में ले लिया और जले हुए वृक्ष के ऊपर छिड़का और कहा – 'सच्च के महाराज श्री नानक देव जी का चिह्न! तू समाप्त मत होना। पनप जा, और हरा-भरा हो। तुझ पर केशर छिड़का है, छीटे मारे हैं, तेरे पत्तों पर सफेद दाग हुआ करेंगे, इस बात की याद दिलाने के लिए कि तू दोबारा हरा हो गया है।

अत: वह पीपल फिर हरा हो गया। उसके पत्ते पवित्र यादगार समझकर यात्री

---

१. नानक मता पीलीभीत के निकट है, खटेमा स्टेशन से होकर जाते हैं। स्टेशन से आठ-दस मील की दूरी पर है। सवारी घोड़े की बताई जाती है। वर्षा के दिनों में रास्ता खराब होता है।

लाते हैं और सफेद चिह्न उन पर होते हैं। इस प्रकार गुरू बाबा का चिह्न स्थिर करके श्री गुरू जी फिर पंजाब लौट आये।

देवलोक वालों का संदेश[१]

मैंने रात को देखा कि देवता धरती पर आये हैं और आकाश से अपने साथ सरोद लाए हैं। रस तथा रंग से भरा हुआ सरोद बज रहा है और सुन्दर ताल देकर बज रहा था। नीचे को धरती की ओर स्वर ताल लगाकर नाचते थे और सारे राग साज उठाए चले आ रहे थे। साथ-साथ मधुर कण्ठों से स्वर का आलाप करती हुई रागिनी भी आ रही थी। वह मोरों की भांति नृत्य करती हैं, उनके नृत्यों को देखकर पृथ्वी के नृत्य भूल जाते हैं। जब मन लगाया तो गाने की समझ आने लगी और गुरू जी के आगमन का यश इस प्रकार सुनाई देता था :-

अपने हृदय को सुन्दर सिंहासन वनाओ और अपने 'अहं'- को नीचे बिछा दो। प्रेम की सुगंधि छिड़क दो और आज गुरू जी पर आपा न्योछावर कर दो। यदि 'आपा' आपे से खाली हो गया, तब गुरू नानक आकर निवास करेंगे। फिर तुम प्यार के रस का आनन्द प्राप्त करोगे, जब आपा आपे पर से न्योछावर कर दोगे। तब वह प्यारा हर रंग में निवास करता हुआ दीखेगा, फिर कभी भी वियोग मुंह नहीं दिखाएगा। उठो लोगो, सुनो हे लोगो! और गायन करो "कि वह आए, गुरू नानक आएं।" आज जगत को खुशखबरी दे दो कि "गुरू जी आए हैं और साथ प्रसन्नता लाए हैं।" हां आपा भेंट करके गुरू जी से मिलो। इस तरह भेंट करो कि गुरू जी तुम्हें गोद में खिलायें। सफल जीवन, जीवन सफल हो जायेगा और गुरू जी के अंगों में समा जाओगे। गुरू नानक गुरू नानक प्यारा, हे लोगो सुनो! तुम्हारे देश में आया है। उनके सत्कार की सारी तैयारी कर लो, अपने घर, वन, उपवन सारे सुन्दर वना लो।

गीत नं० २ अनुवाद

हे प्यारे! दिखा दो, दिखा दो, तनिक अपना सुन्दर मुख दिखा दो। हे सज्जन! काफी समय से तुम्हारी प्रतीक्षा हो रही है, हे प्यारे! हमारी आशा की पूर्ति कर दो।

मैं तेरे नाम की ही आराधना करता हूं, दिन-रात उसी का उच्चारण करता हूं, वाह-वाह उच्चारित करता हूं। हे प्यारे! अपना सुन्दर मुख दिखा दो।

---

१. लेखक की पंजाबी कविता का यहां पर अनुवाद प्रस्तुत किया है।

है प्यारे, गुरू नानक! अब दर्शन देना। आज हमारी ओर चक्कर लगाना। हे प्यारे जी! अपने सुन्दर मुख का दर्शन करा दीजिये।

आकर हमें चरणों के साथ लगा लें, और हमारे मस्तक में ठण्डक डाल जाना, ठण्ड प्रदान करना, वाह, वाह। हे प्यारे! अपने सुन्दर मुख का दर्शन करा देना।

हे गोसाईं! दूरी को मिटाकर आ जाओ और 'अपना' कहकर अपना वना लो। हे प्यारे! अपना सुन्दर मुख दिखा दो, हे सुन्दर अपने सुन्दर मुख के दर्शन करा दो।

□ □

२० वनारस – पण्डित चतुरदास

सदगुरू जी वनारस आए, इन्हीं दिनों चतुरदास नामक एक बड़ा प्रवीण पण्डित वहां पर प्रसिद्ध था। उसने सदगुरू जी की सुन्दरमूर्ति को देखकर प्रणाम किया और कहने लगा – "हे भक्तजन! तुम जल के किनारे पर बैठे हो, साध हो, पर शालिग्राम, तुलसी की माला आदि कुछ नहीं, पूजा किस तरह करते हो ? भक्ति किस प्रकार अर्जित करते हो ? अतीत हो ? क्या हो ?"

तब सदगुरू ने संकेत किया, मरदाना ने रबाब में बसन्त हिंडोल (एक राग) का स्वर साधा, तब आप बोले :-

महला १ बसंतु हिंडोल घरु २

१ ओअंकार सतिगुर प्रसादि ॥
सालगराम बिप पूजि मनावहु सुकृतु तुलसी माला ॥
राम नामु जपि बेड़ा बांधहु दइआ करहु दइआला ॥ १ ॥
काहे कलरा सिंचहु जनमु गवावहु ॥
काची ढहगि दिवाल काहे गचु लावहु ॥२॥ रहाऊ॥

सदगुरू जी की आत्मा की सचाई ईश्वरीय रंग, ईश्वरीय नाद पण्डित का हृदय चीर गया। मन चाहे अहंकारी था पर सत्य ने तीर बेध ही दिया। चकित होकर कहने लगा, "हे साधुजन! यदि यह खेती असफल है तो सफल खेती कौन सी है ?" तब सदगुरू ने शेष का शब्द गाया :-

"कर हरिहट माल टिंड परोवहु तिसु भीतरि मनु जोवहु ॥
अमृितु सिंचहु भरहु किआरे तऊ माली के होवहु ॥२॥
कामु क्रोधु, दुइ करहु बसोले गोडहु धरती भाई ॥
जिऊ गोडहु तिऊ तुम सुख पावहु किरतु न मेटिआ जाई ॥३॥
बगुले ते फुनि हंसुला होवे जे तू करहि दइआला ॥
प्रणवति नानक दासनि दासा दइआ करहु दइआला ॥४॥१॥९॥

अब पन्डित कोमल हृदय होकर कहने लगा, आपकी दृष्टि बहुत ऊंची है, आप साधु हैं पर कुछ विद्या की भी आवश्यकता है, यदि कहें तो दास यह सेवा करें ?

यह सुनकर सच्चे सदगुर के नैन भर आए, अपार झड़ी लग गई, शरीर पुलकित हो गया और बड़े वैराग में बोले :-

बसंत हिंडोल महला १
राजा बालकु नगरी काची दुसटा नालि पिआरो ।।
दुइ माई दुइ बापा पड़ीअहि पण्डित करहु बीचारो ।। १ ।।
सुआमी पण्डिता तुम देहु मती ।।
किन विधि पावऊ प्रानपती ।।१।। रहाऊ ।।
भीतरि अगनि वनासपति मऊली सागरु पंडै पाइआ ।।
चंदु सूरज दुइि घर ही भीतरि ऐसा गिआनु न पाइया ।।२।।
राम रवंता जाणीऐ इक माई भोगु करेइ ।।
ताके लरवण जाणीअहि रिवमा धनु संग्रहेइ ।।३।।
कहिआ सुणहि न रवाइआ मानहि तिनाही सेती वासा ।।
प्रणवति नानकु दासनि दासा रिवनु तोला रिवनु मासा ।।४।।३।।११।।

यह सुनकर चतुरदास घबराया, कुछ वैराग उत्पन्न हो आया, कहने लगा, "हे हरि के प्यारे ! आप कोई और विद्या पढ़े हैं क्या ? शिक्षक दिरवाई देते हो, अपने चेलों को क्या पढ़ाते हो ? हम तो पहले बावन अक्षर पढ़ाते हैं ?"

इस बात के पश्चात सदगुरू जी और पंडे की गोष्ठी आरम्भ हो गई और काफी समय तक रही जिसका फल यह हुआ कि पण्डित चरणों पर झुका, सतगुरू जी ने नाम का दान दिया और वह स्मरण में लग गया । वनारस में पहला, सिरव मत का सितारा वनकर यह सज्जन चमका ।

जो वार्तालाप इस प्यारे के साथ हुई, वह सदगुरू जी ने एक बाणी में रची, उसका नाम 'दरवणी ओअंकार'[1] प्रसिद्ध हुआ, जो श्री गुरू ग्रन्थ साहब जी में दर्ज है। यह वाणी सदगुरू जी की और पंडित की गोष्ठी है।

श्री गुरू नानक देव जी की रचना में यह वाणी भी एक बहुत गहन कटाक्ष से भरी हुई है, जिसके आशय, शिक्षा, सुरव, स्वाद तथा दार्शनिक गहन बातों से भरे पड़े हैं ।

वाणी का नाम बताता है कि संस्कृत भाषा के अक्षरों द्वारा किसी पंडित के प्रति उपदेश है । कई लोगों का विचार है कि नरबदा नदी के किनारे ओअंकार का मन्दिर है, जहां पुजारियों ने ओअंकार को शिवलिंग की मूर्ति देकर पूजा का प्रचार किया है । यहां पर पांडेय को बालकों को पढ़ाता और लेरवा-पत्ता सिरवाता देरवकर सदगुरू जी नें सुमति दी कि निर्गुण तथा आत्मस्वरूप परमात्मा को पत्थरों

---

१. डाक्टर चरणसिंह जी 'वाणी ब्योरा' (सन् १९०२) में एक विचार बताते हैं जिसका भाव यह है कि वाणी का नाम ओअंकार है और 'दरवणी' शब्द इस बात का सूचक है कि रामकली राग दक्षिण का है, जिस तरह बिलावल और वडहंस आदि रागों के साथ 'दरवणी' शब्द राग की सूचना के लिए आया है ।

की लज्जित सूरत न दो । परन्तु पुरातन जन्म साखी में ओअंकार का उपदेश वनारस के पंडित चतुरदास के प्रति हुआ ही लिखा है ।

वैसे यों प्रतीत होता है कि ओअंकार शब्द वर्णमाला के लिए भी प्रयुक्त होता होगा जिस प्रकार हमारे देश में भी कहते हैं कि "ऊ ए सीख लिया कि नहीं"[१] । जिसका अर्थ यह है कि "पैंतीस (पंजाबी लिपि के अक्षरों की संख्या) सीख ली है कि नहीं ।" अंग्रेजी में 'ऐलफेबैट' का अर्थ भी यही है कि लिपि के पहले दो अक्षर 'एलफा और बीटा' वर्णमाला के अर्थ देते हैं । फारसी में 'अबजद' शब्द भी वर्णमाला के 'अलफ, बे, जीम, दाल' चार अक्षरों से ही सारे अक्षरों का वार्चिक हो गया है । इसी तरह 'ओअंकार' भी वर्णमाला का सूचक है, और इसका अर्थ यह है कि वर्णमाला के अक्षरों का आश्रय लेकर उपदेश की रचना रची गई है । जिस तरह कहीं पर श्री गुरू जी ने पट्टी कही है, उसी तरह यह वाणी भी एक पट्टी की भांति है। जिसकी वाणी में से साक्षी मिलती है, 'सची पटी सचु मनि पड़िऐ सबदु सुसारु' और इस बात की साक्षी भी – कि किसी बालकों को पढ़ाने वाले पाण्डेय के प्रति यह उपदेश हुआ है – इस रचना में से ही मिल जाती है, जहां पर पाण्डे को कहते हैं :–

"पाधा पड़िआ आखीऐ ।
बिदिआ बिचरै सहजि सुभाइ ।।१।।"

फिर स्पष्ट रूप से पाण्डेय को सम्बोधन किया है :–

'सुणि पांडे किआ लिखहु जंजाला ।।
लिखु राम नाम गुरमुखि गोपाला ।।'

रचना का 'अर्थ–वेग' यह बताता है कि जिस तरह पांडेय वर्णमाला के अक्षरों में एक अक्षर के साथ एक–एक तुक लगाकर एक गीत सिखाया करते हैं, उस योजना को सदगुरू जी ने शुद्ध किया है और सुमति प्रदान की है कि वर्णमाला के अक्षरों का जब यह बर्ताव सिखाओ तो उस समय परमेश्वर की और परमार्थ की सुमति दो । पाण्डेय चकित होकर झिझकता दिखाई पड़ता है, वह डरता भी है कि मैं व्यवहारियों का शिक्षक परमार्थ की क्या सुमति दूं, और आप भी कुछ सांसारिक मति का मनुष्य दिखाई पड़ता है, इसीलिए गुरू जी ने उसको उसके कर्तव्य बताकर समझाया है ।

वाणी की भाषा स्पष्ट पंजाबी है, रचना का प्रवाह प्राकृतिक और प्रवाहमान है, कई छन्द दोहा की–सी गति वाले हैं, यथा – "डोलत डोलत हे सखी फाटे चीर सीगार" और कई चौपाई के वेग वाले पउड़ी की भांति हैं, यथा – "खोजत खोजत अंम्रितु पीआ ।" कई दुवैया की–सी गति के हैं, यथा – "ससै सभ जगु सहजि

---

१. पंजाबी वर्णमाला की पहचान कर ली है ?

उपाइआ तीनि भवन इक जोती ।" अन्य छन्दों की गति भी किसी-किसी में है ।

साधारण दृष्टि से देखने से पता नहीं चलता कि किस भाषा की वर्णमाला है और इसीलिए इस विषय की ओर विद्वान् ध्यान नहीं देते, पर इसमें कोई सन्देह वाली बात नहीं लगती कि वर्णमाला देवनागरी, अथवा संस्कृत की है। आरम्भ में 'ओ', 'स', 'ध' देखकर भी संशय लगता है कि न जाने किस भाषा की वर्णमाला है, पर उसका रहस्य यह है :

पांडेय जब विद्यार्थी की पट्टी पर अक्षर लिखकर देते हैं, तो कोई 'श्रीगणेशायनम:' लिखते हैं और कोई 'ओनम: सिद्ध'[१], मंगल रूप सिरे पर लिखकर फिर आगे अक्षर लिख देते हैं । बालकों को ऊपर वाले मंगल का कोई पता नहीं होता वे अक्षर सीखते हैं, वह मंगल तो पाण्डेय की एक शुभ रीति के पीछे चलने वाली बात होती है, सदगुरू जी वहां से ही आरम्भ करते हैं ।

इसलिए पहले 'ओ' को लेते हैं, फिर इसके समाप्त होने पर 'ओनम' स्पष्ट बताते हैं, कि हे पाण्डेय ! तू अपने पहले लिखे 'ओनम' का विचार सुन । इसके पश्चात् 'सिद्धं' के अर्थ 'स' और 'घ' लेकर उपदेश करते हैं । यहां पर ३ अंक समाप्त हो जाता है, चौथे में आनुनासिक को 'ङ' के रूप में लेते हैं, इसका सारांश बताकर फिर अक्षरमाला का आरम्भ करते हैं ।

यह शंका हो सकती है कि अक्षरमाला के मंगल में 'ओ' है और '१ ओ' क्यों नहीं । इसका उत्तर यह है कि वर्णमाला पांडेय की अपनी संस्कृत बोली की है और जो कुछ उसकी अक्षरमाला है, उसके क्रम में उपदेश नहीं दे रहे, वर्णमाला संस्कृत की ही है और उसी में उसका क्रम प्रयुक्त कर रहे हैं ।

वर्णमाला में अक्षर दो प्रकार के होते हैं - स्वर और व्यंजन । संस्कृत में 'अ, इ, उ, ऋ, ऋ लृ, लृ' यह स्वर हैं और शेष सभी व्यंजन । अत: सदगुरू जी ने पंचम पऊरी से १४ तक स्वर अक्षरों द्वारा उपदेश किया है । ऋ, लृ, पंजाबी बोली में नहीं बोले जाते, इसलिए उनका प्रयोग 'र, ल' की भांति किया गया है । १५ से १७ पऊरी तक फिर पीछे रहे, पर पुनर्दृष्टिपात करने की भांति विचार कथन किया है और १८ वीं पऊरी से व्यंजन अक्षरों द्वारा उपदेश आरम्भ कर दिया है, ४६ पऊरी तक यह समाप्त हुए हैं। आगे एक अक्षर 'ड़' है जो संस्कृत में नहीं, पर 'ड' को विनदु लगाकर आवश्यकता पड़ने पर प्रयुक्त कर लिया करते हैं । फिर संस्कृत के शेष चार अक्षर (श, ष, स, ह' को 'ष, स, ह) के रूप में प्रयुक्त किया है। इस प्रकार ५१ पऊरियों का अन्त करके ५२वीं में अपने मत का सारांश 'आज्ञा, अनुकम्पा, गुरू का उपदेश देकर ५३ और ५४ में फिर पांडेय की ओर सीधा ध्यान करके उसकी भूल, उसका कर्तव्य, उसके जीवन के कर्म का आदर्श

१. 'ओनम सिद्ध' जैनीयों से आरम्भ होकर सारे पाण्डयों में प्रवृत्त हुआ माना जाता है।

बताकर वाणी को समाप्त करते हैं । इसलिए पऊरी नं० २२ में 'ङ' को 'ग' के रूप में और ४६ में 'ब' को 'व' की बजाय और ४३ में 'य' के स्थान पर 'ज' वाले अक्षर प्रयुक्त किये हैं, क्योंकि अक्षर पंजाबी के प्रयुक्त कर रहे हैं और पंजाबी में यह आवाजें आपस में तबदील होती हैं । पऊरी ४२ में 'ड़' और ५२ में 'ल (ऌ)' 'फिर–फिर होने के कारण हो सकता है कि वर्णमाला मराठी भाषा की हो और उनके (ऌ) के स्थान पर आया हो । मराठी लिपि है तो देवनागरी ही, पर बीच में 'ऌ' अक्षर अलग आता है, जिस 'ल' का उच्चारण मालवा में भी होता है ।

सूचना :– वनारस में अनेकों लोग शुभ मार्ग पर आयें, परन्तु दो बड़े प्रसिद्ध और विद्धान वेदान्ती पण्डित हरिलाल और कृष्णलाल वाहिगुरू जी के प्रेमी होकर सत्यमार्ग पर आये । काशी से चलकर सदगुरू जी पटना आये । जहां की एक कथा आगामी प्रसंग में है ।

□ □

२१ पटना - सालिसराय

१. पहचान तथा मुक्ति

एक उजाड़ में श्री गुरू नानक देव जी लेटे हुए हैं और मरदाना पास बैठा हुआ कह रहा है :

"पातशाह ! आप कहते हैं कि परमेश्वर सर्वव्यापक है और यह जो कुछ दीखता है, इसमें वही है, यह दृष्टिमान उसका पहरावा मात्र है, मुझे यह इस तरह क्यों नही दीखता ?"

गुरू जी - मरदाना ! भली-भान्ति देखा कर, जब किसी दूर की वस्तु को देखना होता है तो भली-भान्ति दृष्टि बांधकर देखा जाता है, इसी तरह तू मन को बांधा कर, जब ठीक एकाग्र हो जायेगा तो अनुकम्पा द्वारा प्रतीत हो जायेगा ।

मरदाना - खूब दृष्टि लगा-लगाकर देखता हूं, कीर्तन करता हूं तो भी कई बार अन्दर से एकाग्र हो जाता हूं, पर बलिहारी आपके कर्तार की, कर्तार की झलक ही नहीं पड़ती । आपने कहा था नाम जपा कर, मैं जपता हूं, अब तो चलते-फिरते ख्याल रखता हूं, पर हे कर्तार के रहस्य को जानने वाले ! अनुकम्पा करके मुझे वह दृष्टि दीजिये ।

सदगुरू जी - मरदाना ! स्मरण किया कर, टिकाकर, देख ! समझदार लोग तरबूज की बाहरी हरियाली में से अन्दर की लाली देख लेते हैं । तू होश वाला है, दृष्टि से तो सारा संसार देखता है, कोई उपाय करके दृष्टि को भी देखता है कि नहीं, कि तेरे पास साईं कर्तार की प्रदान की हुई दृष्टि है । सारा संसार बोलता है, आवाजें निकालता है, किसी-न-किसी स्वर पर बोलता है, कोई षड्ज[१] पर बातें करता है, कोई ऋृषभ[१] पर कोई पंचम[१] पर कुछ गाते भी हैं, पर किसी को ज्ञान नहीं, तुझे कैसे पता है कि यह आवाज पंचम की है और यह गांधार[१] की और यह निषाद[१] है। कैसे तू कह देता है कि यह रामकली है ? कौन-सी तुला पर तोलता है ? और किस गज के साथ उसको मापता है ? कौन-से कांच में डालकर देखता और कौन से 'पारखू तत्व' निकालकर परख करता है ? तेरे अन्दर तेरा आपा किसी जांच द्वारा अपने-आप बता देता है कि यह तो कानड़ा है और यह कलियाण है, यह तीन ताल है और यह चार ताल । कैसे परख करता है, बता तो सही ?

---

१. गायकों के स्वरों के नाम ।

मरदाना – पातशाह ! यह तो कई बार गाने से, अन्दर से सुरत को जोड़–जोड़कर अन्तर समझते–समझते, पहचानते अपने–आप ज्ञात हो आई है ।

सतगुरू जी – ठीक मरदाना ! अपने–आप ही सूझ हो आती है । रबाब के ऊपर तो तारें हैं, फिर प्रत्येक स्वर के लिए सीध बना रखी है कि यहां से टंकारने से षड़ज उठती है और यहां पर पंचम, उधर तेरे कण्ठ में से भी सारे स्वर निकलते हैं, बता तो सही वहां पर कौन–कौन से स्थान पर स्वर, ऋषभ किसी टंकार देने वाले साधन के साथ ठिकाने खोज–खोजकर पर्दों को थरथराहट गांधार के लिये खोजे हैं ? और कौन–सी अंगुलियों के साथ शरीर के किसी टंकार देने वाले साधन के साथ ठिकाने खोज–खोजकर पर्दों की थरथराहट में लाता है ? सोचकर बता कि उसी कण्ठ में से उसी वायु के साथ तू किस तरह सारे स्वर और हजारों तानें भिन्न–भिन्न कर लेता है, तुझे अपने अन्तर्मन में कैसे प्रत्येक स्थान की जानकारी हो गई है ?

मरदाना – पातशाह ! बात तो आपने खूब कही है । कण्ठ की नालियों की कोई सूझबूझ नहीं, कभी वे ठिकाने देखे भी नहीं कि जिनसे सातों स्वर और तान निकाली जाती हैं, फिर आश्चर्य की बात है कि जो मन में चाहे वही राग निकलता है, वही तान उठती है , वही स्वर बोलता है समझ नहीं आती, कैसे ?

सदगुरू जी – फिर है न अन्दर कोई जांच, कोई पहचान, कोई सूझ, जिसके द्वारा तू राग की सारी बातों का पारखी है ? और स्वयं कलावन्त है कि जो राग चाहे अन्दर से निकालता है और वैसे न तेरे सामने पट्टी है न कलम न कागज न दावात, न हकीम की दूकान है न पारखी का तखता, न मापने का चिह्न है और न गिनती का अंक । स्वयं की स्वयं के प्रति पूरी समझ है कोई पहचान है कोई ढंग आता है कि अपने–आप स्वरों के सारे प्रकारों में गमकता और कौतुक करता है मस्त कर देता है और आप मस्त हो जाता है, मन को संसार से उठाकर मगन कर देता है और विस्मित सा कर देता है । बता इस तरह की कोई सूझ है न जिसको तू अनुभव तो करता है, पर बता नहीं सकता ।

मरदाना – ठीक है जी ।

सदगुरू जी – इस प्रकार ही भाई जपते–जपते स्मरण करते–करते, जुड़ते–जुड़ते स्वयं को स्वयं के प्रति अन्दर में अनुकम्पा द्वारा एक सूझ आ जाती है, उस सूझ के साथ 'दृश्यमान तथा बसने वाला' जो कुछ दृष्टिगत होता है, यह पहरावा दृष्टिगत होता है और पहरावे में कर्तार स्वामी तथा पालनहार अपनी आभा तथा यौवन में दमकता हुआ अचल भी, चोज करता भी दीख पड़ता है, दीख पड़ता कहें कि कुछ और कहें ? सूझ हो आती है, एक पहचान सी जागृत हो जाती है, ईश्वर ही ईश्वर का चमत्कार झलकता प्रतीत होता है :–

सोरठि महला १

अलरव अपार अगंम अगोचरि ना तिसु कालु न करमा ।।
जाति अजाति अजोनी सम्भऊ ना तिसु भाऊ न भरमा।।१।।
साचे सचिआर विटहु कुरवाणु ।।
ना तिसु रूप वरनु नहीं रेखिआ साचै सबदि नीसाणु ।।रहाऊ।।
ना तिसु मात-पिता सुत वनधप ना तिसु कामु न नारी।।
अकुल निरंजन अपर परम्परु सगली जोति तुमारी ।।२।।
घट-घट अन्तरि ब्रहमु लुकाइया घटि-घटि जोति सबाई।।
बजर कपाट मुकते गुरमती निरभै ताड़ी लाई ।।३।।
जन्त उपाइ कालु सिरि जन्ता वसगति जुगति सबाई।।
सतिगुरु सेवि पदारथु पावहि छूटहि सबदु कमाई ।।४।।
सूचै भांडै साचु समावै विरले सूचा चारी।।
तन्तै कऊ परम तन्तु मिलाइआ नानक सरणि तुमारी ।।५।।६।।

मरदाना (निःश्वास भरकर) - पातशाह ! कभी मेरी सुरत को भी यह पहचान आ जाये, कभी तो राग के स्वरों की भान्ति, इस सुरत की समझ भी हो जाये । हैं जी! आप गुरू हैं, खोलिये न मेरे वज्र कपाट । बात तो समझ में आती है, पर क्या करूं ।

सदगुरू - मरदाना ! अब बहुत रात बीत गई है, सो जा, कल तुझे इस बात की और सूझ हो जायेगी कि एक दृष्टि अंतस में है, जो सभी सूझों की जननी है, यदि उसकी आवश्यकता है तो भाई गुरुमुख ! नित्य नाम जपा कर ।

मरदाना शीश झुकाकर कुछ दूर जाकर धरती पर लेट गया और तारे गिनता और उनमें ईश्वर की झलक देखने का ध्यानं करता-करता सो गया ।

२. दृष्टि

एक चहल-पहल वाले नगर के सुन्दर महल के अन्दर एक मालिक और नौकर बातें कर रहे हैं ।

अधरका - मेरे स्वामी जी ! आपजी की सेवा में आयु का एक भाग व्यतीत हो गया है । हीरे, लाल, पन्ने, फीरोजे, नीलम, पुखराज, लहसनियां, गोमेध, गुलीये, नौ रत्न और चौरासी अमूल्य पत्थर आपके पास हैं, आप प्रतिदिन खोलते, बेचते, खरीदते हैं और डिब्बे, गांठें मैं बांधता सम्भालता हूं, मुझे कोई सूझ नहीं आती कि खोटे तथा खरे की परख कर लिया करूं । न रंग, न नीर, न जाति, न पाति मेरी समझ में कुछ भी नहीं आता, मैं सब कुछ सुनता तो नित्य हूं ।

सालिसराय - अधरका ! यह दृष्टि है, कोई लेखा नहीं कि जिसको पहाड़े

पढ़ाकर जोड़ बाकी, गुणा, सिखाना है । देखता रहा कर, कभी कोई क्षण आयेगा कि तेरी दृष्टि टिक जायेगी । रत्न, पत्थर और कांच, बिल्लौर की परख तेरे अन्दर से ही हो आयेगी, फिर तू परख करेगा और मुस्कुराया करेगा ।

अधरका – पर स्वामी जी ! जैसे शिक्षक दूसरी विद्या पढ़ाते हैं, क्या इस विद्या की सूझ वाली कोई शिक्षा नहीं ?

सालिस – सब कुछ है और तुझे प्राप्त है, और विद्या की युक्ति बाहर से परख करने की है, परिणाम सिद्धांत निकालने का है । खटाई में कुछ डालने से यदि झाग उठे तो समझ लिया कि जो वस्तु इसमें डाली थी, वह क्षार थी, यह एक विधि है, पर इस विद्या की विधि जो तू पूछ रहा है, अन्दर से अपने साथ अपने आप पहचान की है, यह अन्य प्रकार की है । जिस तरह एक रसोईया एक सेर दाल डालता है । फिर जांचकर पानी डालता है फिर हिसाब से तोलकर नमक डालता है, जब दाल को पका लेता है तो वह ठीक उतरती है । दूसरी विधि यह है कि एक स्त्री पानी आग पर चढ़ाती है, उसमें दाल डालकर देखती है और कहती है ठीक है, फिर नमक हथेली पर लेकर एक दृष्टि दाल में और एक पानी की ओर डालती है और कहती है, ठीक है, नमक झट ही उसमें डाल देती है, जब दाल पक जाती है, तो देखो नमक पानी पूरा उतरता है । बता अधरका ! इसने किस तरह पहचान लिया था कि नमक पूरा होगा ? यह विधि है 'दृष्टि' की वह पहला ढंग है दृष्टिमानी परख का' । एक तरीका और सुना है दृष्टा का, वह देखा नहीं, सुना है । जवाहरों के तौल तथा काम में जो रत्ती चावल आदि का ढंग है यह है दृष्टिमानी परख का, पर जवाहरातों की जाति–पांति आदि की परख 'दृष्टि' का ढंग है, बेटा ! देखा कर, जैसे मैं आंखों के आगे करके देखता हूं, वैसे तू भी किया कर तेरी दृष्टि भी पारखी हो जायेगी ।

अधरका (ठण्डा श्वांस भरकर, अन्दर गहराई में खोकर)– अच्छा शाह जी ! आज कुछ मन एकाग्र हुआ है, आपकी अनुकम्पा से दृष्टि खुल जायेगी।

सालिस – देखा कर, देखा कर, देखा कर।

इस दूकान पर एक परदेशी नये ढंग का आया खड़ा है और कोई कोई सौदा बेचने के लिये शीघ्रता कर रहा है। यह सुनकर शाह और अधरका नीचे दूकान पर आ गये और दूकान पर आये बैठे व्यक्ति से बातें चल पड़ीं –

आओ जी ! सेठ जी ! किस देश से आये हैं ? क्या माल लाये हैं ?

मरदाना – मद्र[१] देश से आया हूं, जहां पर पांच नदियां बहती हैं, और एक लाल रंग का पत्थर–सा बेचने के लिये लाया हूं, यदि चार कौड़ी दे दो तो अन्न जल हो जाये ।

---

१. रावी तथा जेहलम नदी के बीच का इलाका ।

सालिस - दर्शन कराओ ?

मरदाना ने एक पोटरी खोलकर पांच-छः माशे का चमकता हुआ लाल रंग का पत्थर का एक टुकड़ा-सा आगे रख दिया ।

सालिसराय (भली भान्ति उलट फेर कर देखकर)- शुक्र है, धन्य ! उस्तादों पर बलिहारी, अधरका ! बेटा ! एक सौ रुपया ले आ ।

अधरका एक सौ रुपया ले आया ।

सालिसराय (मरदाना के आगे रखकर)- लो महाराज जी ! यह लो अपना लाल संभाल कर पोटली में बाँध लो।

मरदाना - और सौ रुपया किस बात का है ?

सालिसराय (भली भांति मरदाना की ओर देखकर)- यह सौ रूपया इसकी दर्शन भेंट है। लगता है कि यह वस्तु किसी जौहरी की है और उसने तुम्हें देकर नगर के जौहरियों की परख के लिये भेजा है, अन्यथा इस लाल को कौन बेचता है ? वह भाग्यशाली है जिसने इतना द्युतिमान और आकृष्ट करने वाला स्वच्छ तथा बड़ा लाल जीवन में देख लिया हो । हमारे उस्ताद इस प्रकार के लाल के बारे में एक बात कहा करते थे, सो हम ने आज अपनी आंखों से देखी है । वे कहा करते थे कि जब इसके स्तर का रत्न देखो तो पहले दर्शन भेंट करो । मूल्य की दृष्टि से यह लाल इतने मूल्य वाला है कि अमूल्य है । अत: हमने उन उस्तादों की सुमति का पालन किया है, आप यह दर्शन भेंट ले जाओ ।

अधरका - शाह जी ! तनिक मुझे भी दिखाना यह लाल ।

सालिसराय (उठाकर) - लो बेटा, देखो ।

अधरका (देख-देखकर)- शाह जी ! आज तो मैं भी कुछ दृष्टि वाला हो गया हूं । सचमुच यह बड़ी खालिस अद्वितीय अत्यन्त स्वच्छ वस्तु है । मैंने ऐसी दमक, यह पानी की झलक कभी नहीं देखी थी ।

मरदाना - शाह जी ! जब मेरे स्वामी ने यह पत्थर का टुकड़ा दिया था तब मैंने स्वामी का मजाक समझा था । फिर मैंने कहा - शौकीनों का नगर है, कोई बच्चों के खेल के लिये ले लेगा और भरपेट अन्न मिल जायेगा । पर जब मैंने पहले दूकानदार को दिया तो उसने एक मूली देकर कहा, भाई ! यह ले ले, हमारे बच्चे इसके साथ दो घड़ी खेल लेंगे । मैंने कहा - दो मूली दे दे, पर उसने न दीं । फिर एक हलवाई के पास गया, तो उसने एक सेर मिठाई न दी और एक बजाज के पास गया, तब एसने दो गज खद्दर ही देने को कहा ।[१] जब मैंने पैसे

१. सरदार खजान सिंह का इतिहास, पृष्ठ ८३ ।

मांगे तब उसने कहा कि किसी सर्राफ के पास जा। फिर मैं दो–चार दूकानों पर गया, अधिक–से–अधिक मूल्य पड़ता गया, इसके अधिक मूल्य होने का संशय हो गया तो मैं खोजता–खोजता आप के पास आया, आपने मूल्य अमूल्य कहा है और दर्शन भेंट सौ रुपया दिया है । यह मैं नहीं लेता ।

सालिसराय – तुम सौ रुपया और लाल अपने स्वामी के पास ले जाओ, यदि उन्होंने बेचना ही हुआ तो फिर आ जाना, मूल्य कर लेंगे । पर इस वस्तु का मूल्य अमूल्य है ।

मरदाना – शाह जी ! मैं रात का भूखा हूं, और मेरे मालिक भी भूखे तो नहीं पर भोजन उन्होंने भी नहीं किया । आज्ञा थी कि इसको बेचकर भोजन ले आओ ।

सालिसराय – तुम यह ले जाओ, भोजन भी पहुंच जायेगा, हमें पता बता जाओ, चिंता न करो । हम व्यापारी लोग हैं और आपका स्वामी बहुत बड़ा व्यापारी लगता है और ऊंची दृष्टि वाला जान पड़ता है । वह हमारी बात पर प्रसन्न होगा, नाराज नहीं होगा ।

मरदाना (जरा त्योरी चढ़ाकर)– पता नहीं, बड़ा तो अवश्य है, (अपने आप) पर यदि व्यापारी होता तो देश परदेश घूमने की क्या जरूरत थी ? घर बैठे ही धनवान हो जाता । (ऊंचे स्वर में बोलकर) अच्छा चलते हैं ।

सौ रुपया और लाल लेकर मरदाना सदगुरू जी के पास पहुंचा । सदगुरू जी देखकर हंसे और मरदाना ने लाल और रुपये आगे रखे और कहा :–

'यह लो ! अपना चमत्कार, किसी स्थान पर दो मूली मूल्य नहीं पड़ता और किसी स्थान पर सौ रुपये दर्शन–भेंट और मूल्य अमूल्य ।'

सदगुरू जी– मरदाना ! अमूल्य वस्तुओं की यही दशा होती है । दृष्टि वाले स्थान 'अमूल्य' हैं और न दृष्टि वाले स्थान 'मूल्य रहित' हैं ।

उच्च दृष्टि मूल्य है, जिसको सूझ–पहचान नहीं थी, उसने मूली मूल्य बताया, जिसके नैन थे उसने अमूल्य बताया । यह सौ रुपया उसकी भीतरी दृष्टि की कदर है, पर हमारा कोई अधिकार नहीं कि कोई माल दिये बिना, मूल्य लें, जा इसको लौटा आ ।

मरदाना थका–टूटा हुआ था, पर जानता था कि सौ रुपया अनुचित हैं और गुरू जी लेंगे नहीं, अत: विवश होकर लौटाने चला गया ।

३

सदगुरू जी उसी जंगल में परमेश्वर के प्यार में बैठे किसी अति मीठी लय में गा रहे थे :

किआ सालाही अगम अपारै ।।
साचे सिरअणहार मुरारै ।।
जिसनो नदरि करे तिसु मेले मेलि मिलै मेलाई हे ।।१३।।

(मारू सोलहे म: १)

इस समय अधरका भोजन पकवान लेकर पहुंच गया और मीठे स्वर पर मस्त होकर चकित रह गया । दृष्टि वनध गई और कोई गहन आकर्षण होने लगा जौहरी होने का विचार भूल गया और स्वयं आपे से बाहर होकर किसी विस्मय में झूमने लगा । जब गुरू जी का शब्द समाप्त हुआ तो भोजन आगे रखकर चरणों पर झुक गया ।

हे नाथ ! रक्षा करो ! मैं जौहरी समझकर आया था, पर आप नारायण का रूप द्युतिमान दिखाई दिये हैं । आप में ज्योति है । आप में अमृत की मिठास और सुगंधि लहरा रही है । हे ईश्वरीय रंग वाले ! दर्शन भी दिया है और सूझ भी दी है, चिरकाल से बिछुड़े हुए को मिला लो ।

मरदाना अब जौहरी के घर रुपये फेंक आया था और जौहरी यह परम त्याग देखकर पीछे-पीछे आया । सदगुरू जी के दर्शन करके चकित हो गया, चरण-वंदना की । सदगुरू जी ने आदर दिया, बैठ गया और कहने लगा :

आपका लाल देखकर चित्त बहुत प्रसन्न हुआ है और अब आपके दर्शन करके और ही आनन्द हुआ है, आश्चर्यचकित हो रहा हूं। आपका देश, शुभ नाम ?

सदगुरू जी - देश निरंकार । नाम निरंकारी ।

सालिसराय - (गम्भीरता से देखकर और आकृष्ट होकर) कुछ हमें भी निरंकार की सूझ करायें ?

सदगुरू जी - **जह देखा तह दीन दइआला ।।**
आइि न जाई प्रभु किरपाला ।।
जीआ अंदरि जुगति समाई रहिओ निरालमु राइआ।।१।।

(मारू सोलहे महला १)

सालिसराय - जो आपको, हर ओर दीखता है, हमें नहीं दीखता।

सदगुरू जी- निर्मल जल में जाला (काई) और कंवल का फूल, जिसके अन्दर निर्मल मकरंद रस है, दोनों ही रहते हैं[1]। एक जल की ही दोनों को संगत प्राप्त है, पर कमल को जाले का 'सम्पर्क-दोष' नहीं लगता[2] । मेंढक भी उसी जल में निवास करता है, पर वह कमल को नहीं पहचानता, अमृत (रूपी मकरंद रस) को नहीं देखता[3]। मेंढक जल में (कमलों के साथ नित्य रहता हुआ सूझ नहीं रखता और भ्रमर जल में नहीं रहते, पर ऊपर से आकर उसके गुणों को चूस

---

१. बिमल मझारि बससि निरमल जल पदमनि जावल रे।

२. पदमनि जावल जल रस संगति संगि दोख नही रे।

३. दादरि तू कबहि नि जानसि रे।। भखसि सिबालु बससि निरमल जल अंमृतु न लखसि रे।।१।। रहाऊ।।

(प्राप्त कर) लेते हैं[१]।

सालिसराय – हे महापुरुष जी! इसका क्या कारण है?

सदगुरू जी – अनुभव की कमी, जिस प्रकार कुमुदिनी दूर से ही चन्द्रमा का दर्शन करके खिल जाती है, इसका कारण अनुभव है[२]।

सालिसराय – साईं के साईं लोग जी! अनुभव स्पष्ट कीजिए।

सदगुरू जी – जिस तरह भाई तेरी दृष्टि को हीरे, जवाहर परखने का अनुभव हो गया है, हमारे सज्जन मरदाना को राग की लहरों का अनुभव हो गया है; जिस तरह कवि को किसी उच्च रस में अनुभव हो आता है, निरंकारियों के अंतस् को एक उसी तरह का, पर एक अन्य अगभ्य प्रकार का, निरंकार में अनुभव दान मिलता है।

यह सुनकर मरदाना को पहले दिन वाला सदगुरू जी का सारा उपदेश याद आ गया, उधर जौहरी को अपनी बातचीत ध्यान में आई जो उसने अपने शिष्य अधरका के साथ की थी। मनों में हलचल हो गई। सालिसराय के मन में आदर और प्यार बहुत बढ़ा, दिन चढ़ आया देखकर भोजन के लिए विनती की। धन तो सदगुरू जी ने लौटा दिया, "फकीरों को इसकी आवश्यकता नहीं," और भोजन मरदाना को दिया आप भी खाया, और अधरका ने बड़े प्रेम से मगन होकर खिलाया।

सालिसराय – हे निरंकार के प्यारे जी! हमें भी वह दृष्टि प्रदान करो जिससे निरंकार के दर्शन हो जाएं।

सदगुरू जी – तेरे दास को वह दृष्टि प्राप्त हो गई है । उसने ध्यान लगाकर और स्वयं देखा है और आपा खो दिया है । यह उसे प्रभु की अनुकम्पा के कारण दीख पड़ा है ।

यह सुनकर जौहरी ने दास की ओर देखा और उसके चरणों पर गिर पड़ा । सदगुरू जी उसके इस तरह पसीजने पर तथा नम्रता पर प्रसन्न हो गए, उन्होंने अपने सिर पर जो डेढ़ गज का साफ़ा था, उतारकर सालिसराय के सिर पर बांध दिया और करुणा–भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा ।

वह कपड़ा :

सालस बांध्यो सीस पर शीघर खुले कपाट ।
गयानानंद पूरन भयो ठटयो और ही ठाट ।।
भा निहाल ततकाल श्री गुरू नानक मइया ते ।
उमगयो प्रेम विसाल उसतति उचरति शबद कर ।।

(गुरू नानक प्रकाश)

---

१. बसु जल नित न वसत अलीअल मेर चचा गुन रे ।

२. चंद कुमुदनी दूरहु निवससि अनभऊ कारनि रे ।। २ ।। (राग मारू महला १ – ४।।)

इस तरह दोनों निहाल हो गये, सदगुरू जी बोले – भाई ! जिस प्रकार जौहरी; रागी तथा कवि की दृष्टि इस हिसाब वाली दृष्टि से ऊँची है, पर यह दृष्टि रहस्यमयी हिसाब की है । उसी प्रकार एक और दृष्टि है, जो सभी दृष्टियों से परे की दृष्टि है । यह तुम्हें अब प्राप्त हुई है । यह पूर्ण अनुभव है । जब दृष्टिमान जगत से ध्यान उठकर विस्मय की दशा में आता है, आत्म आत्म से परिचित होता है, उसमें विलीन होता और अंत में जागता है; अनंत की अपार झलक पड़ती है तब सीमा वनधन नीचे रह जाते हैं । यह झलक मन पर एक प्रभाव छोड़ जाती है । जिसके साथ चलते, फिरते, बसते जगत में वाहिगुरू, कर्तार, निरंकार, धन्य निरंकार का जलवा आत्म का अनुभव कराता रहता है । फिर जीव दृष्टिमान को देखकर भूलता नहीं, दृष्टिमान इसको कुछ–कुछ पहरावे की भांति दीखता है, बीच में निवास करने वाला कर्तार दीखता है । 'इहु जगु सचै की है कोठड़ी सचे का विचि वासु' और देखनहार उस 'बीच में निवास करने वाले' प्यार से बलिहारी होता है – "बलिहारी कुदरति वसिआ तेरा अंतु न जाई लखिआ ।"

सूचना – इस प्रकार ध्यान में मग्न पूर्ण रस को प्राप्त करके सालिसराय और अधरका विदा हुए सदगुरू जी कई महीने वहां पर ठहरे । यहां पर गंगा के पार पटना से तीन मील दूर एक ठिकाना है जहां पर कार्तिक की पूर्णिमा को हरिहर क्षेत्र का मेला लगा करता था। इस मेले के लिए सदगुरू जी वहां पर ठहरे थे कि आने वाले यात्रियों में उनका अज्ञान, भ्रम तथा अन्धकार की निवृत्ति की औषधि बांटी जाए । आपके आस–पास प्रतिदिन भीड़ लगी रहती थी, ईश्वरीय कीर्तन, और उपदेश होता । मृतक जगत को जीवनदान मिलता था । यों पटना शहर में सिख धर्म का प्रचार हो गया, संगत आती, सतसंग आन्नद रस का असीम प्रवाह चल पड़ा ।

यह कार्तिक पूर्णिमा सदगुरू जी के अवतार का दिन है। इसी दिन को सदगुरू ने पटना की संगत को निहाल किया था, और चार महीने रहकर जब विदा होने लगे, तब संगत ने एक नेता के लिए प्रार्थना की, महाराज ने अधरका की ओर संकेत किया और फिर वचन किया – संगत की अगुआई की सेवा सालिसराय करेगा, सालिसराय के पश्वात अधरका करेगा ।

इसी सालिसराय की सन्तान में से फतहचन्द मैणी नामक गुरू गोविन्द सिंह जी का प्यारा सिख हुआ । जिसका स्मरणीय स्थान अब तक है और कहा जाता है कि अधरका की सन्तान के मसंद गुरू गोविन्द सिंह जी की सेवा करते रहे हैं और अब भी उसकी सन्तान पटना हरिमन्दिर की सेवा में है ।

सालिसराय प्रेमी, नियमबद्ध, भजनीक हुआ वह कविता भी लिखता रहा है। कई शब्द महला १ करके जन्मसाखियों में दिये हैं, उसकी अपनी छाप वाला एक

मिला है:–

बिलावल सालिसराय जी की :–

सतिगुरु दाता नाम का दीने खोल कपाट ।
एक जो वणजा वणजिआ बहुरि न आवे घाट ।।
सतिगुरु नानक पूरा । बचन का सूरा ।। १ ।। रहाऊ ।।
अगम निगम दिखलावता खोले नेत्र कपाट अनंत ।
जग वणजारा सगल है साह एक भगवंत ।।
वणज हमारा सतिगुरु पूंजी हमरी नाम ।
आठ पहिर धुनि लग रहे यही हमारे काम ।।
सालस विनवै बेंनती सुण लै तूं करतार ।
काचे रंग उतारके साचे रंग अपार ।।

□ □

२२ गया

सालिसराय और अधरका का उद्धार करके श्री सदगुरू जी चल पड़े, परोपकारी बादलों की भांति अन्य स्थानों पर स्वाँति बूंदों की वर्षा करने के लिये राजगिरि[१] आ गये । यहां पर मेला था। मेले पर कई नास्तिकों को आस्तिक बनाकर आप गया पहुंच गये। आपका सुन्दर और ओजस्वी तथा सौन्दर्य-भरा मुख-मण्डल देखकर पंडे भी आ गये । और कहने लगे कि श्री मान जी ! पिण्ड भराओ, पितरों का उद्धार करा लो । तब बाबा जी ने कहा, हमने अपने पितरों का और अपने सत्संगियों का और अपना भी दीपदान और क्रिया कर्म करा दिया है[२] और ऐसी क्रिया की है कि जिससे अज्ञान का सारा अंधेरा मिट गया है और सद्गति हो गई है। स्वर्ग तथा नर्क जो हैं, वे अज्ञान में है, अत: जिन्होंने 'नाम' रूपी दीपक जलाया है उनका उद्धार हुआ है। इसके सम्वनध में श्री बाबा जी ने आसा राग में शब्द कहा :-

आसा महला १

दीवा मेरा एकु नामु दुखु विचि पाइआ तेलु।।
उनि चानणि ओहु सोखिआ चूका जम सिऊ मेलु।।
लोका मत को फकड़ि पाइ।।
लख मड़िआ करि एकठे एक रत्ती ले भाहि ।।१।। रहाउ ।।
पिंडु पतलि मेरी केसऊ किरिआ सचु नामु करतारु ।।
अैथै ओथै आगे पाछै एहु मेरा आधारु।।२।।
गंग वनारसि सिफति तुमारी नावै आतम राऊ।।
सचा नावणु तां थीअै जां अहिनिसि लागै भाऊ।।३।।
इक लोकी होरु छमिछरी ब्राह्मणु वटि पिंडु खाइ ।
नानक पिंडु बखसीस का कबहूँ निखूटसि नाहि।।४।।२।।३२।।

अर्थात् - मेरा दीपक परमेश्वर के नाम का स्मरण करना है, उसमें 'दुख' का तेल डाला है । दीपक जलता है तो वह मुझे वाहिगुरू जी के मिलाप-मार्ग का प्रकाश देता है और दूसरी ओर मेरे दुख कम होते जाते हैं; ऐसे ही जैसे दीपक के जलने से तेल कम हो जाता है । यदि कोई शंका करे कि दु:ख तो कर्मों का फल

---

१. इतिहास खजान सिंह ।
२. जन्मसाखी भाई मनी सिंह ।

हैं और अवश्य ही भोगने पड़ते हैं । गुरू जी बताते हैं कि हे लोगो ! इस व्यर्थ के विचार में न रहना कि कर्म जल नहीं सकते । जैसे सैकड़ों मन ईंधन में एक रत्ती आग रख दें तो वह सारी जल जाती है, वैसे ही नाम की चिंगारी के साथ सारे कर्म जल जाते हैं । पिण्ड तथा पत्तल मेरा वाहिगुरू है और क्रिया मेरे कर्तार का सच्चा नाम है, लोक-परलोक में और आगे-पीछे मेरा यही आधार है। हे वाहिगुरू ! तेरी स्तुति करना ही मेरा गंगा और काशी (तीर्थ) हैं और इसमें आत्मा स्नान करती है । हां, निरंतर स्नान तब होता है यदि दिन-रात परमेश्वर के नाम से प्रीति लग जाये । ब्राह्मण जो पिण्ड भरवाते हैं, वे पित्रों तथा देवताओं के साथ मिलाने के लिये होते हैं पर हमें वाहिगुरू की कृपा का पिण्ड प्राप्त हुआ है, जो कभी समाप्त नहीं होता, भाव वह हमें अनन्त के साथ मिला देता है । तब पंडे गुरू जी के चरणों में झुक गये ।

□ □

२३ बुद्धगया - देवगिरि

गया के पंडो को कल्याण का वास्तविक मार्ग बताकर सदगुरू जी वहां से चल पड़े । अपने अमूल्य विचार देकर सुन्दर गुरू नानक देव जी ने जो ज्ञान नेत्र उनको प्रदान किये, वे विचार आपने उपरोक्त शब्द में दिये हैं, जिनको पड़कर आज तक अनेकों जीवों ने सुख प्राप्त किया है ।

गया से चलकर आप बुद्धगया[१] आये । यहां पर आकर आपने बाहर डेरा लगा दिया । मरदाना कीर्तन करता और आप निजानन्द में मग्न हो जाते । इस कीर्तन ने बुद्धगया के महन्त को आकर्षित किया, उसका नाम देवगिरि लिखा है[२]। यह व्यक्ति था तो बुद्ध के मन्दिर का महन्त पर लगभग संन्यासी था । हिन्दुओं ने जब भारत से बुद्ध मत का अन्त कर दिया, तब यह बौद्ध स्थान भी सम्भाल लिया था । यहां पर बुद्ध ने तपस्या की थी और उनको ज्ञान की प्राप्ति हुई थी । क्योंकि हिन्दू बुद्ध को अवतार भी मानते थे इसलिये यह स्थान भी उन्होंने अपने अधिकार में कर लिया था । यह महन्त देवगिरि बहुत से अपने छोटे मन्दिरों के महन्त का बड़ा महन्त और मान्य पुरुष था, पर था सत्य का खोजी और विद्वान । विद्या ने इसके मन को सूझवान तो वना दिया था और वह वैरागी भी था, पर वह 'राग' को बैराग में पलटता-पलटता ऐसे हो गया था जैसे वृक्ष की शाखा पक्की होती-होती सूख जाये तो बिल्कुल ही झुक न सकने वाली और पक्की हो जाती है पर उसके इस तरह पक्के तथा सख्त होने से उसमें लचक नहीं रहती । यह लचक इसलिये नहीं रहती कि इसमें जीवन-कण नहीं रहता । जीवित शाखा में मजबूती और लचक- दोनों गुण होते हैं । जीवन तथा मरण की इस प्रकार की बातचीत जब श्री गुरू नानक देव जी ने समझाई तब उसकी सूझ में जीवन की लहर दौड़ गई । सदगुरू जी ने उसको बताया कि बुरे कर्मों का राग (प्यार) बुरा है, नाशवान् पदार्थों का प्यार दुखदायी हो जाता है, पर अविनाशी और प्रिय स्वरूप वालों का प्रेम बुरा नहीं, क्योंकि उसके प्रेम से पवित्र हो जाते हैं, उसका प्रेम दुखदायी नहीं, क्योंकि वह सदैव स्थिर है, कभी नश्वर नहीं होता । इसलिये उसके साथ किये प्रेम का अन्त दुःख नहीं हो सकता[३]। फिर वह आनन्दस्वरूप हैं, उसका प्रेम सुख और आनन्ददाता है । फिर जिस वैराग को धारण करने लिये हमें अपने

---

१. यह स्थान गया से पांच-छः कोस की दूरी पर है ।

२. तवारीख खालसा ।

३. 'ना ओह मरै न होवै सोगु । (आसा महला १)

मन को मारना है, इन्द्रियों का दमन करना है और संसार और इसकी रचना को बुरा समझना है, अविनाशी के साथ प्रेम करने से वह वैराग स्वभावत: ही प्राप्त हो जाता है और उसका प्रभाव मनुष्य की शक्तियों का दमन करने वाला नहीं होता। मनुष्य केवल बुद्धि ही नहीं, इसके अस्तित्व में प्रेम भी है। जैसे तुमने वैराग्य धारण किया है, अर्थात् मन को मार डाला है, अब किसी और का प्रेम तुम्हारे परिपक्व हो चुके मन तथा बुद्धि को झुका नहीं सकता, वह शुष्क शाखा की भांति पक्का हो गया है, पर इसके द्वारा कार्यसिद्धि नहीं हुई, तभी तो मन में लचकदार और जीवित वैराग्य नहीं पर जीवन–रहित उदासी की अकड़–सी है।

देवगिरि के लिये यह नया पाठ था, वह सारे अन्तरीय भावों को मारकर ज्ञानी होने को संन्यास और सारी इन्द्रियों और मन आदि का वध करके एकाग्र होने को योग समझता था। सदगुरू जी से पूछने लगा कि जी फिर क्या इन्द्रियों का दमन नहीं करना, मन को नहीं मारना चाहिये ? सदगुरू जी ने समझाया कि भाई ! इन्द्रियों को विकारों से रोकना है, मन को नीच विचारों में नहीं जाने देना। सभी अवगुणों का त्याग करना और शुभ गुण धारण करने हैं, पर एक पति परमेश्वर को मन में ध्रुव समझकर उसके साथ प्रेम करना है। प्रयोजन तो बुद्धि को निर्मल करने का है बुद्धि की निर्मलता के लिये वैराग्य और विवेक का प्रयोग करना है। मन पर इस निर्मल बुद्धि का दीपक जलाकर इसके अंकुश के आधीन मन को चलाना है। इस प्रकार के प्रबुद्ध हो चुके मन के बस में इन्द्रियों को चलाना है, पर अन्दर जो हमारी आत्मा में प्रिय स्वरूपता का अंश है, वह प्रेम है, उसका भी प्रयोग करना है, उसका वध नहीं करना। उसके साथ मन के झुकाव को ऊपर की ओर लगे रहने वाला वनाना है और बुद्धि का आश्रय खोजकर उसके साथ आलिंगन करना है। बुद्धि ने जब निश्चय कर लिया कि जगत का मूल मालिक पालनहार एक अकाल पुरुष है और उसका आश्रय यह 'एक ओंकार' है, अर्थात अकाल पुरुष (ईश्वर) है। जब मन बुद्धि वाहिगुरू से प्रेम करके, अर्थात् असको अपना आश्रय वनाकर उसके साथ शाश्वत लगाव रख लेंगे तब उनमें वाहिगुरू और उसमें वे बसेंगे। फिर हमारा अस्तित्व जीविल अस्तित्व होगा और जीवन–मुक्ति का सुख प्राप्त करेगा। इस तरह सारा आपा अपने सारे बल के साथ जब सदैव एक में लगा रहेगा, तब 'एक में समाया' सफल और चेतन ज्ञान वाला रहेगा। यह आपा – यह आत्मा – शुद्ध आत्मा है और यह काम गुरू के शब्द की कमाई द्वारा सम्पूर्ण होती है। फिर यह सब कुछ सहज द्वारा प्राप्त करना है। धीरे–धीरे हठ, मन पर अंकुश और आपा न्योछावर करने के सारे–के–सारे काम करने होते हैं, पर अन्दर साईं की टेक धारण करके असके आश्रय में। जब अन्दर ठण्ड आयेगी तब 'सहज' का भाव आ जायेगा और सहज आनन्द अन्दर स्थिर हो जायेगा। यह कहकर श्री गुरू बाबा जी के नैन मुंद गये और आपके मुंदे

हुए नैनो के साथ 'हरणी होवां' पद निकला । मरदाना ने रहस्य समझ लिया और गऊड़ी बैरागिन (राग) के वैराग्यमय पर रस भरे संगीत में रबाब के मीठे स्वर के साथ गाया :–

गऊड़ी बैरागणि महला १ ॥

हरणी होवा बनि बसा कंदमूल चुणि खाऊ ॥ १ ॥
गुरु परसादी मेरा सहु मिलै वारि वारि हऊ जाऊ जीऊ ॥१॥
मै वनजारिन राम की ॥ तेरा नामु वखरु वापारुजी ॥१॥रहाऊ॥
कोकिल होवा अंबि बसा सहजि सबद बीचारू ॥
सहजि सुभाइ मेरा सहु मिलै दरसनि रूपि अपारु ॥२॥
मछुली होवा जलि बसा जीअ जंत सभि सारि ॥
उरवारि पारि मेरा सहु वसै हऊ मिलऊगी बाह पसारि ॥३॥
नागनि होवा धर वसा सबदु वसै भऊ जाइ ॥
नानक सदा सोहागणी जिन जोती जोति समाइ ॥४॥२॥१९॥

देवगिरि को सूझ आ गई, अब उसकी वृत्ति में वाहिगुरू के नाम का निवास हो गया । आठों पहर एक लौ का प्रवाह चल पड़ा। पहले तो विचार में ज्ञानी था, पर ज्ञानी होकर भी मन संकल्पों में रहता था । कथा-वार्त्ता, चर्चा-विचार, संथा आदि के समय ब्रह्म के संकल्प मात्र गुजरते थे, पर अब साईं का अस्तित्व एक रसमय याद निरन्तर प्रवाह होकर अन्दर बस गया । मन जो संकल्पों में बिखरता और दुर्बल होता था, एक का स्मरण करके बलवान बनकर सुख में आ गया[1]।

देवगिरि ने सतगुरू जी को बहुत दिन प्यार के साथ अपने पास रखा, उनके देवप्रभाव का, उनके ईश्वरीय-ज्ञान का, उनके भगवत्-प्रेम का रस प्राप्त किया और 'कीर्तन निरमोलक हीरा' सुन-सुनकर अपने आप का मूल्य बढ़ाया[2]।

□ □

---

१. चेतहि एकु तही सुखु होइि ॥ (दखणी ओअंकार)

२. इसी देवगिरि का उत्तराधिकारी तीसरी पीढ़ी का महन्त, श्री गुरू हरिराय जी की शरण में आया और अपने अशान्त मन को सुखी करके सिख बना । यह संत त्यागी होकर साधु बनकर साधु वेष में फिरता रहा और गुरू जी के वरदान के कारण इतना बड़ा परोपकारी बना कि इसने लाखों नानकपंथी बनाये और पूर्व में तीन चार सौ गुरू जी के स्थान बनाये । इसका नाम गुरू हरिराय जी ने 'भगत भगवान' रखा था । इन स्थानों के संत 'भगत भगवान के' कहे जाते हैं, जो उदासी संत हैं । 'सूरज प्रकाश' में इनका प्रसंग दिया है।

२४ राजौली

गया के क्षेत्र में श्री गुरू नानक देव जी कई स्थान पर ठहरे और जगत का उद्धार किया, जिसके चिह्न आज तक भी कहीं-कहीं मिलते हैं । इन ठिकानों में एक स्थान राजौली है, यहां कलहण शाह नामक एक फकीर तप कर रहा था[१]। आठों पहर धूनी जलती रहती थी और स्वयं बैठकर तपस्या किया करता था । श्री गुरू नानक देव जी अपनी जगत-यात्रा में जहां लोगों को ईश्वर के मार्ग पर लगाते थे वहां भटकने वालों को सहारा देकर आगे लाते थे और भूले हुओं को मार्ग पर लाते उन्हें किनारे पर लगाते थे । कलहणशाह भी बहुत समय से तप कर रहा था । जब गुरू जी वहां पहुँचे तो कीर्तन की ध्वनि उसके कानों में पड़ी और उसने छिपकर कीर्तन सुना । इस कीर्तन के शब्दों के भाव ने उसे मोहित कर लिया । फिर तो शंका का निवारण करके सदगुरू जी से भेंट की और हृदय के दु:ख-सुख कह सुनाये । सदगुरू जी ने कृपा की । जहां भटका हुआ था वहां 'नाम महारस' का दान प्रदान करके सच्चे ज्ञान में आरूढ़ कर दिया और स्वयं चल दिये । तब से वहां दो स्थान चले आ रहे हैं। एक तो 'छोटी संगत' कहलाता है, जहां पर इस फकीर की धूनी अब तक चली आ रही है । दूसरा वह स्थान है जहां परम श्री गुरू जी ठहरे थे और कलहण शाह उनकी शरण में आया था । इसको बड़ी संगत कहते हैं । पहली का पुजारी मुसलमान है और दूसरी का उदासी सन्त है[२]।

---

१. कलगीधर चमत्कार ।

२. गया के इलाके में और गुरू स्थान भी हैं । खोज तथा प्रचार की आवश्यकता है। इनमें से एक ठिकाना राजौली गुरू स्थान के समाचार के बारे में हमने पंथ सेवक दिल्ली के सरदार धर्म सिंह जी को एक पत्र लिखकर खोज करने के लिए कष्ट दिया था। उन्होंने जो समाचार अपने सुपुत्र के द्वारा पता लगाकर लिखे थे वे नीचे दिये जाते हैं, जिससे कि पंथ में खोज का शौक बढ़े और कोई प्रेमी इधर दौरा करके समाचार प्राप्त करे और फिर सिख मत का प्रचार हो । समाचार इस प्रकार है :

एक गुरूद्वारा कस्बा राजौली खास शहर में है, राजौली जिला गया में एक बड़ा कस्बा है, राजौली पहुंचने के लिये ई० आई० रेलवे की ग्राण्ड कोर्ड लाइन से जाना चाहिए और यह कस्बा गया तथा हजारी बाग रोड के बीच में गझन्दी स्टेशन से १० मील के करीब है । पहले वनदोवस्त करने पर बैलगाड़ी मिल सकती है । रास्ता कच्चा और पहाड़ी है दृश्य सुन्दर है ।

राजौली में जगत तारक श्री गुरू नानक देव जी महाराज गया से आगे जाते हुए ठहरे थे । उस समय राजौली में एक स्थान पर एक मुसलमान फकीर 'कलहण शाह' जो बाद में 'बाबा कलहण शाह फकीर' के नाम से प्रसिद्ध हुआ था, बैठा तप कर रहा था । श्री गुरू नानक

देव जी महाराज ने इसको उपदेश देकर ज्ञान प्रदान किया । राजौली में उस समाय से दो गद्दियां चली आ रही हैं । जहां पर बाबा कलहण शाह बैठा था, वहां पर एक सुन्दर स्थान वना हुआ है, जो 'छोटी संगत' के नाम से प्रसिद्ध है । जहां गुरू जी बैठे थे, उस स्थान पर भी एक भारी इमारत खड़ी है जिसको 'बड़ी संगत' कहते हैं ।

छोटी संगत – यहां का महन्त मुसलमान होता चला आया है, जिसको लोग 'शाह साहब' कहते हैं। गत किसी महंत ने कभी विवाह नहीं किया था और सिर पर जटाएं रखते थे, पर वर्तमान महंत ने, जो पिछले महंत का चेला है, और गुजरांवाला (पश्चिमी पंजाब) का रहने वाला है, गद्दी लेने के दस-बारह वर्ष पश्चात् विवाह करवा लिया है और जटाएँ भी कटवा दी हैं। इस स्थान के अन्दर बाबा कलहण शाह के समय से धूनी जलती चली आ रही है जिसको कभी बुझने नहीं दिया जाता । लोग धूनी की राख प्रेम सहित माथे पर लगाते हैं और यही प्रसाद समझा जाता है । 'छोटी संगत' के साथ काफी जायदाद भी है और आमदनी पर्याप्त है ।

बड़ी संगत – यह एक बड़ी इमारत है, चारों ओर मकान हैं और बीच में बहुत बड़ा आंगन है। इस आंगन के बीच में पालकी की शक्ल का एक छोटा-सा कमरा वना हुआ है, जिसमें श्री गुरू ग्रन्थ साहब जी एक चबूतरे के ऊपर खटोले पर विराजमान रहते हैं । अन्दर दीवारों पर सिख गुरूओं के हाथों से वने हुए चित्र हैं । एक उदासी साधु वहां का महंत है । गुरूद्वारे के साथ एक लाख रुपये की जागीर है ।

लोगों में बहुत श्रद्धा है । शहर में कोई विवाह होता है तो यह रस्म है कि दूल्हा औद दुलहिन दोनों ही बाजे और बिरादरी के साथ पहले छोटी संगत में आते हैं और वहां पर बकरा चढ़ाते हैं । दूल्हे तथा दुलहिन को धूनी की राख, बताशों और खीलों का प्रसाद मिलता है; फिर दूल्हा और दुलहिन दोनों बड़ी संगत में आते हैं । वहां पर कम-से-कम १ रूपये (इससे अधिक इच्छानुसार) चढ़ावा देकर प्रसाद लेते हैं और मस्तक टेकते हैं । कार्तिक पूर्णिमा को यहां पर मेला लगता है और लोग दूर-दूर से आते हैं।

असहयोग आन्दोलन के दिनों में स्थानीय सेवा समिति के स्वयं सेवकों ने महंत को निकालकर बड़ी संगत गुरूद्वारा पर अधिकार जमा लिया था और दो-चार बार वे 'हज़ारी बाग़' 'गिरिडीह' आदि के सिखों के पास आये थे कि वे अकाली जत्था भेजकर गुरूद्वारा सम्भाल लें, पर उस समय किसी ने ध्यान न दिया; इस आन्दोलन के ढीला हो जाने के पश्चात महंत ने फिर अधिकार जमा लिया । इस ओर 'मुहरी' नाम की एक जाति है जो हिन्दुओं में है और प्रायः बनियों का धन्धा करती है । उनमें पहले सिख धर्म का प्रचार बहुत था और वे केवल गुरू नानक के सिख थे । परन्तु शताब्दियों से प्रचार की कमी के कारण अब वे सब कुछ भूल चुके हैं, केवल गुरू जी का नाम उन्हें याद है ।

राजौली से पांच कोस दूर एक गुरूद्वारा है जो अकबरपुर कस्बे में है । यहां का महंत उदासी साधु है और इसके साथ दो लाख वार्षिक आमदनी की जागीर बताई जाती है ।

'पटना' से 'रांची' तक सीधी पक्की सड़क वन रही है जो खास 'राजौली' के बीच से होकर गुजरेगी ।

इस इलाके में और भी अनेकों गुरू-स्थान हैं, जिनका पता खोज करने से लग सकता है ।

□ □

२५ मुहरों के कोयले और सूली का काँटा

: १ :

"जरा देखो तो कैसी काली घटाएं घिर आई हैं । नीले-नीले आकाश पर घुमड़ आये बादल कैसे सुहावने लग रहे हैं । हवा भी ठण्डी चल पड़ी है, जिसने सारी तपन पी ली है । आई जी, अब बरसात आई । (खांसकर) पातशाह ! चौमासा चल रहा है, इस ऋतु में तो चला-फिरा नहीं जाता, कहीं ठिकाना वनाकर बैठ जाना चाहिये । यात्रा की थकान बहुत होती है। जी घुटता है। स्थान-स्थान का पानी - कहीं पर कच्चा, कहीं पर मैला, कहीं पर कोई ठिकाना कहीं पर यों ही बेठिकाने, जल्दी-जल्दी जगह बदलते रहने से मनुष्य निरोग भी नहीं रहता । वैसे भी ऋतु कच्ची पक्की हो जाती है, कभी रात को ओस तो कभी वर्षा, कभी सूखा, कभी गर्मी, कभी घुटन, कभी ठण्डी धीमी हवा, कभी बादलों की गर्जन, कभी झोंके । सांप, केंचुए आदि गर्मी के दिनों में बहुत होते हैं, पर आजकल तो इनकी आंधी-सी आई हुई है । केचुओं के भी यही दिन होते हैं। हे सुन्दर सम्राट ! आप लाखों वर्षों तक जीवित रहें ! पर देखो तो आराम और टिकने के दिन हैं । आओ कहीं पर ठहर जाएं, डेरा डालें, यह चौमासे के दिन किसी स्थान का पता लगाकर एक स्थान पर बैठ जाएं, और साईं के गुण गाएं। आपको तो अपनी कोई परवाह नहीं, पर प्यार वालों के लिये यह असह्य है और मैं जल्दी घबराता हूं । मेरे लिये ही कहीं चार दिन विश्राम कर लीजिए ।"

इस प्यार भरी, आपके शरीर के साथ हार्दिक, मर्म तथा सहानुभूति-भरी उत्साह वाली - बातचीत सुनकर रोगियों को निरोग करने वाले श्री गुरू नानक देव जी कहने लगे - मरदाना ! सत्य कह रहे हो, ठीक है, चौमासे की ऋतु ऐसी होती है, पर सज्जन ! देखो जिन्होंने नौकरी की हुई है उनको आराम कहां ? देखो हरकारे, आजकल भी चिट्ठियां लेकर भागे फिरते हैं । वह देखो ! हमारे पास से एक गुजर कर गया है, देखो कैसा भागा जा रहा है। साहब की नौकरी कठिन है, जैसे वह चलाये, वैसे ही चलना है, जैसे प्रेरणा देता है वैसे ही प्रेरित होते हैं। मालिक किसी काम के लिये, लिये जा रहा है ।

---

१. अनुमान है कि यह घटना 'राजौली' 'गया' के किसी निकटवर्ती स्थान पर घटी है । विशेष खोज की आवश्यकता है । यह कथा पुरातन जन्म साखी में है पर स्थान का पता नहीं दिया हुआ, पर ठगों के उद्धार के पहले होने के कारण इसी समय हुई लगती है ।

मरदाना – बलिहारी आपकी नौकरी की, बलिहारी आपके साहिब की, बलिहारी आपकी (हंसकर) और थोड़ी–सी बलिहारी आपके गायक की भी । पातशाह ! आपके शरीर में शक्ति है, सत्य लोकों की शक्ति, पर मेरे शरीर में कच्चे दूध की दुर्बलता है, जोकि मैंने लोगों की अपेक्षा अधिक पिया है । मेरे लिये ही ठहर जाओ, मेरा जी इस ऋतु में चलने से ऊबता है, मेरे लिये ही कहीं चार दिन विश्राम कर लीजिये ।

गुरू जी मरदाना के इस प्यार को समझते थे। जब गुरू जी अपने ऊपर श्रम लेते थे तब मरदाना अपनी थकान या भूख या किसी अन्य आवश्यकता की लज्जा करके चुप नहीं होता था बल्कि बोलकर तथा अपनी खातिर बता–बताकर उनको टिका लेता था। वसन्त ऋतु से चले हुए गुरू जी कहीं डेरा डालकर नहीं ठहरे थे। कहीं दो दिन कहीं चार दिन ठहरते 'सतनाम' का उपदेश देते आगे–ही–आगे जा रहे थे और अब बरसात शुरू हो रही थी । तीन महीने गर्मी में यात्रा की, उपदेश दिये और मृतकों को जीवन–दान देकर जीवित किया । अब मरदाना चाहता था कि उसके सुन्दर मालिक जी चार दिन विश्राम करें । सतगुरू जी उसके प्यार का सतकर करने के लिए कहने लगे : "अच्छा मरदाना ! अब जहां पर कोई नगरी आयेगी वहां पर चौमासे के दिनों के लिए ठहर जाएँगे ।"

: २ :

साईं की कृपा से एक ऊँचा स्थान, सुहावना ठिकाना, अच्छा सा गांव आ गया, जिसके बाहर एक कोस की दूरी पर एक आश्रय देखकर सदगुरू जी ने ठिकाना कर लिया । मरदाना प्रसन्न हो गया कि प्रतिदिन का चलना समाप्त हुआ चाहे चौमासे के लिए ही सही । मेरा स्वामी, मेरा प्यारा दस दिन समय पर सोयेगा, समय पर भोजन करेगा, सुखी होगा ।

उस गांव में अच्छी आबादी थी, छोटा–सा कस्बा–सा था। वहां पर एक धनी खत्री रहता था; जो परमार्थ की लगन वाला था। आने–जाने वाले साधु–सन्तों के दर्शन करता था और सामर्थ्य होने पर सेवा भी करता था। उसने सुना कि बाहर कुटिया में आकर कोई ठहरे हैं और अत्यन्त प्यारे लगते हैं । कीर्तन होता है मानो चलती हुई नदियां ठहर जाती हैं । तब वह खत्री दर्शन करने के लिए आया । कीर्तन हो रहा था, श्री सदगुरू जी अपने ईश्वरीय रंग में मगन बैठे थे, मीठी–मीठी वायु चल रही थी, वह भी शीश झुकाकर बैठ गया। बैठते ही नेत्र भर आये, पलकें भारी हो गईं, नैन मुंद गये, अन्दर की ओर मुड़े और स्वयं के स्वाद में जुड़े, पता नहीं रहा कि समय कैसे व्यतीत हो गया है । जब नैन खुले तो देखा कि कितनी ही घड़ियां व्यतीत हो चुकी हैं । हां, खत्री की समझ में आया

कि यह साईं का कीर्तन है, जो काल को भी जीत लेता है - जिसकी तासीर के आगे काल का ज्ञान लोप हो जाता है। हां ऐसा कीर्तन कभी नहीं सुना था कि जो काल के वेग को अज्ञात कर दे । ऐसे दर्शन कभी नहीं पाये थे कि मन मोर की भांति नृत्य करता हुआ परिक्रमा करता है, दूर ही नहीं होना चाहता ।

यों मोहित हुआ खत्री काम-काज के कारण कुछ समय के पश्चात् घर को लौटा । फिर-फिर आता है, मस्त होता है, रस प्राप्त करता है और प्रतिदिन आकर्षण बढ़ता है । आता है, सेवा करता है, सुख प्राप्त करता है, तो एक दिन इतना आकर्षण बढ़ गया कि मन में प्रतिज्ञा की कि प्रतिदिन दर्शन के लिए आना है और नागा कभी नहीं होने देना और जिस दिन नागा पड़ जाए, उस दिन अन्न-जल कुछ भी ग्रहण नहीं करना[१]।

: ३ :

खत्री प्रतिदिन सतसंग में आता था, दर्शन का लाभ लेने और सेवा करने । कभी अमृत वेला में कीर्तन सुनना, कभी सायांकाल को 'सोदर' की वाणी का कीर्तन सुनता था । हां, प्रेमी हो गया था, अन्न-जल की सेवा भी करता था, डेरे पर झाड़ू-पानी आदि की भी चिन्ता रखता था। उसके मार्ग में एक बनिये की दुकान थी, वह प्रतिदिन देखता कि यह खत्री विना नागा किये प्रतिदिन गुजरता है, सोचा एक दिन इससे पूछा जाए कि यह किधर जाता है । अन्त में एक दिन उसने आवाज लगाकर उसको पास बुलाया और पूछा कि तेरे भाई जीयें, सज्जन ! तू पहले तो जब कभी गांव से बाहर जाता था तब कभी-कभी ही इस मार्ग से गुजरता था, अब प्रतिदिन जाता है, तुझे ऐसी कौन सी लगन लग गई है जो तुझे हर रोज ले जाती है और नागा नहीं होता ।

तब खत्री ने कहा : "सज्जन जी ! बाहर कुटिया वाले बाग में कोई महा-ज्योति वाले महापुरुष आये हैं, उनके सत्संग के लिए जाता हूँ । उनका दर्शन बहुत प्यारा है, अतः प्रतिदिन दर्शन करने का चसका पड़ गया है ।" तब बनिये ने कहा : "फिर तो ऐसे दर्शन तो हमें भी कराओ ।" खत्री ने कहा - "सहर्ष करो, आओ मेरे साथ चलो मैं साथ ही ले चलता हूँ।" सो एक दिन वह बनिया भी साथ चल पड़ा ।

यह गांव की सड़क जो बाहर को जाती थी, वह आगे जाकर दो मार्गों में बँट जाती थी । एक तो सीधा कुटिया को जाता था, और दूसरा, दूसरे गाँव को जाता था । इसी गांव के इधर एक बुरा स्थान था जहाँ पर कुछ कुकर्मी स्त्रियां रहती थीं। जब ये दोनों व्यक्ति उस ठिकाने के पास पहुँचे, जहां पर सड़कें फटती

---

१. पुरातन जन्म साखी ।

थीं, तो दूसरी सड़क की ओर से उस बुरी बस्ती की एक स्त्री आ रही थी, जिसका रंग-रूप बनिये के मन को मोहित कर गया । उसका मन उसकी ओर आकृष्ट हो गया पर लज्जा के कारण वह खत्री के साथ-साथ चलता गया । यों सदगुरू जी के डेरे पर आ गये और आकर दर्शन किये । दर्शन करके शीतलता तो पड़ी, पर अन्दर विकार का जो कांटा चुभ रहा था, उसने मन को टिकने न दिया । खत्री तो सेवा करता रहा, पर वह बनिया मन में चुभे हुए कांटे के कारण कभी दु:खी कभी दर्शन करके कुछ सुखी द्विविधा में रहा । कुछ समय गुरू जी के पास बैठकर दोनों लौट आये । अब यह नियम वन गया कि उस बनिये ने उस बुरी बस्ती में जाने की आदत डाल ली । 'सोदर' के समय दोनों गांव से इकट्ठे आते । जहां पर से सड़कें अलग होती थीं, वहाँ से खत्री तो सत्संग के द्वार की ओर और बनिया कुसंग की ओर चल पड़ता । खत्री ने अपनी ओर से कई बार समझाया कि तू मेरे साथ सत्संग के लिए चला था और चला जाता है कुसंग को, यह अच्छी आदत नहीं है। इस पर विजय प्राप्त कर, तगड़ा हो, आपे पर विजयी होकर भली ओर लग, पर उसके विचलित मन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा ।

खत्री को जब ऐसा प्रेम लगा कि कभी-कभी रात को 'सोदर' का कीर्तन सुनकर, थोड़ा आराम करता, अमृत वेला में कीर्तन सुनकर घर लौटता । रंग लगता गया और नाम का रस अन्दर निवास करता गया ।

एक दिन दोनों की, मार्ग में जाते-जाते फिर बातें चल पड़ीं । खत्री उसको सत्संग और भले मार्ग का उपदेश करता, पर वह बनिया कुसंग के क्षणभंगुर रसों की-पानी पर बताशे के समान थोड़े समय में नष्ट हो जाने वाले स्वादों की, प्रशंसा करता था। अन्त में बनि्ये ने हंस कर कहा, भाई तो आज परीक्षा करें । तू चला है सत्संग को और मैं कुसंग की ओर चला हूं । यह स्थान है, जहां पर सड़कें फटती हैं । वह सामने पीपल का बड़ा वृक्ष है । आज हमारे में से जो पहले आये वह इस वृक्ष के नीचे बैठकर दूसरे की प्रतीक्षा करे, क्योंकि हम आते तो इकट्ठे हैं, पर लौटते समय अलग-अलग हो जाते हैं । आज हम यहां पर इकट्ठे होकर आपस में विचार करेंगे कि तू क्या लाभ लेकर आता है और मैं क्या लाभ लेकर आता हूं । फिर हम निर्णय करेंगे कि हममें से कौन अच्छा काम करता है । कौन-सा मार्ग गुण वाला है और कौन-सा अवगुण वाला है । खत्री ने चकित होकर कहा, इसी तरह सही, पर मुझे तो यह संशय नहीं कि मेरे मार्ग में कोई हानि है, मेरे मार्ग में तो लाभ-ही-लाभ है । मुझे इस बात का भी कोई संशय नहीं कि तेरा मार्ग खोटा है, उस मार्ग पर तो हानि-ही-हानि है, लाभ कभी नहीं है । शरीर की हानि है, मान-प्रतिष्ठा की हानि है, धन की हानि है, मन की हानि है । बनिये ने कहा - चलो, जैसे समझो वैसे ही सही, पर आज परीक्षा करने में तेरा क्या बिगढ़ता है, घड़ी-दो-घड़ी की प्रतीक्षा ही तो है न ।

: ४ :

इस प्रकार मन्त्रणा करके दोनों बिछुड़ गये । सिख तो गुरू जी के दरबार में पहुंचा । वहां कीर्तन हो रहा था, ईश्वर की स्तुति कानों में पड़ी, मन हिला, ऊंचा हुआ, अन्तर के रस का स्वाद आया, टिककर बैठ गया ।

उधर बनिया जब अपने मन को अच्छे लगने वाले स्थान पर पहुंचा तब उसके भाग्य से घर खाली पड़ा था । जिसको वह मिलने के लिए गया था, वह अपवित्र शरीर किसी अन्य गांव को जा चुका था। अत: निराश होकर इधर-उधर फिरा, और अन्त में वापिस लौट आया । जिस स्थान पर उसने साथी को मिलने के लिए निश्चय किया था, उसी स्थान पर आ पहुंचा, मित्र की प्रतीक्षा में बैठ गया । प्रतीक्षा लम्बी हो गई क्योंकि वह शीघ्र ही लौट आया था; सो बैठा-बैठा सोच में पड़ गया । सोच में बैठा अकेला व्यक्ति कई बार धरती को खुरचने लगता है, सो यह भी सोचों में डूबा हुआ धरती को और खुरचने लगा। खुरचते-खुरचते इसको एक मुहर मिली । मुहर को देखकर वणिक वृत्ति वाला मन बहुत प्रसन्न हुआ । तब कमर से छुरी खोलकर, धरती को और खोदने लगा, कि कहीं और मुहरें मिल जाएं, इतनें में मिट्टी के एक गड़े हुए बर्तन का मुंह छुरी के साथ लगा, फिर तो बनिया उसको चारों ओर से खोदने लगा । खोदता गया, प्रतीक्षा का समय बेमालूम व्यतीत होता गया । एक मुहर के मिल जाने और बर्तन के दीख पड़ने ने उसे काम में लगाये रखा । जब खोद चुका तब क्या देखता है कि एक बर्तन है, जब मुंह से ढक्कन उठाया तो क्या देखता है कि उसमें कोयले हैं। जब सारा खोला तो नीचे तक कोयले-ही-कोयले निकले ।

अब वह गुरू का सिख भी आ निकला, पर लंगड़ाकर चल रहा था । एक पांव में जूता पहन रखा था और दूसरा जूता पीछे से दबा रखा था, घिसिर-घिसिर कर चल रहा था। यों आता देखकर बनिये ने कहा "तुम्हारे भाई जीयें ! जूता पहन लो, जूते को दबाकर चलने से कष्ट होता होगा ।" तब उस सिख ने कहा - "हे सज्जन ! आज जब मैं गुरू जी के घर से बाहर आया तो दरवाजे से निकलते ही जूते तक पहुंचने से पहले कांटा चुभ गया, सो कांटा खींचकर निकाला, पर कुछ पांव में ही रह गया । इसीलिए मैंने पांव पर पट्टी बांधी है और जूता टेढ़ा करके चल रहा हूं ।"

बनिया - अच्छा भाई, तो आ फिर थोड़ी देर यहां बैठ जाएं, थोड़ा आराम कर लें, कुछ बातचीत करें, फिर चलेंगे ।

: ५ :

जब बैठ गये तो बातचीत चली । बनिये ने कहा : देख, भाई ! आज मुझे मुहर मिली है और तुझे कांटा चुभा है । इस बात का पता लगाना है कि तू सेवा

करने के लिए जाता है और मैं पाप कमाने जाता हूं[१]।

सिख – जो हुआ सो हुआ । सत्संग अच्छा है, सेवा करना सुन्दर बात है और पापों का मार्ग सदा खोटा है।

बनिया – नहीं भाई ! या तो तू कारण बता, अन्यथा गुरू जी के पास चलते हैं और पूछते हैं इस बात का क्या भेद है ।

तब दोनों लौट गये और गुरू जी के चरणों पर आकर झुके । सदगुरू जी देखकर मुस्कुराये और मरदाना भी इस मुस्कुराहट को देखकर होशियार होकर बैठ गया । इतने में बनिये ने नैन नीचे करके हाथ जोड़े। अपने पाप की व्यथा सच-सच कह सुनाई और दोनों ने जो नियम धारण किया था वह भी कह सुनाया और पूछा कि हे पातशाह ! हमें इसका कारण बताइये कि पाप को मुहर का फल मिला है और सेवा के फलस्वरूप कांटा चुभा है ।

सदगुरू जी ने कहा – चुप रहो और किसी बात को कुरेदो मत ।

बनिया – पातशाह ! आपको जो अच्छा लगे, पर हम मूर्ख हैं, हमारी समझ में नहीं आता, कृपा करके भेद खोल दो कि पाप को सुन्दर फल क्यों लगा है ? जब दयालु सदगुरू जी ने अपना पवित्र हाथ उस कुकर्मी के सिर से छुआ, हां सुन्दर पवित्र हाथ उस मैल भरे सिर से लगा । हाथ रखते ही गुरू जी कृपालु हो गये और कहने लगे :-

भोले ! तेरे पापों को एक मुहर का फल नहीं लगा, तेरे पापों की आंधी ने तेरे मुहरों के वृक्ष को झंझोड़ दिया है, सारी मुहरें झड़ पड़ी हैं, तेरे लिये एक ही रह गई । कोयलों का मटका मुहरों का मटका था, किसी ईश्वर के प्यारे को तूने एक मुहर दी थी उस परमपद के भिक्षुक को दी हुई एक मुहर सहस्र गुणी होकर फली, पर जैसे-जैसे तूने पाप कमाया वे पुण्यों के कारण फली हुई मुहरें जलतीं गईं। हां, समझ ले कि तेरे पापों ने, तेरे एकत्रित किये हुए शुभ कर्मों तथा उनके फलों को जला दिया, केवल एक रह गया जो तुझे यहां पर ले आया है। सो तू समझ ले कि एक मुहर तुझे शिक्षा देती है कि तेरे पापों ने मेरे जैसे अनेकों को तेरे भाग्य से दूर किया है। कुसंग ने बोये हुए को हरा करने के बदले जला दिया है । कोयला कर दिया है । इस साधक की सेवा और सत्संग ने – हरि कीर्तन सुनने तथा करने ने – इसके पाप नाश कियें हैं । इसके पिछले कर्म ऐसे थे कि उनका फल सूली था, ज्यों-ज्यों यह सेवा की ओर आया, ज्यों-ज्यों इसके अन्दर ईश्वर के यश के साथ वैराग्य और उल्लास आया, ज्यों-ज्यों इसने उसका नाम लेकर उसका स्मरण किया, वे खोटे कर्म नष्ट होने लगे, घटते-घटते सूली का शूल (कांटा) रह गया

१. पुरातन जन्म साखी ।

जो सूई की भांति चुभकर महा दुख से इसे छुड़ा गया ।

दूसरी विचार की बात यह है कि भाई ! ज्यों-ज्यों तू विषयों में लगा है, तेरी वासनायें और खोटी होती गई हैं, तेरी रुचि बुराई की और बढ़ गई है। ज्यों-ज्यों इस साधक ने सत्संग किया है, इसकी वासनाएं शुभ तथा पवित्र होती गई हैं, इसकी रुचि भलाई की ओर, सेवा की ओर, सत्संग की ओर बढ़ गई है। इस तरह आगे के लिये इसके अन्दर होने वाले कर्मों का लक्ष्य 'शुद्धता' की ओर हो गया है ।

यह सुनकर बनिये के हृदय में बात चुभ गई, कांपा, वह जो दाता का हाथ छुआ था, वह पापों की ईंधन के ढेरों को आग लगाने के लिये चिंगारी थी। जब पाप जल गये तो बुद्धि से मैल का बोझ उतरा, चरणों पर गिरा, कहने लगा; कृपा करो और शुद्ध मार्ग पर लगाओ, भले कर्म सिखाओ और बुराई के मार्ग से रोक लो। अपने बल द्वारा रक्षा करो, मुझमें बिलकुल बल नहीं है ।

तब गुरू जी दयालु हुए, ईश्वरीय कण्ठ से स्वर उठा, मरदाना ने रबाब छेड़ी और सदगुरू जी के मुख से मारू राग का वैराग्य भरा स्वर लहराया :-

करणी कागदु मनु मसवाणी बुरा-भला दुइि लेख पए ।।
जिऊ जिऊ किरतु चलाए तिऊ चलीऐ तऊ गुण नाही अंतु हरे।।१।।
चित चेतसि की नहीं बावरिआ ।।
हरि बिसरत तेरे गुण गलिआ ।।१।।रहाऊ।।
जाली रैनि जालु दिनु हूआ जेती घड़ी फाही तेती ।।
रसि रसि चोग चुगहि नित फासहि छूटसि मूड़े कवन गुणी ।।२।।
काइआ आरणु मनु विचि लोहा पंच अगनि तितु लागि रही ।।
कोइले पाप पड़े तिसु ऊपरि मनु जलिआ संनी चिंत भई ।।३।।
भइआ मनूरू कंचनु फिरि होवै जे गुरु मिलैं तिनेहा ।।
एकु नामु अम्रितु ओहु देवै तऊ नानक त्रिसटसि देहा ।।४।।३।।

(मारू महला १)

दैवी आवाज़, मन में चुभ जाने वाले शब्द के अर्थ दोनों पर गहरा प्रभाव डाल गये। बनिये के मन का पर्दा हट गया, मन द्रवित हो गया, समझ आ गई कि हम कर्म करने वाले जीव हैं, मन तथा बुद्धि होने के कारण हम समझते हैं कि हम जो कुछ करते हैं वह दो प्रकार का है: भला और बुरा । यह जो कुछ करते हैं इससे रुचि बनती है, रुचि के परिपक्व हो जाने पर स्वभाव बनता है, यह हमारे कृत्य (कर्मों) का फल हमें अन्दर से भली तथा बुरी ओर चलाता है । बुरे कर्मों में जो स्वाद है, वह मानों दाना है जो हमें पक्षी की भांति फंसाता है । अन्दर से स्वभाव बुरी ओर हमारी रुचि कराता है, बाहर से रसदायक भोग अपनी ओर आकृष्ट करते हैं, यों जीव फंसता जाता है, मन मलिन होता जाता है, अर्थात् ऊंचे रसों की ओर

से भरता जाता है और निम्न रसों में - जो पाप-कर्मों में होता है आसक्त होता जाता है । इसके पुनर्जीवन की आशा नहीं रहती क्योंकि मन जब निम्न रसों में लीन हो जाता है तब साईं याद नहीं आ सकता और विस्मृति में जो कोई शुभ गुण पास होते हैं वे सहायता नहीं कर सकते; वे पाप रूपी कोयलों की गर्मी से जलने लगते हैं । सो फंसे हुए पक्षी के मुक्त होने, या मलिन हुए मन रूपी लोहे के फिर से जीवित हो जाने की औषधि केवल शुभ कर्म ही नहीं हैं वे तो पापों के कोयले की गर्मी से जलते जाएंगे । हां मलिन मन के जी उठने का, जीकर लोहे से सोना वन जाने का एकमात्र ढंग है कि सच्चा सदगुरू नाम रूपी अमृत का छींटा मारे । नाम के छींटे से मन, साईं की याद में आता है, साईं की याद ही साईं के साथ सम्मिलन है । पापों तथा नीच प्रकार के रसों ने हमारे और उसके बीच में भूल का परदा डाल दिया था जब वह पर्दा हटा तो दूरी न रही, अब साई का बल उसका भाव उसकी शक्ति का स्पर्श हम में आयेगा, वह सारी दुर्बलताओं को निकाल देगा, मृतक मन जीवित हो उठेगा, जीवित होकर उच्च रसों के अनुभव में आकर आत्म रूप हो जायेगा ।

शब्द का भाव कीर्तन के द्रवित कर देने वाले - प्रभाव के साथ अन्तस में पैठ गया, जिसके द्वारा रुचि का प्रवाह परिवर्तित हो गया, भली ओर रुख हो गया, दौड़कर चरणों पर गिरा, 'दाता ! दाता ! दाता ! पापी की रक्षा करो ।'

सदगुरू जी ने सिर तथा पीठ पर हाथ फेरा और कहा, 'कहो वाहिगुरू' । वाहिगुरू कहलवाया, नहीं, अन्दर बसा दिया, दोनों के शरीरों के रोम-रोम में नाम के फव्वारे छूटे, दोनों ने नाम धारण किया और सिख वने[१]।

जीव कर्म करता है, अपने किये हए को फल लगते हैं। पर यदि नाम में आये तो कर्म दग्घ होते हैं। नाम की लौ जो प्रेम है, वह ऊंचा रस है, कर्म से ऊंचा मार्ग है । नाम पहले मन के मैल और स्वभाव की गन्दगी को धोता है; बुद्धि में से पापों को धोकर निकालता है, आत्मा स्वच्छ हो जाती है, वही नाम फिर अमृत वनकर रस देता है :-

प्रभु कै सिमरनि मन की मलु जाइ ।।
अंमृत नामु रिद माहि समाइ ।। (सुखमनी)

सूचना : इस प्रकार यहां पर कुछ दिन व्यतीत करके, अभी चौमासा चल ही रहा था कि गुरू जी ने प्रस्थान किया ।

□ □

१. पुरातन जन्म साखी ।

२६. मालदा

कई स्थानों पर थोड़ा-थोड़ा समय ठहरते हुए, जीवन दान देते हुए गुरू जी उत्तर की ओर होकर मुघेर आये, जहां पर अब तक गुरुद्वारा है[१]। और फिर भगलपुर[२] चले गये । इससे आगे कई नगरों में जगत का उद्धार करते आप राजमहल आये । यहां से उत्तर-पूर्व को होकर 'मालदा' पहुंचे और सभी स्थानों पर आपके चिह्न मिलते बताये जाते हैं । मालदा की बस्ती महानद नदी के किनारे पर है । यहां पर राजाओं के तुल्य एक साहूकार रहता था। उसका नाम 'रामदेव बाबू'[३] था। यह सज्जन संसार के ऐश्वर्य वाला था, परन्तु था भला पुरुष । इसका एक बाग़ था, जिसमें गुरू जी ने जाकर डेरा डाला । यह बाग़ तो था 'मालदा' नामक आमों का और इससे अच्छी आय थी, पर रामदेव बाबू ने इसमें संतो के निवास के लिये एक कुटिया वनवा रखी थी । कभी कोई भला साधु आ जाता तो उसके ठहरने की इस प्रकार की स्वतन्त्रता थी कि जैसे वन होता है । एक दिन मरदाना रबाब बजा रहा था, मीठी-मीठी फुहार पड़ रही थी कि रामबाबू आ गया । उस समय श्री गुरू जी आप अपना शब्द गऊड़ी राग में मधुर स्वर से गा रहे थे :-

गउड़ी महला १

चोआ चंदनु अंकि चड़ावउ ।।
पाट पटंबर पहिरि हढ़ावउ ।।
बिनु हरि नाम कहा सुखु पावउ ।।१।।
किआ पहिरऊ किआ ओढि दिखावऊ ।।
विनु जगदीस कहा सुखु पावऊ ।।१।।रहाऊ।।
कांनी कुंडल गलि मोतीअन की माला ।।
लाल निहाली फूल गुलाला ।।
विनु जगदीस कहा सुखु भाला ।। २ ।।
नैन सलोनी सुन्दर नारी ।।
खोड़ सीगार करै अति पिआरी ।।
विनु जगदीस भजे नित खुआरी ।।३।।

---

१. श्री गुरू तेग बहादुर साहब भी इन दोनों स्थानों पर जीवनदान देने के लिये पहुंचे थे ।
२. ३. इतिहास सरदार खजान सिंह ।

दर घर महला सेज सुखाली ।।
अहिनिसि फूल बिछावै माली ।।
विनु हरि नाम सुदेह दुखाली ।।४।।
हैवर गैवर नेजे वाजे ।।
लसकर नेब खवासी पाजे ।।
विनु जगदीस झूठे दिवाजे ।।५।।
सिधु कहावउ रिधि सिधि बुलावउ ।।
ताज कुलह सिरि छतु वनावउ ।।
विनु जगदीस कहा सचु पावउ ।।६।।
खानु मलूकु कहावउ राजा ।।
अबे तबे कूड़े है पाजा ।।
विनु गुरु सबद न सबरसि काजा ।।७।।
हउमै ममता गुरु सबदि विसारी ।
गुरमति जानिआ रिदै मुरारी ।।
प्रणवति नानक सरणि तुमारी ।।८।।१०।।

इस शब्द का ऐसा प्रभाव पड़ा कि रामदेव के मन पर सांसारिक सुखों की अपेक्षा नाम सुख के सदैव होने का प्रभाव पड़ा । फिर तो दोनों समय कीर्तन सुनने लगा और श्री गुरू जी को वहां से जाने से रोकने लगा । इस सज्जन पुरुष ने ऐसा प्रेम किया कि श्री गुरू जी चौमासे के शेष दिन वहीं पर ही ठहर गये[१]। मरदाना भी कई दिनों से ठहरना चाहता था, उसका मनोरथ भी पूरा हो गया । यहां पर सत्संग का अच्छा रंग वना रहा । रामदेव का सारा परिवार सिख वना । इलाके में भी सिख मत का प्रचार फैला और लोगों का उद्धार हुआ ।

फिर आप यहां से भी चल पड़े ।

□ □

---

१. तवारीख खालसा ।

२७ पाव धन्य है – ठगों का उद्धार

जगत तारनहार श्री गुरू नानक देव जी और मरदाना साथ चले जा रहे थे कि मार्ग में एक व्यापारी मिला जिसके पास एक गठरी थी, हाथ में तराजू और कुछ बाट भी थे। दूर से सदगुरू जी ने मस्तक देखा तो प्रसन्न होकर देखते रहे। जब वह निकट आया तो पूछने लगे – हे भले पुरुष ! तेरे पास क्या है ? उसने उत्तर दिया, जी । मेरे पास सौदा-सुलुफ है, जिसको बेचता फिरता हूं, हाथ में तराजू और बाट हैं, जिनसे तौल-तौलकर चीजें बेचता हूं ।

सदगुरू जी मुस्कुराये और कहने लगे – भले पुरुष । हमें अपना माल और बाट और तराजू तो दिखा दे ।

व्यापारी ने प्रसन्न होकर सब कुछ खोलकर आगे रख दिया । दाता सदगुरू जी ने पहले वस्तुएँ देखीं फिर बाट हाथ में उठा-उठाकर देखे और कहा :– इसका वज़न तो बताओ, कितना-कितना है ? व्यापारी ने सभी बाटों के वज़न बताये । जब उसने एक बाट का नाम 'पाव' (पाव) बताया तब आप कहने लगे, 'धन्य है पाव, धन्य है पाव' ।

व्यापारी यह वजन सुनकर चकित होकर देखने लगा । क्या देखता है कि आपके नैन आकाश की ओर लग रहे हैं । आँख की काली धारी ऊपर को चढ़ती जाती है, चेहरा एक सौंदर्य की आभा में भरता जाता है और 'धन्य पाव' की मधुर ध्वनि रसना से निकल रही है। पास खड़ा हुआ मरदाना भी विस्मित होकर देख रहा है तथा चकित हो गया है और व्यापारी के कानों पर भी 'धन्य पाव' की मीठी ध्वनि आश्चर्यजनक प्रभाव डाल रही है । कोई ऐसा प्रभाव पड़ रहा है कि उसके नैन भी मुंदे जा रहे हैं, हृदय इकट्ठा होता जा रहा है जैसे किसी मीठे राग की ध्वनि प्रकाश डालती है, वैसा ही प्रभाव पड़कर मनन कर रहा है उसके व्यापारी मन को जो कि राग के प्रभाव के नीचे कम ही आया करता था । मगन होता-होता बेबस होकर व्यापारी आपके चरणों पर गिर पड़ा और वही ध्वनि जो ईश्वरीय कण्ठ से तनिक लम्बी और रसभरी होकर आ रही थी :–

'पाओ ! पाओ !! पाओ !!!'

वही ध्वनि व्यापारी के कण्ठ से आरम्भ हो गई :–

'पाओ ! पाओ !! पाओ !!!'

यह ध्वनि 'पाओ' की व्यापारी के कण्ठ से अत्यन्त नम्रता से निकल रही है, व्यापारी का सिर चरण-कमलों पर पड़ा है और उसका आपा विना जाने चरणों

के नीचे बिछ रहा है ।

कितने ही समय के पश्चात् दाता गुरू जी ने नीचे की ओर देखा, व्यापारी की मधुर ध्वनि 'पाओ, पाओ' की सुनी, उसके कांपते, पर चरणों पर टिके हुए मस्तिष्क के अन्दर अपने प्यार की झनझनाहट-सी देखी, उसकी नम्रता भरी :-

'पाओ ! पाओ !! पाओ !!!'

कम्पन छोड़ने वाली प्रार्थना अनुभव की, प्रसन्न हुए और ऐसे प्रसन्न हुए कि उसके सिर पर हाथ रखा और फिर आकाश की ओर देखकर कहा, हां :-

'पाओ, पाओ,'

"कृपा, कृपा, कृपा दृष्टि"

हां, दाता गुरू जी को इस प्यार-भरी पुकार का क्या प्रभाव पड़ा :-

अद्‌भुत भइओ अवर ही ठाटा ।।
तिह छिन खुलगे बिकट कपाटा ।।
जगयो ज्ञान दुबिधा सभ खोई ।।
तीन लोक की सुध उर होई ।। (गुरू नानक प्रकाश)

हां, कुछ क्षण पहले जो नमक-मिर्च की सूझ वाला तराजू बाट लिए चार पैसे के पीछे भागा जा रहा था, अब अपने हृदय में तौलने वाला ही गया है[१]। वहां पर अब 'आपा' और 'आपे' का मालिक वाहिगुरू तोला जा रहा है। वहाँ पर तोला जा रहा है प्यार और प्यार की लहरें तुल रही हैं। हां, नाम का सौदा खुला पड़ा है और सत्य का व्यापार हो रहा है। उसके रोम तथा जिह्वा पर नाम की लहर है, हृदय में नाम का आकर्षण है और सिर में रस-रंग और स्वतत्व का प्रकाश पड़कर स्वतत्व किसी आनन्द में मग्न है।

'पाओ' की मधुर-ध्वनि, 'पाओ' की दैवी प्रार्थना, दैवी हृदय से उत्पन्न हुई प्रार्थना व्यापारी को छू गई । उसकी प्रार्थना 'पाओ' बहुत निकट के सुन्दर कानों ने सुनी और उसकी गोद में आत्म-ज्ञान पड़ गया । आत्म-ज्ञान से गोद भर कर व्यापारी तृप्त हो रहा है । कैसा आश्चर्यजनक कौतुक घटित हुआ है, कृपा का हिसाब कौन लगाये । कवि संतोख सिंह जी ने लिखा है कि प्रश्न करने पर - कि क्यों इस पर यह अनुकम्पा हो गई, इसने कौन-सा अभ्यास किया था कि बिजली छूते ही आग धधक पड़ी, तब श्री गुरू जी ने उत्तर दिया :-

पूरब जनम पुन्न इस केरे ।
मिल सतिसंगत कीनि घनेरे ।।
दोहरा-दीपक बाती तेल युत, पावक लावन देर ।
हुई है रौशन तुरत जिम तिऊं इसको तूं हेर ।।
(श्री गुरू नानक प्रकाश)

---

१. धट ही भीतरि सो सहु तौली इन विधि चितु रहावा ।। (सूही महला १)

सत्संग से मन सिद्ध किया जाता है। उसमें से मैल कट–कटकर दूर होता है । उसमें नाम को शीघ्रता से ग्रहण करने की शक्ति आ जाती है । कि मन किसी कारण और अरदास में आ गया, किसी आध्यात्मिक प्रकृति से छू गया, किसी अद्‌भुत कौतुक के साथ रगड़ खा गया, वैसे ही नाम उसमें धंस गया । नाम के अभ्यास से मन आशा, अंदेशा तथा भ्रम से निकलता है और सत्य में निवास करके आपे के रंग में आ जाता है[१]। यहां पर व्यापारी को आदेशी दाता मिल गए, जिनके विद्युतीय स्पर्श ने उसका उद्धार कर दिया । किसका हिसाब और किसका लेखा, आत्मिक अग्नि धधक उठी और सारे कुकर्म भस्म हो गए ।

व्यापारी सदगुरू जी के उपदेश से गुरुमुख बनकर अपने गांव को चला गया और नाम के व्यापार में लग गया। आप नाम जपता था और दूसरों को भी जपाता रहा।

: २ :

श्री गुरू जी वहां से चले गए । पीछे–पीछे मरदाना भी चल पड़ा। एक भारी उजाड़ आ गया । काफी समय तक इसमें से चलते रहे । तब मरदाना ने कहा पातशाह ! यह कितना भयंकर उजाड़ आया है कि ईश्वर का कोई जीव तक भी दिखाई नहीं देता ।

मरदाना का वाक्य

सुनके बोले कृपा निधाना ।
इह नहिं लखो उजार महाना ।।
बड़ो नगर वसदी अभिरामू ।
सिमरन होइ जहां सतिनामू ।।३६।।
जहिं परमेश्वर चित न आवै ।
सो वसदी उदिआन लखावै ।।
हरख न होवै तहां कदाई ।
जहां न कबहूं प्रभु गुन गाई ।।

(गुरू नानक प्रकाश)

'मरदाना ! ये ऊजड़ बस्तियाँ हैं, जहाँ पर परमेश्वर का नाम ध्यान में आता है। ये बस्तियां भयानक हैं जहां पर परमेश्वर जी की ओर से भूल और पाप का निवास है परमेश्वर के प्रेम में तरसने वालों ने उजाड़ों को बस्तियाँ बनाया है । जहां

---

१. नान कैसे मन का मैल धो देता है और कैसे साईं के साथ भेंट करवाता है, और सिद्ध किये जा चुके मन कैसे स्मरण में शीघ्रता से लग जाते हैं और किस प्रकार सिद्ध न किए हुये मन जाप जपने से स्मरण में लग जाते हैं । इस ब्यौरे के लिए भाई झण्डा का प्रसंग पढ़िये जो इसी ग्रंथ में आगे चलकर आयेगा ।

पर भाग्यशाली, शौकीन जा बैठे और जहां पर बैठकर साईं का स्मरण किया, वे स्थान सौभाग्यवान हो गए'।

यह कहते आपके नैन प्रेम रंग के साथ सजग हो गये और साईं के मीठे कीर्तन के साथ थर-थर करने वाले मधुर कण्ठ से ईश्वरीय नाद हुआ, आसा राग के मधुर स्वर में :-

देवतिआ दरसन कै ताई दूख भूख तीरथ कीए ।।
जोगी जती जुगति महि रहते करि-करि भगवे भेख भए ।।१।।
तऊ कारणि साहिबा रंगि रते ।।
तेरे नाम अनेका रूप अनंता कहणु न जाहि तेरे गुण केते ।।१।।रहाऊ।।
दर घर महला हस्ती घोड़े छोड़ि विलाइति देस गये ।।
पीर पेकांबर सालिक सादिक छोडी दुनीआ थाइ पए ।।२।।
साद सहज सुख रस कस तजीअले कापड़ छोडे चमड़ लिये।।
दुखीए दरदवंद दरि तेरै नामि रते दरवेस भये ।।३।।
खलड़ी खपरी लकड़ी चमड़ी सिखा सूतु धोती कीनी ।।
तूं साहिबु हऊ साँगी तेरा प्रणवै नानकु जाति कैसी ।।४।।१।।३३।।
(आसा महला १)

यह शब्द ऐसे वैराग्य का चित्र बांध देने वाले स्वर में गाया था कि मरदाना के नैनों के आगे वाहिगुरू जी के प्रेम का चित्र घूम गया, वन-तृण यों लगने लगे कि साईं से भेंट के लिए प्रयत्न कर रहे हों । वन मानो साईं से भेंट के जिज्ञासुओं, खोजियों के प्यार वालों के यत्नों से भरपूर है और रंग-रंग के प्यार-भ्रमर प्रयत्नों में रूपधारी हो रहे हैं । जब तक आप गाते रहे मरदाना इस स्वाद में मग्न बैठा रहा । जब शब्द वनद हुआ तब काफी समय के पश्चात् नैन खुले । एक लम्बा सुखभरा श्वाँस मरदाना ने लेकर चारों ओर देखा और अपने दाता जी के चरणों की ओर देखकर कहा :-

बलिहारी तेरे शौक की ! बलिहारी तेरे रंग की ।

कुछ समय पश्चात् आगे चल पड़े। उजाड़ समाप्त हो गया । प्रकृति की कुंआरी सुन्दरता समाप्त हो गई । अब आगे हरे-हरे खेत आ गए । थोड़ी-सी आबादी आ गई । यह गांव ठगों, बदमाशों की बस्ती थी । लगभग सारे यही काम करते थे, लोगों को ठगना, लूटना, मारना और फिर पता न लगने देना ।

बस्ती देखकर सदगुरू जी ने कहा, लो भले साथी ! उजाड़ तो समाप्त हुआ और अब देख बस्ती आ गई है। रात को यहाँ पर विश्राम करें । मरदाना ने कहा

– सत्य वचन, ठीक बात है । श्री गुरू जी कहने लगे – चल मरदाना ! और देख करतार के रंग ! बस्ती तथा उजाड़ का भेद ।

इस प्रकार हास्य – व्यंग्य करते – करते गुरू जी बस्ती में जा पहुंचे । एक घर के आगे गए ही थे कि उसका निवासी देखकर प्रसन्न हुआ और कहा – "आइये, श्री मान जी! यह घर आपका है, यहीं पर निवास कीजिए। रात में आराम करो । जो – कुछ हाज़िर है, खाओ पिओ । थकान दूर करके प्रातःकाल चले जाना ।"[१] गुरू जी मुस्कराए और वहां पर डेरा डाल दिया । मरदाना भी बैठ गया, पर उदास हृदय से ।

शेष ठगों को पता लगा तो उस ठग को अलग ले गए और आपस में कहने लगे :–

"जोत लिलार[१] बड़ी इह के धन है बहु पास चलयो किह थाईं ।
लेहु सभै सभै, न दुरावहु सो, हम भोर भई धन लेंहिं बटाई ।"

(नानक प्रकाश)

यूं बातों को पक्की करके वे अपने – अपने स्थानों पर चले गये । जिसके घर में सदगुरू जी ठहरे थे, वह युक्तियां सोचने लगा कि रात को जब सो जायेंगे तब इस तरह इनके वस्त्रों आदि की तलाशी लूंगा, यदि जाग उठे तो यों करूंगा । परन्तु साईं की आज्ञा ऐसी हुई कि वह लेटते ही गहन निद्रा में सो गया और सारे साथी जिनको उनकी सहायता करनी थी, वे भी सो गये । ऐसे सोये कि सूर्योदय तक किसी की नींद ही न खुली । स्वयं श्री गुरू जी और मरदाना कुछ रात कीर्तन में रहे, फिर विश्राम किया । तड़के उठकर कुए पर स्नान किया और अपने दाता के रंगों को देखते, सब को सोता छोड़कर चल पड़े। मार्ग में मरदाना ने पूछा, 'पातशाह ! इन्हें कैसी निद्रा आई?' आपने कहा – 'मरदाना ! यह ईश्वर की लाई हुई निद्रा है, जो दुराचारियों को घेरे रहती है। जागना तो साईं ने अपने भक्तों को दिया है और सुहावनी नींद भी उन्हीं को प्रदान की है । दुष्कर्मी पाप के लिए जागते रहते हैं और थकान में सो जाते हैं ।'

गुरू जी और मरदाना चले गये तो ठगों की नींद खुली । सारे उसके घर में आ एकत्र हुए । जिसके घर आपने डेरा डाला था, और कहने लगे कि माल धन निकाल और हमें हमारा हिस्सा दे । उसने कहा, जैसे तुम सभी अब जागे हो, वैसे मैं भी रात का सोया अब उठा हूँ, वे पथिक तो हमारे सोते – सोते ही चले गये हैं । रात को इतनी गहन निद्रा आई है कि आंख ही नहीं खुली, पता नहीं कोई

१. पुरातन जन्म साखी में ठगों की बातचीत–गुरू जी की ईश्वरीय सुन्दरता के बारे में यों लिखी है : 'जिसदे मोहि विच अैसी जोति है सो खाली नहीं, इिस दे पल्ले बहुत दुनिआ है, पर गुझी है'। जिसके चेहरे पर इस प्रकार की ज्योति है; वह खाली नहीं, इसके पास बहुत धन है, पर गूढ़ है।

हमे भांग पिला गया या वे पथिक जादूगर थे ।

पर दूसरे ठग उसकी बात को मानते ही नहीं थे, वे कहते थे कि तूने सारा माल-धन दबा लिया है, तूने उनको कहीं ऐसा मारकर छिपाया है कि हमें पता तक न चले । इस प्रकार झगड़ा बढ़ता गया, वे मांगते और वह कानों पर हाथ रखता, और फिर वे कहने लगे –

हाथ लगयो बहुतो धन तो कहु,
लालच धार के लीन छिपाई ।
सो नहिं छोड़हिं कैसे करो,
तुम पास हमारे ते लेत सदाई ।
किऊँ अब तूशन बैठ रहा ?
सभ काढ़ निकेत ते देहु दिखवाई ।।

(नानक प्रकाश)

जब उसने देखा कि मेरा बस नहीं चलता तो अपने पीर (गुरू) ठग की सौगन्ध खाई, इस पर सभी को भरोसा हो गया । अब सारे तैयार हो पड़े और गांव के बाहर खोज करने लगे । जब खोज का पता चल गया तब कुछ बहुत बलिष्ठ युवक पीछे लगकर भाग पड़े । कुछ कोसों पर श्री गुरू जी और मरदाना को जा मिले ।

: ३ :

जब ठगों ने दूर से जाते देख लिया तो ललकार कर कहने लगे : – खड़े रहो, कहां जाते हो ?

आवाज़ सुनकर जगत् तारनहार जी ने मुड़कर पीछे देखा और खड़े हो गये । मरदाना कुछ भयानक व्यक्ति अपनी ओर आते देखकर भयभीत हुआ और कहने लगा – यह बटमार दिखाई देते हैं, हमारे पास कुछ भी तो है नहीं, इन्हें बता दें और जान छुड़ायें। मेरा रबाब है, जो इन बेसुरों के किसी काम का नहीं, यदि लेना चाहें तो सहर्ष ले जाएँ, इसको देकर इनसे पीछा छुड़ायें ।

शाहों के पातशाह गुरू जी यह सुनकर मुस्कराये और कहने लगे –

मरदाना ! देख कर्तार के रंग ! हमें ठगते हैं कि आप ठगे जाते हैं । हां – जिसने हमारे पीछे भगाया है वह हमारी रक्षा के लिए भी आया ही समझ ।

मरदाना अच्छा सत्संगी पुरुष था, पर उसमें वह धैर्य तो नहीं था, जो अदेशी ज्योति में था । वचन सुनकर कुछ धैर्य आ तो गया और जितना मन व्याकुल हुआ था वह स्थिर भी हो गया और ईश्वर की याद आधार वन गई, पर फिर भी तनिक आगे होकर सदगुरू जी के पास आ खड़ा हुआ ।

ठगों ने आगे बढ़कर कुछ बुरा-भला कहा, पर ज्यों-ज्यों निकट आये

कुछ और से होते गये, जब पास आ खड़े हुए तो पुरातन जन्मसाखी में लिखा है कि **"तब दर्शन देखने नाल सभ आइ अंदरहु निबल भए"** (दर्शन करते ही साहस कम हो गया) ।

जब वे घेरा डालकर खड़े हो गए तब सदगुरू जी ने पूछा – तुम कौन हो ? उनमें से एक ने कहा :

हम मारते पहले हैं और लूटते बाद में हैं, हम इस श्रेणी के ठग हैं । तुम धनवान् हो, रात चुपचाप विश्राम करके प्रातःकाल खिसक आये हो, हमें तुम्हें मारना है और जो–कुछ तुम्हारे पास है, वह सब–कुछ लूट लेना है ।

मरदाना कुछ बोलने के लिए उमड़ता था, पर दाता जी की अचल क्रान्ति देखकर रुक जाता था ।

गुरू जी ने ठगों की ओर देखकर कहा – भगवान् तुम्हारा भला करे । मारो, सहर्ष मारो, पर एक काम करना, हमें मारकर छोड़ न जाना । यह वन है, लकड़ी बहुत पड़ी हैं । हमें मारकर हमारा अग्नि–दाह करके जाना, जिससे शरीर भस्म हो जाये । तुम्हारे लिए भी अच्छा है कि चिह्न तक मिट जायेगा, और कोई पता भी नहीं चल सकेगा ।

तब एक ठग ने कहा – दाह–क्रिया कर दो ! कौन झंझट में पड़े ? शस्त्र–रहित हैं, आओ मारो, करो दूर, कौन आग की खोज करता फिरे और दाहक्रिया करता फिरे ।

परन्तु दूसरे एक और ठग ने चौंककर कहा कि कभी हमारे मन में इस प्रकार की झिझक नहीं आई थी जिस प्रकार की आज आ रही है, विचार तो कर लो । कभी भी हमें किसी ने प्रसन्नता से नहीं कहा था कि सहर्ष मार दो । मरते समय सभी रोते हैं, प्रार्थनाएं करते हैं, हाथ जोड़ते हैं । कभी कोई शूरवीर मिलता है तो वह भी घबराकर और साहस खोकर लड़ने के लिए उठता है और बड़ी कठिनाई से उसको मारा जाता है । सारे 'हाय न मरें' के यत्नों में होते हैं । यह कौन है जो हंसकर मृत्यु स्वीकार करता है, और स्वीकार करके डरता, झिझकता नहीं, इसकी सारी बात तो सुन लें । यदि मारकर दाह–क्रिया कर दें तो, बात तो सच्ची कहता है, हमारा भी भला है, चिह्न बिल्कुल ही मिट जायेगा और यदि सोचें कि यह बहाना करता है तो हमसे भागकर कहां जा सकता है । हम बहुत से हैं और शस्त्रों वाले हैं । चलो कहीं से दो व्यक्ति आग ले आएं और शेष इनका घेरा डालकर खड़े रहें ।

एक और ठग – पर आग कहां है, कहां खोजेंगे ? साहस क्यों छोड़ रहे हो ?

एक और ठग –इन्हीं से पूछ लो कि आग कहां पर होगी ?

तब सदगुरू जी ने एक ओर देखकर उन्हें कहा, उधर देखो धुआं उठ रहा है, वहां से ले आओ और हम यहां पर खड़े हैं, वन में लकड़ियां पड़ी हैं, शेष सभी

खड़े रहो ।

जिस ठग को 'मारकर दाह-क्रिया' करने की बात पसन्द आई थी वह आग की ओर उठ दौड़ा, एक-दो ठग साथ हो लिये । जब वे थेड़ी दूरी पर गए तो क्या देखते हैं कि एक नग्न[१] व्यक्ति है, उसको कुछ आदमी पकड़कर लिये जा रहे हैं, जैसे कैदी को ले जाते हैं । यह दृश्य उनको दिखाई भी पड़ता, पर जब ध्यान लगाकर देखते तो वहां कुछ भी दिखाई न देता; पर फिर वही चित्र स्पष्ट दिखाई देने लगता ।

इस तरह जब आग के पास पहुंचे तो वह चिता थी, जिसको मुर्दा जलाने वाले अभी-अभी आग लगाकर गये लगते थे । एक ठग ने आगे बढ़कर लाठी से थोड़ी-सी आग निकाल ली और पीछे हटा, क्या देखता है कि वही मनुष्य जो कैदी की भांति दिखाई देता था अब किसी अमीरी ठाठ में है और सत्कार सहित दो-चार व्यक्ति आसपास खड़े हैं। पहले जो कैद करने वाले दिखाई देते थे, वे तथा इन सत्कार करने वालों में से दो-चार चर्चा कर रहे थे। वे कहते थे कि हमारी सरकार की वस्तु है और बाद वाले कहते थे कि हमें आज्ञा हुई है कि इसको हम ले आयें ।

यह बात देखकर ठगों से न रहा गया, पूछने लगे तुम कौन हो ? दीखते हो, लगते हो, पर लगता है जैसे कोई छलावा हो, कभी कैदी का स्वांग है, कभी स्वतन्त्रता का स्वांग है, आपस में झगड़ा है । बात क्या है ? बताओ तो सही !

तब उनमें से एक ने कहा, भाई यह पुरुष एक मर चुके व्यक्ति की आत्मा है जिसकी चिता में से तुम आग लाये हो । यह कुकर्मी था इसलिए हम इसको नर्क में लिये जा रहे थे । इसने जो कुकर्म किये, उनके दुःख का नाम ही नर्क है। उनके कर्मों के पश्चात्ताप, निःश्वास और भोगों की रुचि होने पर भोग प्राप्त न होने, अन्धकार और नग्नता और दुःख, यह सभी रंग हैं जो आत्मा ने स्वयं कमाये हैं । अब यह सारे भोगेगा पर हम इसको लिये जा रहे थे कि रामदूत आ गये, हम यमदूत हैं, यह इसको हमारे से छीनकर ले चले हैं ।

ठग – क्यों भाई, तुम क्यों इनसे इनकी वस्तु छीनकर ले चले हो ?

रामदूत – यह महापापी था, इसको कुम्भीपाक में देना था, पर जिस गुरू परमेश्वर को तुम मारने के लिए आये हो, उसकी दृष्टि इसकी चिता के धुएं पर पड़ी है । उसके कारण वैकुण्ठ में स्थान प्राप्त हुआ है[२]।

---

१. नंगा दोजकि चालिआ ता दिसै खरा डरावणा ।। (वार आसा महला १)

२. पुरातन जन्मसाखी ।

ठग – जिसको हम मारने लगे हैं, वह कौन है ?

रामदूत – वह गुरू परमेश्वर है, गुरू नानक, जगत् का उद्धार करने के लिये आया है ।

यह सुनकर ठग घबराकर भाग खड़े हुए, भागकर साथियों के पास आये और दौड़कर श्री गुरू जी के चरणों पर झुक गये–हे गुरू परमेश्वर हमारी रक्षा करो ।

शेष ठग यह घटना देखकर चकित होकर कहने लगे–तुम्हें क्या हो गया है ? देखो तो सही, शूरवीरता कहां खो आये हो ?

चिता की ओर से आया एक ठग–सज्जनो ! जिसको मारने लगे हो, यह गुरू परमेश्वर है । जीवों का मारकर तो दण्ड ही मिलेगा, पर गुरू परमेश्वर को मार कर हमारा क्या वनेगा ?

पहला ठग–कैसे? बात तो बताओ ?

तब ठगों ने वह सारी व्यथा जो देखी थी, कह सुनाई । व्यथा सुनकर सारे घबराये, सारे ही चरणों पर झुक गये और कहने लगे –

निंद जीविका हुती हमारी ।
मारहिं जीवन विना बिचारी ।
तुम समरथ सन्त सुखदाई ।
अपनी कला न हमहि दिखाई ।।

(नानक प्रकाश)

श्री गुरू जी, जब से वे (ठग) गये थे एक अचल पर्वत की भांति खड़े थे। दृष्टि मानो जम रही थी, चेहरा किसी तेज से दमक रहा था, नयन भी मानो नहीं झपक रहे थे, श्वाँस का भी पता नहीं चलती थी कि नहीं आ रही है । मरदाना यह रंग देख रहा था, सदैव प्यार में एकाग्र हुआ पर सहसा खड़ा हुआ था । ठगों पर भय का बहुत प्रभाव पड़ रहा था, विनय कर रहे थे और चरणों के साथ लिपट रहे थे, पर सदगुरू जी उसी तरह अचेत खड़े थे, दृष्टि बँधी हुई थी और एक तेज ओर रोब चेहरे से टपक रहा था ।

कैसा अद्भुत दर्शन है, जो मारने के लिये आये थे, चरणों मे पड़े हैं और मिन्नतें कर रहे हैं । आप न तो पहले ही डरे थे, और न ही अब किसी तरह पसीजे हैं । आप खड़े हैं और तेज की किरणें चेहरे से इधर–उधर झर–झरकर पड़ रही लगती हैं और वे विनती कर रहे हैं –

बखशहु बड़े करे अपराधू ।
परोपकारी है जग साधू ।।

(नानक प्रकाश)

: ४ :

"चलहु ग्राम श्री प्रभु ! बहोरी ।
विनती सरब करैं कर जोरी ।।"

(नानक प्रकाश)

सारे ठग करबद्ध विनय कर रहे हैं कि हे प्रभु ! एक बार फिर गांव को चलो। हम सारे बहुत पाप करते रहे हैं, हमारे दिन-रात मारने-लूटने में व्यतीत हुए हैं, हमें सुमार्ग दिखलाओ । हम बड़े पापी हैं, और आपकी अनुकम्पा के विना हमारा उद्धार नहीं हो सकता । छोटे-बड़े तो अनेकों साधु-सन्त हमने देखे और उनको कई बार लूटा है, पर आज आप महापुरुष मिले हैं । बड़वाग्नि को सागर ही संभाल सकता है, वनों की अग्नि को मूसलाधार वर्षा ही शान्त कर सकती है। अब गांव को चलो; कुछ दिन रहकर हमारे भाईचारे का उद्धार करो ।

यह विनय सुनकर आपने उनकी ओर दृष्टिपात किया, चेहरे पर कोमलता और द्रवित होने का रंग आया और कहा – "तुम चलो, हम आते हैं ।" चरणों पर शीश झुकाते हुए ठग विदा हुए । आप कुछ समय वहां पर बैठे रहे, मरदाना ने कीर्तन किया और जगत तारनहार जी पिछले पैरों पर लौट पड़े ।

"दीन भये अवलोक सुसाईं ।
हटे ग्राम की दिश जिस थाईं ।।

(नानक प्रकाश)

मरदाना – पातशाह ! यह क्या कौतुक हुआ ? यह मारने के लिए आये थे और आप भी मरने के लिए तैयार हो गये । मेरा जी चाहता था कि हम दिखा दें कि हमारे पास कुछ नहीं, व्यर्थ क्यों मारते हो, पर आपसे डरकर मैंने कुछ नहीं कहा ।

गुरू जी – यह बहुत विकराल ठग हैं, पहले मारते हैं, फिर वस्त्रों की तलाशी लेते हैं । यह कहां सुनते थे, पाप कर-करके इनके हृदय पत्थर के हो चुके हैं । इनसे कर्तार ही रक्षा करता है ।

मरदाना – यदि आप शक्ति न दिखाते तो यह कहां टलने वाले थे ? ... ठीक है, बड़े विकराल थे ।

गुरू जी – हमने तो शक्ति क्या दिखानी थी, पराजय मान ली, कि भाई मार लो ! पराजय में विजय डाल देना कर्तार का ही काम है ।

मरदाना – बलिहारी आपकी पराजय की, जिसके पैर सदैव विजय चूमती है। आपने तो अद्भुत कौतुक दिखाया है ।

गुरू जी – मरदाना ! कर्तार के रंग देख ! उसको अपने भक्तों का ध्यान है । अपने प्रेमियों की सहायता में खड़ा है । उसकी आज्ञा थी कि इनका उद्धार

हो, सृष्टि जो इनसे कष्ट सहन कर रही है वह मुक्त हो । इसलिये वह (ईश्वर) हमें इस बस्ती में लाया था । जब यह पीछे पड़ गये तो जिसको इनके कल्याण की इच्छा थी, हमारी जिह्वा पर आ बैठा और हमने पराजय मानकर दाह–क्रिया के लिए कहा । जब आग का पता पूछा, हमारी दृष्टि चिता पर जा पड़ी । साईं की अनुकम्पा द्वारा नर्क के जीव के पाप दूर हो गये और प्रकाश के दूत उसको मुक्त कराने के लिए आ गये और यह कौतुक जो गुप्त सृष्टि में हो रहा था, ठगों जैसे पापियों को दिखाई दे गया और इस प्रकार दिखाई दिया जैसे कि उनके पास आंखों के समक्ष घटित हो रहा हो । उसी का कर्तव्य है न, कर्तार का, कृपावन्त का, पतित पावन का कि पापियों के नैनों के आगे कौतुक रच दिया और उन्हें डरा दिया । वे महान पापों के कारण कठोर हो चुके हृदय भय में आकर हमारे प्राणों के प्यासे भी न रहे और अपने पापों के भय में आ गये ।

मरदाना – सच है, ठीक है, पर हमारे कौतुक ऐसों के लिए तो घटित नहीं होते । अच्छे–अच्छे साधुओं तथा ज्ञानी लोगों के लिए नहीं होते । बलिहारी आपके विश्वास की । आपके लिए होते हैं। क्योंकि आप ईश्वर की गोद के बालक हैं; या ईश्वरीय शक्ति ही देहधारी हो रही है । बलिहारी आपकी पराजय की जो सदैव विजय प्राप्त करती है । कितने भोलेपन से आपने कहा, 'भला हो तुम्हारा मारो, सहर्ष मारो।' मेरे अन्दर पीड़ा की झन्नाहट सी छिड़ी है, मेरे कोमल हृदय वाले स्वामी ने क्या कह दिया है,' पर मैं क्या जानूं कि यह पराजय जो आपने स्वीकार की है इसके कारण अदेशीय शक्ति हिल जायेगी और स्वामी अपने लाड़ले का बाल बांका भी नहीं होने देगा, बल्कि प्यारे की विजय करवायेगा और पापियों का उद्धार करेगा । भला आज तो बता दो कि यह कौतुकहार आप हैं अथवा वह है ? आप ही तो हैं न 'वह', जो कोई कला धारण करके जगत् में फिर रहे हो और चोज कर रहे हो ? कभी तो अपने मिरासी को रहस्य की बात बता दो । यह सुनते ही आपके नैन मुंद गये और ईश्वरीय कण्ठ से 'राग माझ' का हृदय–कंपी स्वर निकला –

हम जेर जिमी दुनीआ पीरा मसाइका राइआ ।।
मेरवदि बादिसाहा अफजू खुदाइया ।।
एक तूही एक तुही ।।१।।मः १।।
न देव दानवा नरा ।।
न सिद्ध साधिका धरा ।।
असति एक दिगरि कुई ।।
एक तुई एक तुई ।।२।।मः१।।
ना दादे दिहंद आदमी ।।
ना सपत जेर जिमी ।।

असति एक दिगरि कुई ॥
एक तुई एक तुई ॥३॥ महला १॥
न सुर ससि मंडलो ॥
न सपेत दीप नह जलो ॥
अंन पउण थिर न कुई ॥
एकु तुई एकु तुई ॥४॥महला १॥
न रिजकु दसत आ कसे ॥
हमारा एकु आस वसे ॥
असति एकु दिगरि कुई ॥
एकु तुई एकु तुई ॥५॥ महला १॥
परंदए न गिराह जर ॥
दरखत आब आस कर ॥
दिहंद सुई ॥
एकु तुई एकु तुई ॥६॥मः १॥
नानक लिलारि लिखिआ सोइ ॥
मेटि न साकै कोइ ॥
कला धरै हिरै सुई ॥
एकु मुई एकु तुई ॥७॥
(वार माझ महला १ - १३)

यह शब्द गाया जा रहा है, मरदाना रबाब के स्वर साध रहा है और आंखों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित है । जिस परमात्मा के अस्तित्व का पता करने के लिए बुद्धिमान जगत तड़प रहा है, जिस परमात्मा के प्रत्यक्ष न दीखने के कारण सोचने वालों की बुद्धि हैरान है और कोई-कोई नास्तिक भी है, उस परमात्मा के प्रत्यक्ष अस्तित्व की झंकार मरदाना के अंदर उठ रही है 'एक तुई, एक तुई' प्रत्यक्ष प्रतीत दे रहा है ।

शब्द की समाप्ति हुई, श्री गुरू जी ने मरदाना के कन्धे पर हाथ रखकर झंझोड़ दिया उठकर खड़े हो गए और कहने लगे - चल मरदाना ! देख कर्तार के रंग ।

मरदाना - बलिहारी आपके कर्तार की ! बलिहारी आपकी श्रद्धा की ! चलो, पर जाने पर यदि दूसरे ठग न माने तो कहीं फिर से न फंस जायें ।

गुरू जी - देखा नहीं कि रक्षक ने किस तरह रक्षा की है, फंसे हुओं को निकाल लिया है ? यदि फिर से फंसना है तो यह भी ईश्वर का प्रयोजन है, सो पूरा होगा । हम क्या हैं कठपुतलियां, बीच में से निकलकर चलना है । खिलाने वाला ही अपने प्रयोजनों को जानता है, सदैव श्रद्धा में रहें और नाम जपें, विरद

की लाज वाला ईश्वर जो कुछ करता है, भला करता है ।

यह कहकर आप पिछले पैरों चल पड़े और पीछे–पीछे मरदाना भी चल पड़ा ।

: ५ :

ठग सदगुरू जी से विदा होकर बस्ती में पहुंचे, वहां पर लोग प्रतीक्षा में थे कि माल–धन लूटने के लिये गए हुए युवक कब लौटते हैं । जब वे आये तो पूछने पर उन्होंने कहा कि सब–कुछ बताते हैं । सारे लोग बड़े चबूतरे पर एकत्र हो जाओ ।

सुनते ही सारी बस्ती में मुनादी हो गई और ठग इकट्ठे हो गये । तब उन्होंने जो मारने के लिये गये थे, सारी घटना कहकर सुनाई । सभी ने सुना, कुछ तो आश्चर्यचकित हुए, कुछ भयभीत हो गये और कुछ इस तरह प्रश्न करने लगे –

१. क्या तुमने माल स्वयं दबाकर हमें ठगने का षड्यन्त्र तो नहीं रचा ?

२. यह समस्या जो आसानी से हल हो जायेगी, वे वापिस लौट रहे हैं, जीवित ही देख लोगे, उनसे सुन लोगे, फिर धैर्य आ जायेगा ।

देखकर जो आये थे उनमें से एक ठग कहने लगा–वाह–वाह हमारे भाग्य ! यदि हमने जगत को ठगा तो हमारा आपस में भी कोई भरोसा नहीं रहा । हम भाईयों के साथ ठगी करेंगे ? यह आपस में अविश्वास वाली बात है, सच है बबूल का वृक्ष लगाने से कांटे ही उत्पन्न होते हैं । हमने विश्वासघात का बीज बोया है, हम सभी के मनों में अविश्वास ही तो उत्पन्न होगा, और वही उत्पन्न हुआ है ।

३. ठग (जो सुनकर भयभीत हुआ था)– छोड़ो इनकीं बातों को, बात सुनाओ, पर बताओ कि क्या तुमने अपने कानों द्वारा आप सुना कि 'गुरू परमेश्वर है' ?

देखकर आये ठग कहने लगे–हां !

४. ठग (जो आश्चर्य चकित हुआ था)– क्या तुमने भली–भांति निर्णय किया था कि कहीं कोई नज़र बांधने वाला जादूगर ही न हो । प्रत्यक्ष दिन में तुमने यह कौतुक होते देखा ?

देखकर आये ठग कहने लगे– यदि कोई हममें से एक देखता तब तो भुलावा होता, पर हम तो जितने व्यक्ति आग लेने के लिये गये थे, सभी ने प्रत्यक्ष देखा, फिर उसी समय भली–भांति निर्णय किया । हमने रामदूतों को ऊपर आकाश में उड़ते जाते देखा, न तो हम बालक हैं, न हम शहरों में रहने वाले पण्डितों की कथाएँ सुनने वाले कोमल हृदय वाले पुरुष हैं, न हम पुण्यात्मा हैं कि हमारे पुण्य के फल में हमें परलोक के दर्शन प्राप्त हुए । हम हत्यारे, डाकू, बटमार, महापत्थर कठोर हृदय वाले पापी, हम विना देखे कैसे निश्चय कर सकते थे ?

सारे – ठीक है ।

देखकर आये ठग कहने लगे – फिर अब एक ही मार्ग है जो हमारी बात को सच्ची समझते हैं, वे समझ लें कि हमारे उद्धार का समय आ गया है, अब के मुक्त हुए मुक्त हो जायेंगे, यदि अब भी बंधे रहे तो आग के पास आ जाने पर भी सर्दी से मरने वाली बात होगी । बहुत बातों का कोई लाभ नहीं, जो हमारे पीछे हैं वे हमारे साथ शरण प्राप्त करें, जो नहीं मानते वे बस्ती का त्याग करके चले जायें और अपना ठगी तथा डकैती का ठिकाना किसी अन्य स्थान पर वना लें ।

यह स्पष्ट बात सुनकर सारे मान गये और कहने लगे : भाईयों से हमें नहीं बिछुड़ना ।

देखकर आये कहने लगे :

फिर तैयार हो जाओ शरण लेने के लिये, जो आज्ञा हो उसी के अनुसार होगा । यदि दण्ड भी दें तो सहन करना होगा । हम तो जो कुछ देखकर आये हैं, उस से तो उनके हो गये हैं । सारे – जो भाई करेंगे, हम करेंगे ।

यह सुनकर सभी ने एक स्वच्छ स्थान आपके डेरे के लिये तैयार किया और स्वागत के लिये तैयार हो गये । इतने में श्री गुरू जी आ गये। सबने चरणों के आगे झुककर शीश झुकाया, चेहरे के दर्शन किये जो सचमुच सबको एक तेज वाला चेहरा दिखाई दिया, जिस तेज की आभा को कल उन्होंने धन की आभा समझा था वह आज फकीरी आभा दिखायी दी । सुन्दर स्थान पर आपका डेरा करवाया गया और भेंटें ला–लाकर आगे रखीं और स्तुति गाई –

हुतो स्थान जहां तिन नीका ।
तहि बिठाइि बेदी कुलटीका ।
धरहिं उपाइिन, वनदन करिहीं ।
उसतति बारम्बार उचरिहीं ।।

(नानक प्रकाश)

दर्शन करके आये हुए ठग –

जिस प्रकार हुइ भला हमारा ।
सिखवन सुऊ सिखाइ उदारा ।
मानव सरब कुकरमन लागे ।
समझ परी तुम दर्शन पागे ।

(नानक प्रकाश)

गुरू जी – हे ईश्वर के मार्ग से भटके हुए लोगो ! यह भेंटें जो तुमने रखी हैं सभी माल ठगी डकैती का है, हमें यह स्वीकार नहीं होगा।

ठग – हमारा भला किस प्रकार होगा ? यदि आप कुछ हमें बतायें तभी हमारा कल्याण होगा ।

गुरू जी– तुम्हारा कुछ भी नहीं, जो कुछ है वह औरों का है, इसको मुंह में डालने से उनका भला होगा, तुम्हारा बुरा होगा। तुम्हारा कोई अधिकार नहीं था कि तुम विश्वासघात करके, अथवा जोर–जबरदस्ती करके, लोगों का वध करके उनका धन छीन लो और इस पाप की कौड़ी को अपनी कमाई समझकर उपयोग करो। धर्म का कार्य करना, सत्य का व्यवहार करना तुम्हारा व्यवसाय होना चाहिये था।

यह कहकर श्री गुरू जी के नैनों के आगे जगत की बुराई आ दिखाई दी, और आपने वैराग्य–मूर्ति होकर सिरीराग में शब्द गाया –

लबु कुता कूडु चूहड़ा ठगि खाधा मुरदारु ॥
पर निंदा परमलु मुख सुधी अगनि क्रोधु चंडालु ॥
रस कस आपु सलाहणा एह करम मेरे करतार ॥१॥
बाबा बोलीऐ पति होइ ॥
ऊतम से दरि ऊतम कहीअहि नीच करम बहि रोइ ॥१॥रहाऊ॥
रसु सुइना रसु रुपा कामणि रसु परमल की वासु ॥
रसु घोड़े रसु सेजा मंदर रसु मीठा रसु मासु ॥
एते रस सरीर के कै घटि नाम निवासु ॥२॥
जितु बोलिऔ पति पाईऐ सो बोलिआ परवाणु ॥
फिका बोलि विगुचणा सुणि मूरख मन अजाणु ॥
जो तिसु भावहि से भले होरि कि कहण वखाणु ॥३॥
तिन मति तिन पति तिन धनु पलै जिन हिरदै रहिआ समाइ॥
तिनका किआ सालाहणा अवर सुआलिउ काइ ॥
नानक नदरी बाहरे राचहि दानि न नाइ ॥४॥४॥

(सिरीरागु महला १)

इसकी मधुर ध्वनि और सच्चे भाव ने सभी के मन मोम कर दिये और रो–रोकर कहने लगे –

हम भूल रहे हैं, किसी तरह अब हमारा उद्धार हो, किसी तरह हमारे पापों का नाश हो। किसी तरह हमारे किए हुये कर्मों को पलट दो, किसी तरह अनुकंपा करो[१]।

उनकी नम्रता तथा पश्चात्ताप की दशा देखकर श्री गुरू जी ने कहा – तुम्हारे किये हुए पाप तब नाश होते हैं यदि तुम सबसे पहले पश्चात्ताप करो और इस काम को त्याग दो।

ठग– पातशाह ! हम पापी हैं, पर यह धन्धा तो हमारा पैतृक है, बाल्यकाल

---

१. पुरातन जन्मसाखी।

से हम, नहीं-नहीं, जन्म से हमने यह धन्धा सीखा है, हम इसको अपना व्यवसाय समझकर करते-करते पत्थर हो चुके हैं। जितना महान कौतुक आज आपने दिखाया है इतने महान कौतुक को देखे विना हमारे पत्थर हृदय कभी भी पिघल नहीं सकते थे। अब हमने आपकी शरण ली है, हम पर दया करो, और कोई काम-धन्धा हम जानते नहीं, कैसे करें ? जैसे आपकी आज्ञा होगी करेंगे।

गुरू जी – तुम्हारे निकट भूमि पड़ी है, कहीं-कहीं कोई हरा खेत दीखता है। फिर थोड़ी दूर हरा, सुन्दर तथा सुहावना वन है, कृषि करो, भूमि पर हल चलाओ, वन काटकर खेती के लिये भूमि तैयार कर लो। तुम्हारे शरीर तगड़े हैं, तगड़े लोगों के लिये कृषि करना कोई कठिन कार्य नहीं। कृत्य करके धर्म की कमाई करके यदि खाओगे तो तुम्हारे हृदय प्रसन्न होंगे। जो देन हमें प्रदान करनी है उसको सम्भालोगे, अन्यथा जो तुम कर चुके हो वे ही माफ़ होंगे और न ही आगे के लिये मन में उत्तम बीज पनपेंगे।

ठग–जो आज्ञा होगी, हम करने के लिये तैयार हैं, एक बार कह दो कि जो कुछ हमने किया है उसके लिये क्षमा हो गई है। हे तारनहार ! दृष्टि द्वारा जिस प्रकार उस पापी को मुक्त किया है उसी प्रकार कोई कृपादृष्टि डालकर हमें भी किये हुए पापों से छुड़ाओ।

गुरू जी – तुम्हारे पास जो धन कुकर्मों द्वारा इकट्ठा किया हुआ है, उसको भले अर्थ के लिये लुटा दो, गरीबों, निर्धनों तथा अतिथियों को दे दो। परमेश्वर के नाम पर दे दो। जिस किसी का कोई पता हो उसे पहुंचा दो। यह सुनकर सभी ने अपने घरों से धन लाकर आगे रख दिया और जो आज्ञा हुई थी उसको सहर्ष मान लिया। इसके पश्चात् सदगुरू जी ने उन सभी की विनती स्वीकार की –

"जी असां कऊ नाऊं धीक कर"[१]

(पुरातन जन्मसाखी)

अर्थात् हमें नाम का दान दो। तब सबको नाम का दान दिया। सभी ने वह कृत्य छोड़ दिया। जो कुछ पापों की कमाई थी, सारी पुण्य-दान करके भले कामों में लगा दी।

माने वचन गुरू के सबही।
दरव लुटाइि दीन तिन तबही।
खेती करन लग्यो सभ ग्रामा।
पूरब को तजि दयो कुकामा।
धरमसाल मिल सकल संवारी।

---

१. हमें नाम प्रदान कीजिये।

भाऊ भगति के भे अधिकारी ।
सिमरन लगे वाहिगुरू नामू ।
सिखी रीति लीनि अभिरामू ।।

(नानक प्रकाश)

करामात दिखाने से संकोच करने वाले गुरू के नेत्रों की दृष्टि पड़ने से कितना आश्चर्यजनक कार्य हुआ कि घोर पत्थर भी मोम हो गये और शुभ मार्ग पर चल पड़े । पहले पाप की कमाई दूर कराई, आगे के लिये धर्म कृत्य में लगाया और नाम दान देकर सच्चा मार्ग दिखा दिया । ज्यों – ज्यों नाम का अन्दर निवास होता त्यों – त्यों आत्म – जीवन में रस आता । उस पापों भरी बस्ती में धर्मस्थान बनवाया । जहां पर पहले लोग ठगे जाते थे, अब वहां पर सेवा, भाव भक्ति, आदर – सम्मान होने लगा । नेकी का एक आश्चर्यजनक धर्मस्थान गुरू नानक देव जी ने चलाया था । कुछ दिन गुरू जी वहां पर ठहरकर सारी बस्ती को[१] पुण्यों में परिपक्व करके और दृढ़ हुआ देखकर आगे चले । यह मनुष्य – हृदय की एक आश्चर्यजनक वृत्ति है कि घोर पापी जब पुण्यात्मा बनते हैं तब महान और पक्के पुण्यात्मा हो जाते हैं ।

कितक दिवस बस कर तिह थाना ।
भाऊ भगति बिधि नीक दिड़ाना ।
बखशे सरब पाप तिन केरे ।
बहुत चलाए पंथ भलेरे ।
बिदा भए तिन ते बरिआई[२]।
आगे कीनो गमन गुसाईं ।।
महा अघी[३] जिन जगत उधारे ।
तिन दर्शन पर कवि बलिहारे ।

(नानक प्रकाश)

□ □

---

१. पुरातन जन्मसाखी में दी हुई साखियों के क्रम में यदि खोज की जाये तो यह ठिकाना नानक मता से आगे कामरूप देश से इधर होना चाहिये । आश्चर्य नहीं कि कहीं गया के निकट कोई चिह्न अब भी मिल जाये ।

२. जोर से ।

३. ठगी तथा डकैती भारत में जोरों पर रही है । इसके दूर करने के लिये साधारण पुलिस काफी न समझकर अलग विभाग बना था। ठगी डकैती कम हो गई है, पर अब भी भारत से यह पूर्ण रूप से दूर नहीं हुई ।

२८ भाई सूजा

यहां से चलकर शनैःशनैः श्री गुरू जी भागीरथी गंगा पार हो गये और मुरशिदाबाद आये, जिसको प्रायः लोग मकसूदाबाद भी कहते हैं और जहां से साधुओं की अड़ियां (रेशमी वस्त्र) और गृहणियों के रेशम के दुपट्टे तथा साफे आदि भी मिलते हैं। यह बहुत बड़ा नगर है, किसी समय राजधानी भी थी। श्री गुरू जी ने यहां पर कुछ दिन निवास किया। बहुत-से लोग सतसंग में आकर परमेश्वर के प्यार के मार्ग पर चलने लगे। अनेकों के कुकर्म छूट गये और अनेकों शुभकर्मी होकर नाम जपने लगे। इनमें से सबसे अधिक नाम का रंग एक जड़िये को चढ़ा, जिसका नाम सूजा था। यह सज्जन अपने काम-धन्धे में लगा रहने वाला था। मृत्यु से भय खाता था और भलाई का खोजी था, पर किसी स्थान से इसको शान्ति प्राप्त नहीं हुई थी। जब श्री गुरू जी का सतसंग प्राप्त हुआ तब उसका मन स्थिर हुआ। प्रतिदिन दर्शन करता, सतसंग में आता और अधिक-से-अधिक नाम में लौ लगाता। यहां तक कि यह पूर्णतया नाम-प्रेमी और रसिक वन गया। श्री गुरू जी का प्रेम इसके मन में ऐसा घुसा कि इसके अन्दर काव्य का जागरण हुआ। उसके गुरू जी की स्तुति में रचे छन्दों में एक छन्द मिलता है। जो इस प्रकार है -

सतिगुरू नानक परसिआ सभ पाप विनासे।
नाम अमोलक पाइआ कारज भये रासे।
अगम निगम जिस गावते वह सतिगुरू इह।
जिनकी किरपा ते भइओ मैं मुकत संदेह।
कच्चा रंग उतारके शुभ रंग चढाइआ।
सतिगुरू नानक दइआ ते अमरा पद पाइआ।

इस नगर में श्री गुरू जी ने सतनाम का झण्डा गाड़ दिया। सूजा भक्त की संगत और सन्तान अब तक वहां पर रहती बताई जाती है।

□ □

२९ भाई रामदास

अब श्री सदगुरू जी आगे को चल पड़े । पहले दक्षिण की ओर चले तो कृष्ण गंज जा पहुँचे । कुछ दिन सत्यनाम का यश सुनाकर कई स्थानों पर घूमते उत्तर-पूर्व की ओर चल दिये तब आप श्री राजगंज आ ठहरे । कुछ दिन यहां पर नाम का प्रचार करते, इधर-उधर घूमते ओर थोड़ा सा समय विश्राम करते व्यतीत हुआ । फिर एक स्थान पर आये जहां पर जल-ही-जल दिखाई देता था । वहां से पार तट का कुछ भी दिखाई नहीं देता था । आप वाहिगुरू के रंग में मगन खड़े थे, मरदाना पूछताछ कर रहा था कि आपने कहा, देख कर्तार के रंग, वह आप-सब कुछ कर रहा है। इतने में एक काफी बड़ी नाव आ गई । केवटों ने आपसे कहा कि हम लेने के लिए आये हैं । तब श्री गुरू जी मुस्कराकर उसमें बैठ गये । उस महान जल के फैलाव से पार हुए जब नाव किनारे पर आ लगी । जो साधु नाव में आपको लेने के लिए आया था वह आपको एक पहाड़ी-सी पर ले गया । वहां जाकर सभी एक गुफा में घुस गये । यहां पर बहुत अंधकार था । मरदाना घबराया कि न जाने कहां जा रहे हैं । कुछ समय के पश्चात अंधकार हट गया और फिर खुला स्थान आ गया जहाँ कई साधुओं की धूनी लगी हुई दिखाई दी । तपस्वी साधु लोग अनेक प्रकार के आसन लगाकर बैठे थे; सदगुरू जी को देखकर उन सभी ने उठकर ससत्कार नमस्कार किया और सभी के शिरोमणि साधु ने बड़े प्रेम तथा आदर सहित शीश झुकाकर सम्मान प्रकट किया । श्री गुरू जी ने भी सत्कार सहित उन्हें गले लगा लिया और दोनों बहुत प्यार से विराज गये। इस तपस्वी का नाम रामदास लिखा है । अब कुछ दिन यहां पर ठहर गये । खाने-पीने के लिये यहां पर फल मिलते थे जो बड़े स्वादिष्ट थे और कई प्रकार के कन्द, जो भूमि से निकलते हैं और जिनको भूनकर खाया जाता है, साथ होते थे । यहां पर बाबा जी की कोई गोष्ठी तथा विचार सुनने का मरदाना को कोई अवसर नहीं प्राप्त हुआ । क्योंकि रात होते ही श्री गुरू जी तथा रामदास जी वहां से भी आगे किसी तपोभूमि में चले जाते और ध्यान मग्न हो जाते थे और प्रात:काल अपने स्थान पर आते थे । कई दिन एकान्त में रहकर और अपने रंग में मग्न रहकर श्री गुरू जी वहां से भी चल पड़े । मरदाना ने पूछा - आप कहां जाते थे ? तब आपने उत्तर दिया :-

सबदि रंगाए हुकमि सबाए ।।
साची दरगह महलि बुलाए ।।

(माझ महला १)

ढाका

यों कुछ समय अपने – आपको बिल्कुल ही एकान्त में रखकर अब आगे को चल पड़े और ढाका शहर आ गये । शहर से बाहर आप एक स्थान पर टिक गये । अमृत वेला में सायंकाल को नित्य की भांति दोनों समय कीर्तन का रंग लग जाया करता था । आसपास से लोग भी आने लगे और धीरे – धीरे सुनने वाले बढ़ते गये । एक दिन यह शब्द किसी आश्चर्यजनक स्वाद में गाया गया : . . .

मन कुंचरु, काइआ उदिआनै ।। (गऊढ़ी गुआरेरी महला १)

श्रोंताओं में दो – चार चतुर पुरुष थे उन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्हें आकर्षण हो गया और सदगुरू के चरणों पर गिर पड़े । सदगुरू जी ने नाम दान देकर सुख के मार्ग पर चला दिया अब वहां के उस समय के कई प्रसिद्ध साधुओं तक समाचार जा पहुँचे । दूर – निकट के सिद्धों तपस्वियों के ठिकानों पर भी खबर पहुँच गई कि कोई ऐसी ईश्वरीय ज्योति वाला दाता ढाका के बाहर आ बैठा है कि मृतकों को जीवित करता है और शान्ति प्रदान करता है। यह समाचार सुनकर एक – एक करके सारे लोग आने लगे । शहर के श्रमिक और ईश्वरीय मार्ग की लगन वाले अन्य लोग भी चक्कर काटने लगे । श्री बाबा जी के उपदेश तथा कीर्तन का वह प्रभाव पड़ा कि तपस्वी और साधू लोग सभी बाबा जी के प्रेमी हो गये। सबसे अधिक जो गुरू जी का प्रेमी वना वह नत्थाशाह नामक फकीर था, जिसने नाम – दान लेकर अपना कल्याण किया । फिर आपके पास लूणीआ नामक सिद्ध आया । यह हठयोगी था । सदगुरू जी ने इसको नाम में लगाकर इसकी हुई तपस्या को फलवान वनाया । इसी तरह शेख अहमद नामक फकीर को जो कि चिल्ले काट – काटकर थक रहा था और जिसका मन स्थिर नहीं था, नाम भक्ति में दृढ़ किया और भी रेवादास, शामलनाथ, चन्दन नाथ, नारायणदास आदि के परिश्रम सुन – सुनकर उनकी बाधाओं को हटाकर वाहिगुरू जी के शब्द यश के साथ जीवित कर दिया । इन लोगों के नाम तथा स्थान आज तक स्थिर बताये जाते है[१]।

वास्तव में बात यह है कि साधु जन अपने साधनों में तपस्या के बल पर कुछ इस प्रकार के भ्रम में फँस जाते हैं कि तप को ही सिद्धि समझने लग जाते हैं । तप तो मन को विकारों से छुड़ाकर वैराग्य में ले आता है। अपने में रखकर तप सिद्धि के द्वार तक कब पहुँचा सकता है ! इसी तरह कई करामातों की प्राप्ति तथा साधनाओं मे लगे परिश्रम करते रहते हैं और कई यहां से फिसलकर तांत्रिक वन जाते हैं। कईयों को शरीर के मांजने से शरीर में जो चेतनता तथा बल आ जाता है, उतने पर ही समाप्ति हो जाती है, और परमेश्वर जी के साथ मिलने तथा

१. तवारीख खालसा ।

जुड़ने की ओर यत्न होता ही नहीं । इसी प्रकार के तपस्वियों, जप करने वालों तथा परिश्रमियों को गुरू बाबा ने मार्ग पर लगाया और ढाका में सत्संग की बुनियाद डाली ।

सूचना :– इससे आगे चलते–फिरते सदगुरू जी एक स्थान पह जा पहुँचे, जिसका कुछ समाचार अगले प्रसंग में है :–

□ □

---

२. जहां पर आप विराजते थे वहां पर एक बड़ा भारी गुरूद्वारा है, यह अब शहर से थोड़े–से मीलों की दूरी पर है और वहां पर श्री गुरू जी की चरण पादुका है। यह नत्थाशाह जो प्रथम गुरू (गुरू नानक) से मिला था, फकीर था, (विशेष खोज की आवश्यकता है) । नौवें गुरू (गुरू तेग बहादुर जी) के समय जो मसंद ढाका में था, वह उदासी श्री अलमस्त जी का चेला था। इसका नाम गुरू प्रताप सूरज ग्रन्थ में भाई नत्था लिखा है, जिसका नाम नत्था राम भी बताते हैं । इसको सातवें गुरू (श्री गुरू हरिराय जी) ने ढाका में सिख मत का प्रचार करने के लिये भेजा था । इस सतपुरुष की कथा भी उदासी संत पढ़ते हैं । जिसमें उसके ढाका भेजे जाने और नौवें गुरू जी का प्रेमी होने का उल्लेख भी है। नौवें तथा दसवें सदगुरू जी के समय ढाका में बुलाकी दास मसंद था। शहर में जो गुरूद्वारा अब है वह नौवें गुरू के शहर में विराजने के स्थान पर है ।

३० नूरशाह का उद्धार

१. मनोवाद

"नानक मनु समझाईऐ गुर कै सबदि सालाह ।

मरदाना (स्वगत)– मेरी समझ में नही आता कि मुझे क्यों कहते थे कि इस नगर[१] में मत जा, हमारे पास ही रह । जब ढाका से चलने लगे थे तो मैंने कहा था कि यह स्थान बहुत अच्छा है, समय पर सोते हैं, समय पर भोजन मिलता है, कुछ समय यहां पर और ठहरें । तब कहते थे, "नहीं, बहुत जरूरी काम है, एक भारी उपद्रव दूर करना है, जरूर चलना है, शीघ्र चलना है ।" तब तो एक भी नहीं मानते थे । शहर में सिख मत का प्रवाह चल पड़ा था, अनेकों माया की पूजा करने वाले वाहिगुरू जी के प्रेमी हो गये थे । सभी आदर करते थे, और चलने के नाम पर अश्रु बहाते थे, पर वहां से हठ करके चले ही आये और यह कहते चल पड़े, 'कि उपद्रव दूर करना है । शीघ्रता है' । यहां पर आये तो तीन दिन उजाड़ में ही बैठे रहे, न अन्न, न जल । आप तो समर्थ हैं, पर मैं क्या करूँ ? मुझे तो यह एक भूख का दुख, दूसरे मेरा स्वभाव घबराने वाला है । मैं निकटवर्ती, कृपा का पात्र, मैं जानता हूँ, कि आप ईश्वरीय ज्योति हैं, पर घबरा-घबरा जाता हूँ, संशय कर बैठता हूँ, भूखा होकर व्याकुल हो जाता हूँ । मैं कदर नहीं करता, यदि करता हूँ तो भूल जाता हूं । निकट रहकर संशय में पड़ जाना मुझे भूख से भी बड़ा दुख है । पटना में सालिसराय से भेंट करवाकर मुझे दिखा दिया था कि कदर न करके, पहचान न करके, मूल्यांकन न करके जगत कैसे दु:खी है । मैंने तब सौगन्ध खाई थी कि फिर कभी संशय नहीं करूँगा, निरंकार की ज्योति समझकर सदैव आज्ञा में चलूंगा, पर हाय ! मेरा कच्चा पिया हुआ दूध ! मैं फिर भटकने लगता हूँ । अब तीन दिन की भूख ने मार डाला, मैं क्या करू ? कैसे हे परमेश्वर जी ! मैं भी भूख-प्यास पर विजय प्राप्त कर लूं ? फिर तो न जाने, मैं आज्ञा में चल पडूं और कभी भी न घबराऊँ । कभी आपने कहा था –

मरदाना ! हे महाराज वाले ! तुमने कल कौन सा शब्द गाया था, याद कर –

दादर तू कबहि न जानसि रे ।।

---

१. पुरातन जन्मसाखी में यह ठिकाना कामरूप देश में बताया है जो असम का उत्तरी भाग है और जिसका बड़ा नगर गोहाटी है। तवारीख खालसा ने नूरशाह का ठिकाना ढाका से तीन कोस की दूरी पर बताया है जहां पर बरछा साहिब गुरुद्वारा है ।

भरवसि सिबालू बससि निरमल जल ।।
अंम्रितु न लरवसि रे ।।

बस यह शब्द मुझ पर ही घटित होता है, निर्मल जल में रहकर मैं मेंढक की भांति अन्न-जल; सुख-आराम, माया रूपी फफूंदी के पीछे ही रहता हूँ, ज्योति में पतंगा वनकर समाप्त नहीं होता ।

पर मैं क्या करूँ ? हे कर्तार ! तेरी माया प्रबल है, जिसका भूख के कारण कण्ठ ही वनद हो जाय, वह कीर्तन क्या करे? नहीं, पर क्यों, वह पतंगा होकर दीप-शिरवा पर जलकर बलिदान हो जाये । देख मरदाना ! तेरी मां के पांच पुत्र हुए और मर गये । जब तू पैदा हुआ तो उसने समझा था कि वह भी मर जाएगा, यों ही मेरी कोख को सताने के लिए कोई शत्रु आया है, मोह का तमाचा लगाकर भाग जायेगा । उसने तेरा नाम 'मरजाना'[१] रख दिया । यदि कोई कहे- "अरी हाय ! हाय बुरी ! भगवान ऐसा न करे, पुत्र का क्या नाम रखा है?" तब वह कहती "मेरे भाग्य में पुत्र नहीं, यह तो मेरे घर में छलिया होकर आते हैं, मैंने इसके जीवित रहने की आशा छोड़ दी है । 'मरजाना' नाम रख दिया है, यदि मरेगा तो मैं रोऊँगी तो नहीं । कहूंगी कोई बात नहीं मर गया तो मर गया।" इस प्रकार के व्यर्थ नाम वाले 'मरज़ाने' ! जब तू गुरू नानक देव जी के साथ खेला और उनके साथ गाया तब उस ईश्वरीय दाता ने तेरा घृणा वाला नाम बदलकर मर्दों के बल वाला 'मरदाना' नाम रख दिया और मेरी मां को कहा, "सुंगी ! तेरे मरज़ाने वाले को हमने मर्दों के समाज में जीवित रहने वाला नाम प्रदान किया है, यह तेरे भाग्य के लिए तो जीवित नहीं रहेगा, अपितु साधु संगत के भाग्यों के लिये जीयेगा, जिन्हें इससे ईश्वर का यश सुनकर जीवित रहना है यदि यह जीवित रहेगा तो जीवन-दान की गाड़ी का एक पहिया वनेगा ।" सो मरजाने ! जिसने मुझ मृतक को जीवित किया, जीवन दान देकर जीवित किया, जिसने 'मरदाना' (अमर) किया, उस पर क्यों न्योछावर नहीं हो जाता ? जिसके विना तू एक क्षण भी नहीं रह सकता, जिसमें तू निरंकार को देखता है, क्यों नहीं उसके शब्द पर न्योछावर हो जाता ?

हाय! कलेजा गया, किस द्वार पर जाकर अन्न मांगू ? यदि सन्तोष करके बैठा रहता तो वहां पर न जाने ईश्वरीय भोजन प्राप्त होता, आकाश से परोसे हुए थाल उतरते, अब मैं अन्न के लिए द्वार-द्वार पर भटक रहा हूं अद्भुत नगर है। हे अल्ला ! महिलायें ही महिलायें हैं । खेत में और दुकानों पर तो घूर-घूरकर देखती हैं कोई मरी अपने मुंह से यह भी तो नही कहती, "भाई पथिक ! भोजन कर ले"। देखती हैं, । देखती हैं । कहीं कोई नजर न लगा दे; पर मुझे कैसी नजर, मेरे सिर पर नजरों का कृपालु बैठा हुआ है ।

---

१. यह पंजाबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है मरने वाला ।

हैं ! यह क्या आया है ? सारा बाजार चुपचाप है यह मन्दिर कैसा है, सभी द्वार वनद हैं ! यह सिंह की मूर्ति कितनी भयानक आगे खड़ी है हाय ! सचमुच की सिंह की जोड़ी खड़ी है कि मूर्तियाँ हैं काला-नीला रंग साथ मिलाकर घर को रंग रखा है वह ऊपर खिड़की में से किसने झांका है, कोई आवाज लगाकर कहने लगी है, "लो भैया खाना" (खड़ा हो गया) हैं, कोई नहीं बोला, किसी ने नहीं कहा कुछ खा ले, अच्छा आगे चलो । (पर कदम नहीं चलते) हैं, यह क्या हो रहा है, मुझमें अन्न की कमी के कारण शक्ति नहीं रही । नहीं, चलने की शक्ति अभी है, पर फिर कदम क्यों भारी होते जाते हैं ?

मरदाना ! तगड़ा हो, मुझे गुरू बाबा ने कहा था, थोड़ा समय ठहर, शहर में अभी मत जा, पर जब तूने हठ किया तब कहने लगे-'सम्भलकर, आपा सम्भल कर जाना, शौर्य से रहना । तू कोमल है, सूक्ष्म गुण का कलाकार है, चित्त में एक ऐसी कोमलता रखता है कि जो चोट खा जाती है । यदि चला है तो शौर्य से रहना' । अब लो देखो मेरा शौर्य! कदम ही नहीं उठता !... भला बताइये ! भूखे का शौर्य क्या करेगा ? (छाती को पीटकर) हाय मेरे पेट ! मैंने अपने दाता पर सन्देह किया है ? क्या भूखा भी शौर्य में रह सकता है ? अवश्य रह सकता है पर वचन के बल पर । तभी तो गुरू नानक ने कहा था शौर्य में रहना । यदि भूखा न रह सके तो गुरू कहता ही क्यों ? और प्रत्यक्ष है, गुरू आप भूखा रहकर शौर्य रंग में निवास करता है, सच है, गुरू सच्चा है, मैं कच्चा हूं ।

२ अधैर्य – आश्चर्य

'कची कंध कचा विचि राजु ।।
मति अलूणी फिका सादु ।'

इतने में उस सहमे हुये घर का द्वार खुल गया, पर खोलने वाला कोई दिखाई न दिया और मरदाना ने अन्दर देखा, एक ड्योढ़ी है। आगे सुनसान आंगन है। पर फिर यों दिखाई दिया जैसे चादर बिछी है और ऊपर एक तश्तरी में पुलाव पड़ा है और उसमें से भाप उठ रही है और भीनी-भीनी केशर तथा सन्तरे की सुगन्धि आ रही है । शीघ्रता से भीतर घुस गया, जाते ही किवाड़ वनद हो गया, दिखाई कुछ न दिया कि किसने किवाड़ वनद किया है । इस बात को समझकर भी तश्तरी की सुगन्धि से आकर्षित हुआ मरदाना और आगे बढ़ा । वहां पर तश्तरी तो थी नहीं, एक आंगन था, इसकी एक ओर एक दीवार में एक कील थी और उस पर मनुष्य का एक पिंजर लटक रहा था, जो सारे-का-सारा हड्डियों का पिंजर था। एक बार तो डर लगा, पर उसी क्षण वाहिगुरू कहकर सम्भला । अभी सम्भला ही था कि आंगन से आगे दृष्टि पड़ी तो एक आंगन दिखाई दिया, जिसके मध्य में दो स्तम्भ थे । इन दोनों के साथ सिंहों के बच्चे बंधे हुए थे, जो अन्दर

आने वाले अतिथि की ओर घूरकर देख रहे थे । अब फिर सहम गया । पर सहमी हुई और अधीर बुद्धि को शीघ्र ही यह देखने की ओर लगाया कि सिंह बंधे हुए हैं अथवा खुले हैं, तब वे सौभाग्य से बंधे हुए दिखाई दिये, पर पांव कुछ धीरज धर कर भी वहीं पर ठिठक गये । जहां पर अब मरदाना रुक गया था, कुछ सुरक्षा का आश्रय लेकर खड़ा था कि पांवों में सर-सर हुई, क्या देखता है कि दो फण-धारी सर्प सर-सर करते हुए उसके पांवों में से गुजरते हुए अन्दर की ओर जा रहे हैं । इस समय आश्चर्य का भय-सा छा गया, मरदाना न तो होश में है, और न बेहोशी में, न सिंहों की ओर ही सुरक्षा के लिए भागता है और न पहली सहम से सहमा हुआ पीछे हटता है। न वह जहां पर खड़ा था वहीं पर सुरक्षित है और न सरकने में ही कहीं सुरक्षा दिखाई देती है । सिर में एक चक्कर आया, घबराकर नयन मूंद लिये । अधैर्य ने फिर हिलाया और नयन खुले । सांप गुजर चुके थे, सिंह खुलकर लुप्त हो चुके थे। संगमरमर की एक चौकी आगे रखी है, उसके ऊपर चावलों की तश्तरी रखी है, सुगन्धि आ रही है । एक पतली, कोमल-सी सुन्दरी आई, जल का गिलास रखकर चली गई । एक और आई, बैठने के लिये मरदाना के पीछे चौकी रखकर चली गई, एक और आई, चमचा रखकर चली गई, एक और आई, दूध का कटोरा रख गई। पर बोली कोई भी नहीं, मानो सिंहासन बत्तीसी की पुतलियां काम कर रही हों ।

३. तृप्ति

"बाबा होरु खाणा खुसी खुआरु ।।"

मरदाना ने अब अच्छी तरह पीछे देखा, द्वार तो वनद था, कील भी थी, पर साथ पिंजर नहीं लटक रहा था, एक चादर लटक रही थी । आगे देखा तो आंगन था, पर और कुछ नहीं था। नीचे-ऊपर, दायें-बायें जब दृष्टिपात की तो कोई भय का सामान अथवा अद्‌भुत दृश्य नहीं था। अब भूख तो सहम और अधैर्य के नीचे छिप गई थी, लौटी और पुलाव की सुगन्धि से खूब चमक उठी । स्वयं बैठ गये, 'धन्य गुरू नानक' कहा, खूब खाया । कई प्रकार के पकवान आये, स्वादिष्ट तथा रसदायक, खाता है और कहता है : आश्चर्य है, नगर तो विना बोलने वालों का है, न कोई बोलता है अल्ला ! कुशल रखना । कोई जादू न हो रहा हो या मैं स्वप्न न देख रहा होऊं । प्रत्यक्ष है कि भुलावा ! पर पेट भर रहा है, भूख मिट रही है प्रत्यक्ष ही है। तृप्ति भला स्वप्नों अथवा टोनों से तो नहीं होती ।

भरपेट खाया तो अब निद्रा आ गई, पर पीछे लौटने का भी ध्यान आया । नज़र उठाकर पीछे देखा और चल पड़ा । जिस ड्योढ़ी से स्वयं अन्दर गया था वहां पर खाट बिछी है, सफेद चादर बिछी हुई है, बैठ गया, बैठे-बैठे लेट गया, लेटते ही सो गया ।

४. निद्रा

"बाबा होरु सऊणा खुसी खुआरु ।।"

मरदाना पेट भरकर सोया था, गहरी नींद आ गई, पर कुछ समय के पश्चात् एक स्वप्न देखा कि दो काले बिल्ले पीली आंखों वाले उसकी ओर देख रहे हैं । इधर अभी कुछ सोच ही रहा था कि सरर करता हुआ एक तीर कानों के पास से निकल गया, चौंककर निद्रा खुली । न तो वह ड्योढ़ी है, न आंगन है, न सांप, न सिंह, न बिल्ले, न पकवान है, न परोसने वाली हैं । एक बड़ा-सा कमरा है जिसकी दीवारों में शीशे तथा नग जड़े हुए हैं, छत पर सुनहरी काम किया हुआ है और फर्श अमूल्य गलीचों का है । मरदाना एक सुनहरी पलंग पर विराजमान है, सुगन्धि कमरे में फैली हुई है, पर यह सुगन्धि सूक्ष्म प्रकार की सी है । आप उठकर बैठ गये, चारों ओर देखा, 'आह ! जगत में लोग कितने सुखी हैं, ईश्वर ने आराम के किनते सामान वनाये हैं और प्रदान किये हैं ! पर हैं, यह जगमगाना कैसा, और दिन में दोपहर को सोया था, यहां पर यह झाड़, फानूस, लटलट जल रहे हैं ! रात हो गई है, ओह ! मैं ठगा गया, सदगुरू जी को मैंने कहा था कि मैं घड़ी दो घड़ी में लौट आऊंगा, पर मैंने तो रात कर दी, क्या करूंगा, मार्ग कैसे मिलेगा ? चल रे मन ! उठ अपनी उजाड़ की खोज करें । कर्तार ! निरंकार !'

५. मन-सम्मोहन

"मतु देखि भूला वीसरै तेरा चिति न आवै नाऊ ।"

मरदाना खाट पर से उठा और द्वार की ओर चल पड़ा, एकाएक पृथ्वी से सुन्दर स्त्री उठी और घुटना टेककर करबद्ध कहने लगी, 'आज्ञा !'

मरदाना-मार्ग बताओ, हमको जाना है ।

स्त्री-कहां ?

मरदाना - अपने उजाड़ को ।

स्त्री - क्या करने के लिये ?

मरदाना - अपने स्वामी के पास ।

स्त्री - और यदि वह भी यहां पर आ जाये तो ?

मरदाना - आ तो आयेंगे, मुझे जो देरी हो गई है, मैं बुरा हूँ तो वह विरद पालने वाले हैं अवश्य ही लेने के लिए आयेंगे । (चौंककर) कहीं आ ही तो नहीं गये ?

स्त्री - आये तो नहीं पर आयेंगे, और लेने के लिए नहीं आयेंगे, यदि आये

तो यहां पर ही रहने लगेंगे । अतः तुम मत जाओ, इस अंधेरे में कहां हड्डियां-घुटने तुड़वाओगे, यहां पर वन के पशु नगर की दीवारों तक आते हैं । यहीं पर ही रहो ऐसे सुखों का त्याग करके कहां जाते हो ? यदि बहुत चित्त हुआ तो सवेरे चले जाना, रात में तो विश्राम कर लो ।

मरदाना (सारे सामान की ओर देखकर)- तुम कौन हो ?

स्त्री- मैं दासी हूँ, कभी मैं एक राजा की रानी थी, पर इस घर के सुख जब से देखे हैं, पांव बाहर नहीं निकाल सकी, तुम भी इस प्रकार का सुख देखोगे कि कहीं देखा न होगा ।

यह बातें मरदाना के मन को चुभीं । कहां पर तलवण्डी, कहां पर ढाका, पद-यात्रा, दुःख, भूख, थकान, धूप की पपिश, वर्षा के फर्राटे, दिन-रात के कष्ट, याद कर-करके दिल कांप गया, दो अश्रु भी भर आये; मन ने कहा, भला इतने कष्टों के पश्चात् यदि दो दिन कोई खूब सो ले, दो दिन भरपेट अन्न ही खा ले तो कौन सा पाप है ? माना हम भी भगवंत जी के सेवक हैं और उनके ज्ञान के डाकिया, पर डाकिया भी तभी ही डाक लेकर भागेगा, यदि उसका शरीर निरोग होगा। यदि शरीर ही हार गया तो डाक कौन ले भागेगा ! थकान के पश्चात् केवल आराम तो निर्दोष सुख है । दो दिन और एक रात के पश्चात् सो जाना और भरपेट अन्न पा लेना । हां जी ! ध्यान में आ गया, सदगुरू ने आप कहा है :-

"अन्नु न खाइआ सादु गवाइआ" (आसा दी वार)

अब देखूं, मुझे भी आनन्द-स्वाद मिल रहा है, और रस भी चढ़ रहा है, नाम का रस होगा ! ठीक है, सुख से एक ही रात सही, काट लें, सबेरे चलकर मिलेंगे ।

मरदाना (आंखें मूंदकर) - बिटिया, यदि मैं रात को यहां पर ही सो रहूँ तो कोई कष्ट तो नहीं होगा, पहले आंगन में तो बहुत-सी बलाओं के साथ वास्ता पड़ा था ।

स्त्री - नहीं जी ! आराम से सोइये और जो चाहे खाइये । यह निष्काम सेवा, अतिथि सेवा का क्षेत्र है, भय जो था सो था, तुम बुद्धिमान हो ।

६. मन संग्राम

"हरि विनु जीऊ जलि बलि जाऊ ।।
मैं आपणा गुरु पूछि देखिआ अवरु नाही थाऊ ।।"

मरदाना फिर सोच में पड़ गया । चलते समय गुरू बाबा ने कहा था, शौर्य में रहना । क्यों कहा था ? मैं दो रोटी लेने के लिये आया था, शौर्य की आवश्यकता कहां थी ? भला गुरू बाबा को पता था कि मैं ऐसे राज्य मन्दिर में, ऐसे पुणयार्थी क्षेत्र में जा घुसूंगा और कहीं शौर्य-वृत्ति की आवश्यकता भी पड़ेगी ?

बड़े जो ठहरे, सुमति प्रदान कर दी होगी कि न जाने कहीं इसकी जरूरत पड़ जाये, परदेश का मामला है, कहते हैं धरती भी वैसी ही मन्त्रों-तन्त्रों की है । हूँ ! नहीं उन्हें अवश्य ही पता होगा ? त्रिकालदर्शी हैं, वे ईश्वर का स्वरूप हैं। नहीं रे डोम ? गुरू के सेवक ! वे तो वही हैं वही । जानते हैं । अब कैसे करूँ ? प्रतीक्षा करते होंगे । हाय मेरे मन ? मेरी प्रीति गुरू के चरणों के साथ नहीं है !

यह सोचते ही एक चक्कर सा आया और कितने समय तक बेसुध-से पड़े रहे । जब होश आया तब कह रहे थे, भारी अवज्ञा हो गई, नहीं, नहीं मेरी प्रीति के तार में गांठ पड़ गई, आओ, कोई रक्षा करो ! प्रीति को गांठ पड़ गई है। अरे मिरासी । तेरा पेट जल जाये, स्वयं खा गया भरपेट खा गया, फिर सो गया और सदगुरू जी भूखे बैठे रहे । अरे भूले और भटके हुए ! यदि तेरे अन्दर प्रीति होती, तो अन्न लेकर पिछले पावों लौटता, पहले सदगुरू जी को भोजन कराता, फिर जो शेष रहता स्वयं खाता, हां, तब तेरी प्रीति सच्ची होती । पर मैं क्या करूँ ? यदि अन्दर प्रीति होती तो प्रीति का कार्य वन पड़ता । अत: अब पता चल गया । हे मन ! तेरे अन्दर प्यारे की प्रीति नहीं है। अब किस मुंह से जाऊँ ? क्या बहाना वनाऊँ और कहूँ कि मेरे साथ क्या घटी ? कहूंगा, जी मैं मुर्दा मर जाने वाला, तूने जीवन दान देकर जीवित किया था । अत: जितना समय तू अन्दर, मैं 'मरदाना' जब तू बाहर, तब मैं 'मरजाना' (मर जाने वाला) मैं अंधी मिट्टी, मेरे में क्या बल तथा शक्ति ? तू मृतकों के कानों में फूंक मारता है, वे जीवित हो उठते हैं, तू अंग-अंग में निवास करता है, वे प्रीति करते हैं, तू अन्दर से हिलता है तब वही, बस, प्रीति का तार ढीला । जो वे समझ बैठते हैं कि हमारी अन्तस की अपनी प्रीति है वह तेरी देन है । मैं क्या करूँ, तुम कृपालु है कृपा कर और फिर से अपने आंचल से लगा ले ।

जब मरदाना अनुग्रह की सोच में पड़ गया तो नयन मुंद गये, नयनों में से छमछम अश्रु गिरते रहे । वह दासी भी देखती रही, जब नयन खुले तब कहने लगी, मैं बलिहारी ! आप क्यों रोये ?

मरदाना - कुछ नहीं, (स्वगत) फिर अरे मूर्ख मरजाने ! तूने ज्योतित नानक की क़दर न की, सदैव अपना यजमान ही जाना । अरे भूले ! गुरू नानक और भूख ? कभी पूर्ण को भी भूख लग सकती है ? तू पापी है जिसने यह सोच सोची है कि गुरू नानक भूखा बैठा है और तू खाना लेकर क्यों नहीं पहुंचा ? उसको तो एक ईश्वर की स्तुति की भूख है, अन्य किसी भूख से वह परिचित नहीं, तूने सर्वज्ञ को अल्पज्ञ क्यों समझा ? तू ने सदैव तृप्त को भूखा क्यों समझा? तूने दाता को जरूरतमन्द क्यों समझा ? अंधी मिट्टी है, वहां पर न दु:ख है न भूख है, सदैव एक उच्च्च सुख का रंग है । पर भाई नहीं, वह तो नि:संदेह निरिच्छत है, पर तुझे तो इच्छा है न ! तू पूर्ण तो नहीं न ! तुझे तो आवश्यकता

है, तू जीव है, भाई तू तो भूला ही भूला । तुझे तो सेवा करनी चाहिये थी । तेरे अन्दर प्रीति चाहिये थी । यदि प्रीति होती तो तेरे गले के नीचे ग्रास न उतरता, इसलिये नहीं कि तेरा प्रियतम प्यारा भूखा बैठा हुआ है, पर इसलिए कि प्यारे को खाते देखे विना तेरे गले के नीचे ग्रास उतर नहीं सकता । अब तुझे अकल आई है । देखा अकल किस समय आई है ? तूने भूल की, प्रीति का तार उलझा दिया और अब उलझन सुलझाने के स्थान पर मन कहता है कि उलझन पड़ी ही नहीं, बुद्धि की ऐनक लगा-लगाकर देखता है और कहता है कि वे सदैव तृप्त हैं, उन्हें न तो भूख है और न नींद, उनका तो आत्माराम पर निवास है । ठीक, है तो सत्य, सही बात, सत्य विशुद्ध सत्य । पर भोले तेरी प्रीति कहां गई ? वह तो निरिच्छ है, तू निरिच्छ कब हो गया ? तू चरण ? कमल का भंवरा है, तुझसे भोजन कैसे हो पाया तेरे नैनों की पुतलियां इस रिक्त शय्या, आग से जल जाने पलंग पर कैसे मुंद गईं । हे मन ! धोखा मत दे, वह तो पूर्ण है, पर मैं उसके विना पूर्ण नहीं हूं ।

मैं अपूर्ण हूँ और ध्यान कैसे लगे ? प्रीति द्वारा, पर प्रीति तो उलझ गई, लो अब बुद्धि जी पधारे, कि उन्हें क्या आवश्यकता थी ? हे मन ! जिसने तुझ पर भरोसा किया, वह दोनों लोकों में ठगा गया; चल रे चतुर मन ! अब तो उठ ।

स्त्री- महाराज ! आप रो रहे हैं, चित्त की व्यथा बताते नहीं, यदि कुछ कहो तो कोई प्रयत्न किया जाये । ऐसी कौन-सी वस्तु है जो यहां पर अप्राप्य है ?

मरदाना - मुझ से भूल हो गई है, मैंने अपने स्वामी को भोजन नहीं कराया, आप खाकर बेसुध सो रहा हूं ।

स्त्री - बस, वाह महाराज ! आप ने इस घर को इतना निकम्मा समझा है । जिस समय आपके पास भोजन आया था, उसी समय उद्यान में थाल परोसकर आपके स्वामी के पास पहुंचाया गया था ।

मरदाना ने देखा, फिर देखा, फिर चित्त प्रसन्न हुआ कि अतिथि-पूजा हो तो ऐसी हो, जो अपने अतिथि की भूल का सुधार कर ले। धन्य अतिथि-सेवा, धन्य अतिथी-सेवा। लो भाई मन! सुखी हो, चलकर मजाक करेंगे, सिक्खी से तनिक इस ओर खड़े होकर, मिरासी वनकर उक्ति-युक्त करेंगे, कहेंगे लो सदैव आप खिलाते थे, आज हमने आपको कितना स्वादिष्ट थाल भेजा। वे हंसेंगे, हम दो और मजाक की बातें कह देंगे, अच्छा मज़ाक रहेगा...। मरदाना ! अरे तूने क्या कहा? कि तू मजाक करेगा, और कहेगा, "हमने भेजा था?" मज़ाक प्रसन्नता के लिए होता है कि एक झूठ को छिपाने के लिये? फिर मज़ाक भी स्वामी के साथ? धन्य मरदाने! तेरा मन धन्य है! तू खोटा है, तुझ पर कौन विश्वास करे! अच्छा भाई हम अधूरे हैं, पर आंचल तो पूरे का ही पकड़ा है, बस यही एक आधार है, मैं तो जैसा हूँ वैसा ही हूं। ये लोग कितने अच्छे हैं! इस प्रकार के नगर

में, जहां पर इस प्रकार के भक्तजन निवास करते हैं, क्या उपद्रव हो सकता है, जिसको गुरू नानक दूर करने के लिये आया है! देखो ये लोग इधर मेरा पालन करते हैं उधर सदगुरू जी की सेवा करते हैं। कितना आदर है!...मरदाना! शोर्य से रहना।" एकाएक यह शब्द मरदाना के कानों में गूंज पड़े, मानो कोई अब कह रहा हो। (मरदाना घबराकर सोचता है) प्यारी आवाज है शोर्य से कैसे रहूं? भाई, मेरे ऊपर जो इनका प्रभाव पड़ रहा है, इसको पड़ने न दूं और कहूं, कि मेरा ईश्वर मेरा पालन कर रहा है; जिसके हृदय में ईश्वर का निवास हो जाता है वह मेरी सेवा कर देता है। हां प्रेरक, पालनहार और रक्षक वही है। हां, मैं अपने अन्दर ठिकाने पर रहूं और उसको भुलाकर किसी ऐसे दाता के जाल में न फंस जाऊं जो आप भिखारी है, पर फिर अकृतघ्नता हो जायेगी, जिसने सेवा की उसका कृतज्ञ न होना अकृतघ्नता होगी। कैसे शोर्य में रहूं?

'मरदाना! तेरे पास राग की सूक्ष्म कला है, तेरा चित्त सुन्दरता का प्रेमी है, चाहे वह आवाज की ही क्यों न हो! चाहे वह फलों पत्तों की हो, चाहे चन्द्र तथा तारों की हो, चाहे रूप, चाहे सुन्दर भवनों की हो, तेरा मन कलावान होने के कारण सुन्दरता का प्रतिबिंब प्रत्येक स्थान से ले लेता है। देखना, कहीं दृष्टिमान में होकर न बैठना, द्रष्टा पद में खेलना।" गुरू नानक जी के इन वाक्यों का आज क्या अर्थ था? मरदाना बार-बार सोचता है।

७. अमल

"सभि रस भोगण बादि हहि सभि सीगार विकार।।"

अब एक सुनहरी चौकी बिछ गई, उसके ऊपर मखमल का रूमाल बिछ गया, उसके ऊपर एक मीनाकारी वाली सुराही रखी गई साथ एक प्याला भी आ गया, एक दो कोई दस-बारह वर्ष की आयु वाले बच्चे भी आ गये।

बच्चे – थके हुए हो, पान करो ।
मरदाना – क्या है?
बच्चे – अंगूर का रस, काबुल से आया है।
मरदाना – रस ताजा है या खींचा हुआ?
बच्चे – विन खिंचा हुआ।
मरदाना (सोचकर) – कुछ नशा है?
बच्चे – नहीं मस्ती है।

"इतु मदि पीते नानका बहुते खटीअहि बिकार।।"

यह वाक्य कानों में गूंज उठे। ठीक है, मरदाना! यह अतिथि सेवा का क्षेत्र है कि कोई ठग का घर है? सेवा भाव भक्ति काहे की और अंगूरों के सड़े हुए रस काहे के? बचाव कर हे मूर्ख! बचाव कर, सब कुछ जा रहा है।...पर खाने

पीने का धर्म के साथ क्या सम्वनध है। मेरे बाबा ने कहा है "खाणा पीणा पवित्रु है दितोनु रिजकु संबाहि।" यह तो खाना-पीना है और सब पवित्र है। जन्म के भूखे को पदार्थ मिलते हैं और नखरे करता है और काज़ी (पवित्र) वन-वन बैठता है। सरूर, मस्ती! क्या होता है, नशा? नहीं, हलका सा नशा। सरूर तो नाम में भी है? हैं, पर नाम में तो अगम्य-निगम्य की सूझ आती है और इस में न जाने नींद आ जाये। नहीं भाई पहले ही बहुत रात व्यतीत हो गई है, चलो चलें, अब और विमुख नहीं होना। साहस बटोरकर उठे और चल दिये।

स्त्री - भोले पातशाह! कहां चल पड़े? सारे जगत का चक्कर काट आये हो, यहां पर ही विश्राम करो, यहीं पर गद्दी वनाओ, साधुओं-सन्तों को अपने रंग में रंगो और दूर-दूर देशों में भेजो और आप यहां पर विश्राम करो।

मरदाना - नहीं, अब जाना है।

स्त्री - मन चाहता है क्या?

मरदाना - चित्त तो नहीं चाहता पर जाना है।

स्त्री - चित्त को दुःख देना उचित है क्या?

मरदाना - नहीं, पर यहां मदिरा को देखकर मन उदास हो रहा है।

स्त्री - मदिरा कहां, यह तो ताज़ा अंगूरों का रस है, जिसको फकीर प्रायः पीते हैं। मुनक्का लिया, दो पहर के लिये ताजे पानी में भिगोकर रख दिया, फिर मलकर पी लिया, यह थकान को दूर करता है। नशा काहे का और मदिरा कहां?

८. मन-जीत

"बाबा माइआ रचना धोहु"

यह सुनकर मरदाना का मन ठिकाने पर आ गया, फिर बैठ गया। अब फिर मन की ऊपापोह प्रारम्भ हुई कि चलें या रात आराम कर लें? सारे सुख पर दृष्टिपात की, मन ललचा गया और रात रहने का निश्चय किया। लेट गये, नयन मुंद गये और अन्दर एक सरूर सा उठा, एक आध घड़ी बेसुध रहे, फिर बावलों की भांति उठे, कण्ठ खुला, यद्यपि रात लगती थी पर प्यारी-प्यारी सिरी राग (इस राग को सांयकाल के समय गाया जाता है) की ईश्वरीय ध्वनि मरदाना के कण्ठ से उठी, आलाप हुआ और विवश होकर गाने लगे।

१ ओअंकार सतिगुर प्रसादि ॥

रागु सिरीरागु महला पहला १ घरु १ ॥
मोती त मंदर ऊसरहि रतनी त होहि जड़ाऊ ॥

कसतूरि कुँगू अगरि चन्दनि लीपि आवै चाऊ ।।
मतु देखि भूला वीसरै तेरा चिति न आवै नाऊ ।।१।।
हरि विनु जीऊ जलि बलि जाऊ ।।
मैं आपणा गुरू पूछि देखिआ अवरु नाही थाऊ ।।१।। रहाऊ।।
धरती त हीरे लाल जड़ती पलघि लाल जड़ाऊ ।।
मोहणी मुखि मणी सोहै करे रंगि पसाऊ ।।
मतु देखि भूला वीसरै तेरा चिति न आवै नाऊ ।।२।।
सिधु होवा सिधि लाई रिधि आखा आऊ ।।
गुपतु परगटु होइ वैसा लोकु राखै भाऊ ।।
मतु देखि भूला वीसरै तेरा चिति न आवै नाऊ ।।३।।
सुलतानु होवा मेलि लसकर तखति राखा पाऊ ।।
हुकमु हासलु करी बैठा नानका सभवाऊ ।।
मतु देखि भूला वीसरै तेरा चिति न आवै नाऊ।।४।।१।।

यह शब्द इस मीठी तथा वैराग्यपूर्ण ध्वनि में गाया गया कि उस कमरे के सारे वातावरण ने अपना मोहक प्रभाव खो दिया । मरदाना जी अब उठकर चल पड़े और बहार निकल गये । शीघ्रता से जो चले तो आगे जाकर माथा दीवार से लगा, जब कहीं होश आया, "हैं मैं कहां पर हूं, अंधेरा छा रहा है, कोई मार्ग नहीं ।" नेत्रहीन की भांति दीवार के साथ हाथ रखकर टोह-टोहकर चल रहे हैं, चारों ओर चारों दीवारों के साथ घूम-घूमकर आ गये । कोने भी गिरे, पर द्वार कहीं भी न मिला । अब करें तो क्या करें । हारकर बैठ गये। "मरदाना ! शौर्य से रहना ।" इसका क्या अर्थ था ? आज मुझे क्या हो गया, मेरा शौर्य कहां गया ? इस अत्याचारी पेट ने मार डाला, प्रतिदिन इस कुए को भरा पर यह खाली का खाली। भले फंसे, बहुत ज़रदा पुलाव उड़ाये, निवार के पलंग पर सोये, क्या परिणाम निकला । अब दीवार कूदने का कोई ढंग वने । यह सोच ही रहा था कि कान के पास एक आले में से आवाज़ आई, "दीवारें बहुत ऊंची हैं, चढ़ नहीं सकोगे ।"

मरदाना - मैं कैसे निकलूं ?

आवाज - जो यहां से निकलता है, वह मूर्ख है यहां आकर, फिर यहां से कौन निकला है ?

मरदाना - (स्वगत) मरजाने ! गुरू नानक सदैव सच्चा है, मना करता था; मत जा, ले अब सुन ले, यहां पर आकर कभी कोई निकला है ? मेरे बच्चे, मेरा गांव, वे वन और जंगल सभी छूट गये बस रह गये यहीं पर ? मरदाना !.....अरे मेरे मन !.....बच्चे ।.....! हाय, बच्चे याद आ गये और सदगुरू की याद नहीं आई ? वह तो तेरी चिंता में होगा और तुझे निराशा के समय उसका प्यार याद

नहीं आया, बच्चे याद आये हैं ? हे मन ! तूझे कहीं पहुंचने न दिया, जहां पर था, वहीं पर ही रखा । इतना सत्संग किया, इतना कीर्तन किया । अब यदि अन्तिम समय की झलक दिखाई दी है तो तुझे पहली याद प्यारे सदगुरू जी की नहीं आई, पहले वे मोह-ममता के नाते याद आये हैं । अच्छा भाई, तू भी चलता चल, हम भी ज़ोर लगाये चलेंगे । कहीं पर तो जाकर पीछा छोड़ेगा ।

९. फिसलना

खरा सिआणा बहुता भारु ।।

श्री मरदाना जी अब जोर से बोले, "अच्छा भाई, हमारा भी यदि कोई समर्थ दाता होगा तो हमें यहां से निकाल कर ले चलेगा ।" यह कहकर आप बैठ गये और चित्त ध्यान में लगाने लगे । एक क्षण के पश्चात् वहीं पर राग की एक ध्वनि उठी मरदाना के रसिक कान उस ओर लग गये । ध्वनि अत्यन्त रसीली, मालकौंस राग की थी। पहले तो आलाप हुआ । इतना उत्तम कि मरदाना जैसे रसिक के हृदय पर भी प्रभाव पड़ा और कहने लगा, भाई वाह वाह । उधर तो आप चित्त को ध्यान में लीन करने लगे थे, इधर कानों में संगीत रस की ध्वनि सुनाई दी, जिसने मरदाना को अनजाने ही अपनी ओर आकर्षित करना आरम्भ किया । "वाह वाह" का मुंह से निकलना बताता है कि राग के रस में अनजाने ही खिंचते-खिंचते इस राग के रूप में मग्न हो रहे हैं। विवश ही कभी-कभी "मरहबा" कह उठते हैं, कभी 'वाह वाह' कह उठते हैं, कभी "जज़ाक अल्लाह" भी मुंह पर आ जाता है, सिर सरोंह के वृक्ष की भांति झूमता है और साथ शरीर भी झूमता है ।

कण्ठ के आलाप के साथ वीणा की झंकार है और कभी भ्रम-सा होता है कि धीमी-धीमी सारंगी भी गूंज रही है । मस्त-अलमस्त आलाप मस्त कर रहा है । काफी समय यह आलाप जारी रहा। फिर बदला, अब इसने 'टोड़ी' राग का रूप धारण किया, बस अब क्या था, चित्त इस आलाप के अर्पण हो गया । मन का स्वभाव है सूरतों के साथ चिपटना । यदि सूरतें न हों तो कल्पना से उनका निर्माण कर लेना । आलाप सुनाई देता है तो शीघ्रता से गायक तथा वाद्यंत्री की ओर देखा जाता है। अदृष्य गायक की सूरत का निर्माण आंखें कर लेती हैं । यह रूप की कैद मन का स्वभाव है। 'कल्पना' रूप का निर्माण करती रहती और 'नाम' रखती रहती है। अब मरदाने का सारा मन इस लय में लग चुका था। गायक की सूरत आंखों के सामने फिरती पर उसका निर्माण नहीं होता था; जो स्त्रियां सवेरे देखी थीं, उनकी कोई सूरत आंखों के सामने आती थी, पर बंधती नहीं थी। इतने में उस स्थान पर मरदाने की पीठ के पीछे एक प्रकाश आया जो ठीक उसके

सामने आ पड़ा, जहां पर मोर की–सी शक्ल की वनी हुई एक चौकी ऊंची जगह पर पड़ी थी। उसके चारों ओर राजहंस की मूर्तियां थीं। चौकी पर एक अत्यन्त सुन्दर कोई तीस वर्ष की रसिक गायिका बैठी थी। इसके नयन इनते विशाल थे कि मृगनयनी भी क्या होती है। उन नयनों में से ऐसे तीखे वाण निकलकर लगते थे जो व्यक्ति में सहम और विचित्र सा स्वाद भरते थे।

अब तक तो आपका ख्याल लय में लीन था। अब इस सूरत पर गया। आपके शरीर में एक कम्पन सा आया । फिर हाथ–पांव सुन्न होने लगे। इस समय भी स्मृति ने एक झलक दिखाई। याद आया कि कभी नीलगिरि के 'टोडे' वनवासियों का समाचार सुना था कि उन्होंने ऐसी त्राटिक सिद्धि की हुई है कि पक्षियों का शिकार नयनों की टिकटिकी बांधकर करते हैं कि वे चीं–चीं करते हुए स्वयं ही उनकी गोद में आ जाते हैं। टोड़ी राग के अलाप के सम्वनध के कारण मरदाना को टोड़ों का स्मरण भी आ गया । भ्रम भी हुआ कि जो मेरे हाथ–पांव झूठे होते जा रहे हैं, कहीं मेरे ऊपर कोई वार तो नहीं चल रहा ? मैं किसी का शिकार तो नहीं वन रहा? फिर बेसुधि में अंतस ने कहा, "राग ईश्वर का रूप है। नाद आप परमेश्वर हैं, यह नाद का रस ईश्वर का रस है।" अब मरदाना की सुधि में तीव्र गति से परिवर्तन हो रहा था। उस सूरत ने गला वनद कर लिया, और नयनों की टक मरदाने के नयनों में ऐसी बंधी कि मरदाना नयन झपकना भूल गया। इस सूरत के पीछे एक मोटा बिलोर अपने पर पड़ने वाले प्रकाश को वापिस कर रहा था, जो रोशनी उलटकर मरदाने के नयनें में उस सूरत को गहरा उतार रही थी । मरदानाजी कोमल कला–कौशल वाले इस प्रभाव में बंध गये। सूरत अपने अधिकार से निकलकर दूसरे के बस में चली गई । तभी तो गुरू बाबा ने कहा था : "शौर्य से रहना।" यह भी कहा था, "मरदाना ! तू रसिक है, कोमल कलाओं का, तुझ में राग की सूक्ष्म कला निवास करती है, तेरा मन स्वाभाविक ही प्रभाव ग्रहण करने वाला है, देखना शौर्य में रहना, कहीं रसिक वनकर चोट न खा बैठना ।" पर कौतुकी के कौतुक हैं, मरदाना चोट खा गया । मरदाना चोट क्यों खाये जिसके सिर के ऊपर गुरू है ? पर कौतुकों के कौतुकों को जानने वाला कौतुकी स्वयं है। इसलिए मरदाना भी चोट खा गया ।

पहले तो मरदाने पर राग के रस का प्रभाव पड़ा, शून्यता छा गई, हाथ–पांव सुन्न होते गये, फिर नयन झपकना भूल गये। फिर मानो पत्थर की मूर्ति हो गये । अब सब कुछ अधिकार से बाहर है। बेहोश बैठे हैं। कोई पता नहीं है। उस स्थान का रंग बदला, प्रकाश हो गया, वह सूरत हिली और मरदाने के पास आई और कहने लगी,, 'तू कौन है ?'

मरदाना – पता नहीं ।

सूरत – क्या तू गायक है ?
मरदाना – जी हां ।
सूरत – फिर गा !
तब मरदाना ने बेसुधि में गाया ।
सूरत – तू मनुष्य है ?
मरदाना – जी हां ।
सूरत – नहीं तू स्त्री है !
मरदाना – जी हां ।
सूरत – क्या तू भेड़ है ?
मरदाना – जी हां ।
भेड़ की बोली बोल ।
मरदाना मिमियाया ।

सूरत – हां शाबाश ! बैठा रह और आनन्द ले । (सखियों की ओर देखकर) आया था यहां बड़ा चौधरी, सुबह से सारे घर को व्याकुल कर रखा था।

इस समय इस आंगन में सूर्य का खुला प्रकाश पड़ रहा था, रात का वातावरण लुप्त हो गया था, दास-दासी उपस्थित थे । सभी घुटने टेककर शीश झुका रहे थे और गा रहे थे :-

धन्य नूरंशाह नूरन ! धन्य तेरी सरकार है ।
धन्य है तू धन्य रानी, धन्य तेरा दरबार है ।

इस घर से प्रभाव मुक्त रहने के लिये मरदाने ने जो आज शक्ति दिखाई थी, वह इससे पहले कभी किसी ने नहीं दिखाई थी। पहले नूरशाह, अर्थात् वह मोहिनी सूरत जिसने मरदाने को अपनी त्राटक शक्ति का शिकार वनाया था, बहुत क्रोधित थी कि यह कौन आ गया है कि जिस पर हमारा प्रभाव नहीं पड़ रहा और इस संशय में थी कि यदि यह कहीं बचकर निकल गया तो सारे चेले और चेलियों पर रोब नहीं रहेगा । अब सफल होकर, शिकार मारकर नूरशाह अकड़ रहा है और सारे भवन में वाह-वाह हो रही है ।

मरदाने गरीब की यह दशा कि उसको अपने-आप की सुध बिल्कुल ही नहीं रही। जेसे चुंबक से लोहा आकर्षित होता है वैसे ही मरदाना उसके पीछे जाता है, उसकी आज्ञा का पालन करता है। जो कुछ वह कहती है, वही कहता है। यहां तक कि वह मिर्चें खिलाकर कहती है कि छुहारे हैं तो वह कहता है बहुत मीठे हैं, और यदि छुहारा देकर कहा जाता है कि यह कड़ुवा है तो उसके कड़ुवा लगता है और थू-थू करता है ।

१०. अनुकम्पा

**"विनु गुर मैलु न उतरै
विनु हरि किऊ घर वासु ।।"**

दोपहर ढल गई, शहर को गया मरदाना लौटा नहीं । सुख-सागर गुरू नानक जी उजाड़ में बैठे प्यारे शिष्य, सेवक और बाल्यकाल के सखा मित्र के लिए चिन्ता करने लगे । जानते थे कि अकाल पुरुष इतने भारी झूठ के गढ़ को तोड़ने के लिए हमें यहां लाये हैं, अत: किसी कौतुक में मरदाना को डाल दिया है, चलो, चलकर मित्र की खबर लें और मालिक की सेवा पूरी करें। गम्भीरता तथा शान्ति के सागर, शक्ति के भण्डार सदगुरू जी नगर की ओर चल पड़े। चलते-चलते चरण जिधर को ले गये, चलते गये, अंत में उस ठिकाने पर आकर खड़े हो गये। ईश्वर की गति ऐसी हुई कि जिस द्वार से मरदाना अन्दर गया था, वह खुला था, सदगुरू जी ने देखा कि अन्दर एक बड़े आकार वाली शक्तिशाली, अत्यन्त मोटे नयनों वाली स्त्री खड़ी है, उसके पीछे सिंहो के दो बच्चे स्तम्भों के साथ सांकल से बंधे खड़े हैं, दो-तीन स्त्रियां इधर-उधर खड़ी हैं। मरदाना चुप बैठा है। एक स्त्री कह रही है, "शाह जी! अब कृपा करो। इसकी तंद्रा खोल दो, काफ़ी प्रभाव पड़ चुका है, अब यह आपका हो गया है, कहीं जाने योग्य नहीं रहा, इसी द्वार पर सेवा करेगा और देव-शक्ति को प्राप्त करके आपका बालक फकीर वनेगा, अच्छा गायक है, आपके अनुयायी खूब बढ़ेंगे ।

नूरशाह (वही बड़ी स्त्री) - नहीं बाबा, यह साधारण व्यक्ति नहीं, यह कोई विशिष्ट व्यक्ति है। तीन दिन और तीन रातों तक इस तंद्रा में मस्त रहेगा तब कहीं जाकर इसका अन्तस मरेगा ।

दूसरी कहने लगी - स्वामिनी जी ! इसकी सूरत पर दया आती है ।

नूरशाह - मगरमक्ष्छों पर दया? दयावाली आई। हमने कोई फांसी लगायी है? आनन्द में बैठा है। जो ख्याल दे दिया जाता है उसी में आनन्द लेता है, अब हमने कहा है कि रोटी खा ले, देखो वैसे ही मुंह मारता जा रहा है। अब कहती हूं, तू भेड़ है, बोल ! देखो मिमियाता है ।

यह देखकर सभी हंसने लगीं । इसी समय सहसा नूरशाह की छाती धड़की, कारण तो कुछ था नहीं और इसमें कभी धड़कन नहीं हुई थी । आज पहला दिन था कि छाती धड़की थी। इसने दुष्टि उठाई, अब दृष्टि द्वार की ओर से उठ ही रही थी कि एक मीठी पर ग़र्जन भरी आवाज़ आई :-

"सत्य कर्तार"

जब नूरशाह ने नज़र उठाई तो द्वार लांघकर आंगन में एक महान ओजस्वी मूर्ति खड़ी दिखाई दी। जिसकी ओर देखते ही दृष्टि व्याकुल हुई और नैन नीचे की

ओर झुक गये यह भी पहला ही दिन था कि इस त्राटक सिद्ध स्त्री के नयनों ने किसी ओर देखने में असमर्थ होकर दृष्टि निमित की। अब इसने चाहा कि मैं अन्दर चली जाऊं और मेरे चेले चेलियां इससे सुलझ लें। पर कदम उठाते समय पैरों ने साथ न दिया। फिर अन्दर से साहस बटोरकर दृष्टि ऊंची उठाई, पर फिर पलकें मुंद गईं। फिर मन ऊंचा और एकाग्र करके पीछे हटी, एक ही कदम लाखों कोसों का हो गया और पैर ठिठक गये। इस समय उसने बड़ा साहस बटोर कर एक चेली को संकेत किया। वह दौड़कर अन्दर गई और चांदी का एक थाल ले आई, जिसमें भोजन परोसा हुआ था। वह थाल लाकर आगे किया। दूसरी ने धीरे-से बाहर का किवाड़, जो भूल के कारण खुला रहा गया था, वनद किया। भोजन देखकर श्री गुरू जी ने हाथ से परे करने का संकेत करके कहा :- अभी समय नहीं आया। आप अब अचल चट्टान की भांति खड़े थे और नयनों में एक अद्‌भुत चमक थी, माथे के ऊपर एक प्रकाश तथा लाली की द्युति थी। अधर भिच रहे थे और चेहरा दुगने रंग में चमक रहा था। दो आंखें दो काम कर रही थीं, एक मृदुल मरदाना की ओर पड़ रही थी, एक दबाव वाली नूरशाह की ओर पड़ रही थी। आधा चेहरा कान्ति से चमक रहा था, आधा शौर्य से चमक रहा था।

इस घर में फुरती का कमाल था, भोजन के थाल को इन्कार हुए अभी क्षण ही हुआ होगा कि एक और थाल आ गया, जिसके बीच में स्वर्ण की एक तश्तरी थी, इसमें बुक्के मोती भरे हुए थे और चारों ओर थाल में मुहरें जड़ी हुई थीं। यह देखकर गुरू जी ने हाथ से परे किया और कहा कि इसकी आवश्यकता नहीं। अभी यह इन्कार ही हुआ था कि दस-बारह बालिकाएं, कुछ बालक आठ-आठ दस-दस वर्ष की आयु के, स्वच्छ वस्त्र पहने हुए आकर चरणों पर गिर पड़े और एक गीत गया :-

"जै जै जै हो संत बेरव घर आये
धन्य-धन्य गृह पावन करने आये"

बड़ी मीठी मधुर-ध्वनि, प्यारा कोमल कण्ठ, वह आकर्षित करने वाली ध्वनि कि कलेजा मुट्ठी में आ जाये पर अचल सदगुरू जी उसी रंग में, उसी ध्यान में, उसी मुद्रा में खड़े रहे। अब एक हाथ ऊंचा उठा, जिसमें संगेयशब के मनकों की माला थी और एक मनके पर अंगुली जम गई। दूसरा हाथ आकाश की ओर संकेत करता हुआ उठ रहा था जो कि मरदाना की ओर लगता था, या जलते हुए जगत को आशीर्वाद देने वाला था।

नूरशाह खड़ी देखती रही पर नयन व्याकुल होते थे, हिलती थी, पर इतना दबाव पड़ता था कि हिल नहीं सकती थी। संकेतों द्वारा सिखाये गये बालक अधिक-से-अधिक युक्ति लगा रहे थे। इस रंग में एक घड़ी व्यतीत हो चुकी थी।

इस समय में अज्ञात आश्चर्यजनक रंगों के दो-चार फकीर स्त्रियां मुंडेरों पर खड़ी हो गईं। सभी ने दृष्टि बांधकर सदगुरू जी पर टिका दी, पर सबकी पलकें गिरती जाती थीं। सदगुरू जी ने आवाज दी :-

"धन्य निरंकार"

तब मरदाना के कान फड़के, इधर-उधर देखा, कुछ व्याकुलता सी हुई और दूसरे ही क्षण जितने भी खड़े होकर त्राटक बांध रहे थे, कोई तो लेट गये, कोई घुटनों में सिर देकर बैठ गये, कोई चक्कर खाकर दीवार के साथ सिर जोड़ बैठे, और नूरशाह धड़ाम करके गिर पड़ी, मछली की भांति व्याकुल होकर तड़प उठी। अब सदगुरू जी आगे बढ़े और कहने लगे :-

"प्रभु का वनदा लौटा दे, फकीरों के साथ मज़ाक अच्छा नहीं होता ।"

नूरशाह ने घूरकर मरदाना की ओर देखा और नयन टिकाकर कहा-'जा भाई तेरे आगे से बाधायें हटा दी गई हैं।' मरदाना के नैन खुल गये, दिन को दोपहर का समय देखा। विवश होकर उठ चला। क्या देखता है कि श्री गुरू नानक देव जी उस आंगन में से बाहर जा रहे हैं। प्यारी शान्ति प्रदान करने वाली पीठ को देखकर शीतल हो गया और पीछे-पीछे चल पड़ा। वनदी छोड़ दीन-बन्धु उद्यान को चल दिये और मरदाना भी पीछे-पीछे चलता गया। उसे अभी तक वह मालकौंस और टोडी के अलाप का स्वाद आ रहा था और वह गाने वाली सूरत और पीठ के पीछे प्रकाश, आगे-आगे वह सूरत – जिस पर प्रकाश पड़ रहा था-अन्ध कार के छल्लों की भांति झलक मारती थी, उसको और कुछ भी याद नहीं था। इतने में अपना ठिकाना आ गया तो सदगुरू जी बैठ गये।

११. प्रकाश

"पाखंडि प्रेम न पाइऐ खोटा पाजु खुआरु ।।"

सदगुरू जी- मरदाना! सायंकाल का समय हो रहा है, तू शहर भी गया, फिर भी हमारे लिए भोजन तो लाया नहीं ?

मरदाना- पातशाह ! आपको आहार पहुंचा नहीं क्या? क्षेत्र वालों ने कहा था हम भेज चुके हैं ।

सदगुरू जी सुनकर मुस्काराये ।

सदगुरू जी- मरदाना रे, आज कौन सा दिन है ?

मरदाना- पातशाह! आपका जन्म-दिन है, जी ।

सदगुरू जी- तू हमारा बाल्यकाल का मित्र, साथी था, फिर तूने हमारी क्या कुशलता चाही ?

यहां पर मरदाना के नयन प्यार तथा वैराग्य के साथ भर आये- "पातशाह ! मैं बुरा हूं। एक तो तेरा ध्यान नहीं रखता, दूसरा तुझे एक, केवल

एक प्यार का चिह्न वनाकर प्यार नहीं करता, और आज तो मैं अपने मन को खोजता रहा हूं, पातशाह मैं अच्छा नहीं हूं ।

सदगुरू जी–मरदाना ! कल्याण हो, पहले स्वयं की खोज की जाती है, इसकी ही पड़ताल की जाती है। फिर स्वयं का स्वयं के साथ युद्ध होता है, फिर अपनापन स्वयं पर विजय प्राप्त करता है, और फिर स्वयं स्वतन्त्र हो जाता है, फिर स्वयं स्वयं के रस में स्थिर होता और मस्त होकर दु:ख–सुख, हर्ष–शोक, मोह–माया से ऊंचा उठकर देखनहार हो जाता है। यदि मन को उलट–फेरकर देखा ही न जाए, इसकी चोरियों का ज्ञान ही न हो तो वह स्वयं धोखा दे–देकर मारता रहता है। गुरुमुख वही है जो मन की चोरियों का ज्ञाता है[१]।

मरदाना–पर मैं तो अन्धी मिट्टी हूं ।

सदगुरू जी– मरदाना! इस शरीर में 'पशु–वृत्ति' प्रधान है, आपा उसके नीचे दबकर दु:ख प्राप्त कर रहा है, पर समझ नहीं रहा; तू घबरा मत, तू गुरूमुख हो गया है। जो अपना स्वभाव है, उस पर धीरे–धीरे विजय प्राप्त की जाती है, पहले पशु से मनुष्य वना जाता है, फिर देवता। सौभाग्य की बात है जो तुझे पहले स्वयं दिखाई दे गया, अब स्वयं स्वयं पर शीघ्र ही अधिकार जमा लेगा । अधीर मत होना ।

मरदाना–(अश्रु भरकर) पातशाह ! मेरी मृत्यु मेरे पेट के बस में है ।

सदगुरू जी– मरदाना ! पेट माया है, यह शरीर माया है । पर फिर यह शरीर ही वह स्थान है जहां पर मल्लयुद्ध हो रहा है और हमें विजय प्राप्त करनी और ऊंचा उठना है। शरीर का वध नहीं करना, शरीर की शक्तियों को नष्ट नहीं किया जाता, इन शक्तियों पर अधिकार जमाकर इन्हें ऊंचा करके आत्मरंग का बल इनसे लिया जाता है। शरीर माया है, माया पर विजय प्राप्त करनी है, घबरा मत, माया को सत्संग द्वारा जीतना है। दो बातें किया कर :–

१. मिट्टी को साबुन के साथ मत धोया कर, मिट्टी धुल नहीं सकती। शरीर रूपी मिट्टी के मांजने वाले हार जाते हैं। तू मिट्टी की लहरों से परिचित हो और उस पर अधिकार कर और परिचित होने के लिए और अधिकार करने के लिए नाम को न भुलाया कर और चित्त कर्तार के चरणों की शरण में प्यार सहित रखा कर ।

२. चित्त को चरणों की शरण में रखने के लिए बल नहीं लगाया जाता, स्वाभाविक ही सावधानी से लगाया जाता है, घबराना नहीं चाहिए, भरोसा रखना चाहिए। जब भूख है, दु:ख है, आवश्यकता है, कष्ट है; तब नाम का त्याग न

---

१. "दिल दरवानी जो करे दरवेसी दिलु रासि ।।
इसक मुहबति नानका लेखा करते पासि ।।" (सलोक महला १ मारू वार)
मन ही नालि झगड़ा मन ही नालि सथ मन ही मंझि समाइ ।। (सिरीराग वार महला ३)

किया कर[१]। शरण में निवास किया कर और चरणों को ध्यान से पकड़कर धैर्य धारण किया कर और घबराया मत कर। घबराना भी तृष्णा है, कर्तार आप सहायता करेगा। जिसकी शरण में है वह हमारा पालक दु:खहर्ता है। बस! अब यह अधिकार जमा कि घबराना नहीं, इससे लौ टूट जाती है, अन्तस को जो चरणों की शरण में रखा जाता है, वह तार टूट जाता है, फिर मन के मण्डल में सोच और चिन्ताएं ही हैं, और झगड़े ही हैं, कल्याण तो पार-पार है, लौ में ।

मरदाना ! स्मरण न हिले, ध्यान न हटे, तू सौभाग्यशाली है, तुझ पर अनुकम्पा हुई है स्वयं को देखने की, अब होगी स्वयं को बस में करने की[२]।

इस समय ढाका एक सिख, जिसके ससुराल वाले इस गांव में रहते थे, दर्शन करने के लिए आ गया, आकर शीश झुकाया। सदगुरू जी ने आशीर्वाद दिया, वह बैठ गया, फिर कहने लगा– इस नगर के धन्य भाग्य, कि आपने अपने चरण यहां रखे। अब असत्य का नाश होगा ।

मरदाना – तीक्ष्ण जी ! असत्य कैसा ?

सदगुरू जी इस समय अन्तर्ध्यान हो रहे थे, सो दोनों व्यक्ति परे जाकर बैठ गए।

तीक्ष्ण – यहां पर एक जादूघर है। जिसने देश का सत्यानाश कर दिया है ।

मरदाना – अच्छा ! यहां पर तो एक पुण्यार्थी क्षेत्र भी है ।

तीक्ष्ण –(मुस्कराकर) श्रीमान्! वही असत्य का गढ़ है।

मरदाना – वाहिगुरू ! वहिगुरू! इसीलिए तो अंग टूट रहे हैं टोट पड़ रही है।

तीक्ष्ण – क्यो? सदगुरू जी अनुकम्पा कर आये हैं क्या ?

मरदाना – मैं आतिथ्य खाकर आया हूँ ।

तीक्ष्ण – बचकर तो आ गए?

मरदाना – मैं तो नहीं आया, सदगुरू जी जाकर ले आये थे, पर तीक्ष्ण जी ! वह क्या खेल है ?

तीक्ष्ण जी – महाराज ! एक फकीर की गद्दी है, उस पर एक स्त्री है। उसके घर में संसार, नर्क, स्वर्ग सभी कुछ वना हुआ है, पातशाही ठाठ है। कोई ऐसा खेल है जो समझ में नहीं आता कि मनुष्य विवश होकर उनके वश में हो जाता है, और बातें भी वह आश्चर्यजनक ही करते हैं। भय, हैरानी, लोभ अनेकों रंग हैं। धागे तावीज़, राख आदि को मन्त्रित करके देते हैं, लोगों की इच्छाएं पूरी होती हैं। सभी पुत्र मांगते और मुरादें लेते हैं, पर रहस्य का कोई पता नहीं चलता।

---

१. हरि नालि रहु तू मन मेरे दूख सभि विसारणा ।
(आनन्द, रामकली महला ३)

२. मन जीतै जगु जीतु ।
(जपुजी)

मेरा भी आना-जाना था, पर मैं तो मन के सुख का इच्छुक था, अत: मुझे सुख न दीखा। सौभाग्य से ढाका में सदगुरू जी से भेंट हुई और मेरी कामना पूरी हुई।

मरदाने पर एक रंग आता और एक जाता। उसे वह सिंह और सांप, वह भोजन और आतिथ्य, वे मन्दिर और संगीत की ध्वनियां, सब-कुछ ध्यान में आ गईं, वह तन्द्रा और बेहोशी, बेबसी, वह कांप गया।

तीक्ष्ण – आप पर भी वार चल गया ?

और तो कुछ नहीं, मैं राग पर मोहित होकर बेसुध हो गया था, फिर तब ही पता चला जब सदगुरू जी निकालकर लाए।

तीक्ष्ण – आपको फिर याद नहीं रहा, ढाका में सदगुरू जी ने एक दिन कहा था कि इन देशों में शक्ति की पूजा जोरों पर है। लोग तन्त्रों में लगे हैं, फकीर-साधु सभी मन्त्रों-तन्त्रों में फंसे हुए हैं, पंजाब में गोरख का मत है, योग का नाम लेकर लोग तन्त्र-मन्त्र सिद्धियों में लगकर दु:ख सहन कर रहे हैं, धर्म तथा सज्जनता नहीं रही और पतन हो रहा है। इधर शक्ति की उपासना और वहम, टोनों, मन्त्र-जन्तरों में रुचि लग रही है।

अत: उधर सिद्धों को सुमति प्रदान करके आये हैं; इधर इन्हें सुमति देंगे, आपको क्या फंसना था, सदगुरू जी इस गढ़ पर अवश्य ही विजय प्राप्त करेंगे, मुझे इस बात का निश्चय हो गया है। उन्हे सारे अन्धकार को दूर करना है इस अन्धकार को भी दूर करेंगे।

१२. अभाव

"ना सुखु पेईऐ साहुरै झूठि जली बेकारि ।।"

जब सदगुरू जी मरदाने को साथ लेकर नूरशाह के घर से निकले तब नूरशाह धरती पर पड़ी हुई तड़प रही थी, उसके अंग टूट रहे थे, सिर फट रहा था और व्याकुलता व्याकुल कर रही थी। शेष जो बालक थे उसे पलंग पर डालकर अन्दर ले गये। कोई तलवे मलता, कोई पंखा झुलाता, कोई गुलाबजल के छींटे मारता, कोई केवड़े के चम्मच भरकर मुंह में डालता। तनिक समय के पश्चात् कई व्यक्ति एक-एक करके खिसकने लगे।

आज इस घर में और तमाशा हो गया है। सादर जी, जो एक बौद्ध भिक्षु यहां के चेले बने हुए थे, पहले उठे, यों लगा जैसे निद्रा खुलती है, उफ़ उफ़, करके देखने लगे। हे बुद्ध! मैं कहां पर हूं ? मैं त्यागी, मुझे मन्दिरों और भोजनों से क्या? हैं! मैं स्त्री का चेला, मैं जादू टोने लिखने वाला, तावीज देने वाला, मसानों की राख इकट्ठी करने वाला, मैं लोगों को झूठी आशाएँ बंधवाने वाला,! है भाग्य! हे कर्म ! हे धर्म! मैं कहां पर हूं ?

तुमन शाह – अल्लाह! में कुछ सोया रहा हूं कि आंधी के झोके में था? मैं ईश्वरीय फकीर, मुरशिद (गुरू) का प्रेमी, हैं, मैं दुष्ट स्त्री का चेला? मैं ईश्वरीय भक्त, संयमी, मैं मसान जलाता और वीराधन करता रहा हूं, धिक्कार है मुझ पर। अरे शैतान दुष्ट! नर्क की अग्नि तुझ पर गिरे ! तूने आदम को बहकाया, तूने मुझे बहकाया इस जादू के किले में मुझे दुष्ट वनाकर मारा । अल्ला ! क्षमा कर, हे मेरे पीर (गुरू)! रक्षा कर ।

सेनानन्द – राम! कितना समय सोते रहे, कहां थे? कहां आ निकले। हैं! यह क्या है? 'व्रतचारी ! सदा व्रतधारी! अरे हम भक्त, यह रांड, इसके चेले किस तरह वन गए? हमने क्या किया? माया! हे भगवन्त! तेरी माया प्रबल है, किस तरह घेर-घेर कर मारती है, कहां फँस गये, कैसे निकालें ?

गोरन जी – चन्द्रायन व्रत समाप्त करके चालीस दिन एक तोला बादाम रोगन पर जीवित रहकर शरीर कृश हो गया, फिर सो गये। किसी ने आकर पाँव दबाए, पता नहीं रहा फिर क्या हुआ? फिर हमने भी मांस खाया? अरे-रे-रे ! हम जैन, पानी भी धो कर पिएँ, अन्न भी स्वयं न पकाएँ साँस तक भी खुला न लें, हमने मांस खाया? सच है, हा सच है। पुदगल! हा पुदगल तेरा सत्यानाश, बुद्धि मलिन कर दी ओह हो! यह क्या है? अरे मर जाएं, पृथ्वी फट जाए और हम ग़र्क हों; अग्नि भड़के और हम छलांग मारें और जल जाएँ,। अरे-रे-रे-रे। (अपने हाथ आप काट कर) हम! किस तरह फँस गए; मांस खाते रहे, ये कैसे हो गया (फिर हाथों को दांतों से काटकर) मांस तो खाया, अब नूरशाह का मांस नोंचें। पापी तो पापी ही सही, हिंसक तो हिंसक ही सही ।

वन के पशुओं की भांति असभ्य होकर उठकर भागा। पीछे वे तीनों भी भागे । शेष छोटे-मोटे चेले, बालक-बालिकाएं भी पीछे उठकर भागे। जिस घर में एक घड़ी पहले नूरशाह के आतंक के कारण कोई सिर नहीं उठाता था, अब वहां पर वह सबके नैन खुले हैं कि उसी का मांस नोंचने के लिए दौड़े हैं। सभी उसी कमरे में गए, जहां पर वह लेटी हुई तड़प रही थी, पर ज्यों ही उस कमरे में घुसे और उस लेटी हुई की भयंकर सूरत देखी। सभी चकित से रह गए, जिस प्रकार धधकती हुई आग पर पानी का घड़ा डाल दिया जाता है, इसी तरह ठिठक गए। एक सहम, एक भय, गिरे-पड़े सिंह के चर्म का-सा कलेजे में बैठ गया एक-एक करके, आंखें झपककर, सिर झुकाकर सारे फिर बाहर चले गये। कोई किसी नुक्कड़ में कोई किसी कोने में, कोई किसी स्थान पर घुटनों में सिर देकर रोने और पश्चात्ताप करने लगा ।

नूरशाह क्षणभर के लिये सो गई थी। जब जागी तो शक्ति कम थी, दुर्बलता हो रही थी अब वह 'या हू या हू' करती हुई उठी, उठकर मनुष्य के कद के बड़े "शीशे के सामने जा खड़ी हुई, अपनी सूरत देखकर कहने लगी, "कुरूप"

"कुरूप" फिर हे पीरों की चंट की हुई! सिंहनी बन जा, देख सारा घर विद्रोही हो गया है, यदि तू गिर पड़ी तो तेरी मृत्यु अवश्य है। इन सभी पशुओं को ठीक कर और सवार हो जा। ... पर हाय अंतस्! तूने आज किसके दर्शन किये हैं? किसने तेरे घर में पैर रखे हैं, तेरा सारा मस्तिष्क और साहस तोड़ डाला है। बिना चिंगारी के कौन आग लगा गया है, बिना गर्जन के शिकार छीन कर ले गया है, बिना युद्ध किये घर उजाड़ गया है । फिर गाली निकालने को भी जी नहीं मानता, बुरा कहने का साहस नहीं होता। शरीर को आग लगाकर टोट में डाल गया है, पर मैं उसे बुरा कहने का साहस नहीं बटोर सकती। वह तो कोई बड़ा भारी जादूगर है, मेरे सारे जादू तोड़ गया है। हे नूरशाह! तेरे से भी बड़ा शक्तिशाली आ गया है। क्या इसके साथ टक्कर लूं या इसकी शरण में जाऊं? यदि टक्कर ली तो अवश्य ही पराजित होऊंगी, क्योंकि मेरा सारा साहस और अन्दर का बल, जिसने जैन, बुद्ध, भक्त, सूफी, ब्रह्मचारी, संन्यासी, पराजित कर और वश में लाकर अपने चेले बना रखे थे, वह आज गिर गया है। जब मन-रूपी मन्दिर के कंगूरे ही गिर पड़े तो टक्कर काहे की? शरण में जाऊं शरण में जाने से कुछ प्राप्त होगा और यह बिखरता हुआ ताना बच जायेगा, और सम्भव है कि ऐश्वर्य भी बच जाये। वह फकीर उच्च है; और उसमें बहुत बल है और मैंने उसके चेले को बांध लिया था; बंधता तो नहीं था; पर मैं उस्ताद थी, उसकी संगीत की लगन को जान गई और मैंने वहीं से जा पकड़ा। हां हां, यदि असका गुरू बलवान था तो अपने बालक चेले को मुक्त तो करवाना ही था। मैंने भूल की कि उसको बांध लिया। पर नूरशाह! क्या पता होता है, प्रतिदिन मछुआ जाल में मछलियां पकड़कर लाता है, पर कभी-कभी जाल में मगरमच्छ को भी फांस बैठता है, तब न जाल रहता है और न मछुआ; मेरे साथ भी वैसा ही हुआ । ... पर क्यों? साहस न छोड़ना। चलो चलें और बड़े जादूगर की शरण लेकर खो चुके बल को लौटा लायें ।"

घर के सभी रहस्यों का चेलों बालकों को पता था, पर कई रहस्य ऐसे भी थे जो नूरशाह ने किसी को नहीं बता रखे थे, उनमें एक, घर को पूर्ण रूप से बन्द कर देना था। नूरशाह उठी और क्षणों में ही घर के सारे कोष्ठ न खुलने वाले ढंग से बन्द कर आई और आप एक गुप्त मार्ग से बाहर निकल गई ।

१३. उद्धार

"सतिगुरु मेली भै वसी नानक प्रेम सखाइ ।।"

श्री सतगुरू जी पद्मासन में बैठे हुए हैं, केवल नयन अर्धोन्मीलित कमल की भांति बन्द हैं, चेहरे पर सौन्दर्य दमक रहा है, मस्तक ईश्वरीय दमक से चमक रहा है, सारा शरीर किसी सुख के रस में मग्न आभासित हो रहा है। चारों ओर यों लगता है कि किसी सुख, सुन्दरता और स्वाद की फुहार हो रही है। थोड़ी दूरी पर

मरदाना और तीक्ष्ण जी बैठे हैं, दोनों के नयन मुंदे हैं और रस में मग्न लगते हैं। सूर्य पश्चिम की ओर जा रहा है, इसकी धूप कुछ पत्तों में से और कुछ नीचे पीठ की ओर से थोड़ी-थोड़ी दिखाई दे रही है। पूर्व की ओर नीले और उज्ज्वल आकाश का रंग आनन्द का समां बांध रहा है। इस समय नूरशाह आई, स्वयं एक मोतियों का थाल उठाकर लाई, सामने रख दिया और शीश झुकाया, पर जब बैठने लगी तो टोट पड़ी और आग लगी । घबराकर पीछे हटी, और हटी, और हटी, कोई चालीस गज़ परे गई तब कहीं जाकर शांति आई। यहां पर साहस बटोर कर बैठ गई, देखने लगी पर चेहरे की आभा सहन नहीं हो पा रही थी। जादू भरे नयन इस ईश्वरीय दर्शन से घबराकर गिर-गिर पड़ते हैं, पर वह श्वाँसों को गूढ़ हठ धारण करके बैठ ही गई। "अच्छा बाबा! जादूगरों के सरदार! मुझे पता नहीं था कि कोई नूरशाह से भी बड़ा है, यों न तो यों सही, मुझे आज झुककर ही सही तेरी, अनुकम्पा प्राप्त करनी है, अवश्य करनी है। अब कृपा कर, मुझे मार मत! मैंने हे स्वामी! भूल की, तेरे चेले को बांधा, अब आप दासी होकर आ गई हूं। जो शरण में आ जाते हैं, उन्हे कौन मारता है, बस कर, अब और न मार। बाबा! बस कर। जब चरणों में आ ही गये, फिर क्या?" इस प्रकार आपे में जगत-तारक गुरू जी जादू तोड़ने वाले बाबा जी को बड़ा जादूगर समझकर शरण में आ रही थी कि जगत के आधार जी के नयन खुले। इनमें से किसी ईश्वरीय अनुकम्पा की एक फुहार बरसी, जिनको नूरशाह सहन न कर सकी और गिर पड़ी। क्षण-भर के लिए बेसुध सी रही। फिर उठी तो ठण्ड पड़ रही थी कदम-कदम करके आगे बढ़ी और पास आकर रोकर कहने लगी, "तू बड़ा, मैं मानती हूं कि तू बड़ा है, मेरा बल और मेरे बीर लौटा दे! शरण में पड़ी हुई की लज्जा रख ले !"

गुरू बाबा के चेहरे पर एक मुस्कान आई और हट गई।

नूरशाह- हे दया के पातशाह! हे योगीराज! मुझ पर दया कर ।

इस समय मरदाने और तीक्ष्ण के नयन खुल रहे थे, सतगुरू जी के वैभव पर पड़ रहे थे, हां गुरू नानक की आभा, जो आज मरदाना के नैनों में पड़ी, वह फिर नहीं निकली। यद्यपि वह देख चुका था कि जो शक्ति भी गुरू जी के सामने आई, ऐसी नहीं थी जो कि गुरू जी के आगे झुक न गई हो, पर इस घड़ी की आभा उस हिलोर में थी कि मरदाने के अन्दर गुरू बाबा की बड़ाई और प्यार गहरे उतर गयी। तीक्ष्ण की तो बात ही क्या है। वह तो जगत की भलाई के इस दृश्य को देख कर गुरू बाबा पर न्यौछावर हो रहा था।

गुरू बाबा- मरदाना! इसके कानों के पास जाकर ऊंची आवाज़ से कह दे, "वाहिगुरू", और दूसरी ओर हे तीक्ष्ण! तू कह! दोनों ने ऐसा ही किया ।

नूरशाह- हैं, यह क्या भयंकर आवाज़ है, मैं गई, गई, मर गई, हा! गई। (क्षण-भर के पश्चात) मेरी नींद खुल गई है, मैं कहां पर सोई रही, मैं तो

बाल्यकाल से ही परमेश्वर के प्रेम में लगी रहती थी; नूरशाह कब आया था? मुझे प्यार करता और कहता था तू "होनहार है।" मैंने जादू-टोने सीखे थे, मैं कौन थी और फिर कौन हो गई और आज कौन हूं! यों लगता है कि बाल्यकाल में मैं राज़ी थी, फिर कोई ज्वर हुआ आयु उसी ज्वर में व्यतीत की, आज वह ज्वर उतर गया है। कैसे उतर गया है? मुझ में से कुछ निकल रहा है। यह क्या है, जो मुझे रिक्त कर गया है? कोई ज्वर लगता है। मैं खाली होकर बिलकुल रिक्त नहीं हुई, ठण्ड पड़ रही है, होश आ रहा है। यह मेरा शरीर था कि कोई घर था, अथवा बर्रों का छत्ता था, जिसमें हज़ारों बर्रों के घर थे। ... सारे उड़ गये हैं! विषैले सभी उड़ते जा रहे हैं। हाय! यह विष क्यों विष होकर न लगा। मैं भी विष का रूप बनी रही। विष को विष क्या लगे। हैं! नूरशाह! उठ। .. कौन उठे? हे ईश्वर! क्या शीतलता प्रदान की है, मेरा सारा रक्त शीतल कर दिया; मैं तो बल लेने के लिए आई थी, पहला भी खो बैठी। हां ! मेरा ऐश्वर्य, हां मेरा प्रताप, हां मेरे जादू और मेरी सिद्धि, सब-कुछ गया ..। वाह, वाह! उठ! शीतलता! यह, शीतलता बड़ी स्वादिष्ट है। वह सारा ज्वर था ज्वर। देख रे मन! शीतलता मिल गई है। हां जागृति, सुखप्रद जागृति आई है। मैं इसी जागृति में जीवित रहूं। मेरे रोमों में झन्नाहट है, रोम वीणा बन गये हैं, संगीत से भर रहे हैं, कह रहे हैं, वाहिगुरू, वाहिगुरू, वाहिगुरू। यह वाहिगुरू क्या हुआ? इसी ने मेरी नींद खोली है? हे मेरे मन! तूने राग द्वारा लोगों को फंसाया, क्या इस वाहिगुरू राग ने तेरे बन्धन खोले हैं? हे मन! इसी सुख में पड़ा रह। ऐश्वर्य के सिर पर धूल डाल। धूल में लेटती रहूं और यह राग सुनती रहूं :-

वाहिगुरू, वाहिगुरू, वाहिगुरू !

१४. अनेकों का उद्धार

"नानक बेड़ी सच की तरीऐ गुरु वीचारि ।"

नूरशाह चलती जा रही है, शीश पर एक बोझा है, किसी के घर पहुंच कर दो आने मज़दूरी ली है। इसकी चावल और दाल खरीदी है, गुप्त मार्ग द्वारा घर में जा पहुंची है। चावल और दाल पकायी है, कहती है कि इस घर को जला दूं और उजाड़ में जा बैठूं, पर फिर डरने लगी कि आज्ञा नहीं ली। हे मन! शीतलता के स्वामी ने तो नहीं कहा था कि मज़दूरी कर, पर मेरा मन अपने आप उस भूत कमाई से डरने लगा है। फिर कांपी फिर टोटा पड़ने लगा, पर ध्यान में आ गया, वाहिगुरू, वाहिगुरू। फिर चावल और दाल पकाये, सिर पर रखकर चल पड़ी, जंगल में ले आई, लाकर आगे रखे। हे शीतलता के स्वामी! भोजन करो, भोजन हाज़िर है, यह भोजन मेरी पाप की कमाई का नहीं, हे शीतलता के साईं जी! मैं मज़दूरी करके, सत्य धर्म की कमाई करके, यह दो दाने लाई हूं। आपकी आज्ञा थी-

"भोजन करा" यह साधारण तुच्छ भोजन हाजिर है।

सतगुरू (मुस्कराकर)– नूरशाह! यह तेरी सत्य धर्म की कमाई है! (फिर मुस्करा कर) शाबाश! पर बिटिया! आज मेरा जन्मदिन है और तेरी भट्टी में जीव–जन्तु तड़प रहे हैं। मैं किस प्रकार भोजन करूं जब कि ईश्वर के जीव आज कष्ट से तड़प रहे हों? यदि शीतलता हो तब कहीं अन्न कण्ठ से नीचे उतरे।

नूरशाह– हे शीतलता के स्वामी! सत्य है, मैं बड़ी मूर्ख हूँ, वाहिगुरू, वाहिगुरू (नयन मूंदकर) वाहिगुरू, वाहिगुरू, वाहिगुरू । यों वाहिगुरू, वाहिगुरू कहती आंधी की भांति उड़ गई। घर जा पहुंची और वहां पर पहुंची, जहां पर उसके सारे चेले जिनमें अच्छे–अच्छे व्रतधारी, तपी, हठी, त्यागी, वैरागी भी थे, तड़प रहे थे और ठण्डे श्वांस भर रहे थे। उन्हें कहने लगी :–

हे मूर्ख लोगो! चलो परमेश्वर जी मनुष्य रूपी शरीर के दीपक में शीतल के साईं बनकर आये हैं। चलो उठो। मैंने, जिसने तुम्हें बन्दी बनाया था, चलो तुम्हें मुक्ति दिलवा दूं, चलो तुम्हारा ज्वर उतरवा दूं, चलो शीतलता के स्वामी की शरण में, तुम्हें अमूल्य शीतलता लेकर दूं ।

सभी क्रोध और निराशा में आते–जाते थे, दांत पीसते और फिर दुबकते थे। अब काठ के पुतलों की भांति उठ खड़े हुए और पीछे चल पड़े। नूरशाह ने सबको बाहर निकालकर बाज़ार में मुनादी कर दी :–"मेरा घर लूट लो! सारा खुला पड़ा है।" घर के किवाड़ चौपट खुले छोड़कर नूरशाह चली गई, पर कोई भी उसका घर लूटने का साहस न कर सका, वैसे दावाग्नि की भांति सारे शहर में समाचार फैल गया कि नूरशाह चेलों के सहित कहीं चली जा रही है।

इधर नूरशाह जा रही है, जिह्वा पर वाहिगुरू है, रोमों में वाहिगुरू है, हृदय में ठण्ड है, जंगल की ओर आकर्षित है, सतगुरू जी के दरबार में जा शीश झुकाया, साथ ही सभी चेलों ने शीश झुकाया ।

सतगुरू (सारद जी को)– प्रकाश, प्रकाशपुंज सूर्य से निकलता है, सज्जनता, सज्जनता के पुंज वाहिगुरू से है, केवल सज्जनता ही क्या हुई? कोरी सज्जनता समय पर आकर पराजित कर गई, रक्षक के बिना बह गये (थपकी देकर)। भरोसा ला कि वाहिगुरू अकाल पुरुष है, मान कि हर समय उसी की ही शरण में निवास करना है, तगड़ा हो और कह "वाहिगुरू"।

सारद जी के मन में एक शीतलता–सी आई, सुख मिला, हृदय की टेक किसी केन्द्र की ओर गई और आश्रय लेकर अन्दर से ऊंचा हो गया।

फिर तुमनशाह आगे बढ़ा, शीश झुकाया, सतगुरू ने सिर पर हाथ रखकर कहा: "दृष्टमान का प्रेम कमाकर फिर दृष्टापद में जाना कठिन खेल है, सांपों से खेलना सहल कार्य नहीं। ईश्वर–ईश्वर कहना, पर होना विलासी, काम विलासिता के करने और नाम रखना ईश्वर का, फिर तो माया को फंसाना ही तो हुआ।

देख बेटा! माया तथा मन पर से भरोसा उठा, परमेश्वर के आश्रय में रहकर कह 'वाहिगुरू'।"

तुमनशाह के अन्दर वह रौ चली जो कभी देखी तक नहीं थी। आपे की सूझ हो आई, अन्तस का झुकाव ईश्वर की ओर हो गया, ऊंची सुरत वाला ऊंचे मन वाला हो गया ।

फिर सेनानन्द के सिर पर हाथ रखकर कहने लगे, 'भाई! 'भक्ति मन की, मन को न देखा, न जीता, इसको नृत्य कराया, वाहिगुरू पर न्योछावर नहीं किया। लोगों के भक्त कहने पर जो भक्ति होती है, उसको मायारूपी नागिन डस जाती है न। नागिन का वार तभी चलता है जब सिर पर कोई रक्षक नहीं होता, इसलिए शूरवीर की शरण कर, कह 'वाहिगुरू'।

उस भक्त के अन्दर से भी लोगों की कदर का मैल उतरा शीतलता आई, वाहिगुरू की ओर ध्यान लगा, ऊंचे मन वाला हो गया ।

फिर गोरन जी के सिर पर हाथ रखकर कहने लगे, "व्रत रखे, शरीर दुबला हो गया; आलस्य, तमोगुण बढ़ गया, न मन अधिकार में हुआ और न मैल निकला। जब माया चमकी, चकाचौंध! एक चमक ही मार गयी। विश्वास कर कि रक्षक ईश्वर है। कह 'वाहिगुरू'। कहते ही गोरन का मन ऊपर वाहिगुरू की टेक पर गया और ऊंचा हो गया ।

इस तरह एक-एक को प्यार दिया, एक-एक को उसकी भूल का ज्ञान कराया, एक-एक को शीतलता प्रदान की; सभी आत्माओं को शीतल करके सुखी बनाकर कहने लगे- मरदाना! आज क्या दिन है?

मरदाना - जी, आज आपका जन्म-दिन है।

अब सूर्यास्त हो गया था, सायंकाल का समय हो रहा था, इस समय तीक्ष्ण जी जल लाए, हाथ धुलवाए; नूरशाह ने भोजन आगे रखा, सच्चे सतगुरू जी सृष्टि के रक्षक ने वह दो आने के चावल सबको बांटे और आप भी खाये। फिर मरदाने ने ईश्वर की स्तुति का कीर्तन किया ।

१५. अतीत का ज्ञान

"गुरू जिना का अंधुला चेले नाही थाउ ।।
बिनु सतिगुर नाऊ न पाईऐ बिनु नावै किया सुआऊ ।।
आइ गइआ पछतावणा जिऊ सुंञै घरि काऊ ।।" (सिरीरागु महला १)

रात व्यतीत हो चुकी, अमृत वेला हो गयी, मरदाना की नींद खुली, क्या देखता है कि सतगुरू जी वाहिगुरू के प्रेम में मग्न बैठे हैं। नि:श्वास भरकर उठा, हे मन! पहले जागता स्वयं स्नान करता फिर गुरू जी को स्नान करवाता, पर अच्छा अब भी जल्दी करूं।

यह कहकर झटपट तैयार होकर रबाब, सुरीला मनमोहना रबाब, लेकर बैठ गया। जब तारों पर झंकार हुई तो आदेशी ध्वनि उठी, साथ ही सुरीला प्यारा कण्ठ झंकृत हुआ फिर क्या था, ईश्वरीय रंग बंध गया। शेष संगत भी नूरशाह सहित उठ बैठी। स्नान किया और उसी तरह दूर निकट बैठ गये। मरदाना के अन्दर के संयुक्त मन में से अंतरीय वाणी का कीर्तन और उच्च दर्जे के राग की ध्वनि उठी, सभी वाहिगुरू के प्रेम में समाधिस्थ हो गये। यह शीतलता, यह रंग, यह रस और लगन सूर्योदय तक बनी रही। इस समय मरदाना ने समाप्ति की। तीक्ष्ण जी ससुराल के परिवार सहित दूध लेकर आये थे। शहर में रात से ही चर्चा चल पड़ी थी कि कोई ऐसा ईश्वर का प्रेमी आया है जिसने नूरशाह का जादू तोड़ डाला है और वह घरबार खुला छोड़कर चरणों पर झुक गई है और हाथों से कृत्य करके सतगुरू जी के लिए भोजन लेकर गई है। घर-घर में यहीं कथा थी और प्रत्येक हृदय उस ईश्वरीय सौन्दर्य के दर्शन के लिए उमड़ रहा था। अब सूर्योदय से पहले लोग घरों से चल रहे थे और वहां पर पहंच रहे थे। इस समय चारों ओर काफी भीड़ इकट्ठी हो गई थी। मरदाना के कीर्तन ने, सतगुरू जी के ईश्वरीय दर्शन ने सबको सतोगुणी कर रखा था। दूध आया तो सतगुरू जी ने कहा, "बांट दो!" फिर स्वयं एक शब्द उच्चारित किया और फिर ज्यों वाहिगुरू के प्रेम में लगे, ऐसी वार्तालाप की कि सबकी वृत्ति साईं प्रेम के रंग में रंगी गई और अन्तस का झुकाव वाहिगुरू की ओर हो गया। इस तरह गुरू जी का शिष्यत्व सबने धारण किया और सच्चे पातशाह ने सबको उसी मार्ग पर चलाया, जिसका अन्त आपने बताया कि तुम स्वत्व के कैद से मुक्त होकर स्वयं के रस और वाहिगुरू की शरण के रस में सुख प्राप्त करोगे।

भोजन वहीं पर तैयार हुआ, सबने भोजन किया। दोपहर के समय जब एकांत हुआ तो मरदाना ने कहा- "सच्चे पातशाह! पर्वत के नीचे से निकलकर जैसे हल्कापन सा अनुभव होता है, कल की घटना के पश्चात् मैं इसी तरह अनुभव कर रहा हूं। इस नूरशाह के पास क्या कौतुक था और इसने कहां से लिया था?"

सतगुरू जी कहने लगे-नूरशाह तुझे आप सुना देगी, यदि तेरी समझ में कुछ आ गया तो समझ लेना। यह सुनकर नूरशाह ने कहा -

"हे शीतलता के साईं ! माया के खेल। माया तो है ही सारा भुलावा, भुलावे में भुलावे, और क्या है? पर आज्ञा है, विनय करती हूं।

"मेरे पिता, नरिन्द्र नाथ जी मध्यम वर्ग के इस गांव के अच्छे जमींदार थे और साधुओं सन्तों की सेवा करते थे। हमारे गांव में एक बार एक सूफ़ी फ़कीर आया जिसका नाम नूरशाह था। वह पिता जी की सेवा से प्रसन्न हुआ। पिता जी उसके हाथों बिक गये। मैं युवा हो रही थी। एक बार मेरी अंगुली पर फोड़ा निकल आया, गांव का नाई कहता कि चीरे बिना अच्छा नहीं होगा, मैं उसको चीरने नहीं

देते थी, पीड़ा से डरती थी, बूटी पत्थर चून उस पर दो – चार दिन बाँधे: ग्वारपाठा का भड़ता, आटा और अलसी का लेप किया, पर कुछ न बना। जब नूरशाह को मेरे कष्ट का पता चला तो पिता जी से कहने लगे कि नाई को गुप्त बुलवा लो, हम दोपहर को आकर कार्य करेंगे। पर मुझे इस बात का पता नहीं था, वे दोपहर को आकर मुझे लेकर बैठ गये और कहने लगे– बिटिया! तुझे मीठी – मीठी नींद आयेगी; देख, हमारे मस्तक पर प्रकाश है, पांच चोटियों वाला तारा है, यदि भली भांति दृष्टि लगाकर देखेगी, तब कहीं दीखेगा। कई बातें करते रहे, मुझे पता नहीं, पर बाद में पिता जी ने मुझे बताया था कि मैं देखती – देखती सो गई थी और जब मैं सो गई तो आपने नाई को बुलाकर चीरा देने को कहा था। पिता जी कहने लगे– बिटिया पीड़ा के कारण जाग उठेगी। वह कहने लगा– यह नींद नहीं, वह कभी नहीं जागेगी। मेरी ओर देखकर कहने लगे– जागना मत । तात्पर्य यह है कि नाई चीरा देकर साफ़ करके मरहम लगा कर पट्टी बांधकर चला गया। मेरी नींद तब खुली, जब नूरशाह ने स्वयं किसी तरह खोली। इस चमत्कार का प्रभाव मेरे पिता जी पर बहुत पड़ा। जब नूरशाह वृद्ध हुए तब अपनी चतुरता और त्राटक मुद्रा[१] के कौतुक पिता जी को सिखा दिये और उनके पश्चात् उनके मन्त्रों, जन्त्रों, तन्त्रों के प्रेमी चेले बालक मेरे पिता के इर्द गिर्द हो गये और उन्हें नूरशाह कहने लगे। पिता जी का मेरे साथ बहुत प्यार था। उन्होंने मुझे एक दिन बताया कि शरीर का कोई भरोसा नहीं, तेरी आंखें और माथा, दृढ़ता और मानसिक शक्ति पुरुषों से तगड़ी है, हमारी बातचीत सीख ले, सुख प्राप्त करेगी, यह दुर्लभ खेल है । नूरशाह जी सूफी होकर, विद्या प्राप्त करके, हठ तप करके उदास रहे और सारे अफगानिस्तान, हिन्दुस्तान का चक्कर लगाया अन्त में नीलगिरि (दक्षिण) में एक जंगली जाति, जिनका नाम टोडा है – के एक बड़े फ़कीर से यह शक्ति और ढंग सीखा कि दूसरे मनुष्य पर किस ढंग से अपना अधिकार जमा लिया जाए। इसको वे आत्मिक बल समझते थे। वे कहा करते थे कि चमत्कार अथवा करामात अवतार का चिह्न है; नूरशाह अवतार था; उन्होंने हमें यह शक्ति प्रदान की और हम यह शक्ति तुझे देते है। तात्पर्य यह है कि पिता जी ने त्राटक – विद्या की सारी जांच और बर्ताव तथा दूसरे फंदे मुझे सिखाये और उनके पश्चात् सारे स्वार्थी लोग, जिन्हें धागे, तावीज मन्त्र, जन्त्र मिलते थे, मेरे पीछे पड़ गये। मुझे "पार्वती" जो मेरा नाम था– बुलाने के स्थान पर नूरशाह कहने लग पड़े। मैं बहुत शक्ति सम्पन्न थी, और मेरी यह निंदित बुद्धि भी तीक्ष्ण थी, मैंने इस शक्ति को उपकार में न लगाया, पर सबको अपने बस में करना और किसी को आगे टिकने न देना, इसमें सिद्धहस्त हुई। सांसारिक, मानसिक सभी कार्यों में कमाल किया। यह देख

---

१. पाश्चात्य वाले भी अब इस खेल को समझते हैं। उन्होंने मैसमरेजम तथा हिप्नोटिज्म आदि नाम दे रखे हैं।

लो बौद्ध और जैन ब्रह्मचारी संन्यासी, सूफ़ी और भक्त सबको अधीन किया, अपना सम्प्रदाय बढ़ाया और मान प्राप्त किया। मेरी विद्या में भुलावा और माया है, एक नुक्ता मानसिक एकाग्रता का है, जिसको कल तक मैं ईश्वरीय शक्ति समझती थी, पर अब समझ में आया है कि किसी को वश में करना स्वयं कैद होना है। मैं सच कहती हूं, कल तक यह सब कुछ मुझे शक्ति लगता था, पर आज मस्तिष्क का तप लगता है। लोग शरीर के साथ कैद प्राप्त करते हैं, मैंने मानसिक शक्ति की एकाग्रता के साथ कैद तय्यार कर ली थी ।

(सतगुरू जी के चरणों पर शीश झुकाकर) हे शीतलता के साईं जी! कल पहला दिन था कि आपके संवारे हुए भक्त पर मेरा बस नहीं चला। कल मेरा मन व्याकुल हुआ, पर जब इन्होंने संगीत छेड़ा तब मुझे अपनी तीक्ष्ण बुद्धि में औषधि सूझ पड़ी। मैं राग विद्या में निपुण थी, मैंने वह आलाप किया कि इनकी सुरत मस्ती में आ गई, राग के रस में लगकर स्वयं को भूल गई; ठीक उस समय मुझ गायिका ने अपनी सुरत की झलक देकर इनकी सुरत को उखेड़ डाला और अधिकार जमा लिया ।

मरदाना (घबराकर)-हे सतगुरू जी! क्या मेरी मौत इस राग के ही हाथों लिखी थी ?

सतगुरू जी-मरदाना! सत्कार सहित बोल, राग ईश्वरीय नाद है। यह आदेश से आया है, हां, सारी सुन्दरता आदेश द्वारा निर्मित है। राग मनुष्य को ईश्वर के देश में ले जाने के लिए है, यह मनुष्य की मूर्खता है कि प्रत्येक वस्तु को, जो इसके अन्तस को ऊँचा करने के लिए रची गई है, उसको अपने-आपे के चारों ओर कोई-न-कोई असत्य के पर्दे या दीवार का निर्माण करने के लिए कैद के लिए प्रयुक्त करता है। हे मरदाना! जो राग हम तुझसे सुनते हैं वह स्वयं को स्वयं की कैद से मुक्त करवाकर स्वतन्त्र करता है। पर राग का प्रयोग जो इस कन्या ने भुलावे में किया है वह स्वयं को स्वयं कैद में डालने वाला मनोरथ था। राग नाद 'सच' है, पर इसका बर्ताव कच्चा है। मनुष्य का व्यवहार ही नर्क है, अन्यथा मनुष्य को साईं की ओर से आदेश ही आदेश प्राप्त है।

इस पर मरदाना के नयन खुले, नूरशाह ने शीश झुकाया और फिर कहने लगी- हे शीतलता के साईं जी! दया करो! आप धन्य हैं जो जगत को कैद से मुक्त कराते हैं। मुक्तिदाता कैदखाने से तो भले ही निकाल सकता है, पर स्वयं की चारों ओर अपने आप बना रखी कैद से कोई नहीं छुड़ाता । तीक्ष्ण जी ने सत्य कहा है कि आप झूठ का पर्दा हटाते हैं और मुनष्य को सच में लगाते हैं। हे सच की शीतलता प्रदान करने वाले, तप्त को दूर करने वाले त्राणकर्ता! आप धन्य हैं।

हां भाई मरदाना जी! मुझ भूली हुई ने आपको इस दाव से पकड़ा और ऐसी

माया डालकर सुलाया कि आपको मिर्च देकर कहा: कह मिसरी, तो आप कहते थे कि ठीक मीठी है। मैंने कहा तुम मनुष्य नहीं, भेड़ हो, जो आप 'मैं-मैं' करके मिमियाने लगे। मुझे क्षमा करना, मेरी भूल के लिए क्षमा करना। पर देखो भाई मरदाना जी 'भैया जी! कर्तार के रंग! मेरी यह भूल मेरे कल्याण का कारण बन गई। नहीं, भूल ने क्या कल्याण करना था, मैं जल रही थी, जल रही और जला रही थी; जलते हुए जगत के रक्षक ने आज अपनी दया द्वारा आकर शीतलता दी है।

मरदाना-मैंने नूरशाह की बात अब समझी है। यह कोई चेटकी कन्या थी और मेंने समझा कि मैं किसी क्षेत्र में आ गया हूं। पातशाह! मैं कल ही गया, आप कल ही छुड़ाकर लाये और मेरे विचार में एक रात बीच में व्यतीत हुई है। आप ने कल ही बताया था कि वही दिन है। यह क्या बात है ?

नूरशाह-यह मैं बताती हूं। जिस कमरे में आपने रात देखी थी और झाड़ फानूस देखे थे, वह मेरी चतुरता की रात थी, जो अंधेरा करके बनाई गई थी। मैंने मन्दिर में नर्क, स्वर्ग, रात, दिन, सूर्य, चन्द्र, जंगल, शहर सभी चित्र बना रखे थे, जिसकी इच्छा करती थी, बना लेती थी। इस पर उसके सारे चेले नैनों में नीर भर लाये और सतगुरू जी ने निम्न लिखित वाक्य मीठी ध्वनि में उच्चारण किये:-

सुणि मुंधे हरणखीए गूढ़ा वैणु अपारू ।।
पहिला वसतु सिअणिकैं तां कीचै वापारू ।।
दोही दिचै दुरजना मित्रा कूं जैकारू ।।
जितु दोही सजण मिलनि लहु मुंधे वीचारू ।।
तनु मनु दीजै सजणा ऐसा हसणु सारू ।।
तिस सऊ नेहु न कीचई जि दिसै चलणहारू ।।
नानक जिनि इव करि बुझिया तिना विटहु कुरबाणु ।।२।।
(सलोक वारां ते वधीक महला १)

१६. सिद्धान्त

"गुरा इक देहि भुझाई ।।
सभना जीआ का इकु दाता सो मै विसरि न जाई ।।"

मरदाना (सतगुरू जी ने आगे कर-बद्ध खड़ा होकर)- पातशाह! मेरी मूर्खता के लिए क्षमा करना, आपने हम सबको स्वयं की ही कैद से मुक्ति दिलवाई है और स्वतन्त्र किया है, पर फिर आपके प्यार की कैद में पड़े हैं, इसका क्या कारण है ?

सतगुरू जी-मरदाना! माया के आकर्षण से आकर्षित होना मोह है। जो

प्यार अपने वश में किये मनुष्यों से नूरशाह आशा रखती थी वह कैद तथा दासता थी, अकाल पुरुष की दया द्वारा, है मरदाना !

"होंदा फड़ीअगु नानक जाणु ।।
ना हऊ ना मै जूनी पाणु ।।"

मैं तो तुम्हारे स्वयं को, तुम्हारे स्वयं की कैद से मुक्त कराता हूं और झूठ असत्य का पर्दा तुड़वाता हूं। स्वयंत्व मुक्त होकर अपने केन्द्र पर अपनी ओट पर आ जाता है, वह अपने स्वरूप के रस का आनन्द लेता है। यहां से फिर आपा साईं के ध्यान में पड़ता है और अन्त में साईं में मिल जाता है। मैं तो अपने लिये तुमसे मोह कभी भी नहीं मांगता ।

मरदाना - पर हम तो करते हैं जी।

सतगुरू जी - फिर स्वतन्त्र हुई आत्मा में, जो उसके स्वरूप का गुण प्रेम है, वह झलक भले ही डाले। प्रेम तो स्वयं का स्वरूप है। साथ ही उसका स्वरूप स्वतन्त्रता है, कैद नहीं है। कैद तो मोह की वृत्ति है, जिससे - वाहिगुरू मुक्त कराता है। जो आत्मा स्वतन्त्र है, वह उस ईश्वरीय जलवे में है जिसको प्रेम कहा जाता है। प्रेम वाहिगुरू है, वाहिगुरू प्रेम है। स्वतन्त्र आत्मा वाहिगुरू - प्रेम में है। उसका स्वरूप प्रेम है, उसके प्रेम का प्रकाश यों है जैसे सूर्य का प्रकाश है । भाई मरदाना! समझ, इसी प्रेम द्वारा माया के मोह का अधिकार टूटता है, इसी द्वारा वाहिगुरू की प्राप्ति होती है ! प्रेम स्वतन्त्रता वाला रंग है, मोह कैद है।

मरदाना - मैं बलिहारी, जेरी दया के कारण मैं बुरा भी सुख प्राप्त कर रहा हूं ।

सारद जी - हे सतगुरू ! मैंने सारी आयु त्याग, वैराग्य, हठ, तप, आष्टांग व्रत धारण किये, मैं क्यों मारा गया ?

सतगुरू जी - हे सज्जनो ! तुम सभी अपनी प्रकृति (शरीर का स्वभाव) को तोड़-मोड़कर एकाएक कुछ और बनाना चाहते हो । शरीर के अन्दर जो शक्तियां हैं, इन्हे पाप - रूप समझकर, इन्हें तोड़ - फोड़कर किसी काल्पनिक त्याग में स्थान खोजते हो। कोई मन को ईश्वर बनाकर चलता है और यह नहीं समझता कि पाप वृति आकर ईश्वर के सिंहासन पर बैठ गई है, कोई गृहस्थ राज्य तथा रजोगुणी सुख में समझता है कि यही पार होना है।

यह शरीर एक ठिकाना है, एक राज्य है, किसी प्रयोजन के लिए है। इसके अन्दर प्रत्येक शक्ति किसी सुख के लिए है। सभी शक्तियां सुरत का आधार हैं, अन्दर जो आपा है उसके अधीन हैं, पर आपा इनके अधीन हो जाता है और यह शक्तियां बल प्राप्त करके आपे को दबाजी हैं। तुम उस कैद में पड़े हुए इन शक्तियों को 'कैद रूप' समझकर काटते हो, पर वे तुम्हारे शरीर - रूपी मन्दिर के स्तम्भ हैं, जिनके गिर जाने से गिर जाते हो और जब ईश्वर के नाम के अधीन

किसी भलाई के वेष में किसी शक्ति को फिर प्रकाश डालने का अवसर मिलता है तब स्वभाव उसको मार्ग देता है और असलियत से गिर जाता है, यों तुम गिर गये। औषधि आपा विनाश करने का नाम नहीं, औषधि यह है कि सभी शक्तियों पर अधिकार जमाओ, आपे को आपे की कैद से छुड़ाओ । आपा अन्दर शारीरिक, मानसिक सभी रुचियों, शक्तियों, वृत्तियों पर बल डाले, अपने अधीन करे और आप इस घर के ठाकुर बनकर अन्दर राज्य करो। शक्तियों को वश में करो, शक्तियों से बल, उल्लास, हिलोर लो; मारो नहीं, मारने से अपने पांवों पर कुल्हाड़ा मार बैठते हो, फिर लूले बनकर कहते हो कि हमने अचल पद प्राप्त किया है।

नूरशाह ने, नहीं नहीं नूरशाह मर गया, पार्वती ने तुम्हें कैद में डाला पर समझ न सकी कि तुम्हें कैद करना आप भी कैद होना है। इसको सदैव यह भय हो गया कि कहीं तुम कैद में से निकल न जाओ। दिन–रात का कैदियों पर पहरा देना, आप कैद होने से किस प्रकार कम है? पर इसने इस कैद को ऐश्वर्य समझा। इसी तरह मनुष्य का आपा आपे के साथ द्रोह करता है। आपे को पहचानो आपे की चोरियों और ठगियों को देखने वाले बनो, आपे पर अधिकार जमाओ और स्वतन्त्र हो जाओ, फिर तुम्हें आपे का जलवा दिखाई देगा। फिर आपे को जगत आधार जो सारे ब्रह्माण्ड का आधार है, वह प्रतीत दे आये और उससे भेंट हो जाये। फिर सदैव सुख मिले।

पर यह मार्ग लम्बा है, साहस की आवश्यकता है, मनुष्य का स्वभाव, जो चिरकाल से उल्टा हो चुका है, शीघ्रता से एक ही बात सुनकर आपे पर अधिकार नहीं जमा सकता। इसको जिस प्रकार चिरकाल से पतन की ओर जाने का और उल्टे चक्कर का अभ्यास हुआ है, कुछ समय तक उन्नति के चक्कर का अभ्यास करवाओ। अन्तस को चरणों की शरण में रखो, शरण की सम्भाल करो, शरण से दूर मत जाओ। शरण का अभ्यास नाम है, निरंतर नाम में निवास करो, नाम सभी सूझ और बल प्रदान करेगा। शरण में निवास करो, सदैव शरण की ओट में रहो। शरण के आश्रय में आपा आपे को पहचानता है, शरण के आश्रय आपा स्वतन्त्र होकर शरण में स्थान प्राप्त करता है, शरण की प्राप्ति नाम है, नाम कभी मत भूलो ।

इस समय मरदाने ने ईश्वरीय रंग में आकर ईश्वरीय ध्वनि में गाया :–

गुरा इकु देहि बुझाई ।।
सभना जीआ का इकु दाता सो मै बिसरि न जाई ।।

दो घड़ी तक यह दो पंक्तियां इस प्रेम में गायन कीं और सारी संगत ने गाया कि सबका मन 'सभना जीआ का इक दाता' की स्मृति का रूप हो गया ।

'धन्य गुरू नानक!'

कुछ दिन वहां पर रहकर ईश्वरीय रंग जमाकर सतगुरू जी विदा हुए। पार्वती ने जादू का मन्दिर गिरा दिया, पाखंड की जो कमाई थी, वह बांट दी, मैदान में बैठ गई और सत्यनाम का आंचल पकड़ लिया। सभी चेले मुक्त हो गये और सारे देश में सत्यनाम का संदेश लेकर चल निकले। जिस मैदान में पार्वती बैठी थी, वहां पर धर्मस्थान बन गया, लंगर (सहभोज) धर्म की कृत्य का लंगर–"घालि खाई किछु हथहु देइि" वालों के प्रेम का लंगर भी लग गया। कीर्तन का रंग बंध गया। वह जो कैद किया करती थी, आत्मा की स्वतन्त्रता, अन्तस की स्वतन्त्रता की बन्दी छोड़ बन गई। चलते समय सतगुरू से कोई उनके हाथों की यादगार मांगने लगी, बाबा जी के हाथ में बरछा था, वही पकड़ा दिया। यह बरछा अब तक वहां पर मौजूद है और संगतों को दर्शन कराये जाते हैं[1]।

गुरा इकु देहि बुझाई ।।
सभना जीआ का इकु दाता सो मै विसरि न जाई ।।

□ □

१. तवारीख खालसा ।

३१ भाई भूमिया

: १ :

(लेखक की पंजाबी कविता का अनुवाद यहां प्रस्तुत किया जाता है।)

जाल और पिंजरा लेकर हुमा (एक पक्षी) तथा हंसों को मत पकड़; ऊंचे वंश के पक्षियों को कैद करने की बात मत सोच। वे दानों पर नहीं रीझते जाल पर कैसे उतरेंगे? तू किसी भी तरह स्वच्छ वंश वालों को नहीं फंसा सकता। वे जिस जगह पर खुले घूमते और केलि करते रहते हैं, तू मन की मलिनता मिटाकर उस स्थान पर जा और उनसे दरस परस कर। वहां पर आदर तथा भय के साथ जाना और संगीत को सुनना। वहां पर जाकर सार तथा असार अंशों को भिन्न करने का ढंग सीखना। फिर तू हंसों का स्पर्श प्राप्त करेगा और हुमा की परछाईं तुझे मिलेगी। फिर तू आप ही हुमा और राज हंस होकर लौटेगा।

जब श्री गुरू नानक देव जी जलते हुए जगत् का उद्धार करने के लिए घर बार का त्याग करके परदेशों के लिए चले थे तब पहले आपने तुलम्भे के निकट निवास करने वाले, जिस माया जाल को तोड़ा था, वह सज्जन ठग का ठगी वाला ठिकाना था। इस भूले हुए जीव को सुमार्ग पर लाकर और इसके पापगृह को गिरवाकर पहला धर्मस्थान बनवाकर आप आगे चले थे[१]। मार्ग में अनेकों जीवों का उद्धार किया[२] अन्त में आप असम पहुंचे। यहां पर सबसे कठिन स्थान एक चेटकी फकीर स्त्री नूरशाह नामक का था। इस फकीर स्त्री ने, जो पुरुषों से अधिक बलवान थी और स्त्रियों से अधिक चतुर थी, बड़े-बड़े बुद्धिमान साधुओं, धनियों और बड़े-बड़े लोगों को चेले बना रखा था। इसकी त्राटक मुद्रा पास आने वालों को फंसा लिया करती थी और इसके रुपयों के बल पर छोड़े गए दूत तथा दूतनियां दूर-निकट से लोगों को इसके यश गा-गाकर इसके जाल में फंसा देते थे। सत्य के सूर्य श्री गुरू नानक देव जी ने इस माया जाल को तोड़ा था। यह स्त्री सीधे रास्ते पर आ गई थी। पाप और झूठ को इसने त्याग दिया। जब यह वाहिगुरू के नाम के मार्ग पर चलने लगी तो सौभाग्यशालिनी हो गई। अनेकों लोग जो इसके पीछे लगकर कुमार्ग पर चल रहे थे, सुमार्ग पर चलने लगे। यह दुःखों का महान

---

१. इसके समाचार पढ़ने के लिए इसी पुस्तक का 'सज्जन ठग' नामक शीर्षक लेख पढ़ो, जो पीछे आ चुका है।

२. देखो 'ठग उद्धार' नामक इसी पुस्तक का लेख।

३. इसके समाचार पढ़ने के लिए, 'नूरशाह का उद्धार' नामक लेख पढ़िए।

ठिकाना सुखों में परिवर्तित करके अब श्री गुरू जी को एक और ठिकाने का पता चला, जहां पर पुण्य के भुलावे में पाप हो रहा था। ढाका की एक बस्ती में एक जमींदार रहता था। अनुमान है कि यह गांव ढाका के इलाके में कहीं था। यह पुरुष था तो जमींदार पर इसका व्यवसाय दिन के समय रास्तों में बटमारी करवाने का था और रात के समय चोरी करवाने का था। इस तरह बहुत-सा मालमत्ता हाथ आ जाने के कारण इसके पास चोर और बटकार नौकर भी थे। परन्तु इस भूले हुए जीव को कहीं से मालूम हो गया था कि पाप, पुण्य के बदले विनिमय में आ सकते हैं। इसलिए इसने अपने घर में सदावर्त भी लगा रखा था। यह सदावर्त इनता खुला था कि जो जीव आता वह तृप्त होकर जाता था, किसी को इनकार नहीं था। इस ज़मींदार ने, जिसको 'भूमिया' करके लिखा गया है, अपने गांव के लोगों को कह रखा था कि यदि कोई साधु-फ़कीर आये तो उसको उसके घर भेज दिया जाए। कोई भी किसी अतिथि को अपने घर न रखे। जो कोई रखेगा तो मैं उसका घरबार लुटवा दूंगा। इसका सदावर्त आठों पहर चलता रहता था, किसी समय भी कोई आता, भोजन करके जाता था। इस भूले हुए जीव को यह कुमति मिली थी कि उसके अन्न के दान से उसका कल्याण हो रहा था। वह यह भी समझता था कि वह जो बटमारी और चोरी के पाप करवाता है वे उसको नहीं लगते क्योंकि वह अन्न दान करके सबसे बड़ा पुण्य कर रहा था। साथ ही यह भी सोच लिया करता था कि इतना बड़ा सदावर्त, जिसको वह चला रहा था, बिना धन के कैसे चल सकता था, वह जो रुपये छीन कर लाता है, इसी के निर्वाह के लिए ही तो लाता है।

सज्जन ठग तथा और इसी तरह के भूले हुए लोगों को, जिनका कि सतगुरू जी ने उद्धार किया था, यह भ्रम नहीं था कि वे पुण्य करते थे। वे जानते थे कि यह पाप कर्म है। उन्होंने पुण्य कर्मों को पाप को ढांकने के लिए पर्दा बनाया हुआ था, पर इस बटमार को उसके पुण्यकर्मों ने भुलावे में डाला हुआ था कि वह परोपकारी और पुण्यकर्मी है। श्री गुरू नानक देव जी के पीड़ा हरण करने वाले पवित्र कानों ने यह बात सुन ली और उनका हृदय द्रवित हो गया कि इस मूर्ख के हाथों कष्ट पा रही सृष्टि का उद्धार किया जाये। पीड़ित हो रही प्रजा का संकट हरने के लिए गुरू बाबा ने अपने चरण अब इस धरती की ओर घुमाये। जाते-जाते जब उस गांव में पहुंचे तो एक भले पुरुष के घर के आगे जा खड़े हुए। उसने दर्शन करके सुख प्राप्त किया। चित्त में आया कि सेवाभाव करूं, भोजन करवाऊं और रात को अपने पास ही रखूं, ऐसे सुन्दर स्वरूप वाले साधु कभी नहीं देखे थे। पर भूमिया के भय के कारण कहने लगा, "आइए, स्वागतम्! बैठिए विश्राम कीजिए कोई सेवा बताइये, यह आपका घर है। पर हे हंसरूप जी! हमें अपने गांव के मुखिया का भय है जो बड़ा जमींदार है और बड़ा धनी है, और

आने-जाने वालों के लिए असने बड़ा सदावर्त लगा रखा है। उसकी आज्ञा है कि कोई भी अपने घर में आये हुए किसी सन्त, फ़कीर, अभ्यागत का डेरा न लगवाये और न उसकी सेवा करे। उसका कहना है कि जो कोई भी आये उसको मेरे घर पहुंचा दो। यदि कोई मेरी आज्ञा का पालन नहीं करेगा तो मैं उसके घर में चोरी करवा दूंगा। अत: देवमूर्ति भगवान! आइए मैं आपको उसके घर पहुंचा दूं।" यह कहकर सतगुरू जी को साथ लेकर चल पड़ा और जाते-जाते आकाश की ओर देखकर और एक आह भरकर और नि:श्वास लेकर कहने लगा 'हे नीले-नीले पर्दे के पीछे रहने वाले! इस भूमिया ने जगत का धन-माल जो छीन लिया पर हमारे पुण्यकर्म भी साथ ही छीन लिए। हम किस अवसर पर भलाई करें और अपने लिए पुण्य कब कमायें; भला हो जो यह हमारे घर बार भी लूट ले, पर हमें भलाई से वंचित न रखे।' यह कहकर वह और सोच में पड़ गया कि 'यदि यह हमारा सब कुछ छीन ले तो फिर हम पुण्यकर्म किसके साथ करेंगे? अच्छा, भावी प्रबल है। सहन कर, हे मन! सहन कर'। इतने में भूमिया का घर आ गया और वह व्यक्ति सतगुरू जी को साथियों सहित वहां पर छोड़कर नमस्कार करके चला गया।

जब भूमिया को पता चला कि उसके घर में कोई बहुत तेजस्वी सन्त आया है और उसके साथ उसके देश का काई और साधु भी आया है, अथवा कोई और सन्त है तो वह आदर करने के लिए आया और बड़ी श्रद्धा के साथ सुन्दर स्थान पर बैठाकर सेवा करने लगा। दर्शन करके शीतलता प्राप्त की, मन में कहने लगा कि ऐसा सुन्दर दर्शन पहले कभी नहीं हुआ था। आकर्षण होने लगा वे मीठे लगने लगे, पर समझ में न आई कि यह सब-कुछ क्यों हो रहा है। भूमिया ने पहले वचनों द्वारा आदर किया। फिर चरण धोये और कहने लगा "श्री सन्त जी! भोजन तैयार है, आओ, आप भोजन करो।" तब सतगुरू जी ने कहा- "भाई ! तुम्हारा भला हो; पहले हमें यह बता कि तू क्या कृत्य करता है? यह सुनकर भूमिया के हृदय में एक गड्ढा-सा पड़ गया। विचार करने लगा-यदि मैं यह कहता हूं कि मैं चोरी करता हूं और बटमारी करता हूँ तो बुरी बात है, और यदि झूठ बोलता हूं तो यह पूर्ण पुरुष लगते हैं, पता लगा लेंगे और यदि ये किसी शत्रु से सूचना ले ही आये हों कि मेरा व्यवसाय मारना और छीनना है तो मुंह पर ही लज्जित कर देंगे, अब इनके सामने झूठ कैसे कहूं। जिस समय उसका मन इस प्रकार के विचारों में था तो उस समय श्री गुरू जी उसके चेहरे की ओर पवित्र दृष्टि डालकर देख रहे थे। इस दृष्टि के साथ इसके पाप अन्दर-ही-अन्दर कांपने लगे थे और मन ने सूझ की ओर झुकाव कर लिया था, पर साथ ही एक घबराहट-सी थी। इस घबराहट में, इस द्विविधा में जो अन्तर्द्वन्द्व हुआ, उससे मक्खन की भांति सच ऊपर आ गया और उसके मुंह से निकल गया- 'मेरे दाता! मेरा व्यवसाय बुरा है, कृत्य मेरा अच्छा नहीं। आपने पूछा है कि बता, मुझे सच बोलने से डर लगता है, पर

सच यह है कि मैं दिन को बटमारी करता हूं और रात को चोरी करवाता हूं। पर एक बात है ! मैं इस सबको पुण्यार्थ लगाता हूं। मेरा सदावर्त जारी है, आने-जाने वाले साधु-सन्त सभी यहां से भोजन करके जाते हैं। यहां पर साधु-सन्त दूर-दूर से आते हैं और मैं उनकी हर तरह से सेवा करता हूं। सभी सन्त प्रसन्न होकर जाते हैं, कहते हैं कि तेरे जैसा पुण्यात्मा तू ही है। अतः मैं उनसे छीनता हूं, जिनके पास है और अभ्यागतों को दे देता हूं।' सतगुरू जी मुस्कराये और कहने लगे-"तुम्हारा भला हो, तुमने सत्य कहा है ।"

भूमिया-पहले तो साहस बटोरकर किसी ने कभी मुझसे इस तरह नहीं पूछा था और न ही मैंने कभी अपने मुंह से अपनी बुराई स्वयं मानी थी, पर हे सन्त ! आपके नयनों में न जाने क्या है, आज पहला दिन है कि मैं कांपा हूं और अपना किया हुआ स्वयं कह दिया है, लो अब आओ और भोजन करो।

सतगुरू जी - भाई जब तेरी कमाई तूने आप बुरी बताई है तो तेरा भोजन फ़कीरों के खाने के लिए नहीं है।

भूमिया - जब सब कुछ मैं धर्मार्थ लगाता हूं तो भी कमाई में दोष है ?

सतगुरू जी - जिन्हें तू मारता है, जिनसे छीनता है, वे रोते हैं, दुःखी होते हैं। बता उस पदार्थ से बोये हुए पुण्य किस तरह अंकुरित हो सकते हैं। साबित दाने बोने से तो पनप जाते हैं, कभी दाल भी अंकुरित हुई है ?[1]

भूमिया सोच में पड़ गया, उसके पाप कांपने लगे। जख्मी किये हुए, लूटे, छीने, मारे हुए लोग तड़पते, रोते, दुहाई देते सभी आंखों के आगे आ गये। इस प्रकार के दुःखी लोगों से भरा हुआ एक मैदान दिखाई दे गया। भूमिया फिर कांपा। सतगुरू जी के ईश्वरीय नेत्र उसके माथे को देख रहे थे, पर भूमिया तड़पन, विलाप और उनके कोसने को देख रहा था। कुछ समय यों होकर फिर उसके मन के आगे से यह दृश्य दूर हो गया। फिर सतगुरू जी के चरणों की ओर देखकर कहने लगा-आपने ठीक कहा है, पर आप अब भोजन करो जिससे मेरा भला हो। अच्छे-अच्छे लोग यहां अन्न पा गए हैं, अनके आशीर्वाद का पुण्यफल भी तो मुझे मिलेगा न ।

सतगुरू जी - भाई ! इस कृत्य का त्याग कर दे, धर्म का कृत्य कर, तब मेरा भला होगा। 'रक्त से भरा हुआ धन' आशीर्वाद से 'धर्म धन' नहीं बन सकता[2]। जो पाप तूने किये हैं, उन पापों का फल दुःख तू ही सहेगा। तेरे पापों का दुःख तेरे खाने वाले नहीं सहेंगे। देख, यदि तू किसी दिन राजा के चंगुल में फंस गया तो फांसी पर कौन चढ़ेगा, तू अथवा तेरे घर से खाकर जाने वाले साधु-फकीर ? इसी तरह विचार कर ले कि जहां पर धर्म तोला जायेगा, वहाँ पर

---

१. बीऊ बीजि पति लै गये जब किऊ उगवै दालि ।। (आसा दी वार महला १)

२. मारण पाहि हराम महि होइि हलालु न जाइि ।। (वार माझ महला १)

तुझे मार पड़ेगी[1]। अपने अन्दर झांक। पाप कर-करके तेरा मन कठोर हो गया है, वहां पर दया उत्पन्न नहीं होती, परमेश्वर का भय उत्पन्न नहीं होता। हां, तेरे मन में नेकी का जो थोड़ा-सा विचार रहा है और वह अभी मरा नहीं, उसके कारण तूने आज सत्य कहा है। तेरे इस सत्य के कारण तेरे पर दया हो सकती है पर वह भी इस शर्त पर कि तू आगे से इस व्यवसाय का त्याग कर दे और धर्म का कृत्य करे। धर्म के कृत्य से यदि कुछ पुण्यार्थ लगाये तो तेरा दिया सफल हो सकता है[2]।

भूमिया सोचने लगा, सिर हिलाने लगा, ऊं ऊं आवाज आती और बन्द हो जाती। फिर माथे पर हाथ फेरकर कहने लगा-हे तीक्ष्ण दृष्टि वाले ! तूने मेरा हृदय बेध दिया हैं। क्या कहूं ? झूठ कहने का साहस ही नहीं रहा, बहाना करना भी भूल गया हूं, तू स्वयं 'सत्य' है कि तेरे सामने झूठ आता ही नहीं, मेरे अन्दर ही अन्दर छिपता जाता है। जो तनिक-सा सत्य मेरे अन्दर है वही साहस बटोरकर मुंह तक आकर बाहर आ रहा है। मेरे पर दया कर और मेरे किये हुए कर्मों को क्षमा कर दे, पर हे दयालु, रक्षा कर अथवा मार दे, चोरी तथा बटमारी का मेरा स्वभाव बन चुका है, मैं इन्हें त्याग नहीं सकता। मेरा तो रक्त यही, मेरा स्वभाव यही; मेरा पिता यही धन्धा करता था, मेरा दादा यही कार्य करता था, मैं यही कार्य करता रहा पर नेकी पर व्यय किया और अपना कमाया। (सिर हिलाकर) झूठी बात, नहीं, मुझसे यह कार्य छूट नहीं सकता। पर हे सुन्दर! तू बहुत अच्छा लगा है, कोई बात नहीं दो घड़ी कष्ट सहन कर लेना, दो कौर भोजन तो कर जा। (सोचकर) मेरे पास भूमि भी है, उसका अन्न आता है। उस अन्न का भोजन बनवा देता हूं। किसी तरह मान ले, भोजन कर और मेरे पर दया कर।

सतगुरू जी ने अब मरदाना की ओर देखा । मरदाना ने रबाब छेड़ दिया तो आसा राग की वार का यह पद गायन हुआ :-

सचा साहिबु एकु तूं जिनि सचो सचु वरताइआ ।।
जिसु तूं देहि तिसु मिलै सचु ता तिनी सचु कमाइआ ।।
सतिगुरि मिलिऐ सचु पाइआ जिनकै हिरदै सचु वसाइआ ।।
मूरख सचु न जाणनी मनुमुखी जनमु गवाइआ ।।
विचि दुनीआ काहे आइआ ।।८।।

इस पद को भूमिया ने सुना। उसके मन पर चित्र बन गया कि सत्य कोई अमूल्य वस्तु है। स्वयं इसने सत्य कहा था, और देख रहा था कि यद्यपि यह ईश्वर का प्यारा मेरे पुण्य कर्मों पर प्रसन्न नहीं हो रहा पर उस सत्य की कदर कर रहा है। फिर कहने लगा, आप सत्य के प्रेमी हैं, मैंने तो समझा था कि मेरे सत्य पर

---

१. कीता आपो आपणा आपे ही लेखा संढीऐ ।। (आसा दी वार महला १)
२. नानक अगै सो मिलै जि खटे घाले देइ ।। (आसा दी वार महला १)

रुष्ट होंगे पर आप मेरे पुण्यों पर प्रसन्न नहीं हुए और एक छोटे से सत्य पर प्रसन्न हुए हैं। मैं क्या करूं? मैंने सोचा है कि यह धन्धा मुझसे छूटेगा नहीं, सत्य के प्रेमियों को मैं झूठा वचन क्यों दूं, आपके घर में असत्य का कोई स्थान नहीं दीखता ।

सतगुरू जी वैद्य थे। वे जानते थे कि इसने यह भी विशुद्ध सत्य कहा है। पूर्वजों का धन्धा और आयु का स्वभाव केवल कह देने से नहीं छूट सकता। यह पाप से पत्थर बन चुका मन धीरे-धीरे कोमल होगा। इसको उस मार्ग पर चला दें कि आपने आप इससे बेमालूम ही यह बुरा कार्य, जो यह कर रहा है, छूट जाये। तब श्री गुरू जी कहने लगे:- भूमिया ! ईश्वर है और उसको सदैव रहना है और सभी को मरना है, पर मर कर बिल्कुल मिट नहीं जाना। हां, जीवन को किसी रंग में रहना है। ईश्वर सत्य है, सत्य द्वारा ही मिलता है और सत्य द्वारा मिलने से ही असत्य कर्मों का नाश होना है। समझ ले कि सत्य है सत्य बोलना, और सत्य है सत्य को मन में धारण करना, और सत्य है सत्य के साथ इतना प्रेम करना कि यद्यपि सत्य सुनकर कड़वा लगे, पर उसके साथ प्यार इसलिये करे, कि यह सत्य है। यदि इस प्रकार आचरण करें तो फिर सच्ची शिक्षा लेने का और उसको धारण करने का ढंग आ जाता है । सच्ची शिक्षा धारण करने से ही मुक्ति का द्वार खुल जाता है। सच्ची शिक्षा है उस ईश्वर का नाम। परमेश्वर जिस प्रकार आप सत्य है उसी प्रकार उसका नाम सत्य है[१]।

उस सच्चे नाम की आराधना करे, हां, सच्चे नाम को जपे। इस तरह कि इस देह को धरती समझे। जैसे धरती पर हल चलाया जाता है और सुहागे द्वारा उसको समतल किया जाता है, वैसे ही यह शरीर पुण्यकर्मों (पुण्य दान करना) और सत्य कहने और सत्य धारण करने से सिद्ध किया जाता है। इस सिद्ध की हुई धरती में फिर उस सच्चे ईश्वर के सत्यनाम को बोया जाता है। यह बीज फिर अपने अन्दर प्रफुल्लित होता है, फिर अन्तस तीर्थ रूपी हो जाता है और इस जीव का उस तीर्थ पर निवास हो जाता है[२]। इस सत्य के अन्दर निवास करने वाले स्वभाव में निवास कर्ता के शरीर के अंगों में निवास करने वाले सारे पापों को शोधकर निकाल देता है, पर हे भूमिया! शर्त यह है कि सत्य को दबाकर, खींचकर पल्ले में बांध ले। हां, सत्य तुझे पार कर देगा। यदि तूने सत्य को पल्ले में बांधा तो तुझ पर दया हो जायेगी[३]।

भूमिया - सच ? सच ? सच ? अच्छा अब मैं सच धारणा कर लूं ? सदैव

---

१. निहचलु एकु नराइणो हरि अगम अगाधा ।।
निहचलु नामु निधानु है जिसु सिमरत हरि लाधा ।। (मारू वार महला ५)

२. सचु तां परू जाणीऐ जा आतम तीरथि करे निवासु ।।

३. ओथै सचो ही सचि निबड़ै चुणि वखि कढे जजमालिआ ।।
थाऊ न पाइनि कूड़िआर मुह कालै दोजकि चालिआ ।। (आसा दी वार महला १)

सत्य कहूं! सच को प्यार करूं? दूसरी बात, कोई मुझे सच्ची बात कहे चाहे वह कड़वी हो, सहन कर लूं कि यह सच्ची है? हैं ? ठीक है जी ! अन्दर से सच्चा बनूं, लोग कुछ समझने लगें, मैं अन्दर से सच्चा बनूं, है ठीक ! मैं फिर सच्चा ईश्वर प्राप्त करूं, वह तो मेरे वश में न हुआ न, पर है वह सच, है सच कैसे हुआ ?

मरदाना – भाई जो सदैव हो वह सच, जो सदा से था वह सच, जो अब है वह सच, जो होगा सदा वह 'सदा सच' हुआ न!

भूमिया – ठीक, वह ईश्वर सच है, सदैव जो हुआ। जो सदा हो वह सच ठीक है। झूठ तो सदैव नहीं होता न, उसको सत्य बनाकर कहा जाता है, तो जब तक दूसरे को उसके सच्चे होने का भरोसा रहता है, तब तक उस सत्य की आयु हुई। जब पता चल गया कि यह झूठ है तो वह सच मर गया। पर वह सच तो था ही नहीं, वह तो झूठ था, अतः मर गया। झूठ मरता है। ठीक है जी, सच्चा वह जो सदैव रहे और सदा जीवित रहे वह सच। यों ईश्वर जो सदैव जीवित है, वह सच ही हुआ न। जगत नहीं रहता वह झूठ है, पर ईश्वर रहता है वह सत्य है, ठीक है जी। हां, फिर आपने कहा है कि उसका नाम सत्य है, मैं यह भी अन्दर धार लूं। उसका नाम, ईश्वर का नाम, किस प्रकार सत्य है? हां, ईश्वर जो सत्य हुआ तो सच्चे का नाम भी सच्चा। मुझे मर जाना है, सों मैं झूठा हूं, मेरे मर जाने के पश्चात् मेरा नाम भी मर जायेगा । इसलिये मेरा नाम भी झूठा । यों सच्चे का नाम अपने-आप सच्चा हो गया। इस तरह है इस तरह, हैं जी? जिस तरह सूर्य प्रकाश है और उसकी धूप भी प्रकाश है। ईश्वर भी सच, उसका नाम भी सच। ईश्वर सूर्य, उसका नाम धूप। ठीक है। अब देह को धरती की भांति सोधना है। दया तथा पुण्य द्वारा। पुण्यदान तो मैं करता हूं, इनको तो करना जानता हूं, परं दया मैंने नहीं जानी थी। अच्छा अब दया सीखनी पड़ेगी। यदि दया हो तो पुण्य दान ठीक है, वैसे तो पुण्य झूठे ही हुए न जैसे तिनकों के तीर होते हैं। ठीक है। पर जी मैं यह नहीं समझ सका कि आत्म तीर्थ क्या है और उसमें निवास करना क्या है। पर अव्छा मैं दया करनी सीखूं, पुण्य दान करूं, जो करता हूं और सच्चे नाम की आराधना करूं और सच्चे ईश्वर को मानूं? हैं मानूं? पहले जानता तो था कि ईश्वर है पर कभी ध्यान में नही रखा। अच्छा जी ! अब कोई मोटी-सी बात दीजिये न ।

गुरू जी – भाई एक वचन तो यह है कि सच धारण कर ले, सच बोल, सच सुन, सच्ची शिक्षा, जो तुझे दे रहे हैं, उसको सुन; अन्दर से सच्चा रह, सच्चा नाम जप। दूसरी बात यह है कि दया किया कर, गरीबों पर दया। तीसरी बात तू यों समझ ले कि नमक खाकर किसी का बुरा मत करना। यदि तू इन तीनों वचनों का

पालन करेगा तो तेरे कर्म शुद्ध हो जायेंगे और तुझ पर दया हो जायेगी, तेरा उद्धार होगा ।

भूमिया - ठीक, लो जी ! आपने तीन कर्म बताये हैं, सच, गरीब को नहीं मारना, जो आपने दया कही है, नमक खाकर बुरा न करना, अच्छा जी। पर अब पहला सच यह है कि जो मैंने कहा है कि मैं इस धन्धे का त्याग नहीं कर सकता, वैसे मै अपनी ओर से इसे त्यागने का पूरा-पूरा यत्न करूँगा, पर मुझे अपने आप पर विश्वास नहीं, पर सच कहूंगा और सच जो आपने कहे हैं, धीरे-धीरे उनको सीख लूंगा, पर दो तो अभी धारण करता हूं। एक बोलने वाला सत्य दूसरा सच्चे नाम का जपना। सच का फल मैंनें प्रत्यक्ष जो देख लिया है आप सच पर ही प्रसन्न हुए हैं न, जो इतनी दया कर रहे हैं दूसरी बात नमक खाकर बुरा न करना, और तीसरी बात गरीबों को नहीं मारना। अच्छा जी !

: २ :

जैसे तेज हवा चलने से दुर्गन्धि दूर हो जाती है, वर्षा होने पर ताल-तलैया आदि ताजे हो जाते हैं, प्रकाश हो जाने से अन्धकार दूर हो जाता है, वैसे ही भूमिया के पापों को धक्का देकर परोपकारी सदगुरू जी आगे को चल दिये ।

भूमिया अब अपने व्यवसाय का त्याग करता है, दो-चार दिन टिककर बैठता है पर फिर वही आदत उसे आ दबाती है। सच्चे का नाम भी जपता है, पर अभी नाम तो नया फूटा हुआ अंकुर है और स्वभाव की जड़ें पाताल तक पहुंची हुई हैं। पर एक परिवर्तन हो रहा है। पहले जब करता था तो अपनी सफलता का अहंकार करता था, अब करता है तो कहता है, क्या लिया किसी का धन छीनकर। तभी तो सदगुरू जी कहते हैं इस व्यवसाय का त्याग कर दे। इस प्रकार के विचारों में पड़कर सोचने लगा 'ओह ! मैंने तो वचन दिया था कि दया करूंगा और जो कुछ मैं करता हूं यह तो दया नहीं'। जब यह चिन्ता उसे काट-काट कर खाने लगी तब वह कहने लगा, 'हे मन! अब चोरी, बटमारी और मार्ग में लोगों को लूटना छोड़ दे। इस धन्धे में दया नहीं और कई बार गरीब मार भी हो जाती है ! पर हे मन ! सदावर्त कैसे चले, नौकरों के वेतन के लिए रूपये कहां से आयें ? शाही खर्च कैसे चले? अच्छा भाई, अच्छा बात सूझी, अच्छा....। चलो राजा का घर तोड़ें। इसमें गरीब मार कोई नहीं, राजा सबसे बड़ा अमीर है, उसका घर लूटने में हिंसा भी कोई नहीं, राजा के पास कौन-सा अपना धन है और उसे कहां निर्धन हो जाना है। बस ठीक है, हे मेरे मन ! चल अब चलकर राजा का घर तोड़। एक ही बार काफी धन आ जायेगा और काफी समय व्यतीत हो जायेगा ।

यह सोचकर उसने आगामी रात को अमीरों के से वस्त्र पहले और माथे पर कलगी लगा ली। सुन्दर राजकुमार बनकर चार घड़ी रात व्यलीत हो जाने पर राजा

के द्वार पर चला गया और निर्भय, अपने ध्यान में मग्न जब अन्दर जाने लगा तो द्वारपाल ने कहा, महाराजा आप कौन हैं जो अन्दर जा रहे हैं ?

भूमिया सोचने लगा – झूठ कहूं कि सच ? मन ने कहा कि प्रण जो किया हुआ है इसलिए सच कह। तब उसने बड़ी दृढ़ता के साथ कहा। मैं चोर हूं। द्वारपाल सुनकर घबराया, फिर चौंका कि यह राजा का कोई सम्बन्धी राजकुमार है जो निर्भय होकर अन्दर जा रहा था, मैंने रोका है तो क्रोधित हो गया है और क्रोध से अपने आपको चोर कहता है, ऐसा न हो कि यह राजा को जाकर कह दे कि द्वारपाल ने मेरा अपमान किया है, तो मुझे दण्ड मिले; मैं नया व्यक्ति हूं। तब कहने लगा– अच्छा महाराज जी जाओ, क्षमा करना ।

भूमिया अन्दर चला गया। वह मार्ग तथा महल से परिचित था। बड़ा ज़मींदार होने के कारण कई बार आया गया था और राजा के मन में इसके लिये सम्मान था। सभी गुप्त स्थानों का पता भी लगा चुका था। आकर इसने राजा का निजी स्थान खोजा। राजा तथा रानी के आभूषण लेकर भली भांति सम्भाल कर चलने लगा तो एक सोने की रकाबी और दिखाई दी। इसको उठाया तो उसमें कुछ रखा था, जब उसमें रखी वस्तु का पता लगाने के लिये टटोलकर देखने लगा, तो उसमें रखी वस्तु हाथों से लग गई। चकित होकर जब उसको चखा तो वह हाज़मे का चूरण लगा, पर देखो उसमें नमक था, वह भूमिया के मुंह को लग गया। भूमिया सोच में पड़ गया। हैं.... मैंने तो राजा का नमक खा लिया है ! सदगुरू जी के साथ वचन किया था कि मैं नमक खाकर बुरा नही करूंगा, अब चोरी कैसे करूं, पर नहीं सदगुरू जी की शिक्षा इसमें यह थी कि अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों का बुरा नहीं करना चाहिये, क्योंकि खाने-पीने का सम्बन्ध उनके साथ होता है। दूसरा यह भी होगा कि जिसकी नौकरी करते हैं उसका दिया खाया जाता है, उसका बुरा न करना भी इसमें आ गया, तीसरी मांग कर खाने वाले के लिये भी शिक्षा होगी कि जिसका दिया खाना है, उस दाता का बुरा न करें, अत: न मैं किसी का दिया खाता हूं, न किसी का चाकर हूं, सम्बन्धियों-मित्रों का बुरा मैं करता ही नही; फिर शिक्षा तो ग्रहण कर ली है। (और सोचकर) हैं, गुरू जी ने वचन तो यही किया था कि नमक खाकर बुरा नहीं करना। अब तो नमक खाया गया, चाहे वह कैसे भी खाया गया, मुझे तो वचन का पालन करना चाहिये। मैंने जो कुछ समझा है, यदि वह ठीक न निकले तो गुरू दाता दया नहीं करेंगे। हां जी दया द्वारा पाप बख्शे जायेंगे। दया द्वारा ही मुझे सच के तीर्थ पर पहुंचना है। दया से ही मुझे आगे जाकर सुखी होना है अत: दया की प्राप्ति के लिये मुझे आज्ञा का पालन करना है। आज्ञा यह थी कि नमक खाकर बुरा न करूँ। मैंने इस आज्ञा का पालन करने के लिये वचन दिया था, इसका पालन अवश्य ही करना है। .....हैं .... फिर घर का खर्च कैसे चलेगा ? अच्छा किसी अन्य राजा को जा लूटेंगे। चर रे मन, अब चल,

इस प्रकार की सोच सोचता हुआ, सब कुछ लिया हुआ और बांधकर रखा, वहीं पर छोड़कर भूमिया चला गया और अपने परिचित मार्ग से चतुरता के साथ चुपके से निकल गया ।

: ३ :

जब सूर्योदय हुआ तो राजा ने देखा कि उसके हीरे, पन्ने तथा रानी के मोतियों के सारे आभूषण इकट्ठे करके बंधे पड़े हैं । खोलकर जब देखा तो सारे ज्यों-के-त्यों थे, पर यह प्रत्यक्ष दीखता था कि कोई चोर आया है और वह सब कुछ ले चला था पर फिर किसी कारण छोड़कर चला गया है[१]। यह हैरानी थी कि वह क्यों छोड़कर चला गया है, पर साथ ही राजा को क्रोध आ रहा था कि उसके महलों तक चोर पहुंच कैसे गया और धुर अन्त:पुर में कैसे घुस गया ? तो सबसे पहले पहरेदारों से पूछा गया। उनसे पता चल गया कि राजकुमार के वेश में एक आदमी रात को अन्दर गया था। उसने क्रोध से कहा भी था कि मैं चोर हूं। पर नये पहरेदार ने राजकुमार समझकर उसको जाने दिया था। अब राजा के मन में ऐसे साहसी चोर को पकड़ने की इच्छा अधिक प्रबल हो गई कि जो हाथ पर दिया रखकर चोरी करने का साहस कर सकता है। सो आज्ञा हो गई और कोतवाल तथा उसके सेवक खोज करने लगे। इन लोगों में दया नहीं होती । इन लोगों का पापियों के साथ वास्ता पड़-पड़कर, यह प्रत्येक व्यक्ति को बुरा समझने लगते हैं, अत: सन्देह में ही कई लोग पकड़े जाने लगे। कई दिन व्यतीत हो गये, पकड़-धकड़ होती रही, जब कुछ पता न चला तो मार-पीट आरंभ हो गई। अब भूमिया को भी यह सूचना मिल गई कि उसके किये अपराध के बदले गरीब मार हो रही है। निर्दोष पकड़े जा रहे हैं, धन तथा पैसे वाले घूस देकर मुक्त होकर आते हैं, पर निर्धनों की खाल उतर रही है। भूमिया ने सोचा, सतगुरू जी की मेरे लिए आज्ञा थी कि गरीब मार नहीं करनी पर गरीबों को मार पड़ रही है। यद्यपि मैं स्वयं गरीबों को मार नहीं रहा, पर यह हो तो मेरे कारण ही रहा है। करूं मैं, और दण्ड गरीब सहन करें, इसलिए इस गरीब मार का दोष मेरे सिर है। चल रे मन ! अब मौत अथवा कैद, जो मिले सहन कर ले पर गरीबों को छुड़ा दे और सतगुरू जी की दया को मत खो । अन्त में पिछले किये कर्मों का फल भुगताना ही है न । यह विचार कर भूमिया सुन्दर वस्त्र पहन कर राजा के दरबार में चला गया और एकाएक उससे

---

१. भाई गुरुदास जी ने भी एक कथा चोर तथा शाह के घर जाने की इसी के साथ मिलती-जुलती लिखी है, 'चोर गया घर शाह दे आ अन्दर बड़िआ"। (वार भाई गुरुदास)

सो सम्भव है कि भाई गुरुदास ने यही भूमिये वाली कथा लिखी हो। आगे ज्ञानियों के जो याद हुई यह कथा किसी आम चोर के बारे में, सो भाई गुरुदास की वार (वाणी) से ली हो जो वह नमक खाकर बुरा न करने के विषय में प्रयुक्त करते हैं।

भेंट करने का दाव देखता रहा। जब राजा दरबार से बाहर आया तो दाव ताककर फुर्ती से राजा के सामने खड़ा हुआ। करबद्ध प्रार्थना की कि हे राजा! तेरा चोर मैं हूं, मैंने तेरा धन-माल चोरी किया था, पर फिर वहीं रखकर चला आया था। यह जो तेरे कोतवाल के कर्मचारी गरीबों को मार रहे हैं, उन्हें छुड़वा दे, क्योंकि वे सभी निर्दोष हैं, दोषी मैं हूं, मुझे जो दण्ड देना चाहो दे देना।

राजा तथा राजा के पास खड़े हुए कर्मचारी चकित रह गये, कि ऐसा चोर कभी नहीं सुना था। किस दिलेरी तथा ढंग से चोरी करता है, फिर माल-धन छोड़कर चला जाता है। फिर चोर होकर कितना दयावान है कि गरीबों का दु:ख देख नहीं सकता, यह धर्मी है कि अधर्मी ?

तब राजा ने पूछा भाई ! तू इतना माल पदार्थ लेकर छोड़कर क्यों चला गया? कोई जाग उठा था कि तुझे भुलावा हुआ था ?

भूमिया - नहीं राजा ! सच यह है कि मुझे कोई भी पकड़ नहीं सकता था और मुझे कोई भय भी नहीं था। पर मुझे गुरू मिला है जो सत्यलोक से आया है। उसने मुझे तीन सुमति प्रदान की हैं। उनमें से एक यह थी कि नमक खाकर बुरा नहीं करना। जब मैं आपका माल पदार्थ लेकर चला तो आपके उसी स्थान पर पड़ा चूर्ण किसी तरह वैसे ही मेरे मुंह से लग गया। अत: हे राजा ! नमक खाया गया। अब मैं कैसे बुराई कर सकता था। अत: सब कुछ छोड़कर चला गया। राजा यह सुनकर और चकित हो गया कि क्या यह दुराचारी चोर है ! पर कैसे गुरू आज्ञा का प्रेमी है कि उनकी शिक्षा को अक्षरश: पूरा करता है। यह क्या हुआ-शिष्टाचारी कि दुराचारी ? फिर राजा को अपने राज्य शासन की बात सूझी कहने लगा, अरे निर्भय व्यक्ति ! तुझे भय नहीं लग रहा कि मैं तुझे दण्ड दे सकता हूं, कैसे सच-सच बिना मार-पीट के अपने आप मेरे पास आकर बता रहा है?

भूमिया – इसलिये, हे राजन्! कि मैंने अपने सतगुरू को वचन दिया हैं कि कभी झूठ नहीं बोलूंगा। सच के साथ प्यार करूंगा और सच को हृदय में धारण करूंगा। इसलिये मैं सच कह रहा हूं[१]।

राजा (और सोच में पड़कर)-तू पकड़ा नहीं गया, तू अपने आप क्यों आ गया स्वयं को दण्डित करवाने के लिए।

भूमिया- हे राजा ! मैं प्रार्थना कर चुका हूं कि मेरा सतगुरू जी के साथ वचन है कि गरीब मार नहीं करूंगा और आपके कर्मचारी गरीबों को मार-पीट रहे हैं और इसका कारण मैं ही हूं। इसीलिए में आया हूं कि करूं मैं और भरें गरीब यह

---

१. सतिगुरि मिलिऐ सचु पाइआ जिनी विचहु आपु गवाइआ ।। जिनि सचो सचु बुझाइआ ।।
(वार आसा महला १)

क्यों? नहीं करे भूमिया और भरे भी भूमिया ।

राजा और चकित होकर – हैं, अरे तू भूमिया है ? तू तो हमारा एक बड़ा जमींदार है, तू बड़ा दानी प्रसिद्ध है, साधुओं की सेवा करने वाला है, तू चोर ! तुझे तो हमने धर्मी समझ रखा था ।

भूमिया – ठीक है जी ! मैं भी अपने आपको धर्मी समझता था। जो मैं चोरी करके, बटमारी करके धन लाता था, वह मैं परोपकार और साधु सेवा पर लगाता था। में समझता था कि मैं पुण्यात्मा हूं दान जो करता हूं, पर देखो राजा ! एक दिन वह संत आ गया, संत कि स्वयं ईश्वर की ज्योति, उसने मेरे नयन खोले। वह कहने लगा कि तेरे घर कर भोजन नहीं करना, तेरा अन्न पाप की कमाई का है। मैं अपनी ओर से पुण्यात्मा बनकर बैठता, वह कहता कि नहीं तेरी कमाई पापों से भरी हुई है; जिसमें लोगों के दुःख तथा कष्ट और पीड़ा भरी पड़ी है। तो राजा मैं मान गया पर मैंने कहा कि इस काम का मेरा स्वभाव हो चुका है वह छूटने नहीं लगा। तब उस दाता ने मेरे से तीन प्रण लिये जो मैंने बताये हैं। उन्होंने मुझे कहा कि यदि दया का इच्छुक है तो इन पर तनमन से अमल कर। जब वे चले गये तो मैं उनकी तीनों ही आज्ञाओं का पालन करने लगा। उसके बाद जब मैं चोरी करने अथवा डाका डालने के लिए जाता तो कई बार मैं लुटने वालों का दुःख देखकर दुःखी हो जाता। पहले तो दुःख देखकर दुःखी नहीं होता था, जैसे शिकारी मरते हुए पशुओं–पक्षियों को तड़पता हुआ देखकर उदास नहीं होता, वैसे मैं भी मनुष्यों के तड़पने तथा विलाप करने पर द्रवित न होने को वीरता समझता था। पर अब गुरू की बताई हुई दया उत्पन्न होने लग पड़ी, साथ ही उन्होंने कहा था कि इस व्यवसाय का त्याग कर दे, यह बुरा है; पर मेरे से यह छूटता नहीं था। पर अब, जब कभी किसी से छीनता हूं तो दया उत्पन होने लगती है, मैं चाहता हूं कि मैं गरीबों को छोड़ दूं और धनवानों का लूटूं, पर कई बार पता नहीं लगता कि धनवान है कि निर्धन। अतः मुझे चिन्ता हुई कि इस कार्य में अनजाने ही गरीब फंस जाते हैं। इसलिये मैंने कहा कि किसी राजा का घर तोड़कर वर्ष–दो वर्ष आराम करूं और निसंशय हो जाऊं कि मैं गरीबों पर अत्याचार नहीं कर रहा। इसलिए हे राजन् ! तेरे घर चोरी करने के लिए आया था, इन्हीं गरीबों पर अत्याचार न करने की भावना ने अब तेरे सामने लाकर मुझे खड़ा कर दिया है।

दूसरे उपदेश, 'नमक खाकर बुरा नहीं करना' न मुझसे तेरा चोरी किया हुआ धन छुड़ा दिया था। इसी ने सम्बन्धियों, मित्रों और जिनका कभी भी कुछ खाया था उनका बुरा करने से रोक लिया था। तीसरे इस प्रण ने कि सदैव सच कहूंगा, आपके सामने सब कुछ ठीक–ठीक बता देने के लिए कहा है, अब जो मन में आये करो, मैं भोगने के लिए तैयार हुँ। राजा सुनकर और हैरान हुआ, सोचने लगा कि इसका गुरू कोई आश्चर्यजनक बुद्धि का स्वामी है कि किस प्रकार

इससे पाप कर्मों का त्याग करवा दिया है। आदत बुरी होती है, पर किस तरह उस चक्कर में आ गया है कि सारी आदत चोरी-डकैती की इसकी छूट गई। पर हां वह गुरू केवल अकल का स्वामी ही नहीं, अवश्य तेज़ वाला है, सत्य वाला है कि जिसके कहे का इतना गहरा प्रभाव डाकुओं तथा चोरों पर होता है। इस तरह के गुरू के दर्शन करने चाहिए। तब राज फिर प्रसन्नता से मुस्कराया और कहने लगा - तेरा गुरू कहां पर है ?

भूमिया ने कहा - वे अपने रंग में ही न जाने किधर चले गये हैं?

राजा - असका नाम क्या है ?

भूमिया - मैं तो नाम पूछ नहीं सका था पर लोगों ने मुझे बाद में बताया था कि वे गुरू नानक देव जी थे, जो लाहौर के देश से आये थे।

राजा- (कांपकर) हैं ! वही जिसने नूरशाह का उद्धार किया है?

मन्त्री- हां राजा ! वही है गुरू नानक ! इधर से होकर गये सुने हैं ।

राजा (मन में)-शोक ! ऐसे महाज्योति के दर्शन न हुए। (भूमिया से) सुन भाई! तू ने अपने मुंह से आज अपने पापों को माना है, मेरे लिंए योग्य है कि तुझे दण्ड दूं, पर दण्ड देने से तू कैद में जाकर दु:खी होगा, वहां पर तेरे जैसे अन्य लोग तुझे मिलेंगे। भय लगता है कि कहीं तू फिर से उनकी कुसंगति से पापों में न पड़ जाये। यदि मैं तुझे मुक्त करता हूं तो मेरा न्याय पूरा नहीं होता। पर वास्तव में न्याय है पापियों का सुधार करना। मुझे लगता है कि मुझसे बड़ा ब्रह्मलोक का राजा, तुझे दण्ड भी दे गया है और तेरा उद्धार भी कर गया है। तू जो पुण्यात्मा प्रसिद्ध था, आज पापी प्रसिद्ध हो गया है। यश जीवन है और अपयश मृत्यु। अपयश की मौत का दण्ड तुझे अपने आप मिल गया है। शेष वह तुझे सुधार के मार्ग पर इस तरह चला गया है कि तुझे अपने आप सुधर जाना है; न जाने तू सुधर ही गया है। अब तू चोरी नहीं कर सकता, बटमारी भी नहीं कर सकता, क्योंकि इसमें गरीबों को कष्ट मिलता है। धनवानों तथा राजाओं को तू लूट नहीं सकता, क्योंकि जब कभी भी शंका होगी, सबसे पहले तेरे से ही पूछा जायेगा और तूने सच कह देना है, इस तरह तूने अपने आप ही पकड़े जाना है। इसलिए तेरे लिये चोरी करना और बटमारना कठिन हो गया। तेरे सच्चे वैद्य ने तुझे ऐसी औषधि दी है कि तू अब अपने आप ही साधु बन जायेगा, पर तू प्रशंसा का पात्र है कि तूने आज्ञा का पालन किया है और अपने आप को खतरे में डालकर भी आज्ञा का पालन किया है। अत: जब मैं यह देखता हूं कि तू अब भला हो चला हैं और साथ तेरे में बल है, साहस है, शक्ति है, स्वाभिमान है, सच की रक्षा करने का साहस है और अब इन गुणों द्वारा तू इतना भला हो जायेगा, कि महात्मा तेरे दर्शन के लिये आया करेंगे, इसलिये मैं तुझे क्षमा करता हूँ और तुझे मुक्त करता

हूं। पर मेरी आंख तेरे पर रहेगी यह देखने के लिए, कि तू गुरू जी के बताये हुए मार्ग पर चल रहा है कि नहीं और प्रजा को कष्ट तो नहीं दे रहा ।

: ४ :

कुछ समय व्यतीत हो गया, भूमिया सचमुच संत हो गया। उसके सारे पाप-कर्म छूट गये। दया वाले पुण्यदान उसके अंदर निवास कर गये सच उसके अंदर निवास कर गया, जिसने उसके सारे पाप धो डाले। नाम ने उसका अंतस स्वच्छ कर दिया, सूक्ष्म मैल और पिछले कर्मों के पापों का मैल दूर हो गया। नाम ने उसके अंदर सज्जनता का बल भर दिया; हां नाम ने आत्म-रस का रस लगा दिया। भूमिया के अब के समाचार सुनकर राजा को अब पूर्ण रूप से प्रतीत हो आया कि भूमिया पूर्ण संत हो गया है। तब उसने भूमिया को बुलवाकर कहा मैं तुझे गुरू धारण करता हूं, तू मुझे दीक्षा दे। तब भूमिया ने कहा : राजा ! मैं तो अभी शिष्य भी नहीं बना, गुरू तो वह स्वयं है, जिसने मेरे जैसे पापी को पाप से निकाल कर दया में पहुचा दिया। राजा ! मेहर है, नाम रस में पहुंच जाना, मुझे अब ज्ञान हुआ है मेहर है - नाम रस, नाम रस। हां, यदि तू चाहता है तो गुरू नानक देव जी को गुरू धारण कर । राजा ने कहा वे कहां पर हैं ? तब भूमिया ने कहा कि दूर चले गये हैं, पर वे अंतरयामी हैं, प्रेम की आवाज़ दूर से सुनते हैं और प्रेम भावना करके प्रकट हो जाते हैं। तू धर्मस्थान बना, जहां पर कीर्तन हो और आप भी आकर कीर्तन सुना कर। कीर्तन, हे राजा! उस गुरू की वाणी का हो, जो मेरे डेरे के कुछ सज्जन अब करते हैं। गुरू जी तो तब चले गये थे पर मेरे सेवक जाकर नूरशाह से कुछ गुरू जी की वाणी लिखकर लाये थे, हम उसका कीर्तन करते हैं। अतः हे राजा ! यदि श्रद्धा हो आई है तो धर्मस्थान बनवा और यह कार्य कर। मेरे घर में वह सदावर्त नहीं रहा, पर हां गुरू का लंगर चलता है-अपने बल के अनुसार, जो धर्म द्वारा आता है, मैं बांट देता हूं। तब राजा ने धर्मस्थान बनवाया, उस धर्म स्थान में गुरू नानक के नाम का लंगर लगवा दिया। जो कोई अतिथि, परदेशी, जरूरतमन्द साधु सन्त आता, वहीं पर भोजन करता। तीसरे पहर वहां पर कीर्तन होता। भूमिया के सेवक, जिन्हें अब सिख कहा जाता था, कीर्तन करते थे। दूर से भी कभी-कभी सिख आ जाया करते थे। राजा आप कीर्तन सुनने के लिये आया करता था। और कईओं को भी प्रेम हो गया।

भूमिया पर राजा का इतना भरोसा हुआ कि उसको अपने मन्त्रियों में स्थान दे दिया, कि जो सच्चा है, भला है, दयावान है और हृदय में सज्जनता है और ईश्वर का प्रेम रखता है, वह राज्य के कार्य भी धर्म से करेगा।

स्वयं राजा अब इस प्रार्थना में लगा रहता कि हे गुरू नानक! आपके कभी दर्शन हों और दर्शन करके मैं भी अपनी इच्छाओं की पूर्ति करूं। भूमिया जो भूमि

पर बोझ और पाप का नेता था, अब प्यार, धर्म, सज्जनता और सच्चे नाम का प्रचार करने वाला हो गया, थूहर का वृक्ष मलयगिरि का चन्दन बन गया ।

श्री गुरू नानक देव जी से

कलिकाओं की सुगन्धि न्योछावर[१]

आज जब प्रात:काल की मधुर तथा शीतल वायु ने कलिकाओं को बात सुनाई, कि 'यह पक्का समाचार है कि कल गुरू नानक देव जी आयेंगे'; यह सुनकर कलिकाओं ने चाव भरकर कहा, 'री सखी! आज मत खिलना। कल जब प्रियतम आयेंगे तो अनके आने पर सभी इकट्ठी खिलकर सुगन्धि अर्पण कर देना ।'

सतगुरू नानक देव जी से

न्योछावर ओस[२]

हे सखी ! पवन में छिपे हुए जल ने जब यह बात सुनी: कि 'प्यार की झड़ी लगाने के लिए कल गुरू नानक आयेंगे' तो जल पवन के आंचल से निकलकर रात को ओस का रूप धारण करके, धरती पर चरण धूलि को मुख पर लगाने के लिए धरती पर बिछ गया।

सूचना – कामरूप के इलाके से चलकर, गुरू जी जिस इलाके में गये, वहां पर आपका एक महान वन में जाना लिखा है, इस भयंकर वन में कलियुग का निवास होना लिखा है। जगत के लगभग सभी अवतारों के साथ शैतान अथवा माया आदि का उनको पराजित करने का प्रयत्न करना बताया गया है। कलयुग से भी उसी तरह कोई परीक्षा हुई है, जो गुरू बाबा को डिगा नहीं सका। 'कलियुग कोई शैतान की भांति पक्का और ईश्वर की बराबरी करने वाला आकार है' यह बात सिख धर्म में नहीं मानी गई। गुरू बाबा जी ने स्वयं कहा है कि अवगुण और कुकर्म कलियुग हैं और कलयुग कोई मूर्ति अथवा आकार नहीं, जो किसी के पास आकर बैठा अथवा किसी तीर्थ पर निवास करता किसी ने सुना अथवा देखा हो, जैसा कि रामकली महला १ अष्टपदी, 'सेई चन्दु चढ़हि से तारे' नामक वाणी में आपने बताया है कि वही चन्द्र, तारे, सूर्य चढ़ते हैं, कलियुग अलग कैसे आ गया है? किसी देश में आया, किसी तीर्थ पर निवास करता, कहीं महल बनाकर बैठा

---

१. यहां पर लेखक की पंजाबी कविता का अनुवाद प्रस्तुत किया है।

२. तवारीख खालसा से इस घटना का जगन्नाथ में होना लिखा है।

नहीं देखा या सुना। 'कलि लखण वीचारि' कलियुग लक्षणों का नाम है, अत: वे क्या हैं – परमेश्वर का नाम लेने वालों की निन्दा, सच वाले की हानि, तप वाले के तप का भंग होना आदि, 'आखु गुणा कलि आईऐ' गुणों करके कलियुग आया पहचाना जाता है।

कलियुग, जैसे सतगुरू जी की परीक्षा लेने के लिये आया, जो इस प्रकार पुरातन जन्मसाखी में लिखा है –

□ □

३२. कलियुग की कथा

[1]तब गुरू बाबा जी चले गये। जाते - जाते उद्यान में गये, जब वहां पर जाकर बैठे तो कलियुग छलने के लिए आ गया। उसने आकार रूप धारण किया, बाबा जी जे क्या देखा कि बहुत तेज आंधी आई, वृक्ष उड़ने लगे। तब मरदाना बहुत भयातुर हुआ, कहने लगा 'जी पातशाह ! हमें उजाड़ में लाकर मरवा दिया। कबर कफ़न से भी गये।' गुरू बाबा जी ने कहा, 'मरदाना! घबरा मत।' मरदाना ने कहा, - आज तक इतना बड़ा हुआ हूं, यह बला तो देखी तक नहीं, न जाने अब हमारे जीवात्मा के लिए यह क्या आया है?' तब अग्नि का रूप दिखाया। चारों ओर से धुआं उठा, चारों ओर अग्नि ही अग्नि हो गई। मरदाना मुँह ढापकर लेट गया। कहने लगा, 'अब जीवन समाप्त हुआ। तब फिर पानी का रूप हुआ, घटाएँ बँध कर आ गईं, पानी बरसने लगा। पर बाबा जी से दूरी पर ही पानी गिरता रहा। गुरू जी ने कहा, 'मरदाना! मुंह नंगा कर, उठकर बैठ और रबाब बजा'। मरदाना उठकर बैठ गया, रबाब बजाया। बाबा जी ने राग मारू में शब्द उच्चारण किया -

मारू महला ५ घरू २

१ ओअंकार सतिगुर प्रसादि ।।
डरपै धरति अकासु नखत्रा सिर ऊपरि अमरू करारा ।।
पउणु पाणी बैसंतरु डरपै डरपै इंदु बिचारा ।।१।।
एका निरभऊ बात सुनी ।।
सो सुखीधा सो सदा सुहेला जो गुर मिलि गाइ गुनी ।।१।।रहाऊ।।
देह धार अरु देवा डरपहि सिध साधिक डारि मुइआ ।।
लख चउरासीह मरि मरि जनमें फिरि फिरि जोनी जोइआ ।।२।।
राजसु सातकु तामसु डरपहि केते रूप उपाइया ।।
छल बपुरी इहि कऊला डरपै अति धरमराइआ ।।३।।
सगल समग्री डरहि बिआणी बिनु डर करणैहारा ।।
कहु नानक भगतन का संगी भगत सोहहि दरबारा[2] ।।४।१।।

---

१. पुरातन जन्मसाखी में दी हुई वार्तालाप को यहां सरल करके लिखा गया है।

२. यह शब्द पंचम गुरू, श्री अर्जुन देव जी का उच्चारण किया हुआ है। पुरातन जन्मसाखी के लेखक की यह भूल है जो उसने इसको 'महला १' (गुरू नानक देव जी के नाम) पर लिखी है ।

फिर वह दैत्य का रूप धारण करके आया। चुटिया आकाश तक लम्बी कर ली। ज्यों - ज्यों निकट आता था, त्यों - त्यों कम होता जाता था। फिर मनुष्य का रूप धारण करके आया। करबद्ध खड़ा हो गया। बाबा जी ने पूछा, 'भाई तू कौन है?' उसने उत्तर दिया, 'जी क्या आप मुझे नहीं जानते? मैं कलियुग हूं, और आप से मिलने के लिये आया हूं, आप कर्ता पुरुष - ईश्वर के मन्त्री हैं। तब उसने बाबा जी को नमस्कार किया। कहने लगा, 'जी! कुछ मुझ से स्वीकार कीजिये, मेरी प्रार्थना स्वीकार हो'। गुरू बाबा ने पूछा, 'तेरे पास क्या है?' कलियुग ने उतर दिया, 'मेरे पास सब कुछ है, यदि आप कहें तो आप के लिए मोतियों के भवनों का निर्माण करवा दूं, और उनको रत्नों से जड़ित करवा दूं, अगर - चन्दन का लेप कर दूं'। तब गुरू बाबा जी ने सिरी राग में शब्द कहा -

मोती त मंदर उसरहि रतनी त होहि जड़ाऊ ।।
कसतूरि कुंगु अगरि चन्दनि लीपि आवै चाऊ ।।
मतु देखि भूला बीसरै तेरा चिति न आवै नाऊ ।।१।।
हरि बिनु जीऊ जलि बलि जाऊ ।।
मैं आपणा गुरू पूछि देखिआ अवरु नाहीं थाऊ ।।१।। रहाऊ।।

फिर कलियुग ने कहा, 'जी, जवाहरात की धरती बना दूं, और उसको लालों से जड़ित कर दूं। यदि आप कहें तो इन्द्र की मोहिनी लाऊं, तब गुरू जी ने दूसरा पद कहा -

धरती त हीरे लाल जड़ती पलघि लाल जड़ाऊ ।।
मोहणी मुखि मणी सोहै करे रंगि पसाऊ ।।
मतु देखि भूला बीसरै तेरा चिति न आवै नाऊ ।।२।।

तब कलियुग ने कहा कि 'यदि आप यह भी नहीं लेते तो सिद्धि और ऋद्धि ले लो और गुप्त धरती में चलो और यहां से हज़ारों कोसों पर जाकर प्रगट हो जाओ'। तब गुरू जी ने तीसरा पद कहा -

सिधु होवा सिधि लाई रिधि आखा आऊ ।।
गुपतु परगटु होइ बैसा लोकु राखै भाऊ ।।
मतु देखि भूला वीसरै तेरा चिति न आवै नाऊ ।।३।।

तब कलियुग ने कहा, 'कुछ ले लीजिये, सुलतान बन जाइए, राज्य सम्भालिये'। तब गुरू जी ने चौथा पद कहा -

सुलतानु होवा मेलि लसकर तखति राखा पाऊ ।।
हुकमु हासलु करी बैठा नानका सभ वाऊ ।।
मतु देखि भूला वीसरै तेरा चिति न आवै नाऊ ।।४।।१।।

तब कलियुग ने प्रदक्षिणा की, आकर चरणों पर झुका। कहले लगा, 'जी

मेरी गति किस तरह होगी?' तब गुरू जी ने कहा, 'करोड़ों में से कोई एक मेरा सिख होगा, उसके कारण तेरी गति होगी।'

कलियुग चरणों पर झुका। बाबा जी ने विदा किया। बोलो वाहिगुरू ।

सूचना- इससे आगे पुरातन जन्मसाखी में कीड़ नगर का प्रसंग है। फिर एक गांव में गये जहां पर बहुत निरादर हुआ, सदगुरू जी ने उस नगर को आबाद रहने का वरदान दिया। जब अगले गांव में गये तो बहुत प्रेम और सत्संग हुआ; वहां पर वरदान दिया 'उजाड़ हो'। मरदाना ने कहा कि यह अच्छा न्याय है? सदगुरू जी ने कहा, पहले गांव वाले लोग रोगी शरीर की भांति हैं, वे जहां पर जायेंगे दूसरों को भी रोग लगा देंगे। वह बुराई एक ही स्थान पर दबी हुई अच्छी है। दूसरे गांव के लोग चन्दन के समान हैं, जितने दूर-दूर जायेंगे, अपनी सुगन्धि लेकर सत्संग, सज्जनता, प्रेम तथा भक्ति का प्रचार करेंगे। इससे आगे फिर सदगुरू जी का आसा देश में जाना और शेख फरीद के साथ वार्तालाप वाली साखी लिखी है।

फिर बिसिया देश में जाना लिखा है। झण्डा बाढ़ई का प्रसंग यहीं का है। नगर का नाम छुठघाटका दिया हैं। 'छुटघाटका' (अर्थात चिट्टगांव) और 'समुद्र के रेतस्थल' से पता चला कि बिसियार देश उस इलाके का नाम है जो असाम से सागर तक जाने गया है, सोन द्वीप आदि ठिकाने भी यहीं पर ही हैं। यहां से सागर में जाने और सागर के साथ-साथ जहाज़ द्वारा यात्रा करके जगन्नाथ पहुंचना भी ठीक लगता है।

□ □

३३ आबाद रहो – उजड़ जाओ

[१]एक नगर में गुरू नानक जी को किसी ने आदर न दिया। 'आबाद रह' वरदान देकर आप आगे चल पड़े। फिर एक नगर में आदर हुआ और असीम प्यार हुआ। वहां पर गुरू जी ने यह वरदान दिया कि यह लोग उजड़ जायें। तब मरदाना ने हंसकर कहा, गुरू जी! आपने यह क्या न्याय किया है? आपने वरदान वालों को अभिशाप और अभिशाप वालों को वरदान क्यों दिया? तब सदगुरू जी ने मरदाना को कहा, कि यह दोनों वरदान हैं। पापी लोग एक ही स्थान पर सिमटे रहें और दूसरे लोगों को जाकर छूत न लगा दें। दूसरी ओर भले नगर के लोग सारे संसार में बिखर जायें। वे जहां–जहां पर जायेंगे सज्जनता को फैलायेंगे। गन्दगी को एक ही स्थान पर दबाना उचित है। सुगन्धि को सारे संसार में फैलाना वरदान है।

सूचना – इससे आगे आसा देश में आये, वहां पर शेख फरीद मिला।

पंजाब में शेख फरीद का नाम प्रसिद्ध है और इनके श्लोक अब तक बहुत से लोगों को कण्ठस्थ हैं। श्री गुरू ग्रन्थ साहब में इनकी वाणी भक्तवाणी में सम्मिलित है।

फरीद जी का जन्म सन् ११७३ ई० के लगभग हुआ और इनका देहान्त १२६६ ई० से पहले हो गया। श्री गुरू नानक देव जी का जन्म १४६९ ई० में हुआ, इसलिये श्री गुरू जी के दर्शन जिस फरीद ने किये हैं, वह शेख ब्रह्म है, पहला फरीद नहीं। पहले फरीद ने अजोधन डेरा जमाया था, जो उनके चेलों के नदी में वुज़ू (मुसलमानों की नमाज़ पढ़ने से पहले हाथ मुंह धोने की क्रिया) करने के कारण 'पाक पट्टन' पवित्र पट्टन (घाट) कहलाने लगा। धीरे–धीरे हिन्दुओं तथा बौद्धों के समय का शताब्दियों का पुराना नाम 'अजोधन' लोप हो गया और नगर का नाम 'पाक पट्टन' पड़ गया। यहां पर फरीद जी बहुत प्रसिद्ध फकीर हुए। एक भारी गद्दी की स्थापना करके गये। उनकी सन्तान गद्दी पर बैठती रही। इनके कोई दशम स्थान पर शेख इब्राहीम गद्दी पर बैठा। इस व्यक्ति के लक्षण, उदासी, तप, हठ, भक्ति, उपवास सभी पहले फरीद जैसे थे। लोग इसको फरीद सानी, फरीद सालस के नाम से पुकारने लग पड़े। प्राय: लोग शेख ब्रह्म, शाह ब्रह्मशेख, ब्रह्म साहब और बल राजा आदि नामों से भी स्मरण करते थे। इसने कम–से–कम गुरू जी के दर्शन दो बार किये थे, इसके साथ गुरू जी की गोष्ठी हुई है।

---

१. लेखक की पंजाबी कविता का अनुवाद प्रस्तुत किया है।

जन्मसाखियों, नानक प्रकाश तथा अन्य ग्रन्थों में इसका नाम शेख ब्रह्म दिया है, और बताया है कि –

'पट्टण का पीरू शेख फरीदु था, तिसके तखति पर शेखु ब्रह्म था'। फिर लिखा है, 'गोष्ठी शेख ब्रह्म बाबे नाल कीती।'

इससे कोई संशय नहीं रहता कि गुरू जी की गोष्ठी इसी ब्रह्म (इब्राहीम) फ़दीन सानी अथवा सालस के साथ हुई है और जो वाणी ब्रह्म गुरू जी के साथ वार्तालाप करते समय कही उससे सिद्ध होता है कि श्री गुरू ग्रन्थ जी में शेख फ़रीद की जो वाणी लिखी है, वह उसी फ़रीद सानी शेख इबराहीम की है। आपकी रचना में फ़रीद नाम आता है, इस शेख ने उसकी गद्दी पर होने के कारण उसी तरह प्रयुक्त किया है, जैसे 'नानक' नाम सभी गुरूओं ने वाणी में प्रयुक्त किया है।

दो बार सतगुरू जी के दर्शन इस शेख ने किये थे। पहली बार तो यों लगता है कि शेख घर-बार का त्याग करके किसी वन में तपस्या कर रहा है, जिस देश का यह वन है उसका नाम 'आसा' देश लिखा है। गुरू बाबा ने उसके हट तप को शुष्क बताया और नाम का रसदायक जीवनकण प्रदान किया। लगता है कि इसके पूर्वज पहले सांसारिक ऐश्वर्य वाले भी थे। इसे वैराग्य था और यह उसी प्रकार का जीवन खोजता था, जिस तरह कि पहले फरीद जी का सुन चुका था और जप, तप, व्रत, भक्ति द्वारा उसकी प्राप्ति समझता था, इसलिये यह घर से कई बार बाहर जाकर दूर-दूर वनों में कठिन तप किया करता था। गुरू जी, जो जलते हुए जगत की रक्षा के लिये, जगत का उद्धार करने के लिये आये थे, वे स्वयं हठों तथा तपों में ईश्वर की खोज कर रहे शौक तथा लग्न वाले व्यक्तियों को जीवनकण प्रदान करके सौभाग्य प्रदान करने के लिये स्वयं जाया करते थे और जहां पर जैसे कोई लगा था, वहां से ही उसकी भूल की घुण्डी खोलकर उसको ईश्वर का प्रेमी बना देते थे। आपका मुख्य उद्यम यह रहता था कि किसी तरह आत्मायें ईश्वर के प्रेम में जीवित हो उठें, जीवन पाएं और जीवित हो जायें।

अत: गुरू जी फरीद को पहली बार वन में मिले और उसकी भूल दूर करके सुमार्ग पर चला गये। दूसरी बार उसे पाक पट्टन में मिले, तब वह अपने ठिकाने से चलकर गुरू जी के दर्शन करने के लिये आता है। इस भेंट में उस पर फकीरों वाली हृदय की विशालता की कृपा हो जाती है और उसे मुक्ति की प्राप्ति का वरदान मिलता है। भाई मनी सिंह जी की जन्मसाखी में दूसरी बार भेंट होने से पहले गुरू जी मरदाना से कहते हैं: – 'मरदाना! हमें पट्टन जाना है, क्योंकि शेख ब्रह्म को उपदेश दिया था, अत: देखें कि उसे उपदेश याद है कि भूल गया है।

---

१. आशा से तात्पर्य – असम देश है, जैसा कि पीछे उल्लेख आया है।

इससे भी अनुमान है कि पहली भेंट जो आसा देश में हुई है, वह इसी शेख ब्रह्म के साथ हुई है।

आसा देश में जो बातचीत फरीद के साथ हुई उसमें वह ठेठ पंजाबी बोलता है। उन वाक्यों में जो श्री गुरू ग्रन्थ साहब में आये हैं। जैसा कि 'बेड़ा बंधि न सकिओ', वे शेख फरीद की वाणी में सम्मिलित हैं। इस बात से भी सिद्ध होता है कि पट्टन वाले फरीद दोनों एक ही थे।

□ □

३४ शेरव ब्रह्म के साथ पहली गोष्ठी

जब लग दरसु न परसै प्रीतम तब लगु भूरव पिआसी ॥
दरसनु देरवत ही मनु मानिआ जल रसि कमल बिगासी ॥

(सारंग महला १)

: १ :

समय तो प्रात:काल का था, पर धूप चढ़ आई थी। एक वन के समीप एक गांव था। इस गांव के बाहर वन के निकट एक कुआं था। एक युवती इस कुएँ पर रवड़ी थी और पानी रवींच रही थी। बाल्टी भरती थी और बिरवेर देती थी। फिर भरती थी और गिरा देती थी। इतने में एक तपस्वी फ़कीर जो तपों हठों तथा तपस्या के कारण दुर्बल थे, पर आंरवें लाल रंग की थीं, वे आ निकले। चाहे दुर्बल थे पर चेहरा आभापूर्ण था। कुएं के समीप आकर कहने लगे- बिटिया! थोड़ा पानी पिला दे।

युवती ने बाल्टी डाली थी, कहने लगी साईं जी! बैठ जाओ, पिलाती हूं। पर युवती ने पानी की बाल्टी भरकर बिरवेर दी और पहले की भांति भरती बिरवेरती रही। कुछ समय प्रतीक्षा करके साईं जी ने फिर कहा, पर कुछ क्रोध के साथ- बिटिया पानी पिलायेगी कि नहीं?

युवती- पिलाती हू फ़कीर जी! बैठ जाओ, यहां चिड़ियाँ तो नहीं कि 'मर जा' कह देने से मर जायेंगी ।

फ़कीर बैठ गया क्रोध भी कम हुआ, पर आश्चर्य हुआ, कि मैं तो चिड़ियों का कौतुक निर्जन वन में कर बैठा हूं, इसे कौन बता गया है। हो न हो यह युवती अवश्य ही आत्मबल वाली है। मन को कहा, बैठ जा और रहस्य का पता लगा।

वास्तव में बात यह थी कि इस फ़कीर को आज प्रात:काल को गव्हर वन में तप करते-करते जब तड़का हो गया और चिड़ियाँ चिहुंकीं, प्रकाश फैला और प्रकृति अपने शीतल स्वभाव में बन-ठन कर दिरवाई दी तो कोई विस्मय-भरा प्रभाव न पड़ा, तपों में दबे रहने के कारण चिड़ियों के बोल कड़ुवे लगे और जिस मन की मूकता की सी दशा में यह समाधि मानता था उसमें चिड़ियों के बोल इसको विघ्नकारी लगे और क्रोध में कहने लगा: हे ईश्वर! यह मर जायें। जब चिड़ियां फड़क कर गिरीं फकीर को रव्याल आया कि मैंने क्यों इन निर्दोषों को दुराशिष दी, पर फिर रव्याल आया कि एक तो पता चल गया कि मेरे ऊपर अल्ला (ईश्वर) दयालु हुए हैं, जिसके कारण मेरे वचनों में शक्ति आई है। भला परीक्षा तो लें,

अत: उसने फिर कहा: ईश्वर करे, जीवित हो जाओ, तब वे झटपट उड़ गईं। इस प्रसन्नता ने अब उसको टिकने न दिया, उठकर अपनी कुटिया की ओर चल पड़ा। सूर्य ऊंचा हो आया था और जब वह कुएं पर पहुंचा तो प्यास लग रही थी।

अब जब युवती बहुत सा पानी गिरा चुकी तो उसने डोल भरा और कहा, आओ साईं के लोग! पानी पी लो। फ़कीर आगे हुआ प्यास लग रही थी, अंजुलि भरकर पानी पी लिया और 'अलहमदुलिल्ला' (ईश्वर की कृपा हो) कहकर बैठ गया। फिर युवती से कहने लगा : बिटिया! तू मुझे बता कि चिड़ियों वाली बात का तुझे कैसे पता चल गया और तूने यह जल क्यों व्यर्थ गिराया; और मुझे बाद में पिलाया ?

युवती - हे ईश्वर के प्यारे! इन बातों को जान लेना कोई कठिन बात नहीं। परमेश्वर की प्राप्ति कठिन है, करामातें तो वैसे ही आ जाती हैं।

फ़कीर- तूने यह करामात कहां से प्राप्त की है ?

युवती-मैंने कोई तपस्या थोड़े ही की है। मैंने तो अपने पति की पूजा की है, पतिव्रता हूं और मेरा मन पति-प्रेम में मग्न रहता है, ऐसी बातें तो अपने-आप दीखने लग जाती हैं। तुझे जल इसलिये पहले नहीं पिलाया था कि हे ईश्वर के फ़कीर! यहां से बारह कोस पर मेरी बहन का गांव है, वह एक महापुरुष के दर्शनों के लिये गई है, उसके पड़ोस में आग लगी हुई है और वह आग मेरी बहन के घर को लगने वाली थी कि सवेरे ही मैंने पति के ध्यान में मग्न बैठी ने जान लिया अत: डोल लेकर कुएं पर भागकर आ गई और जो जल गिराती रही हूं, उससे आग बुझाती रही हूं। तुम्हारी प्यास बुझाने की अपेक्षा वह काम अधिक ज़रूरी था, इसलिये पहले आग बुझाई है। बहन का घर बच गया है और सारा नगर जलने से बच गया है, यदि आग फैल जाती तो न जाने कितना नुकसान हो जाता।

यह सुनकर फ़कीर चकित हुआ कि इसे न केवल दीख ही पड़ता है बल्कि शक्ति भी हो आई है। फिर कहने लगा-बिटिया! सच बता तूने यह शक्ति कहां से प्राप्त की है युवती कहने लगी-हे ईश्वर के प्यारे! प्राप्त कहां से करनी थी, अपने आप आ गई है।

फ़कीर-क्या तुझे ईश्वर का प्रेम नहीं? युवती कहने लगी, मैंने पति को अपना प्रियतम माना है और उसी में अपना मन जोड़ा है, यह जो आप 'प्राप्ति' कह रहे हैं, यह तो तमाशे हैं, इनको 'प्राप्ति' नहीं समझना चाहिये। प्राप्ति तो मैंने अपने पति परमेश्वर की की है, और मेरे पति ने की है परमेश्वर की प्राप्ति, महापुरुष की संगति द्वारा, जिसके दर्शनों के लिए बहन चलकर गई है।

फ़कीर कहने लगा-क्या तुझे साईं के दर्शनों की इच्छा नहीं?

युवती कहने लगी-मुझे तो इच्छा मेरे पति की है, मेरे पति को मेरी हर

प्रकार की चिन्ता है, वह मुझे साईं के पास अपने साथ लेकर जायेगा! जैसे यहां पर मेरी सारी रक्षा करता है वहां भी रक्षा वह आप ही करेगा ।

: २ :

दिन ढल रहा था कि एक चरवाहे को भेड़ें चराते हुए प्यास लगी, यह भी उपरोक्त कुएं पर पानी पीने के लिए आया। जब कुएं पर पहुंचा तो क्या देखता है कि चौखटे के बीच में एक लकड़ी पड़ी है, जिसके साथ सांकल बांध रखी है। आगे होकर जब सिर झुकाकर देखा तो क्या देखता है कि पांव के साथ सांकल बांधकर और वह सांकल उस लकड़ी में डालकर, एक व्यक्ति कुएं में लटक रहा है। पहले तो डरा कि न जाने कोई अपराधी हो, जिसे हाकिम ने दण्ड देकर उलटा लटका दिया हो, पर फिर जब बीच में से आवाज़ आती सुनाई दी तो उसने पूछा– हे ईश्वर के प्यारे ! तू कौन है? जब आवाज़ आई–दुखियों से कुछ मत पूछ, पानी पीकर चलता बन। उसने कहा, भैया ! क्यों इस तरह कष्ट सहन कर रहे हो? तब आवाज़ आई–भैया ! खुदा से भेंट करने के लिये। चरवाहा कहने लगा, यो भी कभी खुदा मिला है? फ़कीर कहने लगा तो फिर क्या भेड़ें चराने से मिलता है? भेड़ों के चरवाहे को बात पसंद आई। उठकर भागा। एक और क़ुएं पर पहुंचा। शीघ्रता से घास इकट्ठी करके रस्सी तैयार की और कुएं पर एक लकड़ी डालकर यह रस्सी उसके साथ बांधकर एक सिरा अपने पांवों से बांधकर कुएं में लटक गया और अपने भोले तथा सच्चे मन से प्रतीक्षा करने लगा कि अभी ईश्वर आता है, अभी आता है। चार घड़ी के पश्चात ईश्वर के प्यारे महापुरुष आ पहुंचे। कुएं पर चढ़ गये कुएं के अन्दर झांककर कहा, हे ईश्वर के प्यारे! किस अपराध के कारण दुख सहन कर रहे हो? वह कहने लगा–मैंने कोई अपराध नहीं किया, खुदा के दर्शनों के लिये लटक रहा हूं। साईं के प्यारे ने बताया है कि भेड़ें चराने वाले को भेड़ें चराने से ईश्वर नहीं मिल सकता, पर यों लटकने से मिलता है। इतने में पानी लेने के लिये दो–चार व्यक्ति और वहां पर आ गये थे। आपने कहा, भाई इसे निकालिये! जब निकाला तो उसकी आंखें, मस्तक, चेहरा लाल और श्वांस तेज लेने के कारण उसकी दशा अर्धविक्षिप्त सी हो रही थी। आपने आज्ञा दी कि इसके हाथ–पांव दबाओ। कुछ समय तक ऐसा करने से उसकी दशा सुधर गई, तब उसने नयन भरकर देखा–चेहरे पर असह्य आभा देखकर चरणों पर झुक गया, 'मेरे अल्ला, मेरे अल्ला ! तू आ गया है, हैं? तू कितना अच्छा है। आ, मैं बलिहारी तेरे आने पर।' वह यों प्यार के वाक्य कहता जाता था और ईश्वर का प्यारा सिर पर दया का हाथ फिरता जाता था। जब प्यार के हाथ फिराने से उसका मन शीतल हो गया तो आपने सिर उठाया और फिर प्यार देकर कहा– हे ईश्वर के प्यारे! ईश्वर का तेरे हृदय में निवास हुआ है। जिसमें भाव–भक्ति और उसके दर्शनों का

प्यार आया है। ईश्वर की ओर पहला कदम-ईश्वर की लालसा है[१]। फिर देख ईश्वर की दया ही हमें पानी की प्यास लगाकर इस कुएं पर ले आई है, क्योंकि तेरी रस्सी कच्ची थी और टूटने वाली थी, उसके टूटने से पहले तेरी प्रीत की सच्चाई को फल लगा, वह हमें यहां ले आया और तू कुएं में गिरकर डूबकर मर जाने से बच गया, ईश्वर की दूसरी दया यह है। अब रही ईश्वर के दर्शन की बात, अतः उसके लिये कुओं में मत लटक और जल में मत झांक-उसकी अपेक्षा अपने अन्दर झांक। ईश्वर का वहां निवास है, अल्ला, खुदा का वही ठिकाना है। पर उसका रूप नहीं है, उसकी शक्ल नहीं, वह विशुद्ध सौन्दर्य है, अतः उसको अपने अन्दर ही आवाज़ लगाया कर, उसका स्मरण किया कर। उसका सौन्दर्य नयनों द्वारा नहीं देखा जा सकता, उसका रूप प्यार और स्वाद है, जब प्यार सहित याद करेगा और आनन्द आया करेगा तो समझ लेना कि अल्लाह के दर्शन हो रहे हैं। उसका रूप तो आनन्द और स्वाद है। चरवाहा कहने लगा-जैसा स्वाद आज आया है! अल्ला वाले कहने लगे- हां इससे भी और अधिक। चरवाहे ने कहा-फिर तू ही क्यों खुदा नहीं है, व्यर्थ बहाने लगा-लगाकर और ही और बातें बनाए जाता है; तू ही है, तू ही है, हमने पहचान लिया है। अल्ला वाले ने फिर सिर पर प्यार दिया और कहा, जैसे मैं कर रहा हूं, तू वैसे ही कर।

चरवाहा-और फिर मैं भेड़ें चराता फिरूं और तू अपने घर को भागकर चला जाये। झूठी बात, जैसे उस कुएं में लटके हुए के पास से भाग आया है, मेरे से भी भागता है। न भाई! हमने कुएं में लटककर मृत्यु के मुंह में आकर आपको खोजा है। मेरे अल्ला जी! अब नहीं जाने दूंगा, मेरे पास ही रहो न। दूध पिलाया करूंगा, मक्खन खिलाया करूंगा, मक्खन से तलवे मला करूंगा, हे भले पुरुष जी मेरे पास रहो न। यह कहकर बांह पकड़ ली और साथी से कहने लगा; आ भाई जबराईल! आ न तू भी साथ आ । यह कहकर उसकी बांह भी पकड़ ली और चल पड़ा। सबकी आशा को पूर्ण करने वाले भी साथ चल पड़े। उसकी सफाई और सचाई पर प्रसन्न हुए, दया करते हुए उसके अनजान हृदय में ईश्वर का निवास करके उसे उसमें स्थित करते हुए, दो-चार दिन उसकी कुटिया में उसके पास रहे। जब वह भोला परन्तु सच्चा व्यक्ति साईं के अनुभव में आ गया, तब चल पड़े[२]।

---

१. गुरू अर्जुन देव जी के कथानुसार :-

जिमु जन कऊ प्रभ दरस पिआसा ।। नानक ताकै बलि बलि जासा ।।५।।

२. यह कुएं में लटकने की कथा भी ज्ञानी लोग, शेख फ़रीद के सम्बन्ध में सुनाया करते थे ।

: ३ :

गहन वन, घने वृक्ष, कहीं-कहीं धूप छन-छनकर पड़ रही है। हां एक स्थान पर यह तपस्वी-तपो-मूर्ति बैठा हुआ है। मन में विचार कर रहा है कि शोक! मेरा अल्ला उस युवती के पति के से शरीर वाला होता तो में भी उसकी सेवा करता, भोजन कराता, सेवा-सुश्रुषा करता, उसकी आज्ञा का पालन करता, उसे प्रसन्न करता। मैं भी उस युवती की भांति शक्तिवान और अल्ला वाला हो जाता। अद्वितीय, बेपरवाह, बेरंग और अरूप ईश्वर की कहां से खोज करूं, कैसे सेवा करूं, किस तरह प्रसन्न करूं। दुःख! यह रोग मेरे पीछे न पड़ा होता। शोक, मैं भी खाता-पीता और आनन्द लेता। छीं ¨ छी अरे नास्तिक! छीं ¨ छीं ¨ हे मेरे असाध्य मन! ईश्वर पापों के लिये तुम्हें क्षमा प्रदान करे। यह फ़कीरी भली। भोगों में क्या पड़ा है। सारा संसार उसी कार्य में लगकर आपा खोकर और दुःखी होकर दुर्बलता तथा रोगों के कारण मर रहा है। यह तपस्या शुभ है, यह भूख, यह तप, यह लालसा सभी शुभ हैं। मूकतां ¨ हैं ¨ आवाज आ रही है। वन में कौन बोल रहा है। (कानों में अंगुली देकर) राग मत सुन, शरह रोकती है ¨ हां, वर्जना करती है। भला यदि कोई व्यक्ति ईश्वर की स्तुति राग में सुने, तो राग क्यों बुरा हुआ। (कानों में से अंगुली निकालकर) सुन भाई सुन, खुश्की हो रही है, सूख रहा हूं। न जाने कोई ईश्वर की हरियाली हो। यदि कोई अपवित्र गाना हुआ तो कान बन्द कर लेना। यदि कीर्ति हुई तो सुन लेना। (कान लगाकर और साँस रोककर) हां यह तो ईश्वर की कीर्ति की बात है। हैं, ईश्वर के यश को राग में सुनकर लकड़ी हो रही मेरी हड्डियों में जीवन आ गया है। (फिर कान लगाकर) ¨ अब नहीं सुनाई देती। बस चुप, ईश्वरीय वाणी समाप्त हो गई। ¨ भाग्य, मेरे भाग्य! अब फिर तपस्वी ने गले में लटका रखी काठ की रोटी को दांतों से काटा और दो-चार कदम चलकर बैठ गया ¨, अल्ला हू (हे ईश्वर) ¨।

¨ जंगल में से पैरों के चलने की सरसराहट हुई, (चौंककर) दिन के समय नहीं निकलते, यह मनुष्यों के पांवों के चलने की आवाज है। ¨ (देखकर) वे आ रहे हैं ? कौन हैं? (ध्यान लगाकर) फ़कीर लगते हैं चलो अच्छा हुआ, अल्ला वाले आये हैं, अल्ला की बातें ही सही कुछ सुनेंगे। नहीं नहीं, यह तो न जाने हिंदू हैं मूर्तियों की बात करेंगे। हिन्दू बुरे हैं, काफ़िर हैं। ¨ पर अल्ला ने इन्हें क्यों बनाया? कोई रहस्य है, उसने जो बनाये तो फिर मैं क्यों कहूं कि न हों। यदि इनकी आवश्यकता न होती तो इन्हें ईश्वर बनाता ही क्यों। फ़रीद! बस कर, घर बार का त्याग करके, तप साध कर, सूखकर पिंजर बन गया, फिर भी घृणा, द्वेष। ईश्वर तो घृणा नहीं, द्वेष नहीं। तू क्यों? ¨ पुराने द्वेष? पुराने द्वेष बेचारे हिन्दुओं के साथ क्यों। हज़रत के साथ, अली के साथ, कि ईश्वर के भेजे हुए महापुरुषों के साथ

हिन्दुओं ने तो झगड़ा नहीं किया। वे तो उस ओर के यहूदी, नसारा (ईसाई) अथवा अन्य जातियों के व्यक्ति होंगे। पहले तो अरब के मूर्तिपूजक हज़रत (अवतार) के अपने ही भाई-बन्धु थे। द्वेष उन्होंने किया हिन्दू वहां पर कहां थे? हमारे कट्टर काज़ी भी अद्‌भुत हैं। बेचारे हिन्दुओं के सथ घृणा क्यों? इन्होंने तो तब कुछ नहीं बिगाड़ा था। अत: हे मन! किसी के साथ भी घृणा मत कर। घृणा करने से अपने अन्दर घृणा का निवास होता है, घृणा शैतान के से स्वभाव वाली है, अत: घृणा करने से अन्दर शैतान आकर निवास करता है फिर जहां पर घृणा, वहां पर ईश्वर कहां? न जाने इसीलिये परिश्रम को फल नहीं लगता। घृणा मत कर, आने दे, कोई भी हो। फ़कीर तो हैं..... हैं...शीतलता भी पड़ रही है।

इतने में वे दोनों भी पहुंच गये, फ़कीर उठा, दो कदम आगे बढ़ा और कहने लगा, 'अल्ला, अल्ला फ़कीर! हे फ़कीर' तब वह मोहनी मूरत वाले कहने लगे-'अल्ला, फ़रीद तपस्वी, अल्ला, अल्ला'। फ़कीर ने हाथ बढ़ाया और दोनों हाथ मिलाकर बैठ गये।

फ़रीद- हिन्दू कि मुसलमान ?

गुरू जी - अल्ला, अल्ला और अल्ला के ।

फ़रीद- सौभाग्य, गृहस्थी अथवा त्यागी ?

गुरू जी - दोनों नहीं, और दोनों ही ।

फ़रीद- दोनों.... । भाई साईं के प्यारे! (कांपकर) दो किश्तियों पर पैर मत रख, या ईश्वर की खोज कर या संसार का बड़प्पन[१]।

गुरू नानक देव जी - भाई यह दो किश्तियां हैं, दो किश्तियों में ही पांव रखना अच्छा है, कोई तो पार जा लगेगी। गृहस्थी की किश्ती में भी चलतें हैं और त्यागी की भी, न जाने कौन सी पार पहुंचेगी ।

फ़रीद-वह कैसे ?

गुरू जी - किश्तियों का दृष्टांत ठीक नहीं। न पानी है न किश्ती है, न कोई डूबती है, न पार लगती है, पदार्थ तो 'सच' है और जो धन इकट्ठा करना है, वह भी 'सच' ही है। वह सर्वव्यापी है और स्वाभाविक ही प्रत्येक स्थान पर है। अत: सच को प्यार करो, चाहे वह हिन्दू किश्ती हो चाहे मुसलमान किश्ती हो[२]।

---

१. अकै तां लोड़ मुकदमी अकै तां अलहु लोड़ ।
दुहु बेड़ी ना लतु धरुज नतु वंअहु बखरू बोड़ ।। पुरातन जन्म साखी

२. गुरू नानक देव जी के उत्तर जन्मसाखी में इस प्रकार श्लोकों में लिखे हैं :-
दुही बेड़ी लत धर, दुही बखरु चाड़ि ।। कोई बेंड़ी डुबसी कोई लंघे पारि ।।
ना पाणी ना बेड़ीआ ना डुबै ना जाइ ।। नानक वखरु सच धन सहजे रहिआ समाइ ।।
(पुरातन जन्म साखी)

फ़रीद – माया को तो छूना ही बुरा है, जो इसमें लगे, सो गये, यह झूठी है, इससे उत्पन्न किये हुए खेत उजड़ जाते हैं। यह प्रत्यक्ष है।

गुरू जी – भाई ईश्वर के प्यारे! जगत का मूल तो माया का सम्बन्ध हुआ, इसी में से तो सच का खेत लगाया जाता है। यदि राजा सचेत हो तो खेत अंबार बन जाता है, उजड़ता नहीं।

हठी तपी फ़रीद कांप उठा और ईश्वर की ओर ध्यान करके कहने लगा :-

फरीदा तनु रहिआ मनु फटिआ तागति रही न काइ ।
उठी पीरि तबीब थीओ कारी दारू लाइ ।।

(पुरातन जन्मसाखी)

गुरू जी – हे ईश्वर के खोजी जी ! युवावस्था से साईं की ओर लग पड़े पर सज्जन, परख करो। (तब श्री गुरू जी ने अपना रचित श्लोक कहा) ।

सुणि मुंधे हरणाखीए गूढ़ा वैणु अपारु ।।
पहिला वसतु सिञाणिकै तां कीचै वापारु ।।
दोही दिचै दुरजना मित्रा कूं जैकारु ।।
जितु दोही सजण मिलनि लहु मुंधे वीचारु ।।
तनु मनु दीजै सजणा ऐसा हसणु सारु ।।
तिस सऊ नेहु न कीचई जि दिसै चलणहारु ।।
नानक जिनी इव करि बुझिआ तिना विटहु कुरबाणु ।।२।।

(सलोक वारां ते वधीक महला १)

यह सुनकर फ़रीद ने भी एक शब्द गायन किया :-

बेड़ा बंधि न सकिओ बंधन की वेला ।
भरि सरवरु जब ऊछलै तब तरणु दुहेला ।।१।।
हथु न लाइ कसुंभड़ै जलि जासी ढोला ।।१।।रहाऊ।।
इक आपीनै पतली सह केरे बोला ।।
दुधा थणी न आवई फिरि होइ न मेला ।।२।।
कहै फरीदु सहेलीहो सहु अलाएसी ।।
हंसु चलसी डुमणा अहि तनु ढेरी थीसी ।।३।।२।।

(सूही ललित फरीद जी)

फ़रीद ने यह शब्द सूही राग में गाया। सतगुरू जी ने भी तब सूही राग में ही अपना शब्द गया और उसका उत्तर दिया :-

जप तप का बंधु बेड़ुला जितु लंघहि वहेला ।।
ना सरवरु ना ऊछलै ऐसा पंथु सुहेला ।।१।।
तेरा एको नामु मंजीठड़ा रता मेरा चोला सद रंग ढोला ।।१।।रहाऊ।।
साजन चले पिआरिआ किऊ मेला होई ।।

जे गुण होवहि गंठीड़ीऐ मेलेगा सोई ।।२।।
मिलिआ होइ न वीछुड़ै जे मिलिआ होई ।।
आवागऊणु निवारिआ है साचा सोई ।।३।।
इऊमै मारि निवारिआ सीता है चोला ।।
गुरुबचनी फलु पाइआ सह के अंमृत बोला ।।४।।
नानकु कहै सहेलीहो सहु खरा पिआरा ।।
हस सह केरीआ दासीआ साचा खसमु हमारा ।।५।।२।।४।।
(सूही महला १)

यह सूही राग का शब्द हृदय बेधक स्वर में सुनकर फ़रीद का मन शीतल हुआ, परमेश्वर के प्यार का यश सुना, प्यार, मिलाप तथा त्याग की दशा में प्रसन्नता के शब्द सुने और समझे तब सतगुरू जी बड़े प्यारे लगे, मन ने कहा: यह सच का रूप है, सत्य का प्यारा, सच का बन्दा, यह अन्दर से ईश्वर का प्रेमी है, यह सिजदे (नमस्कार) के योग्य है। तब उसने उस समय आसा राग में निम्नलिखित शब्द गाया :-

दिलहु मुहबति जिंन सेई सचिआ ।।
जिन मनि होरु मुखि होरु सि कांढे कचिआ ।।१।।
रते इसक खुदाइ रंगि दीदार के ।।
विसरिआ जिन नामु ते भुइि भारु थीए ।।१।।रहाऊ।।
आपि लीए लड़ि लाइ दरि दरवेस से ।।
तिन धंनु जणेदी माऊ आए सफलु से ।।२।।
परवदगार अपार अगम बेअंत तू ।।
जिना पछाता सचु चुमा पैर मूं ।।३।।
तेरी पनह खुदइि तू बखसन्दगी ।।
सेख फरीदै खैरु दीजै बंदगी ।।४।।१।।
(आसा फरीद जी)

तब गुरू जी ने सूही राग में शब्द गायन किया, मरदाना ने रबाब बजाया और कीर्तन, का आश्चर्यजनक रंग बंध गया। फ़रीद के नयन मुंद गये :-

जा तू ता मै सभ को तु साहिबु मेरी रासि जीऊ ।।
तुधु अन्तरि हऊ सुखि वसा तूं अन्तरि साबासि जीऊ ।।
भाणै तखति बडाईआ भाणैं भीख उदासि जीऊ ।।
भाणै थल सिरि सरु वहै कमलु फुलै आकासि जीऊ ।।

भाणै भवजलु लंघीऐ भाणै मंझि भरीआसि जीऊ ।।
भाणै सो सहु रंगुला सिफति रता गुण तासि जीऊ ।।
भाणै सहु भीहावला हऊ आवणि जाणि मुईआसि जीऊ ।।
तू सहु अगम अतोलवा हऊ कहि कहि ढहि पईआसि जीऊ ।।
किआ मागऊ किआ कहि सुणी मैं दरसन भूख पिआसि जीऊ ।।
गुरू सबदी सहु पाइआ सचु नानक की अरदासि जीऊ ।।
(सूही महला १ सुचजी)

इस शब्द के गाने में फ़रीद के नयन मुंदे रहे। मन एकाग्र होता-होता एक सुख की-सी हिलोर में आकर किसी रस की अवस्था में मग्न हो गया। अन्दर शीतलता का निवास हुआ। बहुत समय बीत गया। जब नयन खुले तो सिर झुक गया। कहने लगा- अनुकम्पा ! आज यह सत्संग यहीं पर लगा रहे ।

अत: तीनों ज्यों ही वहां पर बैठे, बैठे ही रहे, कभी-कभी वार्तालाप होता, कभी कीर्तन होने लगता, कभी मूकता में मग्न हो जाते। यों दिन भी व्यतीत हो गया और रात भी ।

: ४ :

पिछली रात हो गई। गुरू जी बैठे-बैठे तनिक सो गये। फ़रीद जी को भूख लग रही थी और जाग उठे थे कि एक व्यक्ति, जो इस सत्संग को देखकर गया था, दूध का एक बर्तन भरकर लाया। बीच में चार मोहरें भी डालकर ले आया। शेख ने अपने लिए दूध का अपना भाग अपने कटोरे में डलवा लिया और शेष गुरू जी तथा मरदाना के लिये रखवा दिया। जब गुरू जी ने नयन खोले, तो शेख ने अपने जागते रहने के मान में गुरू जी के पर एक कटाक्ष किया और कहले लगा -

पहिले पहिरै फुलड़ा फलु भी पछा राति ।।
जो जागंनि लहनि से साई कंनो दाति ।।११२।।

गुरू जी सुनकर मुस्कराये। फ़रीद को क्या पता था कि सदैव मिले रहने वालों की क्या गति होती है। फिर गुरू बाबा जी ने भी श्लोक कहा -

दाती साहिब संदीआ किआ चलै तिसु नालि ।।
इक जागंदे ना लहंनि इकनां सुतिआ देइ उठालि ।।११३।।

फ़रीद का भाव था कि आप पहली रात तो जागते रहे हैं और पिछली रात सो गये, इसलिये दूध आपको नहीं मिला। पर गुरू जी का उत्तर यह था कि यदि साईं की इच्छा हो तो जागने वालों को नहीं देता और यदि उसकी इच्छा हो तो सोने वालों को जगाकर दे देता है, क्योंकि दूध के बर्तन में से तो फ़रीद को केवल दूध ही मिला था और जो भाग उसमें गुरू जी के लिये छोड़ा गया था उसमें चार मोहरें भी थीं, वे साईं ने गुरू नानक देव जी को प्रदान कीं। गुरू जी का इसमें परमार्थक भाव यह था कि तुम्हारा पिछली रात का जागना एक तपस्या मात्र है।

हमने इसे अमृत वेला का नाम दिया है, यह स्वाद का समय है। हमारे गुरुमुख दिखावे के या जोर के हठ तथा तप नहीं करते, उनके 'हठ तप' प्यार के सहज में होते हैं। वे प्यार में उठते, कीर्तन करते और साईं की स्तृति में प्रसन्न होते हैं, वे रस प्राप्त करते हैं उसकी स्मृति का, उसकी स्तुति का, इसलिए यह उनके लिए अमृत वेला है। पर वैसे भजन करने के लिए सभी समय हैं और कर्तार को प्रत्येक समय उल्लास में स्मरण करना चाहिए, पर जो देन है, जो वह प्रसन्न होकर देता है, वह पृथक खेल है। जब वह ईश्वर देने लगता है तो स्वाभाविक ही अपने प्यारे को जगाकर अपनी दया की देन देता है। सो गुरू जी ने हंसकर कहा, हे शेख! बर्तन में हाथ डाल । जब शेख ने हाथ डाला तो चार मोहरें निकलीं। तब उस हठी तपस्वी ने दया के आधार वाले गुरू बाबा के अर्थ को समझा। बर्तन वाला जा चुका था और गुरू बाबा अपने रंग में थे।

गुरू जी ने फिर कहा - शेख जी! एक रात तो प्रतिदिन आती है और समाप्त हो जाती है, पर एक रात एक बार ही आकर एक बार ही समाप्त हो जाती है। जो जीव रूपी स्त्री प्रिय परमेश्वर की आशा रखने वाली उस रात को सो कर व्यतीत करती है, सो व्यर्थ जाती है। पति का उसके हृदय रूपी आंगन में आने का समय नियत नहीं। जब आयेगा, उसको सोई देखकर वापिस लौट जायेगा। अत: वरदान प्राप्त कर चुकी–वरदान की कामना करने वाली - स्त्री के लिये उस रात को जागकर व्यतीत करना आवश्यक है। उस रात के भी चार पहर हैं। उन चारों को एक असावधान जीव रूपी स्त्री व्यर्थ खो रही है ।

शेख कहने लगा – वह स्त्री कौन है और रात कौन सी है जिसके चार पहर एक बार ही व्यतीत हो जाते हैं?

गुरू जी न कहा - स्त्री तो वह यह जीव है और रात है उसकी आयु, जिसके चार भाग हैं। पहला भाग है बाल्यकाल का और युवावस्था का उदय अथवा कुमारावस्था, जो इसके पहले घोर अज्ञान और फिर अनजानी चाव भरी आयु की अस्वाधीनता में व्यतीत हो जाती है। यम इसके दिन खा जाता है। इसके विकार जाग उठते हैं और इसको लूटने के प्रयत्नों में लग जाते हैं। इस पहले पहर में अपने रक्षक की ओर दृष्टि नहीं लगती, अज्ञान के अन्धकार में व्यतीत हो जाती है। दूसरी आती है युवावस्था, इस पहर में अहंकार तथा अस्वाधीनता और भोगों की रुचि प्रबल होती है। मानों यह समय भी सोते हुए ही व्यतीत हो जाता है और रक्षक की ओर रुचि नहीं होती। फिर तीसरा पहर आ जाता है, जब पूरे यौवन तथा बुढ़ापे के बीच की 'भरपूर' अवस्था आती है। स्त्री, पुत्र तथा पदार्थों के मोह की नींद आ दबाती है, जगत में शोभा की इच्छा से जगत प्यारा लगता है। इस अवस्था में भी रक्षक की ओर रुचि नहीं पलटती। काल इन्हें खाता जाता है, माया का मोह जागने नहीं देता और जंजालों के सन्ताप बढ़ जाते हैं। अब आयु रूपी

रात का चौथा पहर आ जाता है। असावधान रही जीव रूपी स्त्री युवावस्था, बल, धन, पदार्थ, पुत्र सभी को सदैव साथ रहने वाले समझती थी, पर अब इनका वियोग होता है। शरीर पसीजता है, नयनों की ज्योति कम होती है, हाथ, पांव कांपने लगते हैं, पर वह जीव रूपी स्त्री असावधानी में सो रहती है। हां, जिनकी नींद कभी पिछले पहर को खुल गई थी और जो नाम में लगकर जागृति को सफल करते रहे थे, उनका यह पहर सफल है और आगे के जन्म मरण तथा दु:ख दूर हो जायेंगे। अत: हे शेख जी ! कर्तार के नाम का अन्दर निवास हुए बिना चारों पहर असावधानी में व्यतीत हुए इसका फल उसे चारों ही युगों में दु:ख ही मिलता है। यों जबकि आयु के चार पहर व्यतीत हो जाते हैं तब प्राणों की गांठ खुल जाती है, जीवात्मा शरीर को छोड़कर चली जाती है। सारी आयु असावधानी में व्यतीत करने के कारण वह कैद की सी में होती है, उन्हीं पदार्थों के मोह में, जिन्होंने नींद खुलने नहीं दी थी। फिर माया के मोह में जो भले बुरे पाप तथा पुण्य किये थे उनके संस्कार भी साथ ही गये हैं, वे दु:ख और सुख देते हैं। केवल नाम के प्रेमी जो जागते रहे थे, वही सुखी होते हैं। अत: जागृति तो अन्तर्गत में प्रत्येक समय आत्मा को चाहिये, जो नाशवान को नाशवान समझ ले, अविनाशी को अविनाशी जान ले! और फिर अविनाशी के साथ प्यार करे और नाशवान में निवास करके इसके नशे के प्रभाव के नीचे नींद में न जाये[१]।

शेख ने यह वैराग्य और इसकी औषधि का उपदेश सुनकर कहा – वाह वाह साईं के प्यारे सदैव जागने वाले, आप धन्य हैं ! इस तरह वहां पर सत्संग और गोष्ठी होती रही।

दिन चढ़ आया था, पर शेख जी के लिये आज नया दिन चढ़ा था। तपस्वी तो थे ही, तपोमूर्ति हो रहे थे– रस की कमी शेष थी। बाबा की दया से रस के देश में गये। जीवन कण – चमकते हुए हीरे का सा कण – छोटा सा, कण मात्र शेख के अन्दर निवास कर गया। अब जंगल की आवश्यकता नहीं थी। सिर नीचे करके तप साधने तथा श्वांसों को रोकने की आवश्यकता नहीं थी। वन भी अब नहीं चाहिये था। अत: गुरू बाबा के चलते समय, वह भी साथ ही उठ चला। हां जी। सभी चल पड़े – गुरू नानक, रसिक वैरागी गुरू नानक, रसिक मरदाना और शेख फ़रीद बर्तन वहां पर ही रहा और माया के स्वामी माया से अतीत, बरकत (लाभ) डालकर चल पड़े। काफी दिन चढ़ने पर बर्तन वाला मन में आशीर्वाद लेने की इच्छा धारण करके आया, पर फ़कीर जा चुके थे और बर्तन पड़ा था – हां, लिखा है कि बर्तन मोहरों से भरा पड़ा था। जब देखा तो नि:श्वास भरा, हाय मैं माया की इच्छा धारण करके दूध लाया था। माया मिल गई, और यदि मैं भगवन्त

१. प्रस्तुत वार्तालाप इसी शब्द का स्वच्छन्द अनुवाद है, जो राग तुखारी में है ओर जिसकी पहली तुक है . . ."पहिलै पहरै नैण सलोनडीए रैणि अंधिआरी राम"।

की भावना धारण करके लाता तो सद्‌गति प्राप्त होती। आत्म बली मिले, पर मुझे तो माया का लोभ छल गया ।

अब जाते-जाते वे आसा देश की राजधानी में आये, वहां के राजा का नाम श्याम सुन्दर था और उसकी मृत्यु हो चुकी थी। लोग दुःख में थे कि एक राजा मर गया और दूसरी ओर अग्निकर्म नहीं होता क्योकि जीवित समय उसने झूठ कहा था। वहां के चतुर पुरुष कह रहे थे कि इसकी गति तो तब हो सकती है जब किसी सच्चे साधु के चरण इसको छुएं, या उस साधु के चरण इस नगर में पड़ें। जब द्वार के पास गये तब लोगें ने देखा कि साधु आये हैं मिन्नतें करने लगे कि वे चरण रखें तब गुरू जी ने शेख को कहा कि तू आगे होकर नगर में चरण रख। पर उसने कहा - जी ! मेरा क्या सामर्थ्य है कि मैं पांव रखूं। दाता जी। यह आप का ही काम है। तब गुरू नानक देव जी अपने निरंकार के प्यार में भरे हुए नगर के अन्दर गये- तब उस राजा की गति हुई। फिर तो सारे नगर में धूम मच गई कि कोई ईश्वर के अन्यन्त प्यारे आये हैं, पूर्ण महापुरुष और साधु हैं। अब आप जी ने एक स्थान पर डेरा लगाया और श्री गुरू जी ने एक वैराग्य का शब्द राग मारू में गाया और मरदाना ने रबाब बजाया, रसमय वैराग्य का समां बंध गया। जगत की असारता और नाम के साथ और कौन-कौन से गुण धारण करने चाहिये वे सभी शब्द में आ गये। शेख सुनकर बहुत सुखी हुआ, जो लोग आये थे वे निहाल हुए। शब्द यह था -

मिलि मात पिता पिंडु कमाइआ ।।
तिनि करतै लेखु लिखाइआ ।।
लिखु दाति जोति वडिआई ।।
मिलि माइआ सुरति गवाई ।।१।।
मूरख मन काहे करसहि माणा ।।
उठि चलणा खसमै भाणा ।।१।।रहाऊ।।

श्री गुरू जी तो अपने रंग में मगन हो गये पर शेख जी सावधान बैठे रहे। शहर के लोग अब खाना लाये और शेख को जागता बैठा देखकर और गुरू जी को चेला समझकर आगे रखा, और लोग भी भेंट पूजा, खाने-पीने की सामग्री ले-लेकर चले आते थे। जब भोजन फ़रीद के आगे रखा गया तो वह कहने लगा। जी मैंने तो भोजन कर लिया है। लोगों ने देखा कि सुबह से आये हुए हैं, भोजन इन्होंने किया नहीं। इनके पास भी नहीं है, काठ की गाल-सी वस्तु पास पड़ी दिखाई देती है। तब उन्होंने कहा : हे फ़कीर ! क्या तू कहीं उस देश का झूठा तो नहीं, जिस देश में फ़रीद रहता है, जिसने काठ की रोटी बनाकर पास रखी हुई है? और जब कभी कोई पूछता है कि भोजन करोगे? तो कह देता है कि मैंने भोजन कर लिया है और मेरे पल्ले भी रोटी बंधी हुई है। यह सुनकर फ़रीद को

मन में लज्जा आई कि यहां के राजा की एक झूठ के कारण गति नहीं हुई थी और गुरू नानक देव जी के दया करने पर हुई है और मैं तो 'भोजन करो' कहने वालों से बचने के लिये टालने के वाक्य कह देता हूं कि मैंने भोजन किया है और मेरे पास भी है, इस झूठ के लिये कैसे क्षमा प्राप्त करूंगा । गुरू नानक जो बात-बात में सत्य पुकार रहा है, वह सच्चा है, पर मेरी तो प्रत्येक बात में झूठ समा रहा है। सच निःसन्देह अधिक कठिन है। अच्छा इस ईश्वर के प्यारे से मिलने से यह सूक्ष्मताएं सूझी हैं और नाम में रस पड़ा है। अब लज्जा काहे की। झूठ का त्याग ही अच्छा है, अतः काठ की रोटी फेंक दी। अब गुरू जी के नयन भी खुल रहे थे और वे देख रहे थे। सारा कौतुक समझा और हंसकर कहा - शेख जी ! भोजन करो, तब उन्होंने कहा, श्रीमान जी ! भोजन प्रदान कीजिये। तब बाबा जी ने आया हुआ सारा भोजन बांट दिया। सब को प्रसन्न किया। मुक्त होकर फिर शेख की ओर देखा, मुस्कराये और शेख पर प्रसन्न होकर कहने लगे - शेख ! ईश्वर तो तुम में है, उससे मिलने के लिये भक्ति भी है, परिश्रम भी है, पर तू गुरू धारण कर। तब शेख ने कहा, "सत्य वचन जी"। इस समय सायंकाल हो रहा था और शेख अब वहां से चलने का विचार कर रहा था और इस प्रकार की और वार्तालाप के पश्चात शेख ने विदा ली। श्री गुरू जी से अंग मिलन किया । लिखा है कि श्री गुरू जी ने 'सिरी राग' में एक शब्द उच्चारण किया। "आवहु भैणो गलि मिलह अंकि सहेलड़ीआह"। इस प्रकार की गोष्ठी और प्यार-भाव के विचार विमर्श होने के पश्चात् शेख जी तो विदा हुए और अपने देश को चल दिये। गुरू जी उस देश में कुछ समय के लिये टिक गये और वहां पर 'सतिनाम' का झण्डा झुला दिया। बहुत से लोग नाम जपने लगे। लिखा है कि उस आसा नामक देश में श्री गुरू ने एक गद्दी भी प्रदान की ।

सूचना - 'ऐतिहासिक पक्ष' आगे चलकर 'शेख ब्रह्म के साथ दूसरी गोष्ठी' के अन्त में आयेगा ।

गुरू नानक कहां रहता है[१]

जंगल वन सभी खोजे हैं, पर कहीं भी दिखाई नहीं देता। योगियों, तपस्वियों तथा बुद्धिमानों से पूछा है पर कोई भी रहस्य नहीं बताता। जिधर भी कोई पता चलता है उसी ओर उठकर खोज करता हूं पर वह प्राप्त नहीं होता। कहते हैं कि कभी भी पकड़ा नहीं जाता, इस बात को सुनकर मेरा हृदय दुःखी होता है। छिपा हुआ है, पर आकर्षित करता है, खींच-खींच कर कसता है। ऐसी झनझनाहट छेड़ता है कि विह्वल करके हृदय को छीन लेता है। हृदय पिघल-पिघल

---

१. यहां पर लेखक के पंजाबी गीत का अनुभव प्रस्तुत किया है ।

कर बहने लगता है, प्यार प्यार में समा जाता है। एक दिन इस प्रकार लुका–छिपी होते उसे अदेश से झलक दिखाई दी। क्या देखता हूं कि गुरू नानक जी हृदय–रूपी शीशे में शोभायमान होते हुए दिखाई देते हैं। रंग में रंगा हुआ, प्रत्येक स्थान पर निवास करता है, रसिक होकर इस में रस लेता है। दर्शन देकर आंखों को मस्त करता है, और मस्त होने वालों को देखकर प्रसन्न होता है। हंसता है, रस देता है ! उसकी हंसी में अमृत बरसता है। वह डोर बांधकर खींचता है और डोरी डालकर कसता है। जिस ओर भी दृष्टि जाती है, उसी ओर दिखाई देता है, प्रत्येक जीव तथा वस्तु में निवास करता है। जब वह बस में आ जाता है तो छोड़कर नहीं जाता, अपने गले से लगाकर फिर नहीं भागता। हृदय–रूपी मन्दिर में गुरू नानक का निवास है, यदि अन्दर देखें तो वह दिखाई देता है। अन्दर दिखाई पड़ने से वन तृण में दिखाई देता है, जल में, धरती पर तथा घट–घट में उसका निवास है ।

गीत[१]

नाम का झमक्का तेरा खुशी कोई ला गया ।
आंख का मटक्का दाता नया जीवन छा गया ।
आप ही तू प्यार दिया दृगों का दीदार दिया,
मेहर का सौन्दर्य मुक्त करों से लुटा गया ।
दिन रात विनय यही, प्रेम सदा रहे सही ।
टूटे हुए तारों को जोड़ता ही भा गया ।
धन्य गुरू नानक तू, अदेशों का मालिक तू ।
मांगता यह भीख हृदय द्वार तेरे आ गया ।

सूचना – आसा देश से गुरू जी का बिसियार देश जाना और झण्डे बाढ़ई का मिलना बताया गया है। कई अन्वेषकों ने आसा देश को नीली बार पाक पट्टन (पश्चिमी पाकिस्तान के जिला मिंटगुमरी का इलाका) और बिशियर देश को हिमालय की बुशायर रियासत (रामपुर बुशायर) समझा है, पर बिशियर देश से सतगुरू जी फिर झट एक द्वीप में चले गये बताये जाते हैं । जो बुशायर हो नहीं सकता। अत: अनुमान है कि आसा देश से तात्पर्य असम है। कामरूप असम में है।

गुरू जी असम से मनीपुर की ओर फिरते रहे हैं, तवारीख खालसा ने भी यही इलाका समझा है।

---

१. यहां पर लेखक के पांजाबी गीत का अनुवाद दिया है।

उन वनों तथा पर्वतों से होते हुए चिटगांव पहुंचे और फिर समुद्र के किनारे सोन द्वीप आदि द्वीपों का भ्रमण करते हुए समुद्र से ही जगन्नाथ पहुंचे। क्योंकि बिसियर देश में बताया है कि 'तित समय बैठा समुद्र की बरेती विच नगर 'छुठघाटक' हाफिज़ाबाद वाली जन्मसाखी में 'छुटाघाटक' लिखा है। 'छुटाघाटक' लगता है कि चिट्टगांव या चटागांग है जो आजकल उसका नाम है, और वहां से समुद्र भी पास ही है।

□ □

३५ भाई झण्डा जी

: १ :

सवेरा हो गया है, समुद्र की ओर से ठण्डी-ठण्डी हवा आ रही है। झण्डा नैन मूंदकर बैठा है। श्वांस भी धीमे-धीमे और बंधे हुए आ रहे हैं। किसी -किसी समय 'उफ़' का आवाज़ आने से नैन खुलते हैं। इधर-उधर देखता है, फिर समाधि लगाकर नैन बन्द करता और श्वांस लम्बे लेता है। कुछ अन्दर रोकता है फिर धीरे से बाहर निकलता है। यों करता-करता फिर टिक जाता है। फिर कुछ समय के पश्चात् 'उफ़' की-सी आवाज़ करके आंखें खोलकर चारों ओर देखता, माथे पर हाथ फेरता है। यों करते-करते कुछ समय व्यतीत हो गया। सूर्य ऊंचा हो आया, झण्डा उठा । इसी क्षण द्वार पर खटखट हुई। झण्डा ने द्वार खोला। एक सुन्दर सूरत का युवक राजसी आभायुक्त स्वच्छ और बढ़िया वस्त्र पहने अन्दर आया ।

झण्डा - आओ प्यारे मित्र ! आपका स्वागत है, मैं बलिहारी हूं ।

इन्द्रसैन - कहो सज्जन ! कैसे गुजर रही है ?

झण्डा - अच्छी ! जगत प्रसन्नताओं में है और हमारे अन्दर प्रेम तथा प्रेम की पीड़ा है। ईश्वर करे, यह पीड़ा युगों तक जीवित रहे। यदि हमारे अन्दर रंग नहीं लगना तो पीड़ ही जीये ।

इन्द्रसैन - सत्य कहा है, इच्छा लगी रहे, इच्छा से जिज्ञासु तो हैं ही न ।

झण्डा - प्रयत्न तो बना रहता है न , यदि अन्दर इच्छा नहीं हो तो प्रयत्न भी मर जाता है। फिर जगत जीवों की भांति आशा-तृष्णा की आवश्यकताओं में आपा खो जाता है, जीव फिर उन्हीं का रूप होकर दसों दिशाओं में भागता रहता है, पर यदि अन्दर इच्छा बनी रहे, प्रयत्न बना रहे तब इतना तो दीखता रहता है कि यह मैं प्रयत्न करता हूं और यह मेरे मन की तरंगें हैं जो मुझे दौड़ाती फिरती हैं; पर सज्जन ! बताओ, तुम कहा करते हो न, कि समय निकट है, है कहीं निकट? अपने प्रयत्नों द्वारा खो जाने से तो बचे हैं, पर सूझ नहीं पड़ती।

इन्द्रसैन (मुस्कराकर) - यही लगता है कि समय पूरा हो गया है। दिल भी इसी बात की गवाही देता है, अब और लक्षण भी आ मिले है। जैसे वर्षा से पहले गर्मी पड़ती है, वैसे ही अब बनावटी साधु आ रहे हैं, न जाने सच्चे के आने के यही लक्षण हैं।

झण्डा- अच्छा, वह मन्त्री की बातचीत कैसे हुई है?

इन्द्रसैन – हां, वही बात, मन्त्री के घर पुत्र पैदा हुआ है, उस शाक्तिक योगी का ढोंग और चल पड़ा है। मन्त्री अच्छा भला चतुर है, पर कुमार्ग पर चलने वानी स्त्रियां बुद्धि भ्रष्ट कर देती हैं। उंसकी पत्नी कहती है कि यह साधु है, योगी है, इसका मत धारण करो जिसकी राख की चुटकी से पुत्र हो गया है। मन्त्री भी पीछे चलने लगा है, राजा को भी प्रेरणा देता है। पर राजा जी पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। राजा सारी बात मुझे बता देते हैं और और जब मैं कहता हूं कि यह नाटकीय लोग हैं जिन्हें ईश्वर के मार्ग का कोई ज्ञान नहीं तो उन्हें तसल्ली हो जाती है। कल तो मैंने मन्त्री को भी डांटा था और कहा कि क्यों जन्म व्यर्थ नष्ट करते हो, ज्ञान तथ ध्यान के मार्ग पर चलो, चेटकी फकीरों तथा लोभी योगियों के अन्दर ज्ञान की सूझ नहीं होती, वे माया के जाल में ही खेल करते हैं और ईश्वरीय रंग तो उन्होंने मांगे हुए पंखों की भांति बनावटी से लगाये हुए होते हैं। मन्त्री मान तो जाता है पर त्रियाजाल में बार–बार फंस जाता है। प्यारे मित्र जी ! स्त्री पुरुष का साथी है, गहरा मित्र भी है, पर यदि कभी उलटे मार्ग पर चल पड़ती है और पति की मति भ्रष्ट करना चाहती है तो फिर इस जैसा कुमार्ग पर चलाने वाला भी और कोई नहीं।

झण्डा– तुम ने सत्य कहा है, केवल परमात्मा की प्राप्ति के लिए अन्वेषक होना, आपे को निर्मल करना, और ज्ञान में आना यह लक्ष्य तो किसी एक–आध मनुष्य का ही बंधता है। शारीरिक आवश्यकताओं और मन की कामनाओं के बंधे हुए लोग अच्छी ओर लगते हैं, जहां पर इच्छा–पूर्ति में तनिक–सा सन्देह हो जाये, वहां पर ही गिर पड़ते हैं। कौन है जो अपने लक्ष्य से नहीं हटता? शरीर को प्रारब्ध पर छोड़ मन को अंकुश में चलाये और सच की खोज करे? बहुत कठिन मार्ग है।

इन्द्रसैन – यह पहली कठिन घाटी है। साधु फकीर भी जो आजकल प्रायः मिलते हैं , मनुष्य की आवश्यकता के जानकार हैं। आवश्यकताओं की पूर्ति का दम भरकर, अनेकों जाल बिछाकर, जीवों को फंसाकर अपने आराम तथा सुख के मार्ग निकाल लेते हैं। वह कौन है, जो आत्मा का ज्ञाता होकर अपनी आवश्यकताओं से इच्छारहित रहे, और फिर इच्छा रख हम जैसे मूर्खों का उद्धार करने की और आने वाले जिज्ञासुओं को सच के मार्ग पर चला दे।

झण्डा – हे सज्जन ! सच की परख करने वाले थोड़े ही हैं। सच के पीछे लगने वाले भी थोड़े ही हैं। सच नंगा, निधड़क और खुरखुरा किसको अच्छा लगता है? सच मानो, मैंने तो फिर–फिर कर देखा है, जहां पर किसी के पीछे बहुत भीड़ है, वहां पर दिखावे का भाग अधिक होता है, इसीलिए मैंने तो भटकना त्याग दिया है। एक तू सच का प्यारा और सच का खोजी मित्र मिला है, तेरे साथ सत्संग कर लिया करता हूं। प्रार्थना करते हैं और आशा रखते हैं कि यदि वह दयालु होगा तो स्वयं बुलाकर देगा ।

इन्द्रसैन – भाई ! जो कुछ पढ़ें और फिर विचारें और उस पर चलें तो आपा खो जाने से तो बच जाता है, उद्धार न सही, मनुष्य डूबता तो नहीं। यह जो पढ़–लिखकर, समझ–बूझकर फिर मन की आशाओं और तृष्णाओं के पीछे उठकर भागना है, विषय विकारों के हाथों बिके रहना है, यह तो मनुष्य होकर भी बैल का जीवन है, विकारों के हाथ में रस्सी है और मन पर अंकुश लग रहा है।

झण्डा – सच है, पहला काम तो है मन को देखना, फिर मन को रोकना, शरीर को थाम–थामकर रखना और जो कुछ समझ में आया है, उस पर अमल करना इस प्रकार नाक की सीध में चलता चले ।

इन्द्रसैन – सच है, जीव का पहला काम मनुष्य बनने का है। हम सभी पशु हैं, जैसे भरथरी जी ने मनुष्य को सींग तथा दुम के बिना पशु कहा है। करें भी क्या? भूख, प्यास आदि सभी आवश्यकताएं पशुओं की भांति ही हैं। पशु वृत्ति बार–बार अन्दर ले पनपती है, साधु फ़कीर सभी पशु वृत्ति में हैं। पढ़े–लिखे ज्ञानी, ध्यानी सभी को पशु–वृत्ति ने घेर रखा है, पर फिर अत्याचार यह होता है कि नेतृत्व करने वाले नेता पहले पशु वृत्ति का मुंह तोड़ना नहीं सिखाते । पशु वृत्ति का सुधार बहुत कठिन है। मनुष्य अनजाने ही पशु बनता है। यदि वह अपने–आपको मनुष्य समझे तो इसको कुछ चिन्ता हो। पर मनुष्य का कर्म है। मनुष्य के मन को तौलना–जांचना है, जो तौले पूरा तौल और तुली हुई पर पहरा दे, फिर देखे कि मनुष्यत्व क्या है, भाई ! फिर आगे–आगे चले।

झण्डा– सच, पहले मनुष्य का कर्म ठीक हो फिर मनुष्य आत्मा की सूझ के मार्ग पर चले। कुसंगति बुरी है, ईश्वर कुसंगति से बचाये, यही बहुत दुख है हां सच, एक बात कानों में पड़ी है कि देश में कोई साधु फिर रहा है, जिसकी पहचान नहीं होती कि हिन्दू है कि मुसलमान। लोग घबराते हैं और परे–परे होते हैं, कोई निकट नहीं जाता। कई स्थानों पर जहां पर आप खड़े होते हैं, वहां भी लोग पीछे से चौका फेरते हैं। (जन्मसाखी)।

इन्द्रसैन मुस्कराया, और फिर आकाश की ओर देखकर कहने लगा – हां सुना तो मैंने भी है, न जाने वही हैं जिन्होंने नूरशाह का मायाजाल तोड़ा है।

झण्डा–अच्छा !.... यह चिह्न तो बहुत सुन्दर है ।

इन्द्रसैन – देखो ! प्रतीक्षा करो ! अदृष्ट के पर्दों में राम जाने क्या–क्या है और हमारे लिये वहां पर कौन–सी वस्तु है, यदि प्रारब्ध है तो दाता का हाथ कुछ न कुछ परोक्ष से दे देता है ।

इस प्रकार वार्तालाप करके कुछ समय के पश्चात् इन्द्रसैन चला गया और झण्डा अपने काम में लग गया ।

: २ :

मरदाना - पातशाह ! अत्यन्त कठोर देश में हम आये हैं, सभी हिन्दू हैं और आश्चर्यजनक हिन्दू, कोई दूने तक नहीं देता। आज यहां पर बैठे भी दूसरा दिन हो आया है, नगर पास ही है, यदि आज्ञा हो तो जाकर कुछ मांगकर पेट भर लूं ?

गुरू नानक देव जी – जा मरदाना ! मांगना किस लिये है ? एक ईश्वर से जो मांग लिया, अब किसी दूसरे से क्यों मांगना ? तू नगर में जा, एक झण्डा नामक बढ़ई है, उसके पिता का नाम पारवर है, पता पूछकर चला जा, वह अन्न-जल की सेवा करेगा ।

मरदाना शीश झुकाकर चल दिया, नगर में जा पहुंचा। जो भी वहां पर मिलता मरदाना उससे झण्डा का घर पूछने की इच्छा करता, पर किसी का माथा मरदाना को अच्छा न लगता कि साहस करके उससे पूछता। इतने में एक अच्छा लगने वाला व्यक्ति चला आ रहा था, उसके साथ दो-चार व्यक्ति शोभा वाले भी थे, दो दास भी थे, माथा देखकर मरदाना ने निर्भय होकर उससे पूछा - भाई ! निरंकार तेरा भला करे, झण्डा बढ़ई के घर का पता बता ।

उस मनुष्य ने मरदाने के नयनों की ओ देखा, देखकर प्रसन्न हुआ, साथियों तथा नौकरों को कहने लगा - "तुम चलो, मैं इस निरंकार का नाम लेने वाले को झण्डा के घर पहुंचा आऊं।" तब साथ जो दास थे, उन्होंने कहा - "साहब जी ! हम पहुंचा आते हैं, आप क्यो कष्ट करते हैं ?"

मरदाना - मुझे पता बता दीजिये, न साहब जी कष्ट करें और न सेवक जी ।

वह कहने लगा - भाई निरंकार का नाम लेने वाले ! यह मेरा ही काम है, आओ !

तब साथ लेकर चल पड़ा और पूछने लगा, "भाई ! तू झण्डा को कैसे जानता है ? तेरा उससे कब का परिचय है, तू इस देश का रहने वाला तो नहीं लगता ।" तब मरदाना ने कहा, "मेरा देश तो लाहौर का परगना है और मैं झण्डा को जानता पहचानता नहीं, मेरा साहब जानता है, उसने मुझे भेजा है।"

झण्डा का मार्ग बताने वाला इन्द्रसैन था, जो इस निरंकार के नाम बोलने वाले को अपने सत्संगी मित्र के घर में पहुंचाने के लिए आप आया है। घर पहुंचाकर और झण्डा से मिलाकर इन्द्रसैन अपने घर को चला गया ।

झण्डा ने मरदाना को आदर सहित बिठाया और पूछा, "भले पुरुष जी ! आप किस देश से आये हैं, मेरे लिए क्या आज्ञा है ?"

मरदाना - हमारा देश तो उत्तरखण्ड के नीचे का प्रान्त है, जहां पर पांच नदियां बहती हैं, कही तो पांच जाती हैं, वैसे हैं सात, सप्त सिन्धु धरती है,

परगना लाहौर राजधानी है, हम उसी के निकट के रहने वाले हैं।

झण्डा – धन्य भाग्य, स्वागतम् ! कैसे आना हुआ ? हमारा और आपका पहले कोई परिचय नहीं, अब ही परिचय हुआ है, आप चलकर मेरे घर में आये हैं, कोई कृपा करो आज्ञा दो ?

मरदाना – तुम बहुत मीठे–मीठे बोलते हो, लगता है कि अपने ही देशवासी हो, इस परदेश में मिले हो। मुझे तो कोई पहचान नहीं, पर मेरे साहब को तुम्हारी पहचान होगी जिन्होंने नाम बताकर तुम्हारे घर भेजा है।

झण्डा (चकित होकर) – अच्छा ! आपके सुन्दर साहब जी का शुभ नाम ?

मरदाना – श्री गुरू नानक देस निरंकार की ज्योति वाले, जिन्हें अनजान लोग 'नानक तपा' कहकर बुलाते हैं।

झण्डा – श्री गुरू नानक देव जी, निरंकार की ज्योति ! धन्य मेरे भाग्य ! मुझे ऐसे उच्च ने याद किया है, जिन्हें तुमने निरंकार की ज्योति कहा है। मैं तुम्हारे मुंह में शक्कर भरूं। निरंकार की ज्योति वाले को खोजते–खोजते यह दिन आ गये हैं और अब ज्योति स्वरूप ने मुझे खोज निकाला है और तुम्हें भेजा है तो मेरे धन्य भाग्य ! सचमुच धन्य भाग्य !!

पर (सिर हिलाकर) सज्जन जी ! उदास न होना, कलियुग का समय है, धर्म के तीन पांव तो खिसक चुके हैं, चौथे का चौथा भाग भी खिसक रहा है। काली रात पड़ रही है, या तो वे साधु मिलते हैं जो अपने सुखों तथा गौरव के लिये लोगों को पीछे लगाकर चलने वाले, या वे मिलते हैं जो धागे, तावीज, तन्त्र, मन्त्र, जादू, टोने करने वाले, शक्ति के उपासक, नाटकों चेटकों वाले, जिनके पीछे लगकर मन का मैल नहीं उतरता, बल्कि और ज्यादा लगता है। हां जी ! सत्य है, तृष्णा का बंधा हुआ जीव पहले ही तृष्णा में डूबा पड़ा है, ऊपर से जप, तप, योग साधन करने, तो तृष्णा वाले कामों को सफल बनाने के लिये तो तृष्णा ही जपों, तपों से बढ़ी न, बना क्या ? अतः हे सज्जन जी! प्रायः दम्भ, वेष और आपा पालन के दर्शन ही होते रहते हैं, निरंकार के रंग में रंगा, इच्छाविहीन, बेपरवाह निरंकार के रंग में रंग देने वाला अभी नहीं मिला। मिलता भी कैसे? हमारे मन मलिन जो हुए, हमारी खोज ही अपूर्ण है, इच्छा रहित ज्योति महापुरुष अपने आप अपने–आपको मिलाए तो मिलाए। न जाने कोई प्रसन्न हो पड़ा और अपने आप आ गया है, ज्योति स्वरूप। धन्य भाग्य ! आप गुस्से न होना यदि आग से हाथ जल जाये तो प्रत्येक चमक से भय–सा लगने लगता है। क्षमा, क्षमा, सन्त जी! धन्य निरंकार का नाम लेने वाले जी ! आपने जो कहा है, मैंने उसे माना है, यह तो मैंने आपको अपने साथ घटित बातें तथा जगत का व्यवहार सुनाया है।

मरदाना –सज्जन ! सच का क्या गिला? सच–सच है। यदि संसार में अन्धकार न होता तो साईं सूर्य क्यों बनाता? सच की काली रात हो गई है तभी तो निरंकार ने एक निरंकारी में अपनी ज्योति डालकर भेजा है, जो जगत को घर–घर, दर–दर फिरकर पार लगा रहा है ।

देख मित्र ! तुझे इस सत्य लोक से आये सौन्दर्य का रहस्य बताऊं। जहां पर मुद्दतों से कोई ईश्वर के खोजी हैं तप, ज्ञान, ध्यान किसी भी तरह का साधन कर रहे हैं, यह वहां पर पहुंचता है और अपने ईश्वरीय स्पर्श से जीवित करके सभी साधनों को सौभाग्यवान बना देता है। यह दाता पिछले जन्म से लगे हुए, पर असफल रहे, उन जिज्ञासुओं को खोज–खोजकर उनके परिश्रम को सफल बनाता है। जैसे कोई बड़ा खिलाड़ी काफी समय से भटकती हुई गोटों को चतुरता से जिता देता है। जहां–जहां पर जिस–जिस निश्चय में जो कोई है वहां से ही उसको उठाता है, भूलों का परिमार्जन करके अपना स्पर्श देकर उसे ईश्वर के सीधे मार्ग पर चला देता है। तुम कहोगे कि मैं दास होने के नाते अपने स्वामी का यश गा रहा हूं और मैं तो हूं ही यश गाने वाला मिरासी, मुझे अपने स्वामी का तो यश गाना ही है, पर हे मित्र! मैंने इस सौन्दर्य से सच सीखा है और मैं अब सच के यश गाता हूं, सच, विशुद्ध सच, 'सच सभना होइ दारू' यह निरंजनी ज्योति का वाक्य है। मेरे यशोगान अब सच की औषधि के साथ शुद्ध स्वर्ण हो रहे हैं।

झण्डा – ठीक कहते हो, तुम्हारी जिह्वा में रस है, सुनकर कानों में रस पड़ता है, सच की सच के बिना वाणी मधुर नहीं होती। मैं एक बात पूछूं? नाराज़ तो नहीं होंगे ?

मरदाना – ज़रूर ! ज़रूर पूछो ।

झण्डा – जिधर से आए हो, उधर एक बड़ी माया नगरी थी – नूरशाह की गद्दी – उसको किसने तोड़ा है ? अफवाहें सुनी हैं, पर आंखों देखी पक्की बात किसी से नहीं सुनी, तुम देशों–प्रदेशों में से होकर आ रहे हो, इसका कुछ पता हो तो बताओ? कोई समाचार तुम्हारे कानों में पड़ा हो तो बताओ ।

मरदाना (कुछ रंग बदलकर) – मित्र ! अफवाह काहे की ? आंखों देखी और अपने साथ घटी बता सकते हैं।

झण्डा – आंखों देखी और अपने साथ घटित हुई को सुनकर जो भरोसा बंधता है, वह किसी और ढंग से नहीं बँधता। धन्य भाग्य, कुछ सुनाइए न ।

मरदाना – वह मायानगरी इसी गुरू नानक देव जी ने तोड़ी है और यह अवगुण हार, जो तुम्हारे सामने बैठा है, यही उस जाल में जा फंसा था। इसी तुच्छ चिड़िया को मुक्त कराने के लिये बन्दी छोड़ गुरू नानक उस माया नगरी में गये जिसके बन्धन काटनहार हाथों ने केवल मेरे कण्ठ की फांसी ही नहीं काटी, बल्कि नूरशाह की बन्दी में पड़े सभी बन्दीगण मुक्त करा दिये और नूरशाह को भी

अन्धकार के बन्दीगृह में से निकालकर प्रकाश में ले आये और स्वामी को आंचल लगाकर ऐसा आत्मबल और प्रताप प्रदान किया कि संगत का नेतृत्व उसको मिला । नूरशाह अब प्रकाश में है, उससे सौन्दर्य झरता है और जगत प्रकाशमान होता है।

झण्डा – तुम आठों पहर सौन्दर्य के पास रहने वाले – कैसे नूरशाह के अन्धकार में फंस गये ?

मरदाना – मैं पूर्व–जन्म का तपरहित हूं, मेरी जाति नीच है, पहले संगति भी ईश्वर के प्रेमियों की नहीं मिली थी, और न ही किसी गुण की शक्ति मेरे अन्दर थी। दाता जी ने अपने अनुग्रह के बल द्वारा, मेरी अंगुली पकड़ी, मुझे मेरी 'ता, ना, री, री,' पर प्रसन्न होकर अपना साथी बना लिया। मुझे झूठे यश गाने वाला बना दिया। मैं अपने आप में दुर्बल पंखहीन चटक शावक हूं, दाता के पंखों द्वारा उड़ता हूं। जब मैं स्वयं में आ जाता हूं, मैं दुर्बल होने के कारण कष्ट सहन करता हूं, पर वह अकारण प्रेम करने वाला अपनी शक्ति द्वारा मेरा उद्धार करता है। हे सज्जन ! मुझे राग से अधिक प्रेम है, भूख के कारण व्याकुल हुआ मैं नूरशाह के द्वार पर जा खड़ा हुआ। उसने एक आश्चर्यजनक रंग की गायकी तथा साजों द्वारा मुझे 'राग मस्त' कर लिया। गुरू नानक ने मुझे 'कीर्त मस्त' किया था, इस समय मैं स्तब्ध ही 'कीर्तन' से भूलकर 'राग मस्त' हो गया। यों मैं दुर्बल अपने बल में आकर कस गया। मानों मैं चटक शावक हो गया, दाता के पंखों को भूल गया, पर दया तथा प्यार वाले ने इस पंखहीन शावक को फिर पिंजरे से निकालकर और अपने पंख लगाकर अपने चरणों में अपनी शरण में रखकर आकाश में उड़ा लिया ।

झण्डा– मैं बात काटता हूं; पर जो बात समझ में न आये वह निस्शंक होकर पूछ लेनी सत्संग में अच्छी बात होती है।

मरदाना – सहर्ष पूछिये ।

झण्डा – मैं 'राग मस्त' और 'कीर्तन मस्त' का अन्तर नहीं समझ सका ।

मरदाना (मुस्कराकर)– राग एक विद्या है, राग एक गुण और कला है, जिस द्वारा मन भावनाओं के देश में जाता है। राग एक भाषा है, जो काव्य से भी सूक्ष्म है, राग एक चित्र–कला है जो पत्थर की शिल्पकारी और रंग की मूर्तिकारी से भी सूक्ष्म है। जब कोई राग गाता है, मन उसके पीछे जाता है। राग जिसमें कोई कविता, गीत, नहीं गाया जाता, पर केवल राग ही अपने आप में गाया–बजाया जाये वह एक भाषा है, एक नेतृत्व है, एक मोहिनी है, जो अपने आकर्षण द्वारा मनों को किसी रस के देश में ले जाती है। जिन भावों में मन यों चला जाता है, वह प्रायः हमारी समझ में आये बिना हमें अपने से आकर्षित करके ले जाते हैं।

कोई अति एकाग्रचित ही समझता है कि कौन-सा राग, कौन-सी भावना और कौन-सा भाव उत्पन्न कर रहा है। प्राय: गायक और गुणवंत रागों के नामों, परस्पर अन्तर, स्वर और सुरति, मूर्च्छना, ताल के आदि के ज्ञाता और उस्ताद होते हैं, पर कौन-सा राग क्या प्रभाव डाल रहा है? कौन-सी भावना को उत्तेजित कर रहा है? इन बातों में निपुण, और प्रभाव को समझने वाला कोई एक आध ही रसिक कहीं पर होता है। मेरा दाता इस रहस्य का ज्ञाता है, उसने राग के इस प्रभाव वाले गुण को लिया है और आत्म रंग उत्पन्न करने के लिये राग का प्रयोग किया है। फिर हमारी सुविधा के लिये यह किया है कि परमेश्वर के यश के शब्दों की रचना की है, मन को माया से उदास करने और विकारों से उदास करने के, आपे को आपे में जगा देने के, वाहिगुरू के प्यार में झुमा देने वाले; इस प्रकार की भावना और भाव उत्पन्न करने वाले शब्द कहे हैं कि सुनते ही उच्च रौ का जीवन आ जाये। शब्दों को उनके अनुकूल भाव पैदा करने वाले रागों में ढालकर गाने के आप उस्ताद हैं और मैं उनका साधारण-सा नक़लची होने का गौरव रखता हूं। अत: वह राग जिस में दाता ने वाहिगुरू का यश और उच्च भावनाओं के भाव गाये हैं, वह कीर्तन है १. और विशुद्ध राग, राग हैं, २. और विकारों के भावें को उद्दीपन करने वाले बोलों का राग, राग की-सी उच्च वस्तु का निम्न व्यवहार है।

मैंने जो 'कीर्तन मस्त' कहा था, कि निरंकार की स्तुति वाले शब्दों और भावों से भरा हुआ राग सुरत को जगत से ऊंचा उठाकर स्वयं में स्थित कर देता है और वाहिगुरू के प्यार में मग्न कर देता है। पर केवल राग उस भावना में मस्त कर देता है कि जिस भावना का प्रभाव उस राग में होता है। यदि वह भी वैराग्य आदि उत्पन्न करता है तो अच्छा है, पर बजाने वाले और गायक प्राय: उसका वेग शारीरिक भावों की ओर डालते हैं। अत: जब निरंकार के कीर्तन से वंचित होकर, राग के उत्तम प्रभाव, प्रेम, उत्साह, वैराग्य आदि से बेपरवाह होकर वैसे राग सुनो और सुरत को पीछे लगा दो तो सुरत अनजाने ही किसी उस भावना में मग्न हो जायेगी कि जिसकी ओर वाद्ययंत्री (चाहे जाने चाहे अनजाने) हमें लिए जा रहा है। अब समझ गये न?

झण्डा - ठीक समझ गया हूं, अत: तुम उस समय राग की किसी अनजानी तासीर में मग्न होकर, जिसे तुमने आप 'कीर्तन' कहा है, उससे चूक गये ?

मरदाना - मैं राग के अपने प्रभाव को परखने में नहीं पड़ा कि यह किस भावना के प्रभाव वाला है, राग की उत्तमता और तीक्ष्णता और राग गाने वाले की कारीगरी की महिमा के भाव में आकर 'राग मस्त' हो गया, उस समय उस जादूगर ने वह करतब किया जिससे एक व्यक्ति दूसरे की इच्छा पर अधिकार जमाकर

उसकी इच्छा तथा विचारों को अपनी इच्छा के अधिकार में कर लेता है। मूर्ख लोगों को वह करामात और शक्ति लगती है, पर करने वाले लोग इससे स्वार्थसिद्धि का काम लेते हैं, यह एक प्रकार का 'कृष्ण योग'[१] है और इसका निम्न व्यवहार नहीं ।

झण्डा - तान्त्रिक करतब और शाक्तों के कारनामे भी मैंने देखे हैं, आपके कहे अनुसार वे तो कल्याण के मार्ग के सहायक नहीं, क्योंकि प्राय: उनका व्यवहार वासना तृष्णा की पूर्ति की ओर और शारीरिक आवश्यकताओं तथा स्वादों की वृद्धि करने और पदार्थों को एकत्र करा देने वाला है, अत: वह तो माया की ओर लिये जा रहा है, बल्कि आत्मा की ओर से और अधिक मुंह मुड़वा रहा है। तुमने यह सारी बात सत्य कही है। हां सच ! यह दूसरे के मन पर कैसे अधिकार जमा लेते हैं ?

मरदाना - मुझे इस बात का कोई ज्ञान तो नहीं पर दाता जी ने मुझे बताया था कि जब हम किसी कर्म करने वाले के आगे मन बिछा दें और वह आंखों द्वारा अथवा हाथों द्वारा अथवा वचनों द्वारा हमारे मन में विचार डाल-डालकर अपने पीछे लिये चले तो आधी बेहोशी की सी दशा में होकर उसकी इच्छा के वश में हो जाते हैं। आगे जो वैराग्यवान हो, मायातीत हो तो स्वार्थ के काम न निकालेगा, पर ऐसा होना कठिन है। फिर यदि स्वार्थी भी न हो तो भी उसके आगे मन बिछ-बिछकर दबने वाला सा हो जाता है। राजयोग से, भक्तियोग से, नाम के रंग रस से, सहज योग द्वारा तो अन्तस ऊंचा, स्वच्छ, दूसरों के प्रभाव के नीचे न आने वाला साक्षीपद में, जिसको फारसी भाषा में "हालति फाइिलीअत" कहा जाता है, उसमें स्थिर होकर एक विशिष्ट व्यक्तित्व और शक्तिशाली व्यक्ति बन जाता है, पर इस उपरोक्त बात से तो "हालति मफ़ूलियत" में जाकर दबने वाला हो जाता है। हां, यदि कोई किसी के शारीरिक रोगों अथवा बुरी आदतों का इससे इलाज करे तो अलग बात है।

झण्डा - तुमने ठीक कहा है, तृष्णा तो मनुष्य के अन्दर इसका नेतृत्व करने वाली हुई, वह सत्य के मार्ग पर चलने नहीं देती, सच पर खड़ा तो परोपकारी होगा, अपना लालन पालन करने वाला नहीं होगा। पर जो मार्ग आपने कहे हैं, वे बड़े कठिन हैं, अपने-आपसे हो नहीं सकते और योगी मिलते नहीं, भक्त भी दुर्लभ होते जाते हैं और इधर सच्चे ज्ञानी का भी अकाल पड़ा हुआ है। हमने तो हारकर यह मार्ग पकड़ा है, कि मिलकर बैठते हैं, धर्म पुस्तकों का विचार और पापों को जीतने का यत्न करते हैं। कभी-कभी संकल्पों को रोककर एकान्त में

---

१. वह योग जो वासना-तृष्णा की पूर्णता की ओर ले जाता है।

जा बैठते हैं। कभी सर्व अनात्म से विचार को हटाते हैं। चाहे कुछ भी न बने, अपनी ओर से प्रयत्न करते रहते हैं। कई बार साधु अथवा फ़कीर बनने को जी चाहता है, परन्तु साधुओं फ़कीरों को डोलता देखकर और अन्न वस्त्र के लिए कोई रचना रचता देखकर कहते हैं कि न भाई, इससे तो कृत्य मज़दूरी करके खाना विकारों से बचे रहना और मन को हटाते रहना अच्छा है, और मैल तो नहीं लगता न ।

मरदाना - सच है और सुन्दर है, बात तो कोई बड़ी नहीं, पर है भी बड़ी, यदि समझ में आ गई तो सहल, यदि न आई तो कठिन।

यह कहकर मरदाने ने धूप की ओर देखा, झण्डा समझ गया कि मैंने अपने शौक में इन्हें काफी समय तक बातों में लगाये रखा है, समय अधिक व्यतीत हो चुका है और घर आये हुए को मैंने न अन्न-जल पूछा, न ही आने का प्रयोजन, मैंने यह अच्छा नहीं किया, तब कहने लगा :-

हे निरंकार के प्यारे ! मैं मूर्ख हूं, आपसे मैंने अन्न जल नहीं पूछा, आने का प्रयोजन नहीं पूछा, अपने सुख के पीछे लगकर आपको प्रश्नों में लगाये रखा, कृपा-कर कुछ खाइए पीजिये, मुझे सेवा बताइए ?

मरदाना - सच तथा विशुद्ध सच यह है कि मैं तो नगर में खाने-पीने के लिये ही आया था। मैंने निरंजनी ज्योति को कहा था कि कहीं कुछ मांगकर खा आऊं, लोग हमारे से दूर भागते हैं, वेष देखकर न ज़ाने क्या समझते हैं। पर स्वामी जी ने कहा कि मांगने की आवश्यकता नहीं, निरंकार प्यार से भोजन करायेगा। यह कहकर उन्होंने आपका पता दिया कि उनके घर चले जाओ। अत: मेरा प्रयोजन ही खाना खाने का था अथवा जो कुछ मिल जाये और स्वामी जी का भेजने का क्या प्रयोजन है? वह आप जानते हैं।

झण्डा - वाह रे सज्जन ! प्रसन्न कर दिया है, कब कोई साधु यों सच कहता है? वाह वाह निरंजनी ज्योति के साथी ! आज लगता है कि सच मेरा उद्धार करने के लिए रूप धारण करके आया है।

अच्छा यह बता कि आप (गुरू जी) जी ने भी तो भोजन नहीं किया होगा?

मरदाना - मैं हूं दास तथा जीव, वे हैं साहब और ज्योति स्वरूप; भूख, प्यास उन्हें व्याकुल नहीं करती। किस आधार पर वे घबराते नहीं, यह वही जानें। कहते हैं कि कोई ऐसा ठिकाना है जहां पर नाम का आधार शरीर का भी पालन करता है[१]। न जाने कि आपके प्रेमी घर-घर में खाना तैयार करके थाल परोसकर, आपका ध्यान धारण करके जो प्रार्थना करते हैं कि आपकी जिह्वा इसका स्वाद प्राप्त करे, वह कोई आधार प्रार्थनाओं के तारों पर थरथराता है उनके सक्ष्म आपे

---

१. तिथै ऊंध न भुख है हरि अमृित नामु सुख वास ।।

को मिलता रहता है, राम जाने या वे स्वयं ।

झण्डा - पर वैसे, उन्होंने आज अभी भोजन नहीं पाया ?

मरदाना - न केवल आज, बल्कि परसों के ही पवन आहारी हैं ।

झण्डा - लो, तुम तो भोजन कर लो, तैयार है और उनके लिए मैं तुम्हारे साथ लेकर चलता हूं, मैं उन्हें भोजन कराऊंगा ।

मरदाना - बात तो सुन्दर है, पर उनके खाये बिना मैं कैसे खाऊं? पहले साहब खाये, बाद में सेवक ।

झण्डा - बात तो तुमने सच्ची कही है।

तब झण्डा ने, जो राजा के महलों का बढ़ई[1] था, उसके बाग से फल मंगवाये और कुछ तैयार भोजन घर से ले लिया और मरदाना को लेकर चल पड़ा ।

: ३ :

जब दोनों व्यक्ति शहर से बाहर उजाड़ में वहां पर आये, जहां पर गुरू बाबा बैठा था तब मरदाना ने आकर 'कर्तार, कर्तार' कहकर चरणों पर सिर रखा। झण्डा ने भी टोकरी रखकर चरणों के पास शीश झुकाकर 'कर्तार, कर्तार' कहा। तब प्रकाश स्वरूप गुरू नानक देव जी ने कहा - 'आओ झण्डा !' तब झण्डा ने 'जी' कहकर भोजन आगे रखा। आपने कहा, 'झण्डा ! यह क्या लाये हो ?' तब उसने कहा, 'जी ! भोजन है, आप भोजन कीजिए और अपने सेवक को भी कराइए'। तब सतगुरू जी ने कहा - 'झण्डा ! इस भोजन के अलग-अलग भाग कर दो, एक भाग मरदाना को दे दो, जो खाकर तृप्त हो जाय और हरि के गुण गायन करे।' यह सुन कर मरदाना ने कहा, - 'स्वामी जी ! यह कैसे उचित हो सकता है कि आप भोजन न करें और मैं करूं। पहले स्वामी बाद में दास'। तब गुरू नानक देव जी मुस्कराये और कहने लगे, 'मरदाना ! तुझे भूख लगी है, तू खा। तू झण्डे का अतिथि है, तू पहले खा ले। झण्डा चलकर हमारे पास आया है, यह हमारा अतिथि है, पहले इसे खिलाना हमारा धर्म है, बाद में हम खायेंगे'। तब मरदाना वचन मानकर अन्न खाने लगा।

झण्डा हैरान हो गया कि कितने आदर वाले हैं, पर यह न समझ सका कि उसे पहले क्या खिलायेंगे। उसने समझा कि मरदाना के बाद भोजन करने की मेरी बारी आयेगी और फिर ज्योति स्वरूप जी आप भोजन करेंगे। झण्डा यही सोच विचार कर रहा था कि सतगुरू जी ने पूछा, 'झण्डा ! क्या यह भोजन तुम अपने घर से लाये हो ?'

---

१. हाफिजाबाद वाली जन्मसाखी - 'झण्डा उथों दे राजे दा तिरखाण बी आहा' (झण्डा वहां के राजा का बढ़ई था)

झण्डा - जी ! भोजन तो परमेश्वर के घर से आया है, मैं बेचारा कौन हूं?

गुरू जी - झण्डा ! भोजन भेजने वाले परमेश्वर को तू जानता है क्या ?

झण्डा - यह तो, हे निरंकारी जी ! सभी जानते हैं कि परमेश्वर है और वह सबका पालन करता है।

गुरू जी - क्या तुमने परमेश्वर को जाना है ?

झण्डा (कुछ चकित होकर) - जी ! जाना है, तभी तो सत्संग में चित्त की रुचि रहती है।

गुरू जी - यदि जाना है तो व्याकुल क्यों हुआ करता है? व्याकुलता तो न जानने का चिह्न है, जो जानता है, वह कब घबराता है? झण्डा ! भली-भांति विचार कर ले, तुमने जाना नहीं होगा ।

झण्डा - कैस जी ! व्याकुल तो बहुत रहता हूं ।

गुरू जी - जिस घट में परमेश्वर की पहचान आ जाती है, वहां पर फिर घबराहट नहीं होती। वह ज्योति-स्वरूप हैं, ज्ञान-स्वरूप हैं। जब हमारी पहचान में ज्ञान-स्वरूप आ गया तब द्विविधा नहीं रहती; द्विविधा के बिना व्याकुलता नहीं होती ।

झण्डा (सोचकर) - ठीक ।

गुरू जी - अच्छा झण्डा ! जब तू सवेरे उठकर मन की दौड़ को रोकता है, भगवन्त की ओर ध्यान को लगाता है, तभी तो उसकी ओर ध्यान लगता है, पर जब सारे दिन काम-काज में मग्न होता है, तब मन उस काम में मग्न रहता है। उस समय तू काम काज को जानता है, भगवन्त को नहीं जानता ?

झण्डा - हां जी, सत्य तो यही है ।

गुरू जी - तब तू परमेश्वर को अभी नहीं जानता, क्योंकि जब तू आसन लगाकर बैठता है तो मन दसों दिशाओं में दौड़ता है, तुझसे रुकता नहीं, कभी 'नाम रूप' मिथ्या ख्याल करके, 'अनाम, अरूप का एक अपना शून्य सा विचार बना-बनाकर उसमें स्थित होने का प्रयत्न करता है, सो वह समय तो प्रयत्नों में व्यतीत हुआ। दिन का सारा समय काम-धन्धों को जानने, पहचानने तथा उन्हें निपटाने में व्यतीत हो गया। रात नींद में सोते हुए सपनों में व्यतीत हो गई। परमेश्वर को तू कब जानता है?

अपने मन का यह विवेचन तथा अपनी व्यस्तता का यह लेखा सुनकर झण्डा घबराया, घबराकर सोचने लगा। विचार ने कहा कि निरंजनी ज्योति जी सच कह रहे हैं, मन मेरा है और उसकी दशा आप बता रहे हैं। कहने लगा : आपने सच कहा है, वैसे ही चित्त में सत्संग का मान धारण किये बैठा हूं, अपने खोखलेपन का अपने-आपको पता ही न चल सका ।

गुरू जी - झण्डा ! यदि किसी के पास धन है, और उसे हर समय अपने

धन का ज्ञान नहीं रहता, तो वह किंसी आवश्यकता के समय धन के होते हुए भी धन का अभाव ही समझेगा। उस समय, उस क्षण, जबकि धन के होने का ज्ञान उसे भूल गया है, उसके लिए धन का होना या न होना एक समान है, उसने होते हुए भी धन को नहीं जाना ।

झण्डा नेत्र मूंदकर हृदय का सारा बल लगाकर समझने का यत्न कर रहा था। जब आप चुप हो गये, नेत्र बन्द किये तो सिर हिलाकर कहने लगा - ठीक, ठीक है ?..... झण्डा ने अपने घर में बसने वाले ठाकुर को नहीं जाना पहचाना था। ठीक है, वह जानना ही क्या हुआ जिससे आठों पहर भूल ही पड़ी रहे; कभी सायंकाल के समय वर्षा के बादलों में से प्रयत्न करती हुई कोई किरण दिखाई दी और कोई अदृश्य हो गई। इस तरह तो मैंने बिल्कुल ही जाना पहचाना नहीं है। (सिर हिलाकर) ओहो ! यों वैसे ही व्यतीत हो गई ... व्यर्थ व्यतीत हो गई।

गुरू जी - झण्डा ! निराश भी न हो, तुझे जो लगन लगी है[१], जो तुझे भगवन्त मिलाप की प्यास है वह भी धन्य है। वही भेंट करायेगी। जिसके मन में दर्शन की इच्छा नहीं, चाह नहीं, वह तो मृतक के समान है[२]। मृतक कि लिये मिलाप का कोई अर्थ नहीं होता। तेरा मन जीवित है, जिसके अन्दर चाह है। समझने योग्य बात यह है कि तूने उसे जाना नहीं, उसे पहचाना नहीं।

झण्डा (तड़पकर) - कैसे जानूं ? कैसे पहचानूं ?

गुरू जी - परमेश्वर अनन्त है। उसका कोई आदि नहीं, कोई अन्त नहीं। हम सभी अन्त वाले हैं। अनन्त तथा अन्त वाले में दूरी पड़ गई है, इसी दूरी को दूर करना है।

झण्डा (मिन्नत करके) - कैसे, जी कैसे ?

गुरू जी - अनन्त तथा अन्त वाले में एक काल की ही दूरी है, समय की ही दूरी है ! हम सभी अन्त वालों का काल क्षण-क्षण करके व्यतीत होता है। यदि हम क्षण-क्षण की सम्भाल करें तो प्रत्येक क्षण के सम्भालने से क्षणों की मानो एक माला-सी बन जायेगी। इसे हम 'सम्भाल की माला, कहेंगे। यह माला एक प्रकार की निरंतर हो जायेगी, मानो हमने काल के प्रत्येक क्षण को सम्भालकर अपने तथा अनन्त के बीच काल की नदी के ऊपर एक पुल-सा बना लिया है, और इस दूरी को मानो दूर कर लिया है।

झण्डा - ठीक है, ठीक है, कैसे सुन्दर ढंग से समझाया है, पर इसको करनी में कैसे ढाला जा सकता है, उसको तनिक सविस्तार बताइए न जी ! क्योंकि मेरा मन शास्त्र बुद्धि के पीछे लगकर और समझता रहा है, जिससे मन तो सबुद्ध होता

---

१. जिसु जन कऊ प्रभु दरस पिआसा ।। नानक ताकै बलि बलि जासा ।। (गऊः सुखमनी)
२. फ़रीदा जितु तनि विरहु न ऊपजै सो तनु जाणु मसाणु । (श्लोक फ़रीद जी)

गया है, पर अब समझ में आता है कि अन्दर प्रभाव कुछ नहीं हुआ। करनी कर्त्तव्य का ढंग ठीक प्रकार से नहीं आया, इसलिये तो सदैव व्याकुल रहता हूं।

गुरू जी – परमेश्वर है, यह बात तो प्रत्यक्ष है, उसका स्वरूप 'है' ही तो है, 'सत्य' स्वरूप, 'है' स्वरूप ठीक है न ?

झण्डा – जी हां सत्य, तीनों कालों मे सदैव सत्य, 'वह है' यही आपने बताया है न ?

गुरू जी – 'है' 'वह है' यह उसका एक स्वरूप है। 'वह है' यह भाव हमारे अन्दर नहीं है। हमारे अन्दर 'वह है' का भाव किसी तरह से निवास कर जाये तो उसका स्वरूप अन्दर निवास कर गया, हमारी समझ में आ गया, पर हम काल में निवास करते हैं। हमारा काल क्षण-क्षण करके व्यतीत होता है। क्षण-क्षण करके मन का संकल्प और विचारों तथा विश्वास में व्यतीत हो रहा है, मानो हमारा सारा काल इस 'है' भावना की भूल में व्यतीत हो रहा है। यदि हम 'भूल' के स्थान पर याद कह लें, अथवा कह लें, स्मरण या उसे अन्दर बसा ले.....।

झण्डा (तनिक अधीर होकर) – कैसे ।

गुरू जी – परमेश्वर है, यह बात हम हर क्षण याद रखें। हमारे ध्यान में 'वह है' यह बात किसी क्षण भी न निकले, तब समझ लो कि यह पहचान निरन्तर पहचान होकर हमारे अन्दर उसके 'है' होने की बंध जायेगी कि नहीं? प्रत्येक क्षण याद रहे कि वह 'है' तब कोई क्षण नहीं आयेगा कि हमें 'है' भूल जाये; तब 'है' का ज्ञान लगातार हमारे अन्दर हो गया। हम काल की नदी के ऊपर पुल बनाकर अनन्त के देश पहुंच गये कि नहीं? 'अन्त वाले' के अन्दर 'अनन्त' की 'है' का भाव एक प्रकार से निरन्तर भाव हो गया ।

झण्डा –ठीक, (ठण्डा श्वाँस लेकर) कैसे तिनके के पर्दे के पीछे से लाख निकालकर दिखायी है ?

गुरू जी – फिर इस निरन्तर अस्तित्व का अन्दर में अभ्यास करो, 'कर्तार है', मेरे अन्दर है, 'है' 'है' स्मरण करते, ध्यान में 'है' बस जायेगी[१]। फिर ध्यान में रखी हुई बात धुर अन्दर चित्त में उतर जायेगी। एक दिन ऐसा आयेगा कि यह प्रवह निरन्तर हो जायेगा, स्वाभावकि हो जायेगा, स्वतः ही चलता रहेगा, तब समझना कि परमेश्वर को कुछ जाना है ।

झण्डा – सतसंगी कहलाने वाले लोग अथवा पण्डित लोग कथा करते समय अथवा समझने-समझाने के समय, या चर्चा वाद के समय, या कभी घड़ी-

---

१. है है करिके ओहि करेनि ।। गल्हा पिटनि सिरु खोहेनि ।।
नाऊ लैनि अरु करनि समाइ ।। नानकु तिनु बलिहारै जाइ ।।

आधी घड़ी बैठकर प्रयत्न करके समझते हैं कि हमने साईं को जान लिया है। यही भूल भले भलों में व्याप्त है। आठ पहरों में से सात पहर और पौनी आठ घड़ी भूल में ही निवास करते हैं। मन से दूरी पर निवास करते हैं, दूरी पर खड़े होकर काल की नदी में तृण इकट्ठे करते रहते हैं, फिर हम कहते हैं कि हम सत्संगी हैं, ईश्वर के 'प्रेमी' हैं, भले हैं, वैरागी हैं हमने समझा है, शेष जगत मग्नावस्था में है, फिर मह उन्हें उपदेश देने कि लिये चल पड़ते हैं। भूल के बाद भूल होती है। शोक है आपे पर, हां मुझे अपने आप पर दु:ख है।

गुरू जी - काल क्षण-क्षण करके व्यतीत हो रहा है, पर एक चलती हुई धारा की भांति प्रतीत होता है, इस प्रकार क्षण-क्षण साईं को याद रखो यह क्षण-क्षण की याद एक अविरल धारा की भांति प्रवाह बन जायेगी। जैसे धनी पुरुष को अपने धन का ज्ञान लगातार होता है, तभी तो वह धन का सुख भोगता है, वैसे स्वामी के अस्तित्व का अभ्यास निरन्तर होकर ज्ञान रूप हो जायेगा, निरन्तर 'है' का भाव चित में बसते-बसते चित्त में स्थिर हो जायेगा और स्मरण में निरन्तर ज्ञान प्रतीत होगा। इससे स्वाद, रस तथा आनन्द की प्राप्ति होगी।

झण्डा - मैंने, हे निरंजनी ज्योति जी ! समझ लिया है, मुझे स्वाद आया है, पर डरता हूं कि कुछ समय के पश्चात् क्षण-क्षण की स्मृति भूल जायेगी। सुनते और समझते ही प्रवाह नहीं चल पड़ता, पर आपके वचन के कारण अब चलता दिखाई देता है, कहीं यह एक घड़ी के पश्चात् ठहर न जाये !

गुरू जी - हे झण्डा ! झण्डा ! बात तो मजबूती से पकड़ने वाली है, मन के पल्ले में डालकर खींचकर गांठ दे लेने वाली है। यदि किसी का मन ऊंचा तथा स्वच्छ है, तो सुनते ही यह स्मृति का प्रवाह चल पड़ेगा। यह तो मन की दशा की बात है। कई मन ऐसे हैं कि सुनते ही लग जाते हैं, पर इस प्रकार के मन बहुत कम हैं। सिद्ध किये हुए मन जो दिये, बत्ती तथा तेल के संयोग की भांति तैयार होते हैं, अग्नि का स्पर्श पाते ही जल उठते हैं, पर जो मन सिद्ध नहीं हुए, जिन्हें वैराग्य, सत्संग आदि कोई प्रयत्न पहले अथवा अब नहीं करने पड़े, वह लग तो पड़ते हैं, पर फिर-फिर भूलते हैं। साहब-सच्चे साहब की स्मृति को भूल-भूल जाते हैं, उन्हें फिर एक और समझ करनी पड़ती है।

झण्डा - वह अवश्य ही बताइए, मुझे अपने मन पर भरोसा नहीं कि वह इस समय की भांति चलता रहेगा। मेरा मन कच्चा है, ख्याल करता है कि मैं बढ़िया प्रकार का हूं, पर है साधारण-सा कच्चा-सा।

गुरू जी - कभी बच्चों को पढ़ते देखा है ? एक-एक शब्द को कई-कई बार पढ़ते हैं। पढ़ते-पढ़ते वह शब्द उसका अर्थ उनके चित्त में बैठता, नीचे चित्त में उतर जाता है, फिर कभी भूलता नहीं। अत: किसी बात को फिर-फिर

ध्यान में बसाते-बसाते वह बात अन्दर अन्तस में मन के नीचे वाली परत में बैठकर पक्की हो जाती है, वही हमारा ज्ञान है और वही सुख देता है। सो जो बात एक बार सुनकर ध्यान में नहीं बस जाती उसे जिह्वा द्वारा दोहराया जाता है, बार-बार उच्चारण किया जाता है, रटा जाता है, फिर वह ध्यान में आकर निवास करती है। भाव यह है कि किसी वस्तु को ध्यान में बसाने के लिये उसको बार-बार रटना सहायता करता है, जैसे कि तुझे बताया था कि ध्यान में किसी बात को लगातार बसाने से वह बात चित्त में मन के नीचे वाले परत में बस जाती है। अत: प्रत्यक्ष है कि ध्यान में बसाने के लिये कई बार हमें जिह्वा के रटने से सहायता मिलती है। यह बात कि रटने से, बार-बार उच्चारण करने से, जपने से ध्यान में - स्मृति में, स्मरण में बात बस जाती है, प्रत्यक्ष है। हमारे मन के अन्दर की कला की बनावट इस प्रकार की है कि प्रत्येक व्यक्ति इसको समझता है। जितने विद्वान हैं, सभी ने इसी तरह रट-रट कर और स्मरण कर करके विद्या अन्दर बसाई है। अत: झण्डा ! यदि शंका हो कि 'ईश्वर का अस्तित्व' हमारी स्मृति में निरन्तर रूप में निवास नहीं करेगा तो ईश्वर का 'नाम' विह्वा पर बैठाकर जाप करो, रटो, बार-बार उच्चारण करो। इस प्रकार के जिह्वा के अभ्यास से इस जिह्वा से नाम जपने से ईश्वर का अस्तित्व स्मृति में बस जायेगा, स्मृति में से किसी समय न निकलने देने से यह भाव चित्त में मन के नीचे वाले परत में निरन्तर रंग में टिक जायेगा ।

झण्डा - श्वाँस दबा-दबाकर, सारा ध्यान लगा-लगाकर समझ रहा था। अब एक लम्बा श्वाँस लेकर 'उफ़' की-सी मन्द आवाज़ निकालकर कहने लगा-स्वाद आ गया है, समझ में आ गया है, यदि इस मूर्ख को समझाते-समझाते थक न गये हों तो एक बात और समझा दीजिए? यह तो अच्छी तरह समझ में आ गया है कि साईं का 'अस्तित्व' हमारी स्मृति में प्रत्येक क्षण निवास करे; जो यों ही मन की सूक्ष्म गति में याद अर्थात् साईं के अस्तित्व को 'याद' लगातार न होकर बसे, भूल भूल जाये, फिर-फिर ध्यान में आये और फिर-फिर भूल-भूल जाये, तो साईं का नाम जिह्वा द्वारा जपे। यह अभ्यास 'साईं के अस्तित्व के भाव' को स्मृति में निरन्तर कर देगा। बहुत आनन्द आया है। लोग जो तर्क किया करते हैं, विचार नहीं करते। मेरे ऐसे मूर्खों को नाम जपने से - नाम स्मरण प्राप्त होगा, आपने यही बताया है न? (सिर हिलाकर और चेहरे की ओर देखकर, जिस ओर से 'हां' का संकेत-सा दीखता था) कि स्मरण के साथ परमेश्वर के अस्तित्व का भाव चित्त में टिक जायेगा। मैंने यों समझा है कि फिर उठते-बैठते चलते और सोते-हर समय 'है की भावना' एक निरन्तर भावना अन्दर रहेगी। भला जी! फिर काम-धन्धे तथा अन्य कार्य तो उधर से नहीं हटा देंगे ?

गुरू जी – झण्डा ! जब मन की दूसरी परत में – संस्कारों वाले मन में[1] नाम नाम बस जायेगा, तब फिर काम–काज तो हमारा ऊपर वाला मन करता है न, वह करता रहेगा, पर उसके अन्दर नाम का प्रवाह चलता रहेगा। तब ऊपरी मन धन्धों से मुक्त होगा तो वह क्या देखेगा कि अन्दर से किसी अनजानी परत में से नाम की रुचि ज़ोर दे रही है, फिर क्या देखेगा, कि प्रवाह चल पड़ा है और मन स्मरण में है। इस प्रकार जपने वालों की रसना का प्रवाह तो चलता ही दिखाई पड़ता है। उनका धन्धों के कारण पड़ा हुआ अस्थायी मैल शीघ्रता से दूर हो जाता है। काम–काज के समय इसी अन्दर वाले मन में जप जारी रहने के कारण और फिर मुक्त होकर और समझकर जपने से स्मरण के प्रवाह के साथ काम–धन्धे के समय वाला मैल पहले से ही कट जाता है और फिर वह जप स्मरण बन जाता है।

झण्डा – ठीक, आपने यह समझाया है कि यह 'है' का भाव है, या यों कहो कि वाहिगुरू के अस्तित्व का ज्ञान या उसका सत्य स्वरूप हमारे अन्दर यों निरंतर हो जायेगा; और यह भाव हमारे अन्दर अपने–आपको दिखाता रहेगा।

गुरू जी – हां 'है' की भाव जब अन्तस में निरंतर हो जायेगा, हमारा अन्तस अपने आपको एक उच्च स्थान पर स्थित हुआ प्रतीत करेगा, यह जागृति का भाव कि 'मानो सो रहे थे, अभी जागे हैं' अन्दर जारी रहेगा, ताज़गी सी और हल्कापन आभासित होगा। इस प्रकार के स्वाद अन्दर के आपे में प्रतीत होंगे, उस दशा को उनमन कहा जाता है कि मन उच्चावस्था में आ गया है। यों कहो कि आपा दबाव तथा पतन से मुक्त होकर ऊंचा हो गया है। इस उच्चता को अकड़ अहंकार न समझना। वह अकड़ मन की अहंकार की वृत्ति है, यह ऊंचाई स्वयं के स्वयं में आकर उन प्रभावों से ऊंचा होना है जो उसको निम्न बनाये रखते हैं, जैसे कि अब मेरा मन प्रतीत कर रहा है। अन्तस की वास्तविक उच्चता और अकड़ वाली उच्चता का अन्तर अब समझ लिया है? जगत के व्यवहारों की सोचें तथा विचार मन को निम्न किये रखते हैं। सदैव निम्न रहने के कारण मनुष्य को मन की वास्तविक उच्चता की पहचान नहीं होती जब स्वामी के स्मरण से मन से आशा, अन्देशे, सोच आदि के बोझ गिर पड़ते हैं तो मन इस उच्चता का अनुभव करता है[2]।

झण्डा – जी हां, मेरे निरंकार के प्यारे जी ! समझा है। हां, एक और बात पूछने योग्य है ?

गुरू जी (संकेत करके) – पूछो ।

---

१. मन का वह भाग जिसमें संस्कार रहते हैं।

२. आस अन्देसा दुइ पट जड़े । (रामकली म: १.३)

झण्डा - यह जो आपने कहा है कि हमारे मन तथा स्वभाव का निर्माण ही इसी ढंग से हुआ है कि जिस बात को हम बार-बार रटेंगे, वह ध्यान में बस जायेगी, मैंने यह बात समझ ली है। हम जिस बात का लगातार ध्यान रखेंगे, वह बात हमारे अन्दर हमारा ज्ञान बन जायेगी - निरंतर ज्ञान, जैसे वह ज्ञान हमारा अपना है, और उससे हम सुख का रस प्राप्त करते हैं। यों मैंने समझा है कि वह एक निरंतर 'भाव' या 'स्वभाव' हो जायेगा। आपने जो यह बात कही है कि जिस बात का हम बार-बार स्मरण करेंगे, वह हमारे चित्त में निवास कर जायेगी हमारे मन के नीचे वाली परत में बैठ जायेगी, यह मन की नीचे वाली परत या चित्त में बैठने वाली बात क्या हुई? मन के नीचे वाली परत क्या है?

गुरू जी - झण्डा! बात तनिक ध्यान देने योग्य है। चित्त का अर्थ प्रत्येक मन वाले अपने-अपने आशय के अनुसार करते हैं, हमें तुझे एक बात समझानी थी, पद्यों के अर्थ नहीं बांधने थे, पर तूने पूछा है तो अब समझ ले। इस जड़ शरीर के अन्दर चेतन भाग हैं, उसके हम सारे ज्ञाता नहीं है। वह हम हैं वह हमारा आपा है हमारा सारा कुछ है, पर हम उस सारे से परिचित नहीं हैं। जीव उसके उतने ही भाग से परिचित है जितने में कि सोच विचार पहचान आदि हैं। जैसा मन सोचता है, समझता है उसका पता जीव को होता है शेष का उसे कोई पता नहीं। कई बार भूल हो जाती है कि सोचने-समझने वाले मन को सारा मन सारा आपा सारा जीवन समझ लिया जाता है। पर यह अनुचित है, यह हमारे विचार वाले मन की एक और परत अथवा भाग है, जिसमें हमारे इस मन के विचार आदि प्रतिबिम्ब डालते हैं और मानो वहां पर प्रतिबिम्ब इकट्ठे होते हैं, अथवा यों कहें कि उस मन में हमारे सारे अभ्यास 'संस्कार' बनकर एकत्रित होते हैं, वह मन सोचता, विचार करता, तौलता हुआ हमें प्रतीत नहीं होता ।

झण्डा (कुछ अधीर होकर) - फिर हमें उसका ज्ञान कैसे होता है गुरू जी?

गुरू जी - उसका ज्ञान अन्दर की रुचि द्वारा थोड़ा-सा हो जाता है। जैसे कोई व्यक्ति प्रतिदिन बारह वर्ष तक मदिरा का सेवन करता रहता है, उसका मदिरा का अभ्यास मदिरा के विचारों को लेकर एक-दूसरे मन में उतरता और वहां पर एकत्रित होता जाता है, इसको हम कहते हैं कि मदिरा के संस्कार उसके मन के नीचे वाली परत में एकत्रित हो गये हैं। प्रतिदिन के विचारों, बातों और व्यवहारों के प्रतिबिम्ब जो मन पर पड़कर एक प्रकार से एकत्रित हो रहे हैं, उन्हें संस्कार समझ लीजिये। मन की वह परत, जिसमें यह संस्कार एकत्रित होते हैं, अपने आपको सोच, विचार, ख्याल, तौल के रूप में नहीं बताता, परन्तु 'रुचियों' के रूप में बताता है। जैसे बारह वर्ष का मदिरा पान करने वाला जब किसी भली संगति में बैठकर अथवा मदिरा के कारण शरीर पर पड़े बुरे प्रभाव को देखकर मदिरा का त्याग कर देता है तो यह कार्य उसके प्रत्यक्ष मन (सज्ञात मन) ने किया

है, जिसने इसका अवगुण पहचान कर इसे बुरा जान लिया है, पर उस गुप्त मन ने (जहां पर संस्कार इकट्ठे हुए हैं) इतनी शीघ्रता से मदिरा का त्याग नहीं किया। उसमें मदिरा के संस्कार बैठे हुए हैं। जब ठण्डी वायु चलेगी, बादल इकट्ठे होंगे अथवा मदिरा की गन्ध आयेगी, कहीं मदिरालय दिखाई देगा, तो उसके अन्दर मदिरापान करने की रुचि उठेगी, उसका प्रत्यक्ष (अथवा सज्ञात) मन तो मदिरा के अवगुणों को समझ रहा है, उसका सेवन करने से घृणा कर रहा है, पर फिर रुचि जोर डाल रही है, यह रुचि कहां से आ रही है? सोचने की बात है। यह रुचि बारह वर्ष से संचित किये गये संस्कारों की है, जो गुप्त मन में से उठ रही है। यह अकारण रुचि (प्रत्यक्ष मन के विचारों से विरुद्ध भी उठ रही रुचि) उस गुप्त मन का पता दे रही है जो अपना आप अन्दर छिपाकर बैठा है।

फिर एक और ढंग से भी पता चलता है, दिन को जो काम करें, रात को उन्हीं जैसे चित्र अथवा अन्य रूप में तबदील हुए चित्र सपनों में देखोगे। दिन की अपूर्ण तृष्णाएं कई बार रात को सपनों में पूर्ण होती हैं, यह सब कुछ गुप्त मन ही करता है, क्योंकि प्रत्यक्ष मन तो उस समय सो रहा है, सोया हुआ मनुष्य जागृत की भांति सोचता, विचारता, तौलता नहीं, क्योंकि प्रत्यक्ष मन तो जागृति में ही नहीं, अब कौन है जो सपनों में होने वाले व्यवहारों के चित्र अनेक प्रकार विचित्रता में दिखा रहा है? यह वह दूसरा मन है, जो सोचों, वचनों, कर्तव्यों के संस्कारों के विचित्र चित्र बनके रूपों में तबदील कर-करके दिखा रहा है। अतः हे झण्डा! सपनों में जो जागता है सो वही मन है।

झण्डा-हे शाहों के शाह! आपने ठीक समझाया है । मैं तो सोया ही रहा। सभी बातें पढ़ी हैं, पर समझ में कुछ न आया। संस्कार कब पड़ा, कई बार घटा पर सूझ न हुई कि वास्तविक भाव क्या है। अब हे दाता जी! यह पूछना है कि हम दिन-रात स्वार्थों में लगे रहते हैं और प्रायः विकारों वाले काम करते हैं, भूख, प्यास तथा अन्य शारीरिक भूखों की पूर्ति के यत्नों में फिरते हैं, हमारे अंदर सारा दिन वही संस्कार इकट्ठे होते होंगे; इस प्रकार से हमारा नीचे का मन तो शारीरिक कामनाएं, शारीरिक भूखों, शारीरिक विकारों के संस्कारों से भरा हुआ मानो एक तालाब होगा, उसमें से रुचियों की तरंग तो सांसारिक तथा विकारी ही उदित होंगी; फिर तो हम आप अपने आपे को खो चुके हैं। अब हमारी ऊंची तरफ की रुचि कैसे होगी?

गुरू जी - भाई! इसीलिए तो भलाई तथा उच्चता को समझ-समझकर उस पर चलने के संकल्प और इन्द्रिय बांध-बांधकर जिज्ञासु लोग और नेकी का प्रयत्न करने वाले बार-बार गिरते हैं। मन की छिपी हुई रुचियां जीवन के 'समझे और अच्छा जाने हुए मार्ग' के विरुद्ध उन्हें ले जाती हैं।

झण्डा - फिर हमारा कल्याण तो असम्भव हो गया ?

गुरू जी - असम्भव तो नहीं, कठिन है और समय मांगता है।

झण्डा - कैसे हे साईं साहब जी ।

गुरू जी - जैसे हमने अपने उस गुप्त मन के कोष को बुरे संस्कारों से भरा है, वैसे अब भले संस्कारों से भरें।

झण्डा - वह जो भर रहा है, कैसे खाली हो और दूसरी वस्तु उसमें कैसे समाये?

गुरू जी - जो वस्तु वहां पर 'विकारों के संस्कारों' से भर रही है, उसमें भलाई तथा 'उच्चता के संस्कारों' की वस्तु डालते जाओ तो विकार के संस्कार वहां से अपने-आप दूर हो जायेंगे।

झण्डा - आपका भाव यह है कि जो गुप्त मन में, जो कि बुरी वस्तु से भर रहा है, किसी अच्छी वस्तु को भरें तो पहली वस्तु अपने-आप निकल जायेगी।

गुरू जी - जैसे गन्दे पानी से भरी परात को वर्षा में रख दें तो वहां निर्मल जल गिर-गिरकर परात निर्मल जल से भरती जाती है, गन्दा जल अपने आप निकल-निकलकर समाप्त हो जाता है। यदि परात का पानी उलटा सकें तो गन्दा जल तो निकल जाता है, पर यदि उसको उलटा न सकें तो वर्षा में पड़ी हुई परात का गन्दा जल अपने आप वर्षा का ताजा जल गिरने से समाप्त हो जायेगा। वैसे ही दृष्टान्त मात्र परात की बात कही है जिससे वास्तविक बात ठीक-ठीक समझ में आ जाये।

झण्डा - स्वाद आ गया, कृपया यह भी बताइए कि मैल से भरे हुए मन में कौन-सी वस्तु डालें ?

गुरू जी - सज्जनता ।

झण्डा - शुभ कर्म ?

गुरू जी - शुभ विचार, पवित्र विचार, शुभ वचन, शुभ कर्म ।

झण्डा - कितना बल लगायें, मैं अपनी आपबीती विनय करता हूं, न तो केवल शुभ विचारों वाले और न ही केवल शुभ बातों और शुभ कर्मों वाले हो सकते हैं, बहुत कुछ संवर जाता है, पर कोई वश नहीं चलता, सच्ची बात है, क्षमा करना।

गुरू जी - तुम विशुद्ध सत्य कह रहे हो। यही तो कठिन बात है कि मनुष्य के अन्दर की रुचि उसे विशुद्ध सज्जनता तक आने नहीं देती। अन्दर का मैल निकालने के यत्नों में मनुष्य हार जाता है, ऊपर से प्रतिदिन के पतन का मैल अन्दर जाता रहता है, कुछ मल धोया जाता है, कुछ और लगता है, इसलिए केवल शुभ कर्मों पर रखा हुआ भरोसा सिरे नहीं चढ़ता। शुभ कर्म करने हैं, भली बात सोचनी है, सारी शक्ति लगानी है, पर रह जाने वाली कमी को पूरा करने के लिए कुछ और भी करना चाहिए । शुभ गुणों को धारण किये बिना कार्य नहीं

संवरता, पर हमारे अन्दर अवगुणों के संस्कार भरे पड़े हैं, यही तो कठिनाई है कि वे धुलते नहीं।

झण्डा- जी, फिर इसका हल बताइये न !!

गुरू जी - इसका हल कर आये हैं, जो तुझे पहले समझाया था, वह इसी समस्या का हल था।

झण्डा अब 'गुप्त तथा प्रत्यक्ष मन' की दशा को समझता पहले उपदेश को मानो भूल रहा था। सतगुरू जी का वचन सुनकर फिर आरम्भ से सारी बातें सोचने लगा। सोच-सोचकर कहने लगा - निरंकार के प्यारे जी ! फिर अब जहां पर बात आई है यहां से उठाकर ले चलने की कृपा कीजिये, मुझे अब सारी बात समझ में तो आ गई है पर अब जहां पर हूं, यहीं से मुझ मूर्ख का सम्बन्ध पहली बात से नहीं जुड़ रहा ।

गुरू जी - झण्डा ! यह तो हमने देख लिया है और प्रत्येक व्यक्ति को अनुभव है कि मनुष्य अपूर्ण है। और इसका मन अवगुणों से भरा पड़ा है, अवगुणों में से गुण उत्पन्न नहीं हो सकते, इसलिये हमें देखना है कि गुणों का निवास कहां पर है? सभी गुणों का निवास परमेश्वर में है। गुणों के बिना हमारी सफ़ाई नहीं होती, हमारा कल्याण नहीं होता। हम अवगुणों से भरपूर गुणों से रिक्त हैं, सभी गुण परमेश्वर में है[१]। अब आगे बात स्पष्ट है।

झण्डा - आप ही कृपा कीजिये ।

गुरू जी - जिसमें सभी गुण हैं उसे अन्दर बसाईए। मलिन जल वाली परात को उद्यम द्वारा उठाकर बादलों के नीचे रखें। बादलों की बरसती हुई वर्षा अपने निर्मल जल से उसे भर-भरकर निर्मल कर देगी, मैला जल अपने-आप दूर हो जायेगा ।

झण्डा - कैसे ?

गुरू जी - जो तुझे समझाया था कि उस परमेश्वर का स्वरूप है 'अस्तितव' विशुद्ध 'अस्तित्व', वह 'है' अर्थात् 'सत्य' है, उसके इस स्वरूप का चिन्तन करें। या यों कहें कि उस सर्वगुणों से भरपूर का स्मरण करें। वह सर्व गुणों से भरपूर है, वह विशुद्ध भलाई हैं, ज्यों-ज्यों उस सज्जनता के भण्डार का, सर्व गुणों से भरपूर का, शुद्धि पवित्रता रूप वाले का हम स्मरण करेंगे उस अस्तित्व का भाव, उसके गुणों से भरपूर स्वरूप, उसका प्रतिबिम्ब मन में प्रत्यक्ष रूप से आ-आकर संस्कार बन-बनकर, जहां पर संस्कार रहते हैं, उस मन में उतरेगा, त्यों-त्यों मन के संस्कारों वाले स्थान से बुरे संस्कारों का सामान उछल-उछलकर गिरने लग जायेगा, नेकी का सामान भरने लगेगा। कुछ समय के पश्चात् वहां पर साईं का

---

१. सभि गुण तेरे मैं नाही कोइ ।। विणु गुण कीते भगति न होइ ।। (जपुजी)

स्वरूप, उसके अस्तित्व का भाव, उसका गुणों से भरपूर सत्य-स्वरूप लबालब भर जायेगा ।

फिर हमारी सभी रुचियां भली हो जायेंगी, हमारे मन का सारा आकार स्वरूप से भरकर सत्य-स्वरूप हो जायेगा। मन को सूझ हो जायेगी कि मेरे अन्दर बसने वाले दोनों लोक के मित्र जी हैं। फिर वह सत्य-स्वरूप के अन्दर निवास का पवित्र रस आयेगा, आनन्द मिलेगा। उस मन के अन्दर की परत में से सज्जनता तथा प्रेम की रुचियाँ उत्पन्न होंगी जो प्रत्यक्ष मन के यत्नों की सहायक होंगी, मानो सज्जनता की पूंजी अन्दर एकत्र हो जायेगी, यों हमारे में गुणों के सागर के गुण भी आ जायेंगे। नाम जपने से पाप धुल गये, साईं आया, साईं के आने से उसके गुण आये। फिर समझो कि नाम अन्दर रच गया है[1]।

झण्डा - आपने जो समझाया था कि परमेश्वर जी का स्मरण करो, स्मरण द्वारा हमारा यह मन साईं के अस्तित्व के संस्कारों वाले मन में ले जायेगा, यों अन्दर का घट 'साईं' के 'अस्तित्व' के भाव से भर जायेगा। उसका स्वरूप अन्दर बस जायेगा, वह साईं सर्व गुणों का स्त्रोत है। 'विशुद्ध नेकी तथा सर्वांग सज्जनता है, उसकी छूत सभी अवगुणों को दूर करती है। जैसे सूर्य का प्रकाश अन्धकार को मारता है। वैसे ही उसके अन्दर बस जाने से सभी अवगुण दूर होकर गुण भर जायेंगे, फिर आपा अपने-आप शुद्ध हो जायेगा और अपने कर्तार के साथ मिल जायेगा, आपने यही समझाया है न ?

गुरू जी - हे भले पुरुष ! यही । हमारी मति, हमारा अंत:करण, सुरत, सब कुछ पापों के मैल से भर रहा है, वह केवल नाम से धुल सकता है। बस यही सिद्धान्त है[2]। इसको चाहे किसी भी ढंग से समझ लिया जाये ।

झण्डा - आपने ठीक कहा है, पर नाम कैसे जपा जाये?

गुरू जी - इसके जपने के व्याख्या का सारा ब्योरा बता चुके हैं, अब यदि थोड़े शब्दों में तुझे समझना है तो फिर सुन ले ! नाम का उपदेश और नाम की महिमा उच्च है। नाम ही औषधि है, नाम अरोग्यता है, नाम के तुल्य और कुछ नहीं। पर नाम अमूल्य है, इसकी कदर कोई हीं जानता है[3]। अत: पहले इसकी कदर इसके जपने वाले, जानने वाले से सुनकर मन में धारण कर ली, उसको माना उस पर भरोसा बांधा। फिर इससे प्रेम किया। अर्थात् प्रेम द्वारा जपना आरम्भ किया। अन्तस एक प्रकार का तीर्थ है, अर्थात् हमारा मन एक तीर्थ है। उस तीर्थ में स्नान करना सीखा। वह यों कि जिह्वा नाम जपे, मन स्मरण में लगे। जिसका स्मरण

१. एकु सबदु मेरै प्रानि बसंतु है बहुड़ि जनमि न आवा । (विलावल महला १)
२. भरीऔ मति पापां कै संगि । ओहु धोपै नावै कै रंगि ।। (जपुजी)
३. साईं नामु अमोलु कीम न कोई जाणदो ।। (सिरी रागु म: ४ छंत)

करता है, उसके गुणों को गाता हुआ स्तुति के भाव में भरकर उसके प्रेम में आये। यह अन्तर्मुख स्नान है[१]। बस इससे मन - प्रत्यक्ष मन जो है सो - तो निर्मल होता ही है। इसी के साथ मन का संस्कारों को लिये बैठा भाग भी समय पाकर निर्मल हो जाता है। इस मन में साईं के नाम के निवास कर जाने पर मन में एक सुहावनापन तथा सुन्दरता की प्रतीति उत्पन्न होती है[२]। उसके सत्य स्वरूप में मिलकर जीव, आनन्द प्राप्त करता है। अत: हे भले पुरुष ! इस सारी बातचीत को हम नाम कहते हैं। नाम से कल्याण है, नाम की शरण लो, सारी व्याकुलता तथा घबराहट हट जायेगी ।

झण्डा - अच्छा ! आपने इतना सारा जो कुछ समझाया है, वह नाम है ! हमने नाम केवल किसी नाम को ही समझा रखा था ।

गुरू जी - नाम विद्या है, नाम परमेश्वर का नाम है, नाम परमेश्वर के गुणों का सरोवर है, नाम उसका स्वरूप हैं[३]। नाम आपे को साईं के साथ लगाये रखता है, नाम से लगे रहकर रंग तथा रस में जीवित रहना नाम हैं[४]। नाम, जो कुछ हमने कहा है, यही ही नहीं, कुछ और भी है। नाम - एक प्रकार की तैयारी और यत्न है जो शुभ कर्मों से ऊपरी साधना और स्तर है। अपने आपको साईं के प्रभाव के नीचे लाना नाम है। जैसे सर्दी के लगने के समय शरीर को सूर्य के सम्मुख करने से सर्दी दूर की जाती है, वैसे ही अवगुणों से भरे हुए मन को साईं के सम्मुख करना और किये रखना मन के अवगुणों को दूर करना है। इस प्रकार मन को साईं के प्रभावों के लिये उसके सम्मुख करना और रखना, यह रुख, यह झुकाव यह स्मृति, सभी नाम के ही यत्न हैं।

झण्डा का अन्तस संशयों तथा दुविधाओं के विचारों से शुद्ध हो गया था। उसे निर्मल ज्ञान और विश्वास हो आया था, वह सुन-सुनकर प्यार की उच्च भावनाओं से भर रहा था, मन में स्मरण का प्रवाह चल पड़ा था और आनन्द आ रहा था, अब और कुछ न बोला और रस में मग्न हो गया ।

उधर मरदाना भोजन करके, दूर जाकर कुल्ला करके दबे-पैरों इधर आकर धीरे से पास बैठ गया। जब बातचीत समाप्त हुई और उसने झण्डा को एकाग्र मन देखा तो धीरे से दाता जी को कहने लगा - हां, अब तो आप आतिथ्य कर चुके

---

१. सुणिआ मंनिआ मनि कीता भाऊ ।। अंतर गति तीरथि मलि नाऊ ।। (जपुजी)

२. सति सुहाणु सदा मनि चाऊ ।। (जपुजी)

३. नाउ पूजीऐ नाउ मंनीऐ अखंडु सदा सचु सोइ ।। (सिरी रागु म: १)

४. नानक नाम न छोड़ै साधन नामि सहजि समाणीआ ।। (रागु गउ: पूरबी छन्त महला १)

५. पुरातन जन्मसाखी में लिखा है कि झण्डा गुरू जी को अपने घर ले गया, पर नानक प्रकाश और हाफिजाबाद वाली जन्मसाखी में उद्यान में बैठे रहे ही बताया है।

हैं, आये हुए अतिथि को ईश्वरीय भोजन करा चुके हैं, अब तो आप अपने शरीर को कुछ आधार दें ?

सतगुरू जी सुनकर मुस्कराये और कहने लगे - मरदाना ! ठकर जा, दूसरों को खिलाना, स्वयं खाने की अपेक्षा सौभाग्यशाली होता है।

: ४ :

समय व्यतीत होता गया, पर मरदाना के मन को अपने प्यारे की भूख व्याकुल कर रही थी। उसकी इच्छा थी कि किसी तरह आप कुछ मुंह में डालें। उसके दो-तीन बार बोलने से झण्डे का ध्यान अपनी मग्नता से हटकर इस ओर आया, कि हैं ! अभी तक दाता साईं जी भूखे हैं और मुझ स्वार्थी ने उनसे अमृत-भोजन खा-खाकर बस नहीं किया और उन्हें दो पैसे-भर अन्न मुंह में डालने का समय भी नहीं दिया। झण्डा नाम का स्मरण करता हुआ - जिस नाम का प्रवाह अन्दर चल पड़ा था - करबद्ध कहने लगा - हे निरंकार की ज्योति जी ! आप भोजन करो !

गुरू जी - अभी पहले किसी और को भी खिलाना है ।

झण्डा - पातशाह ! फिर आप इस उद्यान में न बैठो और इस दास के डेरे पर चलो ।

दया के साईं सुनकर चल पड़े और मार्ग में जो वार्तालाप हुई उससे झण्डा ने समझ लिया कि आप इन्द्रसैन को 'अमृत दान' का भोजन खिलायेंगे । झण्डा को इस बात पर शोक हुआ कि वह अपने मित्र को पहले क्यों न लिवाकर ले आया, वह भी अमृत वचन सुनता ! इस प्रकार विचार करता हुआ सतगुरू जी का अपने घर में डेरा करवाकर गुरू जी की आज्ञा पाकर इन्द्रसैन को लिवा लाने के लिये चला गया और उसे मिलकर कहने लगा -

करहि हेत जिंह ज्ञान धिआना ।।
मिला सन्त पूरन गति दाना ।।४०।।
चलहु बुलावतु अब तहिं पाही ।।
तुम बिन असन अचत सो नाहीं ।। (नानक प्रकाश)

इन्द्रसैन सुनकर प्रसन्न हुआ। दोनों इकट्ठे चल पड़े। मार्ग में झण्डा ने सारी बात सुनाई और बताया कि कल जिस मनुष्य को तुम मेरे घर में छोड़कर आये थे वह मनुष्य उस निरंजनी ज्योति का कीर्तन करने वाला था। उसकी बातों से ही गुरू नानक देव जी के वाक्यों से पता लगता है कि वह हमें जानते हैं और हमारे उद्धार के लिये इधर आये हैं। कैसे जानते हैं? कब से जानते हैं? तुम विचार करो। मुझे तो लगता है कि उनका अन्तस दिव्य ज्योति है और वह स्वाभाविक ही वह

कुछ जानते हैं जिसे हम बुद्धि तथा सोच द्वारा भी नहीं जान सकते। फिर झण्डा ने मरदाना के साथ हुई वार्तालाप और सतगुरू जी के उच्चारण किये हुए वाक्य – जैसे कि उसे याद थे, इन्द्रसैन को सुनाये। इन्द्रसैन कभी मुस्कराता था, कभी अश्रु भरता था और कभी सोच में पड़ जाता था, फिर हंसता था और कहता था – जब प्रभु दयालु होता है, तब ही जीवों का कुछ संवरता है।

इस प्रकार आपस में वार्तालाप करते और बातें समझते–समझाते आश्चर्यित और कृतज्ञ होते चलते गये। तब आकर ठिकाने पर पहुंचे तो इन्द्रसैन ने आगे बढ़कर शीश झुकाया। मानव कुल के शिरोमणि श्री गुरू नानक देव जी ने आशीर्वाद दिया – आओ भाई इन्द्रसैन ! प्रसन्न हो ?

इन्द्रसैन दर्शन करते ही यों आकर्षित हो गया जैसे कोई काफी समय के परिचित परम हितैषी जी से भेंट होती है। अति प्यार में आकर कहने लगा : 'आपकी अनुकम्पा है, आप कृपावन्त हुए हैं, अपने विरद को संभाला है। चिरकाल से प्रयत्न कर रहे थे, अब आप प्रकाश प्रदान कीजिये और पर्दा उठाकर, जो कुछ दिखाने योग्य है, उसे दिखा दीजिए ।'

गुरू जी – मन द्वारा जो सोचा जाता है, वह जानना है, पर मन की सोच में वह आ नहीं सकता। जो सोच से परे है, यही पर्दा है जो हमने आप–अपने आपे के आगे डाल रखा है। इन्द्रसैन! जो परिश्रम तुम करते रहे हो और परिश्रम किया जाता है वह प्रकाश की प्राप्ति के लिये किया जाता है, पर प्रकाश तब खुलता है जब मन से परे प्रतीति के देश को चलें। उसका मार्ग प्रेम है, भक्ति है।

इन्द्रसैन – सच है, भक्ति ही अन्त में भेंट कराती है और ज्ञान अन्त में पर्दा हटाता है, पर मनों का झुकाव पृथक है। झण्डा का अधिक झुकाव भक्ति की ओर रहता है और मेरा ज्ञान की ओर। हैं हम दोनों ही सत्संगी। दोनों ने एक ही प्रकार के साधन किये हैं – मन को भागने से रोकना, हां, नाम रूप से मन को हटा–हटाकर एक 'सार' पर स्थिर होने का यत्न करते रहे हैं, पर कुछ भी नहीं संवरा, एक शून्य–सा कुछ लगता है जो निकल–निकल जाता है या जिससे शीघ्र ही हट–हट जाते हैं। रेख में कोई मेख मारिये, कोई कसकर वाण चलाइए जिससे अन्धकार–सा, जो रहता है, वह दूर हो। कुछ दिन हम दोनों ने योग–साधन भी किये हैं, परन्तु हृदय में संशय आ–आकर उखेड़ता रहता है। हां कभी–कभी एक बात मुझ पर आकर घटती है, यों लगता रहा है कि दया होगी, आप आयेगा, अपने आंचल से लगायेगा ।

गुरू जी – फिर अब क्या इच्छा है, क्या आवश्यक है ?

इन्द्रसैन –

बहुत दिनन की हम उर चाहू ।।
करहु द्वैत सभ उर ते दाहू ।।४४।।

ज्ञानानन्द दान को दीजै ।।
हम पर सन्त कृपाल प्रसीजै ।।
कोटक जन्म बितीते भूले ।।
निज स्वरूप ते भे प्रतिकूले ।।४५।।
सो स्वरूप अब देहु दिखाई ।।
जां मैं कबहू न आवन जाई ।।
हर्ष शोक के द्वन्द्व विहीना ।।
जो किह मल ते है न मलीना ।।४६।।

यह सुनकर गुरू जी मुस्कराकर कहने लगे - यदि ज्ञानानन्द की इच्छा है तो हमें गुरू-दक्षिणा क्या दोगे ?

इन्द्रसैन - जो आज्ञा हो ।

गुरू जी - सर्वस्व दे दीजिये ।

इन्द्रसैन - कहण लगे हमरा धन धामा ।।
सदन सहित तुम चरन चढ़ाना ।
हम नहिं ग्रहण करैं अब कोऊ ।।
जो सरबंस हुतो दिय सोऊ ।।५२।। (नानक प्रकाश)

गुरू जी - अब तुम्हारे पास अपना क्या रह गया है ?

इन्द्रसैन - यह एक शरीर ।

गुरू जी - यह भी दे दो ।

इन्द्रसैन - सत्य वचन, यह भी आपको अर्पण कर दिया ।

गुरू जी - अब तुम्हारे पास अपना शेष क्या है ?

इन्द्रसैन - अन्त:करण ।

गुरू जी - उसे भी अर्पण कर दो, क्योंकि तुम्हारे पास यह भी र्स्वस्व में से ही है। यह तुम्हारी 'मैं' नहीं पर मैं का 'मेरा' (अहं) तुम्हारी वस्तु, जिसके तुम स्वामी हो।

इन्द्रसैन-यह भी अर्पित है।

गुरू जी - अब तुम्हे जो संशय है, वह पूछ लो, जिसके कारण ज्ञान में कमी दिखाई पड़ रही है ।

इन्द्रसैन ने जब प्रश्न किया तो दाता जी ने कहा, भाई ! यह जो संकल्प अब तुम्हारे मन में उठते हैं, जिनके कारण तुम अपने संशय पूछते हो, वह तो मनका धर्म हैं। मन में संकल्प उठते हैं, संशय उठते हैं, मन तो तुम हमें अर्पण कर चुके हो। हमें अर्पण कर दी हुई वस्तु के साथ तुम जो संकल्प करते हो वह अब तुम्हारा धर्म नहीं। यह सुनकर दोनों एक आश्चर्यजनक दशा में हो गये। संकल्प उठने बन्द

हो गये। जब कोई उठता भी तो अन्दर से दूसरा संकल्प उठ खड़ा होता कि यह धर्म नहीं। यों यत्न करते हुए दोनों एक टिकाव की-सी दशा में हो गये। फिर गुरू जी ने कहा कि तुम्हारे अन्दर जो अपनी चितवन और अहं मात्र है सो भी अन्त:करण का धर्म है जो तुम दे चुके हो। यह कहते ही आपके नयनों ने एक इस प्रकार का वाण मारा कि दोनों का आपा द्वैत की छूत से परे हो गया, जो परछाईं अहं के संकल्प ने डाल रखी थी, वह दूर हो गई और वह दोनों अपने 'आपे' में टिक गये। जो बात उन्होंने कभी अपने साधनों द्वारा अपने अनुभव में आई नहीं देखी थी, वह आज गुज़रती हुई देखी है, हां, दोनों को अनुभव हो गया। कुछ समय के पश्चात् नैन खुले तो सतगुरू जी ने कहा :-

तुम्हारा धन-धाम, शरीर, अन्त:करण सब कुछ तुम्हारा है, तुम्हारे पास रहे जब तक शरीर है, हमें किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं। हमने तुम्हें 'मैं मेरी' (अहं) से उठाकर वास्तविक 'मैं' की झलक दिखाने के लिये, लिये थे। अहं अन्दर से निकलता नहीं, इसलिये स्वयं को टिकाव नहीं मिलता, हमने तुम्हें तुम्हारा सारा अहं अपरिचित करके दिखा दिया है, अब शेष रहा ही क्या? आपे का आपे में आपे की प्रतीति करना, वह प्रतीति तो तुमने अब प्राप्त कर ली है, हां देखती है। अब कभी भी इस 'अहं' को, जिसे अपरिचित किया है, अपना मत बनाना, तब ज्ञान जो अभी प्रदान हुआ है अन्दर टिकेगा, अन्यथा फिर शिथिलता होगी, ढील पड़ेगी। इसीलिये नाम के अभ्यास की सदैव आवश्यकता है। जब शिथिलता हो तो वह अभ्यास द्वारा दूर होती है और यह झलक जो अब तुम्हें दिखाई पड़ी है, फिर भी दिखाई पड़ती रहेगी, इसलिये नाम का आंचल भली-भांति पकड़ लो ।

अब आगे चलो, आत्मा की परमात्मा के साथ भेंट। शुद्ध तथा निर्मल और नि:संकल्प हो चुकी आत्मा में भी 'पहले भक्ति के अभ्यास' के सूक्ष्म और समझ से परे के प्रेम भाव की आवश्यकता है जो इस आत्मतत्व को, जिसको तुमने अनुभव किया है, वह परमेश्वर जी के साथ भेंट करवा देता है। केवल आत्मा का नि:संकल्प हो जाना ही काफी नहीं, नि:संकल्प होकर परमात्मा जी से भेंट होती है। यहां पर अनुकम्पा का चमत्कार काम करता है। जब जीवात्मा इस स्थान पर पहुंचे तो कोई चमत्कार 'अनन्त' में से 'अनन्त' की ओर से स्वच्छन्द होकर आता है और जो जीवतत्व (परमात्म तत्व) के साथ भेंट कर लेता है[१]। जीव का विशुद्ध होकर ब्रह्म तत्व से भेंट होना, यह जीव तत्व का कर्तव्य नहीं, यह तो ब्रह्म तत्व की अनुकम्पा होती है, इसे अनुग्रह कहा जाता है। हमने यह सब कुछ तुम्हें तुम्हारी समझ में आ जाने वाली भाषा में समझाया है, जिसका तुम्हें अभ्यास हो चुका है। मोटे शब्दों में समझ लो कि हमारे अन्तस की उन्नति तब ही हो सकती है, जब यह परमेश्वर जी के प्रेम में आये। प्रेम करने का ढंग, प्रेम का व्यवहार, प्रेम

१. बाबा जुगता जीऊ जुगहि जुग जोगी परम तंत महि जोग । (आसा महला १)

का स्वरूप 'नाम' है। नाम का सारा प्रकरण झण्डा समझ चुका है और तुम्हें बता चुका है। नाम द्वारा आपा आपे में आ जाता है और बाधा डालने वाली सभी वस्तुओं से ऊंचा हो जाता है, और प्रत्येक प्रकार के आवरणों से मुक्त हो जाता है। इसकी आशायें तथा संशय के तट खुलते हैं। अन्तस में नाम रूपी प्रेम के निवास होने के कारण उस आपे में परमेश्वर की ओर झुकाव होता है, लालसा तथा हिलोर होती है और उस हिलोर पर परमेश्वर जी की दया होकर उसे चरणों की शरण अथवा अपने स्वरूप में, ले जाती है। यही परम पद है, यही ज्ञान है, यही भेंट है। यदि जीव निरंतर अभ्यास में न रहे और समझ में ज्ञान की बातें आ जायें तो जो ज्ञान होता है वह वास्तविक ज्ञान नहीं होता, वह मन का धर्म है – केवल जानना मात्र। वह ज्ञान देश तथा काल में है, उस द्वारा जीव मुक्त नहीं होता। हां, नाम के रंग से, प्रेम-भक्ति द्वारा जो कुछ अन्त में प्राप्त होता है, वह वास्तविक ज्ञान है, सफल ज्ञान है, अनुभव है, वह प्राप्ति है, यथार्थ है[१]। अत: प्रेम मुख्य वस्तु है, शेष सभी मन तथा बुद्धि की चंचलता है।

इन्द्रसैन - झंडा को आपके नाम की बात समझाने से ज्ञान प्राप्त हो गया है आपकी बताई हुई नाम की विद्या कुछ झण्डा से और अब कुछ आपसे मैंने समझी है। हम दोनों सुखी हो गये हैं, चित्त में से संशय निकल गये हैं और परमेश्वर जी का प्रेम और ध्यान आकर इसे शुद्ध सुखी बना रहा है। आपा सभी सम्बन्धों से मुक्त होकर ईश्वर के रंग में मग्न हो रहा है। आपने हमारे सभी पर्दे हटा दिये हैं और उस मार्ग पर चलाया है जिस पर चलने से शरीर शुद्ध हो जाये, बुरे संस्कार न रहें, शरीर मन, बुद्धि सभी 'मैं' होकर प्रतीत हो, पर 'मेरे' और इस सारे 'अहं' के साथ के सम्बन्ध टूट जायें और 'मैं' रह जाये। 'मैं जब जगत की ओर, जगत के पसार की ओर, ग्रहण की ओर रुख करेगी तो वह 'अहंकार' होगा, जो फिर अपरिचित वस्तु है और यदि वह 'मैं परमेश्वर जी की ओर रुख करेगी तो उसके साथ प्रेम करेगी तो उसके साथ प्रेम करेगी और इधर से वैराग्य करेगी, अर्थात् स्वाभाविक ही वैराग्य में होगी तो अनन्त अपनी दया द्वारा उसे अपना बना लेगा। वह भक्ति की अवस्था होगी, वही सफल ज्ञान की अवस्था होगी। और ज्ञान ! कथनी मात्र वाच्य ज्ञान तो मन का धर्म है। फिर आपने समझाया है वास्तविकता की प्राप्ति के लिये जब तक देह है, जब तक देह में अन्त:करण है, जब तक यह चलता फिरता, खाता पीता और काम करता है, तब तक देह में अन्त:करण काम करता है, इसका धर्म है कि स्मरण में लगा रहे, जिसका भाव यह है कि निरंतर प्रेम में रहे। स्मरण प्रेम है, प्रेम स्मरण है। इससे जगत में निवास करने वाला जीव ऊंचा हो जायेगा, रस में सुखी हो जायेगा, अथवा जीवनमुक्त हो जायेगा । काम

---

१. यथा....अति सुन्दर कुलीन चतुर मुखि ज्ञानी धनवन्त ।
मिरतक कहीअहि नानका जिह प्रीति नहीं भगवंत ।। (गऊड़ी बा: अ: म: ४)

करेगा पर उसमें लिप्त नहीं होगा। सुखी होगा, यह सुख का दान करेगा, पर यह अहं में नहीं होगा। आपकी अनुकम्पा तथा आपके वचनों द्वारा, झण्डे से सुने आपके वाक्यों तथा आपकी दयादृष्टि द्वारा, जिसे आपने हम पर डालकर हमारे पर्दे दूर किये हैं, मैंने यह समझा और लिखा है। यदि भूल हो तो उसे ठीक कर दीजिये। क्षमा करना मैंने अपने ढंग से बात को समझा है और साहस बटोरकर यह बात दोहराई है।

गुरू जी –तुमने ठीक समझा है, तुम दोनों पर साईं की अनुकम्पा है, तुम जीवित हुए हो। देखो! तुम्हारे जागृत हुए आपे में ईश्वरीय प्रभाव चल रहा है। पर यह न समझना कि परमपद की अवस्था जो सत्य है, वह किसी जड़ वस्तु के तुल्य है।

अब दोनों ईश्वरीय रंग में भीगे पड़े थे। कुछ समय के पश्चात् इन्द्रसैन को याद आया कि मुझे तो झण्डा इसलिये ले आया कि यदि मैं आऊं तो आप भोजन करेंगे और मैं आकर अपने आत्मरस को पीने लग पड़ा और दाता जी के भोजन करने की ओर ध्यान ही न दिया तब अधीन होकर विनय की कि अब आप कुछ ग्रहण कीजिये। तब गुरू बाबा जी ने कुछ मुंह मे डाला और प्रबुद्ध हो चुके दोनों सज्जनों को भी दिया। उन्होंने भी खाया। झण्डा तो खाकर इस प्रकार एकाग्र हुआ कि शरीर का पता ही न रहा, ऐसा एकाग्र हुआ कि मानो देह से तो अचेत ही हो गया। इन्द्रसैन भी टिक गया, पर वह उस तरह बेखबर नहीं हुआ, वैसे दोनों आत्मरस में मग्न हो गये।

दोनों बैठे हो होइ अडोला ।
सुख आतम को पाइ अमोल ।। (नानक प्रकाश)

तीन पहर रात इसी तरह व्यतीत हो गई। जब सूर्य चढ़ा तो सतगुरू जी ने दोनों की समाधि खुलवाई और विदा किया ।

: ५ :

शहर में धूम मच गई कि कोई तपस्वी आया है; जिसने राजा सुधरसैन के भानजे इन्द्रसैन को जीवनमुक्त किया जिसने झण्डा को जीवनदान दिया है और वह दोनों बड़े साधु तथा साधना करने वाले उसे अदेशी सतगुरू स्वीकार कर गये हैं, तब शहर के और निकटवर्ती लोग आने लगे। सतगुरू जी भी नाम का दान प्रदान करने लगे। इस प्रकार दूर–निकट से आने वाले लोगों का उद्धार हुआ संगति बन गई। झण्डा के घर में संगत के प्रवाह चलने लगे। लंगर चलता रहता और जगत रक्षा का कार्य होने लगा ।

होते–होते यह समाचार राजा सुधरसैन तक जा पहुंचा। नया शाक्त योगी जो ऋद्धियें–सिद्धियें टोने–जादू करता था और मन्त्री के घर में कुछ सत्कार पाता

था, मन्त्री द्वारा राजा को भ्रम में डालने लगा। राजा ने भी सुनकर आश्चर्य के कारण कई विचार उठे, पर वह विचारवान था, सोचने लगा कि मेरा भानजा इन्द्रसैन भूल करने वाला नहीं, उसे धर्म की सारी सूझ है और बाल्यकाल से अगम निगम को जानता है, उसने अवश्य ही कोई शक्ति देखी होगी। यह सोचकर उसने एक व्यक्ति को भेजा कि वह झण्डा के घर जाकर उसे ले आये, जिसे झण्डा ने गुरू बनाया था।

जब उस व्यक्ति ने आकर राजा का सन्देश दिया तो इन्द्रसैन उस समय वहीं पर था, वह कहने लगा :- तू जा, मैं आकर राजा से सारी बात करता हूं। सतगुरू जी ने इन्द्रसैन की ओर देखकर कहा : हे भले पुरुष ! क्यों जाते हो ? कर्तार की आज्ञा की ओर देखो, जो वह करेगा, भला ही करेगा, भय किसका और जाना किसके पास ?

तब इन्द्रसैन ने करबद्ध प्रार्थना कि हे स्वामी जी ! राजा मेरा मामा है और वह नेक राजा है, धर्म का पालन करता है, प्रजा के साथ न्याय करता है, सत्संगी भी है, उस पर आपकी दया चाहिये। राजा को किसी ने उलट-पुलट बातें कहीं हैं, इसलिये मेरी इच्छा है कि मैं जाऊं और जाकर राजा को बताऊं, सत्य की सूझ के द्वारा वह जागे और स्वयं चलकर आपके चरणों में आयें। जैसे हम पर आपकी दया हुई है वैसे ही आपकी दया उस पर भी हो। हमारा परिवार तथा देश सकुशल रहे।

तब श्री गुरू जी ने कहा - जाओ ईश्वर तुम्हारा भला करे ।

तब इन्द्रसैन उठकर राजा के पास गया और अपनी तथा झण्डा की अपबीती राजा को सुनाई, जैसे दपदेश हुआ था, सारा सुनाया; जैसे दया दृष्टि द्वारा दोनों को अनंत का स्पर्श प्राप्त हुआ था, वह सारी बात बताई।

ज्यों-ज्यों राजा सुनता गया, त्यों-त्यों प्रेम में भीगता गया, शरीर पुलकित हो गया और नयन भरकर कहने लगा-मुझे भी उस निरंजन ज्योति के दर्शन कराओ जिससे मेरा भी उद्धार हो। तुमने जिसकी इतनी महिमा गाई है, जिसकी चर्चा घर-घर में है, जिसका नाम तथा उपदेश सुनकर आकर्षण होता है और प्यार जागृत होता है, बेटा जी ! मुझे भी दर्शन कराओ !

इन्द्रसैन - महाराज जी ! तो फिर मन जो प्यार में भर आया है, उसे प्यार में ही भरकर ले चलो, आप स्वयं चलकर जाओ, साथ में भेंट ले चलो, नम्र होकर शरण ग्रहण करो, तब जीवन रस प्राप्त होगा ।

भानजे की शिक्षा मानकर, सुधरसैन राजा होकर भी राज्यमद का त्याग करके गुरू जी के दर्शनों के लिये झण्डा के घर में चलकर आया -

पग नंगे मन दीन है, प्रेम संग तिह आन ।।

कर बंदे बंदन करी, धर पर दण्ड समान ।।
कर अष्टांग चरण अनुरागा, परयो रहयो उठत न बडभागा ।।
(नानक प्रकाश)

राजा की नम्रता और प्रेम को देखकर सतगुरू जी ने पीठ पर थपकी दी और नाम का दान-प्रदान किया। राजा के अंतस में सुख और शीतलता का निवास हुआ। नाम के रंग ने ईश्वरीय चाव भर दिया । चरणों को परसता है, नयन भरता है और धन्यवाद कहता है। दर्शन करके तृप्त नहीं होता। अंत में सतगुरू जी से प्रार्थना करके उन्हें अपने घर में ले गया । बहुत आदर भाव करके सेवा की वहां पर संगत भी आती, झण्डा और इन्द्रसैन दोनों सेवा में रहते। अमृत वेला में कीर्तन होता, दिन भर सत्संग लगा रहता और नाम का प्रवाह चलता रहता। कोई महीना-भर श्री गुरू जी गुरूदाता जी राजा के अधिक प्रेम के कारण, उसके पास रहे, बाद में जब समय आ गया तब उपकारी सतगुरू जी ने अन्य ओर अपना सौंदर्य लगाकर उद्धार करने का संकल्प किया, तब राजा विह्वल हो गया, रो-रोकर विनय करके कहने लगा हे स्वामी जी !

गज बाजी (हाथी-घोड़े), सभ राज समाजा ।।
निज कर झण्डे को दिहु आजा ।।
मो को लेहु आपने साथा ।।
रहि न सकौं तुम बिन जगन्नाथा ।।
मीन नीर गति श्री प्रभु संगा ।।
अस कहतयो उर प्रेम उमंगा ।।
पुलकावलि तन गद-गद बानी ।
तिह छिन नृिप की गति बिकुलानी ।
देख प्रीति अस उस की साची ।
श्री नानक जी गिरा उबाची (उच्चारण किये):-
धरहु ध्यान नित उर अवनीपा ।
मैं हौं तुमरे सदा समीपा ।
सुच सौं पंचामृत करिवावहु ।
टका राखि अरदास अलावहु ।
'हाजर होवौं आन तब करौं कामना पूर ।।'
अस कह बहु धीरज दयो भूपति की जगमूर ।

फिर आपने राजा को वरदान दिया कि सत्रह राजा तुम्हारे चारों ओर रहते हैं, वह सभी तेरी शरण में आ जायेंगे, तेरा राज्य बढ़ेगा, पर मुझे धर्म धारण करना है।

फिर आपने इन्द्रसैन को गद्दी देने की इच्छा की, क्योंकि संगत बहुत बढ़ गई थी और एक ऐसे गुरुमुख की आवश्यकता थी जो कि वहां के सत्संगियों का नेतृत्व करता, जिससे नाम का प्रवाह जारी रह सकता। पर इन्द्रसैन ने करबद्ध विनय की कि 'आप यह पद झण्डा को दीजिये, इस भारी काम को यह गुरुमुख ही कर सकेगा। मुझे वरदान दीजिये कि मैं नाम रंग में रहूं, साधुओं की संगत की सेवा करूं और झण्डा के साथ मेंरी निभ जाये। सतगुरू जी बहुत प्रसन्न हुए और गद्दी (वहां का नेतृत्व) झण्डा को प्रदान की। राजा को भी चेतावनी दी कि तू बढ़ेगा, फले-फूलेगा, पर झण्डा का सदैव सम्मान करना, इसे हमने गुरुमुख पद प्रदान किया है। राजा, इन्द्रसैन तथा सभी सत्संगियों ने शीश झुकाया । दयालु तथा तारनहार दाता ने सबसे विदा ली और आगे को चल पड़े।

सूचना - झण्डा की वार्ता पुरातन जन्मसाखी में बिसियर देश की लिखी है, झण्डा को वहां पर गद्दी मिली बताई जाती है। नगर का नाम छुटघाट का दिया है, जैसा कि हम पीछे बता आये हैं, चिट्टगांव अथवा चिट्टागांग का बिगड़ा हुआ रूप ही लगता है।

आगे चलकर स्वर्णपुर का उल्लेख है। वह सोन द्वीप का नाम ही लगता है। यह द्वीप ब्रह्मपुत्र के मुहाने से पूर्व की ओर समुद्र में है यह चिट्टगांव से नीचे की ओर है। इससे लगता है कि खोज करने से यह ठिकाना इस ओर मिलेगा। कई बुद्धिमान लोगों ने बिसियर देश को रामपुर बुशायर समझा है अथवा ईरान का बुशहर ख्याल किया है, वह ठीक नहीं लगता। तवारीख खालसा ने मनीपुर की उस समय की राजधानी असीमफल को ही यह स्थान लिख दिया है, यह भी असम से आगे नीचे की ओर है।

भाई साहब संत संगत सिंह जी कमालिया निवासी जी के पास एक सौ वर्ष की पुरानी प्राण संगली की पांडुलिपि थी, इसमें लेखक ने निम्नलिखित बात लिखी है -

"लिखत प्राणसंगली बाबा का बोलणा सेत बंद रामेश्वर बशहर देश नगर छाटे घंटका राजा शिवनाभ पासहु पैडा मोखा लै आया तब बाबा पवन अहारी था, झण्डा बाढ़ी साथ था। झण्डा बाढ़ी कऊ प्राप्त हुई, तिसकी मंजी बिसहर देश में है, वहां पर झण्डा बाढ़ी कऊ कृपा हुई, चऊहद सै शहर उसकी पैरी पड़ता है, पंज मण लूण तिसके लंगर लगता है।"

इससे पता चलता है कि बशहर देश और नगर छाटे घंटका दक्षिण के अंत में सेतुबन्धु रामेश्वर के कहीं निकट है। सो इस लिखित से खोजी के लिये एक और खोज इस ठिकाने का मिल गया, पर इस बात का पता नहीं कि इस लेखक

ने खोज करके लिखा है कि वैसे ही लिख दिया है

यह प्राणसंगली नामक पुस्तक २८९२ विक्रमी में लिखी गई है और लेखक ने बताया है कि उसने बुंदेलखण्ड के काल्पी नामक नगर में बाबा गणेष के धर्मस्थान में बैठकर लिखी, संभव है कि इस धर्मस्थान में से बशहर देश का कोई और पता मिल सके ।

२. बाले वाली जन्मसाखी में झण्डा की एक और साखी भी है, वहां पर भी झण्डा बाढ़ी (बढ़ई) और बिसियर देश लिखा है। साखी वही है जिसका ज्ञानी लोग 'सुखी बसै मसकीनीआं' के अर्थ के समय दृष्टान्त दिया करते हैं। इस जन्मसाखी के लेखक ने लिखा है कि झण्डा ने गुरू जी के भोजन के लिये राज के मल्ल से पहलवानी करने की इच्छा की। मल्ल ने देखा कि यह तो दुर्बल तथा अनाड़ी पुरुष है मेरे एक ही हाथ से मर जायेगा, तब उसने कारण पूछा। उसने बताया कि मैं तो संतों की सेवा के लिये आया हूं यदि मैं हार भी गया तो कुछ धन तो मिलेगा ही सही। यह सुनकर मल्ल को प्रेम हो गया और जान-बूझकर इसलिये गिर पड़ा कि झण्डा को जीत का इनाम मिल जाये। गुरू जी ने झण्डा तथा मल्ल दोनों का उद्धार किया ।

परन्तु लगता है कि इस साखी के लिखते समय कर्ता भूल गया है कि वह झण्डा की साखी पीछे लिख आया था जिसमें गुरू जी उसे संगत का नेतृत्व प्रदान कर चुके हैं। संभव है कि यह साखी गुरू जी से भेंट होनें से पहले किसी और संत की सेवा अथवा गुरू जी से भेंट के समय घटित हुई हो।

□ □

३६ सतगुरू नानक देव जी की जगन्नाथ यात्रा

: १ :

नीला-नीला समुद्र ऊपर छाये हुए नीले आकाश की भांति नीचे बिछा पड़ा छोटी-छोटी लहरों से सुहावना हो रहा है। आकाश के तारे सागर में चमक रहे हैं। तारिकाओं की सैना जैसे-जैसे आकाश में चली जा रही है वैसे-ही-वैसे समुद्र में भी जा रही है। अब देखो कोई-कोई तारा शेष रह गया है, अंधकार भी फीका पड़ता जा रहा है। इस समय सागर के किनारे पर थोड़ी दूरी पर एक ब्राह्मण महाराज पद्मासन में बैठे हैं। आपने इस तरह मुंह ऊंचा किया है कि दृष्टि आकाश में जम गई है, सिर पीठ के साथ जा लगा है, श्वांस इतने धीरे चल रहे हैं कि मानो चल ही नहीं रहे। आकाश में दृष्टि जम गई है। बस्ती की ओर से एक व्यक्ति आया, ब्राह्मण को शीश झुकाया और कुछ धन उस तूंबी में-जो महात्मा के आगे पड़ी थी, डालकर परे जाकर बैठ गया। इस तरह जैसे-जैसे प्रकाश होता गया, और, और पुरुष तथा स्त्रियां आती गईं, यहां तक कि सूर्योदय तक दो-चार सौ की भीड़ लग गई। ब्राह्मण कुछ दिन चढ़े तक त्राटक खोला करते थे और उस समय त्रिलोक की बातचीत सुनाया करते थे, अत: अब सभी इस प्रतीक्षा में बैठे हैं कि आप कब समाधि खोलते हैं, त्राटक छोड़ते हैं, नीचे देखते हैं और आज देखो कि अगम-निगम के क्या कौतुक सुनाते हैं। इतने में दो पथिक आ गये, दोनों साधु लगते थे। एक के चेहरे पर सौन्दर्य तथा प्रभाव इस प्रकार का था कि मानो प्रकृति की आज्ञा करने वाला कोई आश्चर्यजनक चमत्कार दिखाई दे रहा है, दूसरे के चेहरे पर मृदुलता, प्यार तथा सेवा का रंग हिलोरें मार रहा था। यह दोनों आकर खड़े हो गये, कुछ समय तक देखते रहे। लोगों की दृष्टि भी उठी और उन पर जा पड़ी, विवस ही सबके सिर झुक गए। कुछ समय तक दोनों देखते रहे, फिर एक ने आगे बढ़कर ब्राह्मण के आगे से उसके पैसों वाला तूंबा उठा कर उसकी पीठ के पीछे रख दिया और आप सथा में बैठ गये।

अब सूर्य ऊंचा हो आया था, आकाश में धूप की चमक से दृष्टि घबराती थी, अब समाधि खुलने का समय हो गया। अत: ब्राह्मण ने धीरे-धीरे गर्दन ढीली करनी आरम्भ कर दी। धीरे-धीरे नयन बन्द किये, धीरे-धीरे गर्दन को अपने ठिकाने पर ले आये, 'अहो धन्य' की आवाज आई। फिर नयन खोले और चारों

ओर देखकर कहने लगे – 'सुखी रहो । विष्णु भगवान प्रसन्न थे, नारद जी से प्रेम वाक्य कह रहे थे। अद्‌भुत कथा हो रही थी। ब्रह्मपुरी में अह्लाद था, शिवपुरी में आज संकीर्तन हो रहा है, नटराज नृत्य कर रहे हैं, भाई! सुखी बसो! प्रजा के भाग्य अच्छे हैं। आनन्द से रहो, धन से धाम भरे रहें ।

पथिक – ब्राह्मणराज जी! आपने क्या वाक्य उच्चारण किया है ?

यह प्रश्न सुनते ही ब्राह्मण की दृष्टि इस ओर पड़ी। मन में एक चुटकी-सी भरी गई, शरीर में एक कम्पन-सा हुआ, आंखों में कंपकंपी-सी हुई। उत्तर देने में जिह्वा बन्द हो गई। ईश्वरीय पथिक ने फिर वही प्रश्न किया। अब बड़ा साहस बटोरकर श्रद्धा के कम होने के भय से कुछ बल पाकर मन ऊंचा किया और धीमी सी आवाज से कहने लगा।

ब्राह्मण (घूरकर) – अगम-निगम की बातें हैं, तुम क्या जानो बालक !

पथिक – आप अंतरयामी हैं ?

ब्राह्मण (आंखें मूंदकर) – योगबल द्वारा ।

पथिक – गुप्त को इस प्रकार देखते हो, जैसे प्रत्यक्ष जगत को ?

ब्राह्मण – योगबल द्वारा (हकलाकर) हस्तामलक की भांति !

पथिक – आपका तूंबा कहां पर है ?

ब्राह्मण – (आगे, इधर, उधर देखकर) हैं किधर गया, साला ?

पथिक – त्रिलोक तथा अगम-निगम के दृष्टा जी! अपने तूंबे का तुम्हें पता नहीं कि 'साला किधर गया?'

ब्राह्मण (खीझकर)– श्राप दूंगा, अन्यथा बताओ किधर है ?

पथिक – त्राटक लगाओ, समाधि जमाओ, अंतर्मुख हो जाओ, लगाओ पता।

ब्राह्मण (लज्जित होकर)– किधर है बताओ (घूरकर नगर वालों को) बताओ किधर है ?

सभी लोग हंस पड़े ।

ब्राह्मण (खीझकर)– जिस नगर में साधु ब्राह्मण से मजाक हो वह नगर उजड़ेगा।

इस वाक्य के उच्चरित होने के तत्काल ही पश्चात दोनों पथिकों में से सेवाभाव वाले ने अपने कन्धे से कुछ उतार कर खोला, बीच में से एक सुन्दर यन्त्र निकला जिसे उसने बजाया, इतना मधुर सुन्दर कि सब के मन आकृष्ट हो गये और आसक्त होकर सब कुछ भूल गये । आधी घड़ी तक यह यन्त्र बजता रहा, राग धनासरी की मधुर ध्वनि एक आश्चर्यजनक आलाप में रस का रंग जमाती रही कि एकाएक दूसरे पथिक का ईश्वरीय कंठ खुला और ईश्वरीय नाद की ध्वनि उठी :-

कालु नाही जोगु नाही – नाही सत का ढबु ।।
थानसट भरिसट जग होए, डूबता इव जगु ।।१।।
कल महि राम नामा सारू ।।
अरवी त मीटहि नाक पकड़हि ठगण कऊ संसारू।।१।। रहाउ।।
आंट सेती नाकु पकड़हि सूझते तिनि लोअ ।।
मगर पाछै कछु न सूझै इहु पदम अलोअ ।।२।।
खत्रीआ त धरमु छोडिआ मलेछ भाखिआ गही ।।
सृिसटि सभ इक वरन होई धरम की गति रही ।।३।।
असट साज साजि पुराण सोधहि करहि बेद अभिआसु ।।
बिनु नाम हरि के मुकति नाहि कहै
नानकु दासु ।।४।। ।।१।। ।।६।। ।।८।।

(धनासरी महला १ घरु ३)

इस शब्द के गाये जाने का एक लवलीन कर लेने वाला प्रभाव था, इसके अर्थ भाव में ब्राह्मण राज जी के सारे पाखण्ड का उल्लेख था, संसार में पड़ी हुई भूल का चित्र था लोगों पर अत्यन्त गहरा प्रभाव पड़ा ।

पथिक – हे योगीराज! आपको तूंबा तो अभी तक दिखाई नहीं दिया और त्रिलोकों की सूचना तुम प्रतिदिन देते हो। तूंबा आपकी पीठ के पीछे पड़ा है, आपको उसका पता नहीं। यह योग है कि अयोग्य है।

सभी भक्तिजनों की श्रद्धा पर इस समय आघात हुआ। कई तो जो बहुत मूर्ख थे, वे अब भी ब्राह्मण के साथ कुछ सहानुभूति में थे, पर शेष हंस रहे थे, कोई संकेत कर रहे थे, और कोई ईश्वरीय पथिकों की ओर देख-देखकर आश्चर्यचकित हो रहे थे कि इतने में उन्होंने एक शब्द गायन किया। सभी आकृष्ट हो गये और उस ध्वनि में मग्न हो गये। योगी-ब्राह्मण इस समय खिसक गया और किसी को उसका ध्यान भी न रहा। शब्द समाप्त होने पर लोगों ने विनती की कि आप नगर में चलो, पर आप वहां पर ही टिके रहे और लोग प्रणाम करके चल दिये फिर दोपहर को कुछ सज्जन भोजन लाये और वार्तालाप करते रहे।

: २ :

जब लोग नगर में अपने घरों में गये तो सवेरे वाली कथा प्रसिद्ध हो गई। जहां पर देखो यही बात, जहां पर सुनो, यही कहानी। लोग सुनते थे और हंसते थे और उन ईश्वरीय व्यक्तियों के दर्शन की इच्छा करते थे। यह ईश्वरीय मनुष्य कौन थे ? कलियुग को तारने वाले भगवान गुरू नानक निरंकारी जो असम, कछार, पूर्वी बंगाल, ब्रह्म-प्रदेश का भ्रमण करते समुद्र के मार्ग से रात को 'पुरी' पहुंचे थे। पुरी जगन्नाथ का ही नाम है, जो समुद्र के किनारे हिन्दुओं का एक

भारी तीर्थ है। जिसके बारे में लिखा है कि कभी बौद्धों, कभी वाम-मार्गियों, कभी वैष्णवों के हाथ में था। पर अब वैष्णव मन्दिर है और बारहवीं शताब्दी से वैष्णवों का राज तीर्थ है। आषाढ़ सुदी पंचमी को यहां से एक रथ निकलता है, खिचड़ी का भण्डा चलता है, कलेवर चढ़ता है। उस समय कई और रीति-रिवाज जारी थे और मूर्तिपूजा शिखर पर थी, पाखण्ड का जोर था। लोग यहां पर आकर मरना और रथ के नीचे आकर आत्मघात करना धन्य समझते थे इस प्रकार के इस प्रकार के बनावटी रंगों में सतनाम का प्रकाश डालने के लिए महाराज़ वहां पर पहुंचे थे। पहुंचते ही नगर में आपके कौतुक की कथा हो रही थी। अनेकों लोग दिन को दर्शन के लिये आये।

रात आई और व्यतीत हो गई, आगामी दिन लोग फिर ब्राह्मण महाराज की समाधि देखने के लिए गए। कुछ मजाक से, कुछ वहम से और कुछ देखने के लिये कि क्या होता है? पर वह तो अब था नहीं। उसी स्थान पर ईश्वरीय नाद हो रहा था, भाई मरदाना जी कीर्तन कर रहे थे और महाराज समाधि में बैठे थे। कीर्तन का आनन्द इतना आकृष्ट करने वाला था कि सारे आये हुए सज्जन पत्थर की मूर्ति की भांति टिक कर सुनते रहे। जब सूर्य ऊंचा हुआ तब भाई मरदाना ने समाप्ति की। सतगुरू जी ने वाहिगुरू जी के यश तथा नाम की कुछ प्यार भरी बातचीत सुनाई और कितने सज्जनों ने नाम ग्रहण किया, अर्थात् परमेश्वर की स्मृति में आये। अत: वहां पर अब छोटे से सत्संग का रंग जम गया।

ज्यों-ज्यों प्रभात बढ़ी आ रही थी घर में बैठे हुए योगीराज जी चिढ़ रहे थे। कभी सोचते थे कि वहां जाकर चेलों बालकों को साथ ले जाकर और योगदर्शन दिखा कर चर्चा में उन्हें पराजित किया जाये। अपनी विद्या का बल उन्हें ढाढस बंधाता था, पर जब वह भयभरी झुंझलाहट ध्यान में आती थी तो जी बैठ जाता था और चर्चा करके खो चुके खेल को जीतने की आशा टूट जाती थी। फिर हृदय को 'अहो दैव गति, अहो दैव गति' कहकर चैन देते थे, पर जो बनी बनाई बह गई थी उसका वियोग अधीर कर रहा था। इस प्रकार की व्याकुलता में उसका समय व्यतीत हो रहा था, पर सूझता कुछ नहीं था। पुरी नगर में संस्कृत विद्या का ज़ोर था और अच्छे-अच्छे पण्डित वहां पर रहते थे। हिन्दुओं के तीर्थों पर पण्डे होते हैं जो पथिकों के लिए पुजारी और उपदेशदाता से भिन्न सराय वाले का भी काम देते थे। इन पण्डों में एक धात्री नामक पण्डा था, जिसका प्रसिद्ध नाम कलियुग[१] था क्योंकि यह बड़ा मनचला और उपद्रवी मनुष्य था। सभी लोग इससे

---

१. चौथे युग कलियुग का प्रसंग जन्मसाखी में जैसा है, पीछे आ चुका है। तवारीख खालसा में इस पण्डे का नाम कलियुग लिखा है और इस उपद्रवी पण्डे की साखी को ही कलियुग की साखी बताया है। 'कलियुग' उपनाम कई उपद्रवी लोगों का आजकल भी देखा जाता है।

डरते थे। इसकी गुंडई सभी भले पुरुषों के भय का कारण हो रही थी। लाहौर पेशावर के लोग इसके यजमान थे। जिस देश को हम आजकल पंजाब कहते हैं, यहां के लोग इसके पास जाकर ठहरा करते थे, इसलिये इसके पास असीम धन आता था और बल पराक्रम भी अधिक रखता था। मन्दिर, बाग़ और सुख के सामान इसके पास बहुत थे, लोगों पर प्रभाव भी बहुत रखता था। योगीराज इस मनुष्य के पास अपनी व्यथा लेकर गये। कलियुग[१] पहले व्यथा सुन चुका था, पर ब्राह्मण ने जब अपने दुख की बात सुनाई और बताया कि 'मेरे ही सिर पर नहीं बनी, बल्कि तुम सबके सिर पर बनी है, सुना है कि वह जहां पर जाते हैं; वहां पर दूसरे पूज्य लोगों की पूजा छीन लेते हैं। ढाका में नूरशाह जैसी गद्दीदार के मायाजाल को तोड़ आये हैं, तुम किस बाग की मूली हो ? भला यही है कि जड़ पकड़ने से पहले यहां से निकाल दो, बाद में निकालना कठिन हो जायेगा। आज तीन-चार दिन ही हुए हैं फिर देखो कि कितने लोग सवेरे जाते हैं और शीश झुकाते हैं। आपको पता नहीं कि उनके साथ एक निम्न जाति का डोम भी है, हिन्दू तथा मुसलमान को एक कर रहे हैं, वर्ण-भेद के शत्रु हैं। अब बताओ यदि पांव पसर गये तो क्या करोगे ?' इस प्रकार की बहकने वाली बातों को सुन-सुनकर धात्री पाण्डे क्रोधित हो गया और योजनायें बनाने लगा, पर उसका मन कुछ थोड़ी सनसनी-खा जाता, जिसका उसे पता न लगता। क्रोध तथा सनसनी के प्रभाव के नीचे उसको यह सूझी कि पहले किसी के हाथ संदेश भेजा जाये। अत: एक दास को भेजा, जिसने जाकर गुरू जी को कहा कि शिरोमणि जी कहते हैं कि आप यहां से चले जाओ, किसी और देश में भ्रमण करो, यह तीर्थ महापवित्र स्थान हमारा है, यहां पर मत रहो।

गुरू जी - सुन भाई ! पण्डित राज जी को कहो, हम अपने आप नहीं आये, भेजे हुए आये हैं, भेजे हुए चले जायेंगे[२]।

दास - महाराज ! हमारा पण्डा बहुत शक्तिशाली है, राजा तक उसकी आज्ञा मानते हैं। आपका सुख आज्ञा मानने में है।

गुरू जी - सुख तो आज्ञा मानने में है, पर आज्ञा निरंकार की हो तब बात है। शेष जो अहं वाली आज्ञा है, वह खीझ में से निकलती है, वह आज्ञा नहीं है।

दास - फिर आपकी बुरी दशा होगी ।

गुरू जी - दशा निरंकार के हाथ में है, जैसी वह करेगा, वैसी शुभ होगी ।

दास - फिर क्या आप चले नहीं जायेंगे ?

---

१. गुरू नानक प्रकाश और तवारीख खालसा, कलियुग का मिलना जगन्नाथ में बताते हैं, और लेखक कोई पहले कोई बाद में। पुरातन जन्मसाखी ने, कामरूप देश से चलकर आगामी वन में हुई साखी बताई है, जिसे हम पीछे लिख आए हैं ।

२. घले आवहि नानका सदे उठी जाहि । (वार सारंग म: २)

गुरू जी –सब कुछ चलने में है, हमने कहां पर ठहरना है, नदियां कभी अटकती नहीं, पवन का वेग कभी रुका नहीं, सभी प्राकृतिक सामान चल रहे हैं, पर प्रकृति का चलना कर्तार के बांधे हुये वेग में है, जैसे वह प्रेरणा करता है, वैसे ही करना है। जैसे वह चलाता है, वैसे ही चलना है।

जब दास का कोई बस न चला तब उसने जाकर पाण्डे को बताया कि वे तो कोई ऐसे सख्त बादाम की भांति हैं कि किसी हथौड़े से भी नहीं तोड़े जा सकते। कड़वा वचन नहीं कहते झगड़ते नहीं, ज़ोर नहीं करते, सहन करते हैं, पर सहन करने में असीम तथा अटूट शक्ति है, जिसमें दूसरे की हार है। वे आपकी, यहां से चले जाने की आज्ञा को नहीं मानते।

जिसकी अकड़ के सामने सभी झुकते थे उसके आगे किसी का न झुकना एक भारी क्रोध उत्पन्न करने वाला था, अत: पण्डा अब अपनी मनमानी पर उतर आया । आज्ञा की गई कि एक–सौ लट्ठबाज़ सांयकाल को चलें और उन्हें धक्का देकर चिलका झील तक देश से बाहर निकालकर आयें, यदि न मानें तो खांड़ा खड़का दिया जाये। यह समाचार प्रसिद्ध हो गया। थोड़े से लोग जो प्रेमी बन चुके थे, उन्होंने जाकर पण्डे को समझाया पर उसने किसी का कहना न माना। निराश होकर फिर उन्होंने जाकर गुरू बाबा को बताया कि आज यह घटना होगी, अत: आप हमारे साथ चलें तो आपको कहीं छिपा लें, फिर धीरे–धीरे राजा को कह–सुनकर पण्डे को ठीक कर लेंगे। सतगुरू जी ने उत्तर दिया, यह समय चौथे युग कलियुग का कहा जाता है, 'जे को नाऊ लए बदनावी' इसका लक्षण है, भाग छिपकर कहां जाना है? कलियुग के समय में उत्पन्न हुए जीवों को इस समय में कल्याण की खोज करनी है, कलियुग का कल्याण नाम से है। नाम में कलियुग की अपेक्षा अधिक बल है, इस पण्डे का क्या है? जिसका नाम या उपाधि मात्र ही कलियुग है। हम जिसके हैं, उसी की टेक पर बैठे हैं, वह जो चाहेगा, वही होगा। इस तरह लोग मिन्नतें–प्रयत्न करके चुप हो गये, पर आप अचल ही रहे। अत: कुछ सज्जन तो पण्डे के भय के कारण इधर–उधर हो गये, पर कुछ बैठ गये, यह सोचकर कि यदि जीवन भी चला ज़ाये तो कोई बात नहीं पर दैवी मूर्ति की रक्षा अवश्य ही करनी है। सांयकाल हो गया, मरदाना उस समय से ही घबरा रहा था, उसका हृदय संगीत विद्या, का कोमल रसिक होने के कारण कोमल था, और वह प्रभावों को शीघ्रता से ग्रहण कर लेता था। नाम का रसिक भी था, पर अभी अभय पद से कुछ दूरी पर था। इतने में धूल उठी, आंधी चली, बादल गरजे, बिजली कड़की, सागर मे हलचल हुई, भय का यह चित्र बंध गया कि मरदाना का मन कुछ कांप गया। इधर से सौ पुरुषों के मारने–पीटने की आवाज आने लगी। मरदाना और घबरा गया।

गुरू जी – मरदाना ! वाहिगुरू का ध्यान धारण कर, वाहिगुरू का जाप

जप, कीर्तन तथा स्तुति की दशा में जा। वाहिगुरू आप हैं, वही सर्वव्यापी है और प्यार करता है। तू अचल हो, डोलने से मन महाराज से दूरी पर हो जाता है। तू महाराज के साथ एकाग्र हो, अन्दर से एकाग्र हो और सावधान हो जा। अन्यथा ऊंची आवाज़ से नाम जपता चल, हे सज्जन! यही टेक है, करके देख। प्रकृति के तत्व घुल रहे हैं, तुझे क्या? जब हम निर्भय के साथ जुड़ रहे हैं, तो भय काहे का। इतने में बूंदा-बांदी रुक गई, वायु अभी कुछ फर्राटे मार रही थी, पर गर्द कम हो गई। पण्डे की सेना आ गई। पचास व्यक्ति तो सतगुरू जी के गिर्द घेरा डालकर लाठियाँ उठाये खड़े हो गये और पचास ने मैदान में कोलाहल मचाना शुरू कर दिया। कोई नाचता था, कोई छलांगे मारता था, कोई गतका खेलने लग पड़ा, कोई महाराज की ओर देखकर भयंकर रूप बनाने लगा, कोई सोटी उलार कर आते और फिर भाग-भागकर चले जाते। मरदाना का रंग पीला होता जाता, सहम के कारण नेत्र बन्द करता जाता, पर सतगुरू जी अचल, दृढ़, जिस तरह बैठे थे, बैठे रहे, न डरे और न ही सहमे, कांपे और न हिले, आंखें ऊपर की ओर का रुख करके बंधी हुई एकटक नज़र में और माथा अति आभा वाले रंग में था। गतकेबाज गतका खेलकर गतका उलारकर आता कि मानों मारता है, पर फिर चाल बदलकर चला जाता, इस तरह जाता, इस तरह जाता कि मानो खेल करके अपनी अठखेली अदा में गया है, पर मन से महाराज जी के साथ आंख मिलाकर एक कम्पन खा जाता और शरीर में झनझनाहट-सी खा जाता। कुछ गतकेबाज अब जलती हुई उलकाओं से गतका खेलने लगे और उसी तरह उलरकर आने लगे, पर उसी तरह अपने कलेजे में भय खाकर पीछे हटते । फिर कुछ तलवारों वाले खेल करने लगे और चमकती हुई तलवारें लेकर उमड़-उमड़कर आने लगे। इस समय मरदाना मुंह ढांपकर लेट गया। महाराज ने कहा- उठ! रबाब बजा, वाणी आई है। मरदाना उठा, अंगों में कोई बिजली की रौ चल गई का पता चला और सावधान होकर गऊड़ी राग का स्वर छेड़ दिया। तक श्री सतगुरू जी के दैवी कण्ठ से एक अत्यन्त बलवाली मेघ के समान गर्ज से भी हुई ध्वनि उठी :-

डरि घरु घरि डरु डरि डरु जाइ ।।
सो डरु केहा जितु डरि डरु पाइ ।।
तुधु बिनु दूजी नाही जाइ ।।
जो किछु वरतै सभ तेरी रजाइ ।।१।।
डरीऐ जे डरु होवै होरु ।।
डरि-डरि डरणा मन का सोरु ।।१।। रहाउ।।
ना जीऊ मरै न डूबै तरै।।
जिनि किछु कीआ सो किछु करै ।।

हुकमे आवै हुकमे जाइ ।।
आगै पाछै हुकमि समाइ ।। (गऊड़ी महला १)

इस शब्द का इतना प्रभाव हुआ कि सभी नचने-कूदने वाले, सभी भूत-नाच करके भय का समय बांधने वाले जहां-जहां पर थे, वहीं पर खड़े हो गये और शब्द की लय में मुग्ध से होकर हिलने-जुलने से रह गये। जिस समय से यह कौतुक किये जा रहे थे, उस समय से योगीराज ब्राह्मण गुरू जी के पीछे की ओर कोई पांच कदम दूरी पर खड़ा था। जो समाधि वह सवेरे के समय आकाश में लगाया करता था, आज वह समाधि गुरू जी की पीठ के पीछे जमाये हुए खड़ा है। ईश्वर जाने वह अपने अन्दर से क्या संकल्प धारण करके ध्यान लगाये हुए खड़ा है, पर जो कुछ है, वह अच्छा नहीं, द्वेष का है।

उधर जब शब्द की ध्वनि सबको एक अडोल-सा बनाकर खड़ा कर गई तो पण्डा स्वयं आगे बढ़कर आया, उसने बड़ा क्रोध वाला और विकराल रूप धारण किया हुआ था, पर ज्यों-ज्यों पास आया, कदमों की तेज़ी कम होती गई, पांच कदमों की दूरी पर खड़ा होकर बहुत भय देने लगा, पर उसके अन्दर यों प्रतीत देता कि मानो दुर्बल कर देने वाली कंपकपी होती है। दूसरे क्षण क्या देखता है कि योगीराज के-जो कि गुरू साहब जी की पीठ के पीछे त्राटक लगाये खड़ा था-आंखों की पुतलियें गिर पड़ी हैं, एक चक्कर-सा खाता जाता है, टांगें लड़खड़ाती हैं और इस तरह होते-होते धरती पर बैठता-बैठता गिर जाता है और औंधे सिर गिर जाता है। वह यों बिलकुल बेसुध हो गया। यह देखकर पण्डे पर एक और सहम छा जाता है और आगे बढ़कर कुछ भारी-से स्वर से कहता है, हे तपा! तू डरता नहीं? (आंखें चमकाकर) क्यों ...?

इस समय मरदाना भय से निकल चुका था, उसने बड़े मन से अब यन्त्र छेड़ दिया और श्री गुरू जी ने एक बड़े भरे तथा मेघ के समान आकृष्ट करने वाले स्वर में गायन किया :-

भऊ मुचु भारा वड़ा तोलु ।।
मन मति हऊली बोले बोलु ।।
सिरि धरि चलीअै सहीअै भारु ।।
नदरी करमी गुर बीचारु ।।१।।
भै बिनु कोइ न लंघसि पारि ।।
भै भऊ राखिआ भाइ सवारि ।।१।। रहाउ।।
भै तनि अगनि भखै भै नालि ।।
भै भऊ घड़ीअै सबदि सवारि ।।
भै बिनु घाड़त कचु निकच ।।

अंधा सचा अंधी सट ॥२॥
बुधी बाजी उपजै चाऊ ॥
सहस सिआणप पवै न ताऊ ॥
नानक मनमुखि बोलणु वाऊ ॥
अंधा अखरु वाऊ दुआऊ ॥३॥१॥

(गऊड़ी म: १)

इस बार बड़ा सहम भरा प्रभाव पड़ा, सारे लट्ठबाज बैठ गये, पण्डा स्वयं बैठ गया और कहने लगा :-

तपा जी! मैंने कुशलता सहित संदेश भेजा था, आप गये नहीं ?

गुरू जी - यदि ले चलेगा तो चले जायेंगे ।

पण्डा - कौन ?

गुरू जी - भेजने वाला ।

पण्डा (डरकर) - वह कौन है ?

गुरू जी - जिससे सभी डरते हैं और जो किसी से नहीं डरता ।

पण्डा - वह कौन है ?

गुरू जी - करनहार, कौतुकहार ।

पण्डा - वह कहां पर है ?

गुरू जी - यहीं पर ।

पण्डा - दीखता नहीं ?

गुरू जी - पापियों के मनों में भय डालने के कार्य में लीन हो रहा है ।

पण्डा - पापी कौन हैं ?

गुरू जी - जो डरते हैं ।

पण्डा - डरते कौन हैं ?

गुरू जी - जो पापी हैं ।

पण्डा (बात टालकर) - क्या तुम तांत्रिक हो, जो हिले-जुले नहीं, डर से डरे नहीं, बल्कि डरा रहे हो ।

गुरू जी - न मैं डरता हूं, और न डराता हूं, मैं तो कर्तार के भय में हूं और मेरी इच्छा है कि सभी उसके भय में रहें। उसका भय पाप से मुक्त करता है, पाप से मुक्त होना निर्भय होना है, अत: उसका भय करना निर्भय होना है।

पण्डा - भय तो दुर्बल लोगों को होता है।

गुरू जी - दुर्बल वह है, जो सच से परे जाता है, हां दुर्बल वह है जो पाप करता है, पाप दुर्बलता उत्पन्न करता है, दुर्बलता भय को पुकारती है।

पण्डा-तो तू निष्पाप है? सत्यवान है, यदि मेरा कुतका अभी पार करे तो क्या तू पापी है ?

गुरू जी – मर जाना, हार जाना, अपकीर्ति में आ जाना, यह पाप के चिह्न नहीं और न ही डर जाने के चिह्न हैं। निर्भय रहना, अपयश से निर्भय हो जाना अपकीर्ति से, शारीरिक कष्टों से, मृत्यु से, यह तो सत्य के साथ प्रेम द्वारा होता है। अपयश, क़ष्ट तथा मृत्यु पाप का चिह्न नहीं और न ही भय की युक्ति है। शरीर मर जायेगा, जिसने अवश्य ही मरना है, देह कष्ट भोगेगी जो नित्य भोगती है अपयश हो चुके नाम का जो कभी प्रसिद्ध नहीं था और फिर प्रसिद्ध हुए लोगों के मनों से हट गया, यश देने वाले यश लौटाकर ले गये, अभय पद वालों का क्या गया। जीव न तो मरेगा और न ही कष्ट सहन करेगा, और न ही अपकीर्ति के कारण उदास होगा।

पण्डा (घबराकर) – मेरे पास बहुत ऐश्वर्य है और मैं चाहता हूं कि मेरी और आपकी बनी रहे, जो चाहो लो, आराम करो फलो–फूलो, पर मेरी आन–बान बनी रहे। लज्जा रखो और रखवाओ। मोतियों के मन्दिर, ऐश्वर्य, सिद्धि, आज्ञा करना सब कुछ हाजिर हैं। मैं तांत्रिक विद्या का भी आचार्य हूं ।

यह सुनकर गुरू जी ने एक शब्द उच्चारण किया। इसके प्रभाव के कारण पण्डे को सुध–बुध हुई और कहने लगा :–

तुम ब्रह्मज्ञानी दिखाई पड़ते हो ?

गुरू जी –ब्रह्मज्ञान ब्रह्म को है, किसी और के ज्ञान का विषय नहीं ।

पण्डा–मुझे दीखता है कि तुम्हें ब्रह्म का ज्ञान है, यदि ब्रह्म का ज्ञान ब्रह्म के किसी को नहीं तो तुम ब्रह्म हो क्योंकि ब्रह्म ज्ञान के बिना तुम्हारे जैसा और कोई हो नहीं सकता ।

गुरू जी – ब्रह्म असीम है, अनन्त है, अनादि है।

पण्डा–ब्रह्म निर्गुण भी है, सगुण भी है, ब्रह्म ब्रह्म भी है और ईश्वर भी है। ईश्वर गुप्त भी है और प्रकट भी; ईश्वर विदेह भी है और देह भी धारण करता है, तुम देहधारी ब्रह्म हो।

गुरू जी – देह एक देशीय है, ब्रह्म सर्वदेशीय है।

पण्डा (खिसियाकर) – तुझमें ब्रह्मत्व पूर्ण है, जैसे लोहे में अग्नि का प्रवेश। हां मुझे दिखाई दिया है प्रकाश । तेरे पीछे एक ब्राह्मण मर रहा है। इसकी हत्या किसे लगेगी।

गुरू जी – जिसने इसको मारने के लिये भेजा, उसके सिर इसके मरने की हत्या, मैं मरने–मारने में नहीं, मैं द्वेष तथा मोह में नहीं, मैं अपने प्यारे के रंग में चल रहा, बैठ रहा, हंस रहा, खा और सो रहा हूं।

पण्डा (नेत्र मूंदकर, फिर खोलकर) – अनुकम्पा !

गुरू जी – हां अनुकम्पा, ईश्वर के घर में अनुकम्पा, ईश्वर के दास के घर अनुकम्पा, उपस्थितों की अनुकम्पा ।

पण्डा उठकर बेसुध ब्राह्मण को उठा लाया और चरणों के आगे लाकर डाल दिया। योगीराज की आखें तारी बांधे हुए थीं, श्वांस किसी अदभुत ढंग से आ रहे थे, हाथ-पांव ढीले डाल रखे थे। सतिगुरू जी देखकर मुस्कराये और कहने लगे :-

चट्टान के साथ टक्कर मारने से अपना सिर फटता है, कुआं खोदने से गड्ढा मिलता है, जादू करने से जादू होता है। निर्वैर चट्टान की भांति पड़ा है, उसके साथ शत्रुता की टक्कर मारने से अपना सिर फटता है। 'निर्वैर' एक बिल्लौर की चट्टान है, जिसकी ओर भेजी हुई मानसिक लहरें टकराकर वापिस लौटती हैं और अपने पर आकर पड़तीं और आपे को मूर्छित करती हैं। मानसिक बल निर्वैर बल के साथ टकराकर आपे को मारता है कौन किसे मारता है? आपा आपे को मारता है आपा सत्य को उलटकर असत्य का आधार लेकर सत्य के साथ टकराता है और लम्बे श्वांस लेता है। हां मरदाना! भाई लगा इस ब्राह्मण को अपनी अछूत जाति के चरण, जिससे इस कुलीन महाऋषि का होश लौटे और यह जागृत हो जीवित हो उठे।

मरदाना ने उठकर हिलाया, सिर पर रबाब से ठोकर मारी, प्यार दिया, तब योगीराज की आंखें बन्द हो गईं। श्वांस ठीक हो गया चेहरे की क्रान्ति बदल गई और एक क्षण में उठकर बैठ गया। यह चमत्कार देखकर अब पण्डे का सारा हृदय बदल गया, इसका प्रभाव उसके गहरे अन्दर में गया कि यह अवश्य ही महापुरुष है, इसमें महान् शक्ति है, जिससे बेसुध करके आघात करने वाला प्रभाव डालता-डालता ब्राह्मण आप बेसुध होकर मर चला था। इसमें फिर कितनी शक्ति है कि झटपट ही ठीक कर दिया है। फिर यह अनुकम्पा का सागर है, शान्ति का भण्डार है, फिर अभय है। जब बात करता है तो पाण्डित्य तथा विद्वत्ता मात होती है, यह सचमुच अवतार है। अवतार से कम किसी में यह गुण नहीं हो सकते, अब तो शरण लेनी ही उचित है।

पण्डा - महाराज ! मेरा उद्धार कैसे होगा ?

गुरू जी - कुलक्षणों का त्याग करने से ।

पण्डा - कुलक्षण क्या-क्या हैं ?

गुरू जी - असत्य, झूठ ।

पण्डा - जी और ?

गुरू जी - जहां पर वाहिगुरू का स्मरण हो, कीर्तन हो, परमेश्वर का प्यार, ध्यान हो, अर्थात जहां पर 'नाम' है वहां पर सत्कार किया कर, परमेश्वर के प्रमियों को डराया मत कर ।

पण्डा - मेरा उद्धार !

गुरू जी - नाम जप । नाम का स्मरण कर, नाम में खेल, पाखण्ड का त्याग कर दे।

पण्डा - सत्य वचन। पर जगत में निवास करते हुए झूठ, असत्य, ज़ोर,

धक्का, आदि इन बातों की आवश्यकता पड़ जाती है।

गुरू जी – दुर्बल मन वालों को आवश्यकता पड़ती है। हे पाण्डेय जी। इस बात को जान लो कि अकड़ वाले बल वाले नहीं होते। ज़ोर तो अन्तस से 'टिकाव' से सत्य की दृढ़ता पर होता है। डर जाना भी दुर्बलता है, पर डराना भी कमजोरी की ही उक्ति है। बड़े-बड़े पातशाह जो ज़ोर-अत्याचार करते हैं, वे भय के कारण करते हैं कि कहीं कोई उन्हें मार न डाले। निर्भय होना, अभय पद पर स्थिर होना, न डरना, यह शक्ति है जो शरीर, मन तथा आत्मा के बलिदान होने की उक्ति है।

मेरा सिख न डरेगा न डरायेगा, मेरा सिख अपने जीवन के परिवेश को 'सत्य' के दिशायंत्र (कुतुबनुमा) की सीध पर चलाएगा; मेरा सिख अन्दर से प्रत्येक समय वाहिगुरू के साथ जुड़ा हुआ, उस सर्वशक्तिमान के जीवन-प्रवाह से प्रत्येक समय वाहिगुरू के साथ जुड़ा हुआ, उस सर्वशक्तिमान के जीवन-प्रवाह से प्रत्येक समय चेतन, श्वांस-श्वांस ताज़गी में, सदैव जागृति में, जीवन के हिलोरों में जीवन-कण से दमकता हुआ, जीवित होकर भ्रमण करेगा।

महाराज के वाक्यों का आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ा। पण्डा सिख हो गया, उसने नाम धारण किया। जो लट्ठबाज साथ आये थे, सभी सुन रहे थे, देख रहे थे, सभी श्रद्धावान हो गये और शीश झुकाकर विदा हुए। आपने अपना डेरा समुद्र की ओर ही रखा, जहां पर इस समय तक गुरू नानक साहब जी की बावड़ी है। इसका जल मीठा है, चाहे समुद्र के समीप है, पर दूसरे कुओं का जल खारा है। पण्डा था संगत ने नगर में ले चलने के लिए बल दिया, पर महाराज ने कहा कि अभी एक दो दिन यहां पर रहने की आज्ञा है। मरदाना उजाड़ के कारण व्याकुल हो रहा था और बस्ती में जाने के लिए लालसा कर रहा था, पर स्वामी की आज्ञा में प्रसन्न था, अपने संगीत के रंग में मग्न था उच्च उड़ानों में रहता था।

: ३ :

रात व्यतीत हुई, अमृत वेला आ गई, मरदाना ने कीर्तन आरम्भ किया। सच्चे पातशाह जी, "आपे रसीआ आपि रसु आपे रावणहार" के संगीत, कीर्तन और स्तुति के रंग में रंगे अचल बैठे हैं। संगत का आना आरम्भ हो गया। सूर्योदय तक ठाठ बंधा रहा, फिर भोग डाला गया, कड़ाह प्रसाद बांटा गया, संगत विदा हुई। आज संगत ने नगर में चलने के लिए बहुत प्रार्थना की, पर आपने कहा कि आज का दिन यहां रहने की आज्ञा है, कल को जो निरंकार करायेगा, वही होगा। यन्त्री के बस में यन्त्र है, जैसा बजायेगा बजेगा।

सांयकाल को योगीराज ब्राह्मण दर्शन करने के लिये आया, शीश झुकाकर

बैठ गया, सतगुरू जी ने आदर दिया प्यार दिया और कुशलता पूछी। तब योगी ने कहा-महाराज! आपके बल के आगे मैं झुक चुका हूं, पर मेरे संशय अभी निवृत्त नहीं हुए।

गुरू जी – निवृत्त कर लो। यदि मन माने ही न तो स्थिर कैसे हो? यदि स्थिर न हो? तो ऊंचा कैसे हो ? यदि ऊँचा न हो तो साईं के तार से एक-स्वर कैसे हो? जीवित तार के साथ एक-स्वर न हो तो आप कैसे जीवित रहे? जो जीवित न हो वह परम पदार्थ की प्राप्ति कैसे करे? अत: हे ब्राह्मण राज! अब पूछ लो, अपने संशय को निवृत्त कर लो।

ब्राह्मण – आपने कहा है कि नाम जपो, हम भी नाम जपा करते थे, पण्डा भी नाम जपा करता था, फिर हम पापी निकले और आपने हमें फिर नाम ही कहा।

गुरू जी – तुम नाम नहीं जपते थे, तुम तो किसी भूल में पड़े हुए थे। मुंह से किसी देवता का नाम घड़ी दो घड़ी के लिए लेते जाना कोई नाम नहीं।

ब्राह्मण – क्या ईश्वर का नाम लिये रहना, नाम नहीं है?

गुरू जी – 'ईश्वर का नाम' कहो पर नाम में भावना धारण करके नाम लो।

ब्राह्मण – कैसे ?

गुरू जी – नाम से पहले 'नामी है', यह निश्चय में रखो। ख्याल करो कि 'नामी है'। इस दृष्टिमान तथा बस रहे संसार में इसका स्वामी तथा पालनहार निवास करता है, वह इसमें है, पर दिखाई नहीं देता। उसका रूपरेख-रंग कुछ नहीं, पर वह घट-घट में निवास करता है। वह निरंकार है। वह ज्योतिस्वरूप है, हमारा अंतस भी ज्योति है। हां निरंकार अन्ध मिट्टी की भांति नहीं, वह जीवित जागृत सदैव चेतन आत्मतत्व है। उसके रंग, उसके कर्म, उसके विचार, उसकी तरंग इन सभी को वह स्वयं जानता है क्योंकि वह हमारी भांति नहीं है। प्रकाश की लहर तथा कर्म मिट्टी की भांति नहीं होते। वह ज्योति है, हमारे अन्दर हमारा अंतस भी ज्योति है; यदि दोनों का मिलाप रहे तो हमारी छोटी सी ज्योति का प्रकाश भी बढ़ जाये; इस तरह हमारा अंतस खिला रहेगा, अन्यथा बुझे हुए दीपक के समान गिरा-सा हुआ और सोचों में दृष्टिमान की तृष्णा में मन रहेगा, और दुख सहन करेगा। सो उस महाज्योति निरंकार के साथ हमारी ओर से कभी दूर अथवा अन्तर न पड़े, यह हमारा परमार्थ है। उस ज्योतिस्वरूप को कहो 'नामी' और उसके नाम को कहा 'नाम'। सो नाम में नामी की भावना धारण करो, मन में नाम का ध्रुव बांधो कि उसका नाम जपते हैं। अब विचार करो कि जब किसी का नाम लें तो ध्यान नामी की ओर चला जाता है कि नहीं? ध्यान इस जगत का सारा सार है। जिस काम की ओर ध्यान है, वह हो रहा है, जिसकी ओर से ध्यान हटा वह काम रह गया। हल चलाने वाला का ध्यान हल तथा बैलों में लगाता है, तब कहीं हल चलता है। विद्यार्थी का ध्यान विद्या में जाता है, तब विद्या पढ़ी जाती

है। पर हमारा ध्यान दृष्टिमान से ऊंचा नहीं उठता, हमें नामी में भावना धारण करके नाम जपना है जिसके साथ ध्यान को नामी की ओर जाना है।

अत: (१) उस सारी क्रिया को, जो ध्यान को दृष्टिमान से उठाने और दृष्टा में लाने पर व्यय होती है, 'नाम' कहते हैं। जब नाम द्वारा ध्यान साईं की ओर लग गया तब। (२) उस ध्यान के लगे रहने को 'नाम' कहते हैं । जब (३) वह लगा हुआ ध्यान साईं की ओर से प्यार, तरंग तथा जीवन रौ से भरा हुए तरंग ले-लेकर मगन होता है, दया का प्रवाह उसमें ठाठें मारता हुआ आता है, उसे नाम कहते हैं। जब (४) इस तरंग में रंगे होने से घट-घट में, वन तृण में प्यारा ही प्यारा दिखाई देता है, उसे नाम कहते हैं। (५) ध्यान को दृष्टिमान से उठाने के 'प्रथम प्रयत्न' से लेकर नामी की प्राप्ति तक के सभी रंगों को हम नाम कहते हैं। नाम केवल रटना मात्र नहीं, नाम रटना है, जप है, स्मरण है। नाम जीवन है, नाम अनुकम्पा है, नाम आत्मा तथा ईश्वर का संयोग है, उसके साथ प्यार, प्रेम, तरंग सुख, रस, रंग मानने का नाम है। हम जब 'नाम' कहते हैं तो जिह्वा से वाहिगुरू उच्चारण से लेकर नाम में प्राप्ति हो और ईश्वरीय प्रवाह वाले जीवन के सभी कम्पनों तथा उल्लासों का एक उज्ज्वल प्रज्वलित दमकता हुआ सूर्य देखते हैं। नाम है नामी की ओर लगना, और उससे लेकर नामी की ओर से दया का बरसना, हां उसकी ओर से उतर रहे प्यार, उल्लास, अंतस की सूझ तक का नाम 'नाम' है। सो तुम देख लो जो नाम तुम जपते थे, वह तथा यह आपस में कुछ अंतर रखते हैं?

ब्राह्मण (ठण्डी श्वांस भरकर) - आप धन्य हैं। आपने मुझ सोये हुए को जगाया है, मैं तो केवल मटर-मटर 'शिव शिव' करने को, कि लोग सुनते रहें कि भक्त है और जिह्वा तालु के साथ लगती रहे, दांत दांतों के साथ बजते रहें और हाथ से मनके पर मनका ठहकता रहे, इसे दो-तीन घड़ी करके उठना ही नाम जानता था। अब पता चला है कि जिह्वा द्वारा जपना निष्फल है।

गुरू जी - फिर भूल में पड़ गये हो। जिह्वा द्वारा नाम जपना सफल नाम है। जपना कर्म ही जिह्वा का है। जिह्वा अक्षर उच्चारण करती है, नाम भी अक्षरों का है। हे प्रिय! सारी बात फिर से समझ लो, 'नाम' आत्म जागृति को कहा जाता है। मन 'माया' के 'विस्मय' में सो रहा है, मरने के तुल्य निद्रा में है, इसका जाग उठना और उस जागृति में फिर जागते रहना नाम है। शरीर की नींद अथवा जागना कोई अर्थ नहीं रखती। मन 'माया विस्मय' की मूर्छा से उठकर 'आत्म विस्मय' की जागृति में आकर एक ईश्वरीय जीवन की रौ में निवास करता है, परन्तु आरम्भ तो जिह्वा के नाम जपने से ही होता है।

ब्राह्मण - जी फिर मेरी भूल बतलाइये जिससे मैं नि:संशय हो जाऊं ।

गुरू जी – तेरी दो भूलें हैं, एक इससे पहले की और दूसरी इसके बाद की।

नाम से पहले नामी का पता ठिकाना सुना जाता है। पहले 'नामी' है फिर 'नाम' है, फिर 'नामी' है। आदि से अन्त तक नामी 'नाम' में है। पहले नामी के गुण सुने जाते हैं – कि वह प्यार करता है, पालन करता है, सुमति देता है, अपने साथ रखने की इच्छा करता है, वह सदैव है, उसके साथ मिलकर हम सदैव सुखी हो सकते हैं। उसमें पहुंचना हमारे जीवन का प्रयोजन है। जीवित समय उसके साथ हो जाना और उसके साथ बसना हमारा परमार्थ है। पर हैं हम दुखी। यह दु:ख नामी से बिछुड़े रहने के कारण है। प्रत्येक प्राणी की यह इच्छा है और जिसके लिए सभी प्रयत्न करते हैं कि सुखी हों, पर माया में सुख की खोज करने के कारण सभी दु:खी ही रहते हैं, क्योंकि माया परमेश्वर से उलट भुलावे का नाम है, माया परमेश्वर और हमारे में 'दूरी' का नाम है, और सच्चा सुख है उसके साथ भेंट में। अत: यदि सदैव सुख की इच्छा हो तो मनुष्य माया से उठने और नामी में जाने की इच्छा करता है। जो इस प्रकार की इच्छा करता है, वह नामी के गुण, लक्षणों तथा स्वरूप का पता लगाता है। समझता तथा सुनता इसलिए है कि उसे देख तो सकता नहीं, क्योंकि वह अगोचर है। इसलिए नामी के स्वरूप तथा गुणों का एक विचार बनाता है। अपने अन्दर नामी का एक ध्रुव बांधता है और प्रयोजन बनाता है नाम में ध्यान लगा लेने का। अत: तुम्हारी पहली भूल यह है कि तुम नामी का ख्याल बांधने के बिना और ध्यान को दृष्टिमान से उठाकर नामी में लगा लेने का प्रयोजन धारण किये बिना, नाम रटना आरम्भ कर देते हो। जब पहले नाम के अर्थ की ओर भावना धारण ही नहीं की तो बताओ किसका नाम जपते हो? पहले परमेश्वर जी में भावना धारण करो, फिर यह जानकर नाम जपो कि यह नाम उस मालिक पालनहार का है। जपते समय इस प्रयत्न में रहो कि प्रत्यक्ष परमेश्वर की 'हुज़ूरी' में निश्चय पूर्वका नाम जप रहे हैं।

ब्राह्मण – ठीक है, (सिर हिलाकर) आनन्द आ गया। फिर जी! जब यह ख्याल बना लिया और मन लग गया फिर जिह्वा की क्या आवश्यकता रही?

गुरू जी – यहां पर नुक़ते की बात है। यदि यहां 'नामी के व्यक्तित्व का ख्याल' और 'नामी में ध्यान लगा लेने' का प्रयोजन समझ में आते ही मन में उसकी स्मृति की लगातार हिलोर आ गयी, साईं की कीर्ति और प्यार जाग पड़ा, अर्थात् ध्यान शीघ्र ही 'अनुभव' में बदल गया तब तो कार्य हो गया, नाम प्राणों में बस जायेगा, पर हे ऋषि जी! अनुगृहीतों के सिवाय, ऐसा कभी होता ही नहीं ईश्वर के अस्तित्व का विचार अथवा 'उसके व्यक्तित्व का ध्रुव' बांध लिया जाता है कि वह इस दृष्टिमान जगत का 'करनहार' है और उसे मिलना हमारे जीवन का प्रयोजन है। पर फिर भूल जाते हैं, अर्थात् हमारा ध्यान माया से उठ कर एकाएक 'नामी' पर नहीं जाकर लगता। समझ चाहे समझ जाये, पर ध्यान जहां

पर है, वहीं पर है, यह दृष्टिमान से उठकर दृष्टा पर निरन्तर टिक नहीं जाता। इस बात के लिए कि ध्यान भूल वाले स्थान से उठे हमें कोई प्रयत्न करना पड़ता है, वह प्रयत्न हमारे शरीरधारी होने के कारण शारीरिक ही चाहिए।

फिर समझ लेना कि मन का एक प्रयत्न हमने पहले कर लिया है, 'ईश्वर है,' हमने समझ लिया है कि उसे मिलना हमने प्रयोजन बना लिया है और माया से ध्यान उठाकर उसके ऊपर लगाना है। यह प्रयोजन भी हमने विचार लिया है, पर ध्यान हमारे कहे में नहीं चलता। उस ध्यान को मोड़ने का प्रयत्न करना है। तब विचार हमें एक और बात बताता है। कि मन का प्रभाव शरीर पर पड़ता है और शरीर का प्रभाव मन पर पड़ता है। जो काम शरीर करता है, मन उसी का प्रतिबिम्ब ले लेता है। यदि सारा दिन हाथों द्वारा कचालू निकालते रहें तो रात को उसी के स्वप्न आते रहेंगे। मन उदास हो जाये तो शरीर ढीला तथा दुर्बल हो जाता है। इस बात को समझ कर हम उस रूपरेखा से परे रहने वाले पर हमारे अंगों के संग रहने वाले नामी का एक 'अक्षरी नाम' खोजते हैं और उसे 'अक्षरों वाले नाम' को जिह्वा पर रख देते हैं और जिह्वा द्वारा जपते हैं–

'वाहिगुरू, वाहिगुरू, वाहिगुरू ।'

जब जिह्वा यह काम करती है तब ध्यान जो माया में है–मोड़ लेता है और 'वाहिगुरू वाहिगुरू' इन अक्षरों की ओर आता है। पहले हमने अपने अन्दर वाहिगुरू के आकार, उसके 'अस्तित्व' का विचार स्थिर कर लिया है, उसके स्वरूप, गुणों, स्तुति का कोई रूप बांध लिया है, उसमें लवलीन होना प्रयोग बना लिया है, अत: हमारा ध्यान झट ही माया से उठकर मानसिक मण्डल में चला जाता है। लगातार नाम इसीलिए जपा जाता है कि शारीरिक चोट का प्रतिबिम्ब मानसिक मण्डल पर पड़कर मानसिक मण्डल ईश्वर के ध्यान में मग्न हो जाये। इस तरह फिर नाम मानसिक मण्डल से ऊंचा होकर 'आत्म मण्डल' में ले जाता है और फिर हम 'नामी' के द्वार पर जा पहुंचते हैं। समझने–समझाने के लिये यों कहा जाता है जैसे कहा है।

ब्राह्मण – बहुत ठीक है।

गुरू जी – मनुष्य सारा ध्यान शारीरिक मण्डल में लगाये रखता है। देखो लगभग पौने तीन पहर प्रतिदिन निद्रा की जाती है, यह तो शारीरिक सुख के लिये है, लगभग पौने तीन पहर प्रतिदिन आजीविका के कामों में व्यय होते हैं, तब भी शारीरिक मण्डल में ही ध्यान रहा, शेष पौने तीन पहर हंसने, खेलने, भ्रमण, तमाशे, भाईचारे के कामों में व्यतीत हो जाते हैं, वह भी शारिरिक मण्डल में ध्यान को रखते हैं, अत: आठों पहर शारीरिक मण्डल में ध्यान को रखते हैं। अत: आठों पहर शारीरिक मण्डल की ओर रुख रखने में व्यतीत हुए, अब ध्यान मानसिक मण्डल में कैसे और किस समय जाये? भाई, कोई पढ़ा है अथवा नहीं, आठों पहर

उसका ध्यान शारीरिक मण्डल में है। सो सिद्धान्त यह है कि शारीरिक मण्डल में लग रहे ध्यान को किसी शारीरिक क्रिया द्वारा उठाया जा सकता है, वह है रसना द्वारा नाम जपना, जिसके द्वारा ध्यान नामी के ख्याल, उसकी स्तुति तथा स्वरूप की ओर जाता है और धीरे-धीरे अनजाने इस अभ्यास से यह ध्यान मानसिक मण्डल में टिक जाता है।

ब्राह्मण – योग अभ्यास नाम से ऊंचा है क्या ?

गुरू जी – ध्यान को माया से ऊंचा उठाकर निरंकार में ले जाने के कई और अभ्यास हैं, पर उनके द्वारा जीव एकान्तवासी हो जाता है। कल्याण की आवश्यकता प्रत्येक प्राणी को है, यदि प्रत्येक प्राणी एकान्तवासी हो जाये तो कुछ समय में जगत समाप्त हो जाये। यदि जगत की समाप्ति हो जाये तो एक बात है, परन्तु जो अंतस की सीख और उन्नति एक दूसरे के साथ सम्पर्क होने से होती है, वह रह जाती है और एकान्त में अन्तस एकान्त योगी ही हो जाता है। यों यदि सभी वनों में जाकर बैठ जायें, तो सभी भोजन कहां से करें । सो यह सम्भव ही नहीं हक सभी बनवास धारण करें, वन में निवास करके सभी भूख के कारण मर जायेंगे। इसलिये ऐसे साधन की आवश्यकता है जो बेमालूम ही प्रभाव डाले, संसार के काम-धन्धे चलते रहें। जीव कृत्य करके भोजन करता रहे, पर अन्दर से ध्यान माया तथा संसार में ऊंचा होता जाये और वाहिगुरू की ओर रुख करते-करते निरंतर अन्दर से ईश्वर के साथ भेंट हो जाये। फिर अन्र से साईं से मिला रहे और हाथ से काम भी करता रहे। यह ढंग स्मरण का है, जिसे हमने 'नाम' कहा था। अन्दर से मिले रहना कोई मुर्दा मिलन नहीं, कोई दो जड़ वस्तुओं का संगम नहीं, पर वह मिलन है, आत्म-जीवन। क्योंकि वह 'जीवन तत्वों' का मेल है। वास्तविक जीवन भी वही है। जिसके मन में साईं का निवास है, वह जीवित है; जिसके अन्दर नहीं बसा वह मृतक है[१]। नाम हमारे ध्यान का साईं की ओर एक लगातार प्रवाह है। और लगातार साईं के प्यार का हमारी ओर रौ है। हां, वह एक जीवन की हिलोर है।

ब्राह्मण – दूसरी भूल भी कृपा करके बताइए ।

गुरू जी – दूसरी भूल यह है कि जब तुम नाम जपते हुए नहीं देखते कि ध्यान माया मण्डल से उठकर मानसिक और आत्मिक मण्डल की ओर जा रहा है कि नहीं, तुम्हारे अन्दर माया की प्रबलता वही रहती है। कोई ईश्वरीय लहर नहीं दौड़ती, कभी स्तुति की भावना नहीं आती, तुम कभी उन्मन नहीं होते, कभी चाव में नहीं आते, कभी भय में नहीं जाते, कभी प्यार की रौ नहीं फिरती, कभी वैराग्य की झंकार नहीं होती कभी उमंग नहीं उठती, कभी धन्यवाद की भावना

---

१. सो जीविआ जिसु मनि वसिआ सोइ।। नानक अवरु न जीवै कोइ ।।

(माझ वार महला १)

उत्पन्न नहीं होती। फिर तुम जमकर जपते भी नहीं, वैसे ही कह देते हो कि जपते हैं। हे ब्राह्मण! यह भी जरूरी है कि आत्मा जिज्ञासु सत्संग को प्राप्त हो, अर्थात् नाम जपने वाले जीवित की संगति करे। नामी का आदर्श अन्दर लेकर नाम जपे तो फिर से जीवित हो उठेगा। हां जपना ही 'जागृति' को ले आयेगा[१]। तुम आरम्भ में 'साईं के स्वरूप' 'मिलन का प्रयोजन' कोई ध्रुव नहीं बांधते और न ही जपते हुए देखते हो कि क्या बन रहा है। जब कोई नाम जपेगा तो नामी अवश्य ही उसके अन्दर आयेगा और मन उनमन होगा।

ब्राह्मण – जी मेरी तृप्ति हुई है।

गुरू जी – अब तुम धर्मस्थान बनाओ, वहां पर सत्संग का प्रबन्ध करो।

ब्राह्मण – सत्य वचन, कोई और आज्ञा ?

गुरू जी – और जो हमें आत्मा से वाणी की अनुभूति होती है, उसे तुम लिख लो इसका कीर्तन किया करो। वाणी के कीर्तन से मन स्तुति के घर में जायेगा[२]। याद रखो – वह हृदय मृतक है जिसमें ईश्वर की स्तुति का प्रवाह नहीं बहता। पृथ्वी, आकाश, तारे, चन्द्र, सूर्य, जल, पवन, सभी स्तुति में ले जाते हैं, यदि यह न ले जायें तब मन मृतक हुआ समझ लो। यदि जीवित रहना चाहते हो तो वाणी का कीर्तन करो, मृतक मन स्तुति के घर में आकर जीवित हो। वाणी मन में नाम की स्तुति दृढ़ करती है। वाणी नाम की गोदी है वाणी से नाम में, नाम से खेलते 'जागृत मन' आनन्द प्राप्त करते हैं। देख हे ब्राह्मण राज! तू विद्वान है, विद्वान तर्क बहुत करता है, स्मरण रहे परमेश्वर के देश में बातों तथा तर्क द्वारा नहीं जाया जाता। यदि इसे ठीक ढंग से प्रयुक्त करें तो बुद्धि दीपक है, प्रकाश है। इस द्वारा साहब की सेवा की जाती है। स्वच्छ बुद्धि तथा प्रयोजन की खोज वाली विद्या नाम की सहायक है, हां, निरंकार के देश नाम अभ्यास के कर्म से जाता है। केवल विद्या द्वारा समझ में तो कुछ आ जाता है पर ध्यान माया से नहीं हटता। माया से मन का ध्यान नाम द्वारा उज्ज्वल होता है। नाम से ही ज्ञान या अनुभव में जाया जाता है। सभी सत्कर्मों और साधनों की सफलता अनुभव में है। जा तुझे नाम प्रदान किया, नाम जप और नाम में निवासकर, उनमन हो और देख कि निरंकार का प्यार क्या है।

यह कहते ही गुरू बाबा का हाथ ब्राह्मण के सिर पर जा पड़ा–

'करि हुकमु मसतकि हथु धरि विचहु मारि कढ़ीआ बुरिआईआ।।

ब्राह्मण के सिर में एक चक्कर–सा आकर 'कड़क' की आवाज हुई, मानो

---

१. सुतड़े असंख माइआ झूठी कारणे ।। नानक से जागंनि जि रसना नामु उचारणे ।।
(सलोक महला १)

२. जिस नो बखसे सिफति सालाह ।। नानक पातिसाही पातसाहु ।। (जपुजी)

कोई पर्दा हट गया। शरीर पर से आवरण हट गया। जागृति हुई, आप हल्का-फुल्का हो गया, मानो शरीर का बोझ तो है ही नहीं, आंखों में सरूर भर गया। रोम-रोम में से वाहिगुरू-वाहिगुरू की झंकार उठी, मन आपे से ऊंचा होकर 'दृष्टा रंग' में आ गया। त्राटकों ने माया में लीन करके उजाड़ दिया था, आज देखा कि गुरू बाबा जब 'नाम' कहता है, तब क्या कहता है, समझा नहीं जाता, पर यों बूझा जाता और प्रतीत किया जाता है। वाह, वाह, हे ब्राह्मण! तेरे भाग्य !

कुछ समय तक मग्न रहकर ब्राह्मण शीश झुकाकर 'नाम दान' लेकर, हां जीवनदान' लेकर दु:ख देने के बदले में अमर सुख लेकर नगर को चल दिया और वह आनन्द का साईं समुद्र के किनारे पर ही विचरता रहा।

: ४ :

ब्राह्मण जी कर अब जीवनकण द्वारा दमक उठा था, पण्डे के घर में गया और जाकर सारी कथा सुनाई धर्मस्थल और सत्संग वाली बात मन को खूब अच्छी लगी। उसी दिन जगन्नाथ के मन्दिर के निकट ही एक मकान लिया गया, जिसमें धर्मस्थान स्थापित किया गया। इस ठिकाने का नाम अभी तक मंगू मठ है[१]।

पण्डा तथा ब्राह्मण के मन में आया कि गुरू बाबा को बड़ी धूमधाम से नगर ले चलें। सारी संगत की प्रसन्नता भी इसी बात में थी, नगर निवासी भी बाबा की कीर्ति सुनकर प्रेमी हो रहे थे। दूर निकट में बाबा के कर्मों की धूम मची हुई थी । सो बड़ी धूमधाम की आशा थी । मन्त्रणा यह हुई कि बाजे, ढोल-नगारे, मजीरे, गतकेबाजों की मण्डलियां, चोबदार तथा कोतलों के जलूस में हाथी अथवा रथ पर बैठाकर श्री गुरूजी को समुद्र के किनारे से धर्मस्थान पर लाया जाये। उन लोगों के लिए ऐसा करना कोई कठिन बात नहीं थी । एक दिन में सारी तैयारी हो गई और यह जलूस नगर की ओर से गुरू बाबा को लेने के लिये चल पड़ा ।

उधर आप समुद्र के किनारे पर बैठे थे। देखकर हंस पड़े और कहने लगे, मरदाना! देख कर्तार के रंग, पहले तो पण्डा कलियुग बनकर आया था और आज कलियुग सचमुच ही आ रहा है । बता आज तू डरेगा कि नहीं ?

मरदाना हंसकर कहने लगा – बलिहारी आपके कौतुक की, मैं तो डरपोक हूं, पर आपके चरणों के साथ लगा हुआ मैं क्यों डरूं।

गुरूजी – ले फिर सम्भाल रबाब और उठ खड़ा हो, चलो चलें ।

---

१. मंगू मठ उदासियों के अधिकार में सुना जाता है। तवारीख खालसा में लिखा है कि इसके साथ दो गांवों की जागीर थी जिसे साधु लोग बेचकर खा गये हैं और अब मन्दिर भी गिर रहा है। उदासी सन्तों का तथा समितियों का धर्म है कि इस ऐतिहासिक स्थान को उजड़ने न दें ।

आज्ञा होते ही मरदाना उठकर बैठ गया और आप बस्ती की ओर चल पड़े। एक मार्ग द्वारा मुरी में जा पहुंचे और धर्मस्थान में जा विराजमान हुए । इधर जब सारी भीड़ और सत्संगी पुरुष पहुंचे तो वहां पर गुरू बाबा जी और मरदाना दोनों नहीं थे और रेत पर मोटे अक्षरों में 'सतिनाम' लिखा हुआ था ।

इस समय निराशा का कोई अन्त न रहा । प्रेमियों के मनों पर बिछुड़ने का बहुत भारी प्रभाव पड़ा । उन्होंने समझा कि सतगुरू जी अपने मार्ग पर चले गये हैं । बिजली की भांति आये थे, हमारे पापों के मठों को जलाकर फिर बादलों में जा छिपे हैं । उसी स्थान पर सारी संगत बैठ गई, अढ़ाई घड़ी सबने बैठकर कीर्तन किया और गुरू बाबा के ध्यान में शब्द गायन किया । कीर्तन के पश्चात् सबके मनों को कुछ ढाढस बंधा, मन कुछ प्रसन्न हो आया, और घरों को लौटे । जब बाजार में आये तो कानों में मीठी-मीठी ध्वनि पड़ने लगी, जब धर्मस्थान के द्वार के अन्दर गये तो क्या देखते हैं कि 'साईं का भेजा हुआ आने वाला और साईं के बुलाने पर जाने वाला' दाता गुरू ज्योति जगाये बैठा है। कीर्तन हो रहा है और धर्मस्थान जगमग जगमग कर रहा है। जब मरदाना ने समाप्ति की तो पाण्डेय ने कहा - 'पातशाह आप धन्य हैं, आपने बड़ी कृपा की है, हमने भूल की थी, सूर्य को घर में लाने के लिये उल्का जलाकर ले चले थे, समुद्र को घर में लाने के लिये पानी की कटोरियाँ भरकर ले चले थे; तेरा प्रत्येक कौतुक एक पर्दा दूर करने वाला कण है, तेरे प्रत्येक कर्म में हमारा कल्याण है, है आत्मदाता ही! दया करो ।'

इस समय गुरू जी ने सिरी राग का शब्द 'मोती त मन्दर ऊसरहि' जो आपको अत्यन्त प्यारा था, बड़े बैराग्यपूर्ण स्वर में गायन किया ।

अब धर्मस्थान में कीर्तन आरम्भ हो गया, संगत का सत्संग भली भांति बंध गया । नगर के लोगों तथा पण्डों में यह चर्चा होने लगी कि गुरू बाबा जी आरती के समय जगन्नाथ के मन्दिर में कभी नहीं आये । राजा[१] भी कीर्ति सुन रहा था और श्रद्धालु बन रहा था । एक दिन सभी ने मन्त्रणा करके राजा को कहा कि गुरू जी को आरती के समय मन्दिर में आने की विनय कर भेजो । सो जब वह विनय गुरू जी के पास पहुंची तो उन्होंने आश्चर्य चकित होकर कहा कि जगन्नाथ की आरती है ? 'जगत के नाथ की आरती' प्रतिदिन होती है और हम अनुपस्थित रहते हैं । हां भाई, अवश्य ही चलेंगे सिर के बल चलेंगे, राजा को कह दो कि आज आयेंगे ।

पण्डे तो शायद समझते थे कि नगर की सारी मान्यता गुरू जी की ओर

---

१. इसका नाम कृष्णलाल लिखा है, मन्दिर का प्रबन्ध इसी की सन्तान के हाथों मे बताया जाता है।

चली गई है और इनके आगे जोर तो चलता नहीं, इस चाल से ही काम बना लिया जाये। यदि आप आरती में आ जाया करेंगे तो इनके पीछे लगी हुई संगत भी साथ आयेगी और लोगों में परचाव बना रहेगा, और यह नई संगत मन्दिर की पूजा से अलग न होगी और हमारा निर्वाह चलता रहेगा। पर कौतुकी सतगुरू नानक जी किसी और ही संकल्प से चल पड़े और आरती के समय आ पहुंचे । सबने बहुत आदर सहित बैठाया । आरती की तैयारी हो रही थी, स्वर्ण का एक थाल था, जिसमें हीरे तथा मोती जड़े हुए थे, बीच में चौमुखा दीपक था, जिसमें घी और बत्तियों डाली गईं । एक ओर थाल में धूप जलाई गई और एक ओर थाल में चांदी की तश्तरी में चन्दन का बूरा पड़ा था, जिसके ऊपर कपूर की टुकड़ी रखी थी और आग लगाई गई थी। मूर्ति पर चंवर किया जा रहा था, ढोलक बजने लगी, मंजीरे बजने शुरू हो गये, साथ-साथ वीणा बजने लगी, सारे पुरुष ससत्कार उठ खड़े हुए और जगन्नाथ की मूर्ति की आरती शुरू हो गईं

गुरू साहब जी धीरे से उठे, उठकर पीछे हटे और परे जाकर बैठ गये जहां पर कि छत नहीं थी। आकाश के खुले दर्शन होते थे। यहां पर बैठकर आपने आकाश की ओर देखा, एक लम्बा श्वांस लिया और फिर अचल हो गये। ऐसे टिके कि अन्दर मूर्ति की आरती भी समाप्त हो गई, पर आप अभी टिके हुए थे, नयन खुले हैं, कोई आश्चर्यजनक भीगापन आंखों में दमक रहा है, कोई बूंद ओस के मोतियों की भांति आंखों से बाहर गालों पर आकर दमक रही है। चेहरे पर लगता है कि आदेश की कोई फुहार पड़ रही है और एक अदभुत-सी शीतलता दीख रही है। मस्तक खिला है, सौन्दर्य विस्मय-भरा है और एक अगम्य प्यार का आकर्षण यों फैल रहा है जैसे किसी मेघ से वर्षा होती है। उधर आरती को समाप्त करके जब सारे व्यक्ति बैठे तो गुरू साहब दिखाई न पड़े। राजा ने पूछा, "गुरू बाबा जी कहां हैं?" तो पास से किसी ने कहा, कि लगता है वह खिसक गये हैं, आरती में सम्मिलित नहीं हुए। अब खोज करने पर पता चला कि खुले आकाश के नीचे, पर दूर बैठे हैं। राजा कुछ चकित होकर, कुछ क्रोध से भरकर उठा, साथ लोग भी उठे, पण्डे तथा ब्राह्मणराज जी भी उनमें थे। जब पास आये तो उस कभी न देखे गये रंग में गुरू जी को देखकर सारे चौंक गये, राजा भी चौंक उठा। कुछ समय के पश्चात् गुरू जी ने 'धन्य कर्तार!' 'धन्य कर्तार!' कहा और सावधान होकर बैठे। अब राजा ने आगे बढ़ कर कहा :-

गुरू जी! आपने कहा था कि आप हमारे साथ श्री जगन्नाथ जी की आरती में सम्मिलित होंगे और आप खिसक कर बाहर ही चले आये। इसका क्या कारण था?

गुरू जी – आ राजा! हम तो जगत के नाथ की आरती करते रहे हैं, तुम आज उसकी आरती में सम्मिलित नहीं हुए।

राजा (चकित होकर)– हम तो करते रहे। (इधर-उधर देखकर)–क्यों भाई?

सारे – जी सरकार! सभी आरती उतार कर आये हैं।

राजा – आप वचन देकर भी नहीं आए ।

गुरू जी – भाई राजा! हमने जगत के नाथ की आरती की, तुम्हें दिखाई नहीं दिया। तुम किसी जगत के हाथों में अनाथ की आरती करते रहे होंगे, इसलिए देख नहीं पाये होगे।

राजा (घबराकर)– हम नहीं समझे ।

गुरू जी – जो जगत का नाथ है, जगत उसके अधीन है। जो अधीन है वह अपने स्वामी की आरती उतारता है, पर जो आप ही चेतन नहीं, चेतन उसे घड़ते हैं, पहनाते हैं, पूजते हैं, वह जगत के हाथों में अनाथ है, चाहे जगत उसकी पूजा करे, चाहे अनादर करे। आरती करनी, आर्त होकर सनम्र विनय करनी है। अपने कर्तार के आगे झुककर प्रार्थना कीर्ति करनी तो आरती है, पर अपने किये हुए के आगे आरती करनी अनारती करने के तुल्य है।

राजा सुनकर सोच में पड़ गया, पर तप भी उठा। काफी समय तक सारे मामले और लोगों की श्रद्धा का विचार करके फिर कहने लगा : आपने क्या आरती की, सुनाओ तो सही? उसके यह कहने पर गुरू जी ने संकेत किया और मरदाना, जो पास बैठा था ने रबाब छेड़ दिया। आपका चेहरा पहले की भांति ऊंचा हो गया, वही ओस से भीगी हुई रस से भरी हुई छवि छा गईं धनासरी राग के गम्भीर स्वर में शब्द का गायन हुआ :–

रागु धनासरी महला १।।

गगन में थालु रवि चंदु दीपक बने तारिका मंडल जनक मोती ।।
धूपु मलआनलो पवणु चवरो करे सगल बनराइ फूलंत जोती ।।१।।
कैसी आरती होइि भव खंडना तेरी आरती ।।
अनहता सबद बाजंत भेरी ।।१।। रहाउ ।।
सहस तव नैन नन नैन है तोहि कउ सहस मूरति नना एक तोही ।।
सहस पद बिमल नन एक पद गंध बिनु सहस तव गंध इव चलत मोही।।२।।
सभ महि जोति जोति है सोइ। तिसकै चानणि सभ महि चानणु होइ।।
गुर साखी जोति परगटु होइ ।। जो तिसु भावै सु आरती होइ ।।३।।
हरि चरण कमल मकरंद लोभित मनो अनदिनो मोहि आही पिआसा ।।
क्रिपा जलु देहि नानक सारिंग कउ होइ जाते तेरै नामि वासा ।।४।।१।।७।।९।।

फिर गुरू जी राजा की ओर मुह करके कहने लगे –हे राजा! जो जगत का नाथ है वह सारे ब्रह्माण्ड में है[१]। एक नुक्कड़ में छिपकर नहीं बैठा उसकी आरती एक थाल तथा टिमटिमाते हुए दीपक द्वारा नहीं हो सकती। यह जो आकाश है, जो सर्वव्यापक है, यह सारा एक थाल है, इसमें अनेकों चन्द्र, सूर्य, दीपक, तारा मण्डल धरती से जड़ित मोतियों की भांति दिखाई देते हैं। जगत में चन्दन वनों की सुगंधि-धूप जल रही है, पवन चंवर कर रही है, समूह-वनों के फूल, पुष्प चढ़ा रहे हैं, अनाहत शब्द का कीर्तन हो रहा है, इस प्राकृतिक आरती के दर्शन करके स्तुति के विस्मय में चले जाना। अब बता उस निरंकार की आरती इसके अलावा और किसी ढंग से हो सकती है ?

राजा –क्या उस जगन्नाथ की आंखें हैं, जिनसे वह आरती को देखता है? क्या उसकी नाक है जिससे वह सूंघता है? क्या पांव हैं जिनसे वह चलकर आता है?

गुरू जी –उसकी कोई आंख नहीं, क्योंकि वह इंद्रीयधारी नहीं, पर हज़ारों आंखें उसी की ही समझ लो, क्योंकि वह अन्तर्यामी है। उसके इन्द्रियां नहीं हैं पर सर्वज्ञ होने के कारण, वह प्रत्येक वस्तु का रसिक होने के कारण, वह इन्द्रिय-धारियों से विशेष ज्ञानी है। उसके पंच भौतिक पांव नहीं, पर वह चलने वाले सभी वेगवानों की अपेक्षा अधिक वेगवान है। वह प्रकाश है, उसका प्रकाश सब में है, उसके प्रकाश से सब ओर प्रकाश होता है। उसे कोई प्रकाशित नहीं कर सकता, पर प्रत्येक प्रकाश को उसीने, प्रकाश दिया है। उसे कोई नहीं जानता, पर सबको उसी ने ज्ञान दिया है।

राजा –इस तरह का जो अगम्य है, उसे फिर कोई कैसे जाने ?

गुरू जी –उसकी ज्योति सबको ज्योतिर्मान कर रही है और आपा प्रकट नहीं कर रही, उस ज्योति को कोई देख नहीं सकता, वह यदि गुरू द्वारा उसकी शरण ले ले तो लक्षिता हो सकती है।

राजा – गुरू कौन है ?

गुरू जी – जो वाहिगुरू में है और जो जगत में है ।

राजा – वह कहां है ?

गुरू जी – जहां पर आवश्यकता है और भावना है।

राजा सोच में पड़ गया, ब्राह्मण्ड के नाथ की आरती सुनी, आरती के अर्थ समझे, अन्दर में सूझ हो आई, सारी आयु अपने हाथ से निर्मित मूर्ति की पूजा करते रहे, जिसने हमारा निर्माण किया उस जगन्नाथ की कोई पूजा न की । सारी पूजा

---

१. सुना है कि पण्डित हर सिंह जी निर्मल सम्प्रदाय के संत जी ने अपने 'गुरू परिजात' नामक ग्रंथ में इसी प्रसंग में यह श्लोक लिखा है। "असमदीयो जगन्नाथो वरतते सकलांतरे । सर्वव्यापी यथा देवा तथा नीराजनं विभौ।" अर्थात् मेरा जगन्नाथ सारे (जगत में) व्याप रहा है, जैसे मेरा 'देव' सर्वव्यापी है तैसे ही उसकी आरती भी सर्वव्यापक है।

उस महाज्योति के लिए थी, उसकी भूल में जड़ पदार्थों के आगे आर्त होकर आरती की। सोच तो सच्ची थी, सच दमकता था, कुछ लोकलाज दबाती थी। पर सूर्य जब चढ़ता है, चाहे पूर्व की ओर घटाएं क्यों न हों, वह अन्त में बादलों के पर्दे फाड़कर निकल ही आता है। सच राजा के अन्दर आया, हृदय फट गया और राजा विह्वल हो बोला, हे जगन्नाथ के प्यारे! कोई सूझ प्रदान करो।

गुरू जी –सूझ तो अन्दर है, राजा! वह ज्योति–स्वरूप तेरे अन्दर है, उसे स्मृति में ला कि वह अन्दर है। फिर सुख में आ कि मेरा साईं मेरे पास है। उसके प्यार में आ, उसके आगे आर्त होकर उसकी कीर्ति कर, सदैव उसकी स्मृति में रह, तेरा मन ऊंचा उठ आयेगा। प्रवाह चलेगा, अन्दर स्फूर्ति आयेगी, जागृति हो आयेगी, उस जागृति में जीवित रह। हे राजा! भले पुरुष जगत में हैं, सज्जनता, पुण्य, भलाई अच्छी है, पर जब तक अन्दर जागृति नहीं तब तक ऊंचा तथा वास्तविक जीवन प्राप्त नहीं, जीवन के बिना जीव मृतक है। फूल सुहावना है, रंग में कोमलता है, पर फूल वह सफल है जो सुगंधि फैला रहा है। जिसके अन्दर जागृति हो, मन उल्लास में हो, रस के देश की कम्पन हो, आत्मिक देश का उल्लास हो, वह पुरुष सफल है। जैसे पशुओं से हम उच्च जीव हैं, इसी तरह मनुष्य श्रेणी से वह उच्च जीव है जिसके अन्दर परमेश्वर जी के प्यार की लहर ओतप्रोत चलती है। जीव की आरती चरणों कमल से जा टकराती है। चरणों कमलों से दया की लहर जीव के अन्दर आकर बजती है। रस रंग की सांट होती है, अन्यथा हे राजन्! पूजा एक ढंग है जिसमें जीवन नहीं।

राजा –सत्य है, हे भगवन्! आयु इसी तरह व्यतीत हुई है, कोई जीवन का कण फिर डाल दीजिये, जिससे जीवित हो जायें।

सतगुरू जी ने राजा की ओर कृपा–कटाक्ष से देखा और किसी अति प्यार में आकर कहा, कह:

'वाहिगुरू'
कर प्रतीत –
'वाहिगुरू'
देख अन्दर हिलोर –
'वाहिगुरू, वाहिगुरू, वाहिगुरू'

किसी आश्चर्यजनक कम्पायमान लहर में दाता साईं जी बोले कि राजा 'वाहिगुरू', वाहिगुरू' करता हुआ अन्दर खो जाने लगा; खोता–खोता फिर लौटा तो शीतलता पड़ रही थी, एक जागृति प्रतीत दे रही थी, आप ऊंचा–ऊंचा पर शीतल तथा देखने वाला हो रहा था, उनमनी (मन के ऊंचे हो जाने की) लहर टकरा रही थी, सारे शरीर में वाहिगुरू की मीठी ध्वनि अपने आप हो रही थी

अगंमी स्वाद आ रहा था। इस रस में भरकर चरणों पर गिर पड़। तारनहार दाता ने सिर पर प्यार दिया और कहा – 'निहाल'।

राजा निहाल हो गया, संगत निहाल हो गई। निर्वैर दाता के प्यार ने सोये हुए जगा दिये, ईश्वर से टूटे हुए जोड़ दिये, अगम्य में जीवन रौ के मार्ग खोल दिये, हां जी, 'नाम धारण करने वाले' कर दिये।

पुरी में सत्संग का सूर्य चढ़ा, साधु संगत, धर्मस्थान, वाहिगुरू प्रेम का प्रवाह चल पड़ा। यों रेतस्थलों में खजूरों के झुण्ड तथा स्त्रोत लगाकर बाबा प्रसन्न होता है। पर संगत जो जीवित हो उठती है वह बाबा से पृथक नहीं होना चाहती, गुरू बाबा जी आज्ञा के तार के पीछे उठ चलते हैं। उस समय प्रेम तथा वियोग का अद्भुत चित्र बंध जाता है। अन्त में आज्ञा होती है तो गुरू बाबा जी चल ही देते हैं और संगतें प्राप्त किये हुए अमर जीवन सत्संग–कीर्तन के आश्रय गुरू बाबा के साथ अन्दर आत्मा से मिले हुए जीवन सफल करती हैं। यों दो–तीन मास तक संगतों के प्रेम के कारण सतगुरू जी वहीं पर रहे, फिर वाहिगुरू की आज्ञा में वहां से चल दिये।

□ □

३७ कटक यात्रा

यह प्रसंग सिख पुस्तकों में नहीं है, पर कटक में विद्यमान गुरुद्वारा 'दातुन साहब' के महंत जी से प्राप्त हुआ है कि स्वर्ण द्वीप आदि स्थानों से जहाज द्वारा यात्रा करके गुरू जी पहले कटक आये अथवा पुरी। पुरी में पहले पहुंचना और वहां से उत्तर की ओर होकर स्वदेश को लौटते समय पहले बड़ा नगर कटक आता है, अत: सम्भव है कि लौटते समय ही यहां पर टिके हों। महंत जी बताते हैं कि उन्हें यह प्रसंग पुश्त-दर-पुश्त अपने पूर्वजों से चला आता प्राप्त हुआ है। महंत जी ने प्रसंग इस प्रकार बताया है:-

कटक नगर के समीप, नगर के बाहर महानदी के किनारे पर एक सुन्दर स्थान पर सतगुरू जी ने डेरा डाला। नगर का शासक एक भला हिन्दू था जो सतगुरू जी का यश सुनकर दर्शन करने के लिए आया। इस महापुरुष ने गुरू का उपदेश धारण किया और सुखी हो गया। इससे पहले यह एक 'चेतन्य भारती' नामक साधु का चेला था। कहा जाता है कि इसने 'भैरव' की उपासना करके उसे सिद्ध किया हुआ था। चैतन्य भारती को अपने चेले का, जो नगर का मालिक था, गुरू जी का सिख बनना उचित न लगा तो उसने 'भैरव' को सतगुरू जी के साथ उपद्रव करने के लिये भेजा । भैरव ने बादल, बिजली की गर्जन, तूफान, अग्नि की वर्षा और सख्त जलधारा-रूपी वर्षा आदि भयंकर सामान करके उस वन में बेघर होकर बैठे हुओं को दुख देना तथा ड़राना आरम्भ किया, पर उसका कुछ बस न चला और अन्त में सतगुरू जी की शरण ले ली । अपने देवता की यह हार देखकर चैतन्य भारती भी सतगुरू जी की शरण में आया । चैतन्य अपने आथ में 'सहारा' वृक्ष की शाखा लाया, जो उसने गुरू जी को भेंट की । चैतन्य भारती को गुरू जी ने सतनाम के साथ जोड़कर उसका उद्धार किया और नाटकों-चेटकों में से उठाकर ऊंचा कर दिया । उसकी भेंट की हुई 'सहारे' की शाखा का गुरू जी ने दातुन किया वह दातुन वहां पर ही धरती में गाड़ दी और वह पनप उठी । अब वह बड़ा भारी पुरातन वृक्ष है । वहां पर गुरुदारा बना जो उस ओर के मकानों की भांति बनता हुआ पुरातन होता अब तक चला आया है । अब वह जीर्ण-शीर्ण दशा में था । तब से पुजारी पुश्त-दर-पुश्त वहां का निवासी ही चला आया है और वहां पर गुरू ग्रंथ साहब जी की स्थापना की हुई है । गुरुदारा की जीर्ण दशा देखकर बाबा करतार सिंह जी ने, जोकि कटक कालिज मे प्रोफेसर अथवा

प्रिंसिपल होकर गये थे, उद्यम किया और बढ़े श्रम से रुपया एकत्र करके बड़ा सुन्दर तथा पक्का गुरुद्वारा बनवा दिया है[१]।

□ □

१. यह प्रसंग और कलियुग की साखी जो पीछे आ चुकी है, और पुरी वाला प्रसंग तीनों में एक जैसी झलक सी है। संभव है कि यह एक ही प्रसंग हो और यहां पर 'कटक' में ही घटित हुई हो। यह भी संभव है कि इस तरह के उपद्रव तीन अलग-अलग स्थानों पर हुए हों।

३८ मरदाना निहाल

[१]तब बाबा जी और मरदाना वहां से चल दिये, जाते – जाते एक बड़े उजाड़ में आ पहुंचे। तब वहां पर कुछ भी नहीं मिलता था। मरदाना ने कहा, 'बलिहारी आपकी भक्ति की, हम डोम थे। देश के टुकड़े मांगकर खाते थे, वहां से भी गये, हम तो बड़े उजाड़ में आ पहुंचे हैं। कभी खुदा निकालेगा तो कहीं जाकर निकलेंगे अभी कोई सिंह गर्ज पड़ा तो मार जायेगा', तब बाबा ने कहा, 'मरदाना ! तेरे निकट कोई नहीं आता, पर तू चेतन्य रह।' कहने लगा, 'जी कैसे चेतन्य रहूं, उजाड़ में आ पहुंचे हैं।' तब बाबा ने कहा, 'मरदाना! हम उजाड़ में नहीं अपितु बस्ती में हैं, जहां पर ईश्वर का नाम स्मरण में आता है।' वहां पर बाबा जी ने शब्द उच्चारण किया :–

आसा घरु ४ महला १

१ ओअंकार सतिगुरु प्रसादि

देवतिआ दरसन कै ताई दूख भूख तीरथ कीए।।
जोगी जती जुगति महि रहते करि करि भगवे भेख भए ।।१।।
तऊ कारणि साहिबा रंगि रते ।।
तेरे नाम अनेका रूपा अनन्ता कहणु न जाही तेरे गुण केते ।।१।। रहाउ।।
दर घर महला हसती घोड़े छोड़ि विलाइति देस गए।।
पीर पेकांबर सालिक सादिक छोड़ी दुनीआ थाइ पए ।।२।।
साद सहज सुख रस कस तजीअले कापड़ छोड़े चमड़लीए।।
दुखीए दरदवंद दरि तेरै नामि रते दरवेस भए ।।३।।
खलड़ी खपरी लकड़ी चमड़ी सिखा सूतु धोती कीनी।।
तूं साहिबु हऊ सांगी तेरा प्रणवै नानकु जाति कैसी।।४।।१।।३३।।

तब बाबा ने कहा, 'मरादाना! सबद चिति करि, तऊ बाझु बाणी सरि नाहीं आवदी।' तब गुरू बाबा ने कहा, 'मरदाना! रबाब बजा। मरदाना ने कहा, 'जी मेरा कंठ भूख के कारण व्याकुल हो रहा है, मैं यह रबाब नहीं बजा सकता।' तब बाबा ने कहा, 'मरदाना! चल पीछे किसी बस्ती में चलें।'

'जी मैं बस्ती में भी नहीं जा सकता, भूख के कारण मेरा दम घुट रहा है, मैं मरता हूं।' तब बाबे ने कहा, मरदाना! मैं तुझे मृत्यु आने से पहले मरने नहीं देता,

---

१. यह वार्ता पुरातन जन्मसाखी में इसी तरह ही लिखी है।

तू चेतन्य रह।' तब मरदाना ने कहा, 'जी मैं चेतन्य रहूं मैं तो मरता हूं, जीवन की अब बात नहीं रही।' तब मरदाना ने कहा 'जी मुझे दु:ख न दीजिए।' तब बाबा ने कहा, 'मरदाना! इस वृक्ष के फल खा, पर तृप्त होकर खा, जितने खा सकता है, पर पल्ले में मत बांध।' तब मरदाना ने कहा, 'जी भला हो।' तब मरदाना खाने लगा, फलों का स्वाद आया, कहने लगा कि सम्भव हो तो सारे खा लूं, न जाने फिर हाथ लगें या नहीं, कुछ पल्ले में भी बांध लूं, न जाने फिर हाथ लगें कि नहीं। तब मरदाना ने कहा, भूख लगेगी तो खा लूंगा। मरदाना ने पल्ले में भी बांध लिए। जाते-जाते मरदाना को फिर भूख लगी तो कहने लगा, कुछ खा लूं। जब मुंह में डाले तो उसी समय गिर पड़ा। तब बाबा ने कहा, हे मरदाना, क्या हुआ? 'जी पातशाह? आपने कहा था कि जितने खाने हैं खा ले, पल्ले मत बांधना, मैंने कहा कुछ पल्ले में भी बांध लूं न जाने फिर मिलेंगे कि नहीं। इसलिए मैंने मुंह में डाले थे, मेरी यह दशा हो गई' तब बाबा ने कहा, 'मरदाना! तूने मुंह में डालने का बुरा काम किया है, यह विषफल थे पर वचन करके अमृतफल हुए थे।' तब बाबा ने माथे के ऊपर पात्र रखा, मरदाना भला-चंगा हो गया, उठ बैठा। तब मरदाना ने कहा, 'बलिहारी आपकी भक्ति की और कमाई की, हम तो डोम मांग कर खाने वाले हैं, आप अतीत महापुरुष, खाते-पीते कुछ नहीं, बस्ती में जाते नहीं, मैं कैसे आपके साथ रह सकता हूं? मुझे विदा करो।' तब बाबा ने कहा, 'मरदाना! मैं तेरे ऊपर बहुत प्रसन्न हूं, तू मेरे से क्यों विदाई मांगता है?' तब मरदाना ने कहा, 'बलिहारी आपकी प्रसन्नता की, परन्तु मुझे विदा कीजिए, मैं अपने घर जाऊं।' तब बाबा ने कहा, 'मरदाना! किसी तरह रह भी सकता है?' तब उसने कहा, 'मैं तो तब रह सकता हूं जो मेरी भूख दूर हो, जो तेरा आहार हो सो मेरा हो, सोई मैं आहार करूंगा, यदि आप यह काम करो तो मैं आपके साथ रह सकता हूं। अथवा यह वचन दो कि आप मेरे कर्मों का विचार नहीं करेंगे तो मैं आपके साथ रहूंगा, यदि आप यह बात नहीं करते तो मुझे विदा कीजिए।' तब गुरू बाबा ने कहा, 'जा मरदाना तू इहलोक तथा परलोक में निहाल हुआ।' तब मरदाना उठ कर चरणों पर झुका, गुरू बाबा ने इतनी वस्तु दीं, शीश उठाते ही अगम-निगम की सूझ हो गई, तब मरदाना बाबा जी के साथ फिरने लगा।

सूचना – अनुमान है कि यहां से आगे अब उलटी यात्रा जारी है। अनेक स्थानों पर भ्रमण करते-करते आगरा पहुंचे, जहां का एक प्रसंग आगे दिया है।

□ □

३९ माई जस्सी

: १ :

तेरे वियोग ने मन का चाव हर लिया है। मेरा हृदय-रूपी कंवल मुरझा गया है। हे मेरे प्राण! यदि तुम अब भी आ जाओ तो मेरा जीवन प्रवाह फिर से प्रवाहित होने लगे। मेरे अन्दर रक्त का संचरण जो धीमा पड़ गया है वह फिर से गतिमान हो जाय। आ! आ! तेरे दर्शनों पर बलिहारी, मेरी उड़ने वाली आत्मा जिसने कि जाने का पक्का इरादा कर लिया है, ठहर जाय। आ, और आकर बल भर दे और मेरी लालसा पूरी कर दे। आ, मैं देख लूं कि अब प्यारा आ गया है। आ, अब ऋतु बदल गई है, पत्ता-पत्ता अब झड़ गया है। शाखाओं पर कंपन है बन सहम रहा है। बुलबुल मार्ग देख रही है। और टहनी-टहनी पर घूम रही है। अब तो पतझड़ का समय भी अंतिम समय पर आ गया है। पतझड़ समाप्ति पर है और मेरे जीवन का भी अंतिम समय है, हे बसंत! अब तू आ जा, समय व्यतीत होता जा रहा है।

एक स्वच्छ दालान में एक लाल पत्थर का छोटा-सा चबूतरा है। पृथ्वी से कोई हाथ भर ऊंचा है। उन पर बेल-बूटेदार सफ़ेद कपड़ा बिछा है उसके ऊपर एक छोटी-सी मंदिरी रखी है, जिसमें पीतल की तीन मूर्तियां रखी हैं। एक राम जी की मूर्ति है, दूसरी सीता जी की, तीसरी लक्ष्मण जी की। तीनों साथ-साथ हैं, पर वैसे राम जी की मूर्ति कुछ आगे रखी है, उसके पीछे सीता जी की और सबसे पीछे लक्ष्मण जी की। इस मंदिरी के सामने एक स्त्री चटाई के ऊपर काला आसन बिछा कर बैठी है।

यह देवी युवावस्था व्यतीत कर चुकी है। उसने नयन श्री रामचन्द्र जी की पीतल की प्रतिमा पर जमाये हुए हैं। कुछ समय के पश्चात् उसने नयन खोले और कहा 'मेरे पूज्य प्रियतम! क्यों नहीं एक बार नयन खोलकर मेरी ओर देखते। आपकी पूजा करते-करते मेरी आयु व्यतीत हो गई है पर मेरे भाग्य कर्म, मैं पतित, आप मुझ पर प्रसन्न नहीं हुए। मैंने सुना है कि आप कई बार भक्तों को मिले हैं, मेरी बार क्यों देर है? हा! हा! मैं भक्त नहीं, मैं कर्महीन हूं, जन्मों से अपराधी हूं। पतित हूं? पर क्या बात थी? उस पर क्यों प्रसन्न हुए थे? नहीं मैं उससे भी नीच हूं।

'हा हा ... भक्ति कठिन है, पूजन मुश्किल है। जीवन को सब ओर से पवित्र रखकर पूजा-भाव में रहना कठिन है। सब कुछ किया, पर यह मेरे राम मुझ पर

प्रसन्न नहीं हुए अभी मेरी भक्ति में कमी है। ... हैं ....'

यों कहती हुई बावलों की भांति उठी, दालान के दूसरे सिरे पर चली गई एक तख्त पर वीणा पड़ी थी, उठा लाई, फिर मूर्ति के सामने आकर मूर्ति की भांति अचल होकर देवी बैठ गई पर उसकी अंगुलियां वीणा के तारों पर एक अद्‌भुत नृत्य करने लगीं। थोड़ी देर के पश्चात् देवी का कण्ठ खुला और अति दर्द भरे स्वर में यह प्यार भरा गीत गाया गया:

बोलते नहीं हो? आंखें न खोलते हो,
भक्ति मेरी का क्या तोल तोलते हो ?
मृणाल तार का क्या तोल तुल सकेगा।
मकड़ी के तार का क्या मोल मिल सकेगा ?
बिन्दु तो शून्य है, कीमत भी शून्य है।
परखते हो बांदी ? बांदी तो ऊन है।
बिरद को संभालो, अपने को हे प्रभु।
अवगुण चितारिए न पतितों के तुम कबू ।
पहले युगों में तारे कितने पतित उबारे।
जस्सी को हे प्रभु, कलियुग में लेहु तारे।

यह गीत इस प्रकार हृदय विदारक आकर्षक रूप, लय, स्वर तथा ताल में गाया गया कि सुनने वाले का कलेजा लिकाल ले। गायिका ने, जिसका नाम जस्सी था, अपनी आयु का वियोग इसमें अंकित किया था। आप गाती-गाती मोम हो गई थी, नयनों से नीर जारी था। अब हाथ रुक गये। वीणा शांत हो गई। दालान में सन्नाटा छा गया। जस्सी की सुरत जुड़ गई। यों प्रतीत हुआ कि मूर्ति हिल पड़ी है, मनुष्य के आकार की सी हो गई है। नयन खुल गये हैं और अधर कुछ हिल रहे हैं, मानो कुछ कह रहे हैं जस्सी ने समझा कि आज भक्ति पूरी हो गई। हां पहले भी कई बार प्यार भरे उलहानों द्वारा संतों भक्तों पर प्रसन्न हुआ है, आज भी विरद की लाज आ गई है। पर जस्सी विचारवान स्त्री थी, नयन खोलकर देखने लगी। यह सत्य है कि भुलावा अथवा मेरे मन का अपना भुलावा? जब नयन खोलकर देखा तो मूर्ति उसी तरह (मंदिरी) में अचल खड़ी है। तो फिर हृदय टूटा और रोई कि घोर कलियुग है। अब देवता की कितनी ही पूजा क्यों न करें, अपने धातु रूप का त्याग करके सजीव रूप नहीं धारण करता। इस प्रकार के पश्चात्ताप में बैठी थी कि दासी आ गई, जिसका नाम धावली था। यह युवती बीकानेर की रहने वाली थी और जस्सी की सेवा किया करती थी। किसी समय अकाल की मारी घर से चल पड़ी थी और कई बुद्धिमानों, चतुर पण्डितों के घरों की नौकरी करती-करती कुछ सूझवान हो गई थी। वह प्यार वाली, जस्सी के घर में आकर, इसके प्यार में बंधकर इसके पास टिक गई थी। आकर कहने लगी, कोई महात्मा

आये हैं और मैं उन्हें दालान में ससत्कार बैठाकर आई हूं और कहकर आई हूं कि माता जी पूजा में बैठी हैं, उठेंगी तो आ जायेंगी। (चेहरे की ओर देखकर) और हैं हैं, फिर रुदन! वाह स्वामिनी! रो–रोकर आंखें खो बैठोगी। मूर्तियां भी कभी अश्रु देखती हैं, अथवा रुदन तथा सिसकियां सुनती हैं? पण्डित के घर में मैंने सुना था कि यह तो मन को एकाग्र करने के लिए ध्यान का आश्रय–मात्र होती हैं। इतनी आयु व्यतीत हो गई, कभी यह बोली भी हैं? हे स्वामिनि! कभी भी नहीं बोलेंगी। अपने नयन मत खराब करो। यह प्यार की झिड़की सुनकर जस्सी को क्रोध नहीं आया, बल्कि सोच कुछ काम करने लग पड़ी। फिर कहने लगी; धावली तुझ में श्रद्धा नहीं, तू असभ्य है, कलियुग है, देव मौन हैं, जब मेरी भक्ति का तेज बढ़ेगा यह बोल पड़ेगा।

धावली –अच्छा जी, फिर आंखों की रक्षा ज्यादा करो, जो उस समय तक दर्शनों के लिए रह जायें। रो–रोकर आंखें खो लीं और उस समय तुम देख न सकीं तो जैसे देवता प्रकट हुए वैसे ही न हुए, एक बराबर है।

जस्सी हंस पड़ी और राम राम, सीयावर रामचन्द्र की जय, कहती हुई उठ खड़ी हुई वीणा सम्भाल दी, दूसरे वस्त्र पहनकर दालान में चली गई और फिर जाकर उस साधु को 'जै सीता राम' कही। साधु ने आशिर्वाद दी 'राम कल्याण करे' और फिर बातचीत चला दी–

माता! हम अयोध्या से आये हैं, तुम्हारी कीर्ति वहां पर सुनी थी कि तुम बड़े प्रेम सहित राम मूर्ति की पूजा कर रही हो। हमने कहा कि जब हम वृन्दावन जायेंगे तो माता का भी आगरा जाकर दर्शन कर आयेंगे।

माता –सुनो बाबा जी! मेरी भक्ति कुछ नहीं। बाल्यकाल से मुझे कोई बैरागी साधु मूर्ति का पूजन, आरती आदि सिखा गये थे। जैसे वह कह गये थे, मैं वैसे ही करती रही हूं। अब आयु चालीस वर्ष से ऊपर हो गई है मैंने संयम में दिन व्यतीत किये हैं, पवित्रता में रही हूं, सारे वर्ष के व्रत करती रही हूं। तीर्थ यात्रा भी की है[१], परन्तु मेरे प्रयत्नों को फल नहीं लगा।

साधु –कलियुग है, देवता सजीव होकर अब मरजंगी (मंदिरी) से चलायमान नहीं होते, पर भक्ति व्यर्थ नहीं जाती।

जस्सी –जब दर्शनों की इच्छा हो और वह इच्छा पूरी न हो तो निराशा होती है। अपने में भी कोई कमी होती है।

साधु –माता! वह मूर्तिपूजन, अर्चना, वन्दना, धूप–दीप, पुष्प यह पहला पद था। यदि दर्शन की इच्छा थी तो इससे आगे चलना चाहिए था।

जस्सी –अच्छा, अगला पद क्या था?

---

१. तवारीख खालसा।

साधु – भजन-गायन।

जस्सी – राम के गुण कथन करती रही हूं, राम-मूर्ति के आगे वीणा से गाती भी रही हूं।

साधु – नहीं, (सिर हिलाकर) मूर्ति के आगे नहीं। यदि दर्शन की इच्छा हो तो देखो न, कलियुग का विचार भी तो करो, देवता मूर्ति में आकर प्रकट नहीं होता। इस समय देवता सजीव में आता है।

जस्सी (तनिक घबराकर) – सजीव? क्या भाव? जीव में, किसी मनुष्य में ?

साधु (जस्सी की घबराहट को देखकर) – माता! प्राणी-मात्र में नहीं, परन्तु किसी दिव्य शरीर में ऐसे समय जब कि वह प्रेम-सहित द्रवीभूत हो तो आवेश हो जाता है ठाकुर का।

जस्सी (सिर हिलाकर)-खतरे वाला मार्ग है। मूर्ति-पूजा में कोई खतरा नहीं कि हमें कोई धोखा दे जायेगा आचरण की शुद्धता मूर्ति-पूजा से खतरे में नहीं पड़ती।

साधु – मैंने सुना है तुम साधुओं-महात्माओं से मिलती रही हो।

जस्सी – हां मिलती रहती हूं, पर किसी से पूज्य-बुद्धि धारण नहीं करती, सबको सत्संगी समझकर सत्कार करती हूं। क्योंकि मैं राम के दर्शनों की इच्छुक हूं, राम से कम मैं किसी की इच्छा नहीं करती।

साधु (माथे के ऊपर आये हुए बालों को हटाकर) – माता! और मार्ग वही है, जो मैं बताता हूं। राम ही लीला देखो।

जस्सी – लीला! लीला जो सारे संसार में हो रही है, वह राम की लीला देख रही हूं।

साधु – नहीं माता। परम पवित्र व्यक्तियों का समुदाय मिलकर, संसार में जो लीला राम ने की है, वह लीला भक्त लोग करते हैं। उस लीला को प्रत्यक्ष रूप से होता देखकर श्रद्धा-भक्ति बढ़ती है और कभी-कभी वह जो राम की लीला कर रहा होता है, उसमें राम का आवेश हो जाता है। वह दर्शन का समय होता है। साक्षात् उस समय ठाकुर वही कुछ करता है जो आप अपने शरीर के समय करता होता था।

जस्सी – रामलीला आश्विन मास के महीने में होती है, अब तो वह पठान शासक करने ही नहीं देते।

साधु – हां, बाधा डालते हैं, पर वह आश्विन मास वाली नहीं। यह तो विशेष रूप से चुन कर महापुरुषों का समुदाय सारा नाटक करता है, सारा....प्रतिदिन।

जस्सी – जिस तरह कृष्ण जी की रासलीला होती है?

साधु – हां माता! परन्तु इसमें आम खास नहीं, चुने हुए भजन वाले पवित्र आत्मा के लोग नाट्य करते हैं।

जस्सी – मैं अब समझ गई।

साधु – उनमें आवेश होता है श्री राम जी का, नित्य नहीं, कभी किसी नाट्य के समय। जैसे हमारे यहां परसों भीलनी–लीला के समय नाट्य करने वाले महात्मा 'राम आवेश' में आ गये थे। वाह, वाह, आश्चर्यजनक आनन्द था। आप देखिये माता जी! देखने में क्या दोष है। माता! राम की पावन लीला तो है।

जस्सी (श्रद्धा न लाकर) – दोष क्यों पुष्य है, पर क्या शासकों की ओर से कोई बाधा नहीं?

साधु – नहीं वह कुछ दान लेते हैं, फिर बाधा नहीं डालते।

जस्सी – भला! तो फिर कब और कहां पर यह अवसर है?

साधु ने अपना ठिकाना बताया और समय भी बताया। जस्सी ने कुछ आपको भेंट किया और साधु जी विदा हुए।

: २ :

लीला के लिए एक विशेष स्थान बना हुआ है, जिसे रंग भूमि कहते हैं। ऊपर एक–दो पर्दे भी हैं और आगे राम जी की लीला हो रही है, जैसे कृष्ण जी की रासलीला होती है। लोग देख रहे हैं। लीला बहुत अच्छी हो रही है, जैसे अच्छे चतुर नाट्य विद्या को जानने वाले अभिनेता करते हैं। जस्सी भी बैठी है और वह साधु भी इसके पास बैठे हैं। इसलिये कि जिस समय आवेश का काई समय आये तो वे जस्सी को बता सकें और जस्सी उस समय उस आशा की पूर्ति कर ले जो श्री राम दर्शन–प्रत्यक्ष दर्शन– की उसे बाल्यकाल से लगी हुई थी, और जिसे वह समझती थी की मूर्ति में जीवन आने पर दर्शन हो जायेंगे। वह उस महात्मा की बात पर भरोसा कर आवेश के दर्शन के लिए लीला वाले स्थान पर प्रतिदिन आती है, पर असभ्य स्त्री धावली अपनी स्वामिनी का साथ नहीं छोड़ती। वह भी साथ बैठी हुई देख रही है कि किस समय 'मानव राम' 'ईश्वर राम' होता है। उसे श्रद्धा नहीं, वह तो अपनी स्वामिनी की प्यारी है और उसकी रक्षा के लिए आई बैठी है। कि किसी के छल में न आ जाये। हां वह देख रही है कि परख के समय वह अपनी स्वामिनी को कई भूल न करने दे। एकाएक जिस समय विभीषण को राज्य तिलक देने का नाट्य हो रहा था तो साधु ने कहा कि देखो अब आवेश है। जस्सी ने देखा कि जो महात्मा, राम जी का स्वरूप बनकर अभिनय कर रहा है, वह एक तेज आभा में आ गया है। सचमुच चेहरा बदल गया है, जस्सी के मन में चिरकाल से प्रत्यक्ष दर्शन की लालसा थी, उस समय दर्शन करके विनीत हो गई:–

हे सीयवर रामचन्द्र! तुम आये हो और आये हो भक्त विभीषण का उद्धार करने के लिए, जो मैं भी दर्शन की भिखारिणी हूं। रंगभूमि से उतर का आओ और

चरण कमलों से इस नमस्कार की लालसा रखने वाले माथे को लगवा लो, मेरा जन्म सफल हो जाये।

इस तरह की विनय मन-ही-मन में करती हुई मानो विलीन हो गई। साधु कोई-कोई बात करता है, पर माई अपनी विनय में मग्न है और जो कुछ वह सुना रहा है, उसे सुन नहीं रही। धावली देख रही है, कभी श्री राम की ओर, कभी साधु की ओर, और कभी अपनी स्वामिनी की ओर, और अनजाने ही शीश झुका रही है अपनी स्वामिनी की ओर और मन-ही-मन कह रही है:- हे मेरी प्यारी, राम तो तुझ में हैं, घट-घट वाला राम! हां मेरा राम तुझ में है, तेरा राम न जाने कहां है। फिर मन से कहती है कि यदि रंगभूमि पर बैठा राम का स्वरूप वही राम है जो त्रेता युग में था तो उसे मेरी स्वामिनी के प्यार का क्यों पता नहीं चला जो दर्शन की लालसा में न्योछावर हुई पड़ी है और किसी विनय में भीगी पड़ी है। फिर सोचती है कि मैं अपढ़ हूं, न जाने स्वामिनी कि सूक्ष्मताओं में है।

जस्सी विनय में मग्न होकर बैठी रही। आज की लीला समाप्त हो गई। साधु पास बैठा हुआ कह रहा है माता! लीला समाप्त है। माता विनती कर करके और अन्दर ही अन्दर रो-रोकर दुर्बल हो रही थी। उसने सुना और धावली का आश्रय लेकर उठने लगी तो साधु ने कहा, 'क्यों माता! आज आयु की लालसा पूरी हो गई। पर जस्सी ने उत्तर न दिया और शीश झुकाकर आ गई। अयोध्या प्रदेश के पश्चात् लीला समाप्त हो गई पर लोगों ने लीला वालों से कहा कि दोबारा नये सिरे से लीला हो। क्योंकि सारा रंग बहुत प्रवीणता सहित होता था और प्रभाव डालता था। लोग फिर देखना चाहते थे, सो लीला फिर से होने लग पड़ी। जस्सी भी चली गई। वह सदैव अपने में ही दोष देखा करती थी और चाहती थी कि न जाने कभी मेरी कमी दूर हो तब दर्शन हों। पर जितनी बार उसे महात्मा ने आवेश का समय बताया उतनी ही बार जस्सी मन-ही-मन में विनीत हुई पर कभी लीला कर रहे राम बने हुए अभिनेता ने अन्तर्यामता द्वारा जस्सी की विनय न सुनी। जस्सी ने कई बार भेंट भी की, साधु को भी धन दिया, राम जी का स्वरूप धारण करने वाले अभिनेता को घर बुलाकर भी सत्कार किया और धन दिया पर यह बात सिरे न चढ़ी कि जस्सी को उनके अन्तर्यामी होने का निश्चय हो जाये। अन्त में हारकर उसने वहां पर जाना छोड़ दिया और साधु को पता चल गया कि वह स्त्री समझदार है और दूसरा पांव तब उठाती है जब पहला भली-भांति जमा लेती है। इसने जान लिया है कि लीलाओं के स्वरूपों में जो आवेश की कथा है, सो ठीक नहीं और असभ्य धावली ने तो साधु को कह ही दिया, "भैया ! राम को कोई अवतार माने या देवता, कोई धर्मात्मा राजा मान ले अथवा महात्मा, यह अपनी-अपनी भावना है। पर यदि तुम्हारे बनाये हुए स्वरूप में राम जी की आत्मा प्रवेश करती है तो वह भजन में विलीन क्यों नहीं हो जाता, वह फिर लीला क्यों करता है? जब राम जी

के स्पर्श से एक पत्थर बनी हुई स्त्री जीवित हो उठती है तो आवेश से यह व्यक्ति राम रूप क्यों नहीं हो गया। (जस्सी की ओर देखकर) देखो मेरी स्वामिनी! मैंने सुना है कि यदि इस्पात के साथ चुंबक छू जाये अथवा रगड़ जाये तो इस्पात चुंबक हो जाता है। है न ?"

जस्सी उसकी मोटी पर साधारण बुद्धि वाली बात पर प्रसन्न होकर हंस पड़ी ।

: ३ :

जस्सी की लग्न अब यों प्रसिद्ध हो गई जैसे कुछ समय के पश्चात् मीरा बाई की लग्न प्रसिद्ध हुई थी, अनेकों मत-मतांतरों के सन्त-साधु आने-जाने लगे। जस्सी अपनी आवश्यकता की पूर्णता की लगन में सबसे मिल लेती थी। भक्त लोग इसकी पूजा को देखते और प्रभावशाली भजन सुनते और इसकी भक्ति पर मुग्ध हो उठते थे। पर इसने अपने अन्दर महापुरुषों की परख करने की एक परख की कसौटी बना रखी थी। उस द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को परखा परन्तु उसकी कसौटी पर उसे वांछित राम दिखाई न दिया। एक बार किसी बड़े चतुर ने उसके विश्वास से अपने-आपको लाभवन्त बनाने के बहुत चालाकी का कौतुक किया। उसने बताया कि ये जो मूर्तियां जो हैं, मूर्ति-मूर्ति में अन्तर है। जो मूर्ति किसी राम के भक्त ने अपने नयन-जल सींचकर बनाई है, वह मूर्ति भक्ति की तीक्ष्णता तथा तीव्रता के ताप के साथ प्राणमय हो जाती है और ठाकुर साक्षात्कार हो जाता है। पैसे लेकर किसी गढ़ने वाले द्वारा निर्मित मूर्ति में यह गुण नहीं होता। जस्सी इस पर भी विश्वास धारण कर बैठी। इस पुरुष ने बताया कि विजयदशमी की रात को मेरी राम मूर्ति जो ऐसी है, बोलने लगती है और वरदान देती है। जो पूछें उसका उत्तर भी देती है। विजयदशमी तक उत्सुक होकर जस्सी ने प्रतीक्षा की। जब दिन आया, जस्सी ठीक समय पर धावली को साथ लेकर गई। उसने अपनी स्वामिनी को अकेली न जाने दिया। वहां जाकर जस्सी बैठ गई। मूर्ति के सामने श्रद्धा धारण करके आराधना करने लगी। समाधिस्थ होकर बैठ एकाएक कड़क करके धमाके की एक आवाज आई, जिनके नयन खुले थे, मुंद गये और जिनके बन्द थे, खुल गये पर फिर उनके भी मुंद गये। अन्दर धुआं-सा हो गया, फिर उज्ज्वल प्रकाश चमक पड़ा, मूर्ति के नयन हिले और आवाज़ आई, "अहो भक्तजन! वरदान मांगो, मांगो हम देने के लिये आये हैं। "वरं ब्रूहि, वरं ब्रूहि।" जस्सी ने देखा कि मूर्ति वही है जो खड़ी थी, पर बोलती है और कहती है 'वरं ब्रूहि।' धावली देख रही थी, पर किसी और दृष्टि से, धीरे से स्वामिनी के कानों में कहती है, 'ऊंचे न मांगना, मन-ही-मन में मांगना'। जस्सी पहले ही मन में विनय कर रही थी कि 'हे भगवान! हे ठाकुर! मेरी मूर्ति में भी प्रवेश करो, मैं नित्य ही दर्शन किया करूं, हे राम! मेरी ओर कोई याचना नहीं। यदि आप यहाँ

पर प्रकट हैं तो वहां पर भी प्रकट हो सकते हैं। मुझे अपनी भक्त को औरों के अधीन मत करो, अपनी दासी जानकर मेरे अपने गृह में आओ। मुझे नित्य दर्शन दीजिये, कभी-कभी दीजिये पर दीजिये मेरी पूजी गई मूर्ति में।' जस्सी इस विनती में मन से मग्न हो रही थी। उसने ऊंचा बोलकर कुछ न मांगा, जिसे पुजारी सुन सकता। उसने समझा कि मूर्ति के तेज के प्रभाव के कारण माता मूर्च्छित हो गई है, सो हिला-हिलाकर जगाने लगा। जब माता ने नयन खोले तो कहने लगा : माता! देख दर्शन, प्रत्यक्ष-दर्शन, मांग मन की मुराद, तेरी भक्ति स्वीकार हुई है। देखो प्रत्यक्ष ठाकुर कह रहे हैं : वरं ब्रूहि, वरं ब्रूहि। अब जस्सी ने, जो किसी का भी मन दु:खी करके प्रसन्न नहीं थी, कहा, 'हे राम, दे दर्शन, दर्शन, सदैव दर्शन। तेरा दिया हुआ और सब कुछ है, दे दर्शन : दे दर्शन।'

मूर्ति में से आवाज आई : 'तथास्तु, तथास्तु, तथास्तु।' जस्सी ने समझा कि मूर्ति से मूर्तिमान हुआ देव अभी और कहेगा तथास्तु, कि एकाएक उसी तरह का धमाका हुआ। धुआं-सा होकर फिर प्रकाश हो गया। अब वह मूर्ति पत्थर की मूर्ति थी। जस्सी ने धन भेंट किया, फिर नमस्कार किया और चली आई। घर में जाकर फिर उसी नित्य के अपने पूजन में लग गई। यह नियम तो उसने छोड़ा ही नहीं था। अब प्रतिदिन प्रतीक्षा करती थी कि उसकी मूर्ति भी किसी दिन बोलती है कि नहीं, वरदान तो प्राप्त हुआ था, पर वह मूर्ति कभी भी न बोली। उस मन्दिर का पुजारी फिर कई बार आया कि चलो दर्शन करो, तुम्हें दर्शन का वरदान प्राप्त हुआ है, पर जस्सी फिर न गई और यही कह दिया कि ठाकुर का वही एक दर्शन ही काफी है।

: ४ :

जस्सी इस प्रकार के लोगों के कई कौतुक देखती रही। एक बार एक स्त्री आई और कहने लगी, 'माता! तू बुद्धिमान होकर कहां फंसी पड़ी है। मूर्तियों में भी कभी जीवन आया है? न किसी सजीव वीतरागी साधु की खोज कर। राम अपने भक्तों में निवास करता है। कृष्ण अपने भक्तों में निवास करता है। जो पूर्ण प्रेम में निमग्न हो गये हैं उनमें भगवान का निवास हो जाता है। उनकी सेवा पूजा से उनमें से भगवान मिलता है, किसी ऐसे की खोज कर और उसे गुरू धारण कर। देख दत्तात्रेय ने २४ गुरू धारण किये थे और तूने एक भी धारण नहीं किया। जस्सी सोच में पड़ गई कि बात तो ठीक है, पर फिर सोचा कि बात कुछ खतरे वाली भी है, पर उसने माता का अपमान न किया। यह माता आती-जाती रही और इसने एक महात्मा की प्रशंसा करके, जस्सी की श्रद्धा उसमें लगा ही दी। पहले तो जस्सी दर्शनों के लिए उसके ठिकाने पर आप गई फिर वह भी कभी-कभी जस्सी के घर में आने लगा। उस साधु की बातचीत चतुरता-भरी

थी। उसने शास्त्र पढ़े थे, कुछ एक दो योग की क्रियाओं के भी जानकार थे। धीरे-धीरे जस्सी का विश्वास बंध गया, पर धावली एक आश्चर्यजनक असभ्य स्त्री थी, वह चाहे सूक्ष्मताएं नहीं जानती थी, पर सीधी और साधारण बुद्धि उसकी बड़ी स्वच्छ थी, उसे स्वामिनी का भय प्रत्येक समय रहता था। उसे भ्रम होने लगा कि यहां पर कुछ पैसे का चक्कर है। महात्मा और महापुरुष तो जगत में होने आवश्यक हैं और हैं भी, पर यह स्वयं अपनी प्रसिद्धि के लिये दूत भेजते हैं, अतः अवश्य ही बनावटी बात है, इस कारण जस्सी खोज में लगी रही। जस्सी को जब भरोसा हो गया तो उस महात्मा ने यों पैंतरा बदलना आरम्भ किया कि जिससे अन्त में जस्सी को यह भरोसा हो जाये कि यह महात्मा ही ईश्वर है, और कोई ईश्वर नहीं यही राम है, और कोई राम नहीं। जब इन्हें अपने स्थान पर विश्वास हो गया तो एक दिन वह बोल पड़े और कहने लगे – जस्सी! देख श्री कृष्ण जी ने अर्जुन से कहा था कि अर्जुन सभी धर्मों का त्याग कर दे, केवल एक मेरी शरण ले ले; तू फिर सदैव मुझे प्राप्त करेगा और मेरे पास रहेगा। हे जस्सी! तू अब सोच ले, यदि तू उस कृष्ण की शरण प्राप्त करे, जिसकी शरण अर्जुन ने प्राप्त की थी तो वह कृष्ण तो अब अव्यक्त है। अब वह कृष्ण तो है नहीं जो देहधारी होकर अर्जुन के पास बैठा था। उस समय कृष्ण सदेह था और अपनी जिह्वा से कह रहा था कि मेरी शरण ले। वह कृष्ण बोलता था, सुनता था, उत्तर देता था, खाता था, पीता था, अब वही कृष्ण अव्यक्त रूप में है, और अब जो उस कृष्ण की शरण लेंगे, वह अव्यक्त की शरण लेंगे। जिनके बारे में वहीं पर कृष्ण ने कहा है, अर्जन! उनका मार्ग कठिन है जो अव्यक्त की शरण लेत्ते हैं सो तू अब अपने इष्टदेव के बारे में सोच-समझ ले कि भीलनी का उद्धार करने वाला राम तो अब 'अव्यक्त' है, वह शरीरधारी राम भीलनी के बेर खा लेने वाले रूप में नहीं है।

जस्सी (मानो सोकर उठी है) – तो भगवान आपका तात्पर्य क्या है?

महात्मा – यह कि किसी देह सदेह महात्मा को कृष्ण समझकर अथवा अपनी श्रद्धा के अनुसार 'राम' समझकर उसकी शरण ली जाये। उसकी शरण श्री कृष्ण जी की शरण है, श्री राम जी शरण है। और....।

जस्सी – राम तो साक्षात् अवतार हैं ईश्वर तथा कृष्ण तो ...। वे मेरा इष्ट नहीं हैं। मुझे उनकी महानता का कोई पता नहीं।

महात्मा – हमारे लिये दोनों एक समान हैं, तुम अपने इष्ट पर टिकी रहो, पर राम भी अब अव्यक्त है, किसी व्यक्ति में राम-बुद्धि धारण करो।

जस्सी – तो क्या फिर राम इस तरह प्राप्त होंगे ?

महात्मा – महात्मा के शरीर में राम, कृष्ण सभी व्यापक हैं।

धावली सुन रही थी, उसने ठण्डा श्वांस भरा और हंसकर कहने लगी,

स्वामिनी! मेरा राम तो फिर तू है, मैंने तेरी शरण धारण करके राम को प्राप्त कर लिया है।

महात्मा – तू स्वामिभक्त है, साधुवाद !

जस्सी –अच्छा महाराज! फिर कोई कला बताओ जिससे मेरे अन्दर से लगन निकल जाये और किसी देहधारी में श्रद्धा आ जाये कि यह राम है। महात्मा को तो मैं मानती हूं कि महात्मा हो सकते हैं, उनका सत्संग भी सुखदायक है, पर वही राम हैं, वही कृष्ण हैं, जो राम थे, कृष्ण थे, उनके अलावा और कोई ईश्वर नहीं, इस स्थान पर अभी मन नहीं पहुंचता, मुझमें कमी होगी, किसी दिन मन यहां पर आ जायेगा।

महात्मा – यदि इन (अपनी ओर संकेत करके) चरणों का प्रेम बना रहा तो तुम्हारा भ्रम निवृत्त हो जायेगा कि और राम नहीं सिवाये इस प्रत्यक्ष सदेह राम–मूर्ति के।

इस तरह की बातें करते कुछ समय पश्चात् महात्मा जी चले गये।

: ५ :

आज जस्सी के जीवन में एक बड़ा अन्तर आया। वह किसी चिन्ता में डूब गई, किसी द्विविधा में फंस गई। जो कदम आज महात्मा ने उठाया था, वे समझते थे कि वह पक्का कदम है, पर उसके साथ जस्सी संशयों की नदी में बह रही थी और विश्वास के भंवर में पड़कर चक्कर खाने लगी थी; पर थोड़े समय के पश्चात् क्या देखती है कि धावली बाज़ार से फिटकरी ले आई है और जस्सी के सिर पर वार रही है। फिर उसके पूछते–पुछाते फिटकरी लेकर धावली ने जाकर जलते चूल्हे में डाल दी। जस्सी ने चकित होकर पूछा, बिटिया क्या किया है ? धावली ताली बजाकर हंस पड़ी और कहने लगी, 'स्वामिनी जी ! तुम्हें नज़र लग गई है। मैंने फिटकरी वार कर चूल्हे में डाली है जिससे नज़र हट जाये और नज़र लगाने वाले के सिर में जा पड़े ।'

जस्सी – मैं कोई बालिका तो नहीं कि मुझे नज़र लगेगी और मुझे कौन नज़र लगायेगा ?

धावली – वही जो हमातमा, न न, महात्मा, आज आया था और पहले भी कई बार आया है, उसकी आंखों की पुतलियाँ बहुत बड़ी–बड़ी थीं और आज तो बहुत घूर–घुरकर तुम्हारी ओर देखता था। वह नज़र लगाता रहा है, जितना समय वह यहाँ पर तुम्हारे सामने बैठकर बातें करता रहा है तुम्हें उसकी नज़र लगती रही है। मैं सचमुच देखती रही हूं ।

जस्सी – वह तो कहता था मैं राम हूं ।

धावली – भला यदि राम इस जैसा है, तो उस राम का त्याग कर दे। मैंने समझा था तेरा राम सुन्दर है यदि वह राम भी नज़र लगाता है, तो उससे क्या लेना है, सारे खेल का त्याग कर दे ।

जस्सी अब सोच के चक्कर में से निकल आई और हंस पड़ी । कहने लगी, 'धावली ! तू बड़ी मुंहफट हो गई है ।'

धावली – लो मैंने बुरी बात कही है ? मैं तो राम को भली भांति जानती हूं। भला जिसे सीता जैसी सुन्दरी ने वरा था, वह सुन्दर सुडोल, गोल-गोल, मीठा-मीठा होगा । वह कभी इस हमातमा, नहीं-नहीं महात्मा जैसा कब हो सकता है ? इसके नैनों से मुझ असभ्य को आज डर लगता रहा ? वह राम तो अवश्य ही सुन्दर होगा जिसे जनक जैसे ज्ञानी ने अपनी सुन्दर पुत्री का वर माना था। अब समझी हो ?

जस्सी (फिर हंस पड़ी) – हां समझी हूं, लगता है कि तुझे कुछ और भी पता है ।

धावली – हां है ।

जस्सी – बता ।

धावली – क्रुद्ध तो नहीं होगी ? तुमने उसे राम जो मान लिया है, उसकी निंदा सुन सकोगी ?

जस्सी – नहीं क्रुद्ध नहीं होती ।

धावली – जो माई यहां आकर उसके गुण गाती है, वह इसे वेतन देता है कि लोगों के घरों में जाकर उन्हें उसके चेले बनाये।

जस्सी (चौंककर)– तुझे कैसे पता ?

धावली – मुझे हमारे पंसारी ने बताया है जिससे मैं नमक तथा गर्म मसाला लाती हूं । वह कहता था कि यह माई और उसका महात्मा तुम्हारे घर में जाते हैं, तुझे पता नहीं कि यह दूकानदारी है । माई जस्सी तो आप बड़ी महात्मा है, निश्छल, सरल, भक्ति-भाव से भरी हुई, उसने इसे नहीं पहचाना ? तब मैंने कहा कि धीरे-धीरे पहचान लेंगी ।

जस्सी – सच ?

धावली – हां स्वामिनी सच । मैंने बाद में औरों से भी मालूम किया है। बात ठीक है। आज वह किनते समय यहां बैठा रहा है, तुझे नजर ही लगाता रहा है ... । (चौंककर) देखा । अब तेरा चेहरा टहक आया है । दृष्टि उतर गई है। साधुवाद मेरी फिटकरी पर ।

: ६ :

जस्सी साधुओं महात्मायों से मिलती है, पर अब अन्दर कुछ संकोच रखकर

मिलती है । उसके अन्दर एक काव्य-हृदय की भांति सुन्दरता का प्रभाव था, जिसके साथ मिला हुआ एक कुंवारा कुंवारा, भोलेपन वाला चाव था, एक निःसंशय वाला विश्वास था, प्रत्येक के स्वच्छ और सच्चे होने का । अब उस भरोसे में संशय ने स्थान बना लिया और उसके प्रयोग के समय वह संशय 'लज्जा' सा बन गया । पर वह अभी आने-जाने वाले साधु से भेंट करती है । जिन्हें अपने मन वालों को अच्छा समझती है। उन्हें तो निःशंक हृदय से मिलती है, पर नयों से 'संकोच' और बाहर कुछ दूरी-सी रखकर मिलती है। जस्सी के साथ ऐसा व्यवहार क्यों होता है ? कभी उसके भक्ति-भाव तथा प्रेम के झुकाअ से लाभ प्राप्त करने के लिए, कभी उसे अनुयायी बनाने के लिए, कि इसके चेली बन जाने से बहुत से और लोग चेले बन जायेंगे और कभी पदार्थों के लिए अवसर बनते थे। चाहे वह बच भी जाती रही है, पर यह बचाव अपनी चेतना में ही होता रहा है । दूसरी ओर उसकी लगन जारी थी कि दर्शन करते हैं और अपनी पूजा का त्याग नहीं करना ।

मथुरा के उस समय[१] के एक राम-मन्दिर में दक्षिण का ब्राह्मण 'रामरबन' मुख्य पुजारी था। यह चौबीस घण्टों में अपनी पूज्य मूर्ति की शारीरिक क्रिया के कौतुक करते रहने में निपुण था। वैसे यह भला पुरुष था, उसका आचरण भी पवित्र था । मूर्ति-पूजा और कर्मकाण्ड करना इसका मत था। जस्सी का इसमें विश्वास था । एक दिन वह प्रयत्न करके अपने विचारों के विरुद्ध ठाकुर जी की पूजा का नागा करके आगरा आया । आगरा उस समय आज वाला आगरा नहीं था और न ही वहां पर अभी ताजमहल का मकबरा बना था पर फिर भी काफी रौनक वाला नगर था । रामरबन माता के घर में आया । माता बड़े सत्कार सहित उसे मिली और जो बातचीत हुई उसमें उसने अपने सारे अनुभव कह सुनाये । रामरबन को चिन्ता होने लगी । फिर कुछ और सोच में पड़ गया । अन्त में कहने लगा, देवी, मूर्तिपूजा वाला यदि किसी से न मिले तो बचाव में रहता है । ... हां ... तुम्हें जो दर्शनों की लगन है ठाकुर पूरी करे । अपने इष्टदेव के प्रेम में सावधान रहो । दूसरे मनुष्य में विश्वास बुद्धिमत्ता से करना । क्या कोई दूसरे इष्ट का साधु भी आया था ?

जस्सी (सोचकर)- आपका भाव कृष्ण उपासक से है ?

रामरबन - राम, राम, राम ! अपने इष्ट के बिना दूसरे इष्ट का नाम जिह्वा पर मत लाओ । धनुष-बाण वाले के प्रेम में रहो । बंसरी वाले के प्रेम में मत जाओ ।

जस्सी - तो वही बात है न । हां जी, उस मत का एक पुरुष आया था। वह

---

१. इस समय के पश्चात् मथुरा को कई बार लूटा, गिराया गया और यहां पर कत्ल-ए-आम हुआ ।

लगता तो अच्छा था, कहता था तेरे में सब कुछ है : भक्ति, प्रेम, पूजा, पवित्रता, परन्तु कमी है तो तेरी पूज्य मूर्ति में है । तू मुरली मनोहर की मूर्ति की पूजा कर अंत में बात तो एक ही है, पर उस मूर्ति वाला भक्ति को शीघ्रता से स्वीकार कर लेता है और शीघ्रता से प्रत्यक्ष होता है । देख तो, श्री जैदेव स्वामी जी, जो आदि भक्त हैं, एक दिन अपना गीत गोविन्द लिखते-लिखते एक श्लोक लिखते समय संशय में पड़कर बाहर चले गये । बाद में श्री कृष्ण जी ने मनुष्य का रूप धारण करके, हू-बहू जैदेव जैसा बनकर उसके घर में चक्कर लगाया और उसके कागजों पर श्लोक रचकर स्वयं लिखकर चल दिये । कभी कलियुग में कोई और देवता प्रकट हुआ सुना है जो इस प्रकार का पतिआर दे गया हो ? मैंने कहा, तुम सत्य कहते हो, पर मेरी आयु व्यतीत हो गई है धनुष-बाण की मूर्ति की पूजा में, अब अपने पूज्य को बदलना कठिन ही है। इसी तरह के एक और आये थे, वह कहते थे कि सिद्धि कृष्ण की मूर्ति पूजा में ही है और बाल कृष्ण की मूर्ति के पूजन में । मैंने चकित होकर पूछा कि बाल कृष्ण जी कोई और हुए हैं ?

जिस-जिस समय जस्सी 'कृष्ण' पद मुंह से निकालती थी, रामरबन ही एक बार कानों में अंगुली डालकर राम राम कह लेते थे और फिर आगे बात सुनते थे ।

जस्सी – तो वे कहने लगे कि श्री कृष्ण जी तो वही हैं पर हम उनकी बारह वर्ष की आयु तक की पूजा करते हैं । मैंने आश्चर्यचकित होकर पूछा : इसका क्या कारण है कि एक ही व्यक्ति की एक अवस्था की पूजा करना और शेष का त्याग कर देना ? वे तनिक मुस्कराये और कहने लगे : कई कारण हैं, पर मुख्य कारण यह है कि बालक की प्रसन्नता सुलभ होती है । वह थोड़े से प्रेम पर दया कर देता है ।

लो भक्त जी! यह बात मुझे अच्छी लगी और मैंने कहा, अब की बार जब आप मिलेंगे तो कहूंगी कि आप मुझे कोई श्री राम जी की बाल-मूर्ति ले दीजिए।

रामरबन सुनकर हंस पड़ा और कहने लगा; दूसरे इष्ट वाले साधु की संगति कुसंगति के तुल्य है बिटिया! अपने काम में लगी रहो। घबराओ मत। कोई दूसरा अन्य मतावलम्बी भी आया था क्या ?

जस्सी – जी एक माई आई थी, वह बंगाल की रहने वाली थी। वह शक्ति की पूजा करती थी और मुझे कहती थी कि जो परमात्मा है सो शिव स्वरूप है। शिव की शक्ति सभी काम करती है, वह आप तो निर्गुण रूप व्यापक है। शक्ति की पूजा करनी चाहिये। स्वामी जी! उनमें तो मांस का त्याग भी नहीं । मैं तो इसी बात पर उदास हो गयी कि हैं शक्ति जीव हिंसा से रुष्ट नहीं होती। तो वह कहने लगी कि उत्पत्ति तथा प्रलय उसके दो प्रकार के काम हैं। वह कई बातें तो बड़े ठिकाने की करती थी पर स्वामी जी! मुझे उसकी बताई हुई ध्यान मूर्ति से भय लगता था। वह ज्वालामुखी को चली गई है, लाहौर के समीप कांगड़ा के पर्वत में।

रामवरन – मंत-मंतातरों के साधुओं से मिलना त्याग दो बिटिया ! एक का होकर रहना श्रेष्ठ है। दूसरे मत वाले भी प्रत्येक जीव को अपने इष्टदेव के निश्चय से हिला देते हैं। हिलते रहने से कार्यसिद्धि नहीं हो सकती। अब अपने मत के साधुओं के सिवा और किसी से मत मिला करो। दूसरी यह बात करो कि जिस मूर्ति की पूजा करती हो वह छोटी है, वह तुम्हारे बाल्यकाल के लिये ठीक थी। अब हम तुम्हें पाषाण की एक बड़ी मूर्ति भेजेंगे, इसकी स्थापना के लिये हम स्वयं आयेंगे। विधि-संयुक्त स्थापना करेंगे। वह मूर्ति बड़ी दिव्य है। उसकी पूजा तथा ध्यान से, तुम्हारे हृदय में आकर्षण होगा, और आन्नद में रहोगी। जस्सी को परिपक्व करके रामवरन चलता बना। कुछ दिनों के पश्चात् वस्त्रों के एक पुलन्दे में मूर्ति को छिपाकर –मुसलमानों के भय से डरते हुए –जस्सी के घर में ले आया। पुरातन पीतल की मूर्ति थी मरजंगी उसी दालान में ऊंचे स्थान पर रख दी और उसी चबूतरे पर इस मूर्ति को विधि संयुक्त स्थापन कर दिया। रामवरन ने अब जस्सी को दृढ़ता का उपदेश दिया और कहा कि तू भवन है, निज को उत्तम करके मान। प्रत्येक साधु की पूजा के योग्य मत माना कर, अन्य मतों के साधुओं का सत्संग मत किया कर।

सचमुच यह मूर्ति अपनी कला-कौशलता की विद्या के अनुसार कोमल कला का एक नमूना थी। मूर्ति संगमरमर की थी और उस पर रंग चढ़ा हुआ था, चेहरे पर सांवला-सा रंग था, नयन किसी अर्थ को लेकर सुन्दर बनाये गये थे। धनुषबाण कन्धे पर था, पर चेहरे तथा हाथों का रौ इस प्रकार था कि किसी भक्त पर दयालु होकर आशीर्वाद दे रहे हों। इस प्रकार के प्रभाव को देखकर जस्सी के नयन मुग्ध हो गये। समझ गई कि सचमुच यह मूर्ति अवश्य ही दर्शन करवा देगी। रामवरन जी ने अपने विचार से और अपने इष्टदेव के अनुसार तो ठीक किया पर उन्हें यह पता नहीं था कि जस्सी के अन्दर किसी चेतन्य के दर्शन की लालसा है और मूर्तिपूजा से जस्सी यह समझती है कि वह जीवन वाला मूर्ति में प्रविष्ट होकर मूर्ति को सजिव कर देता है। अब जस्सी को वह स्वाद आता है जो किसी कोमल कला वाले कलाकार की कला-कौशलता से बनी हुई मूर्ति को देखकर आता है; पर वह उसे मूर्ति की शक्ति समझती है। रामवरन ने यह पुरातन वस्तु कहीं से खोजी थी कि जब भारत में मूर्तिकला उच्चकोटि पर थी और जिनके शेषांश सामान की कला-कौशलता को देखकर आज जगत के कलाकार चकित होते हैं। खैर, रामवरन का षड्यन्त्र कुछ सफल हो गया, जस्सी अब अन्य मत वाले साधुओं से नहीं मिलती, केवल राम के उपासक वैरागियों से ही मिलती है। वह अपने-आपको अब ऊंचा तथा श्रेष्ठ भी मानती है, जैसा कि रामवरन ने कहा था। इससे उसके मन में अब कुछ अहं भी आ गया और अब अपने आपको उत्तम भी समझती है। अब वह पूजा करती है और मूर्ति की सुन्दरता से मोहित हो जाती

है, वीणा लेकर भजन गाती है, पर वह अन्दर की अग्नि, कि मूर्ति के साक्षात् जीवित रूप में दर्शन हो, वह नहीं मिटती। माई नेक थी, परोपकारिणी थी, पूजा वाली मानी जाती थी, भजन गाती थी। इसीलिये नगर की कुछ स्त्रियों से परिचय हो गया था और इसके पास सत्संग के लिये आने-जाने लगी थीं। इस रंग में समय व्यतीत होता गया और माई अब वृद्धावस्था में पैर रखने लगी।

: ७ :

एक दिन माई मूर्ति के आगे बैठी भजन गायन कर रही थी; कि धावली किसी काम के सम्बन्ध में जब बाज़ार से लौटकर आई तो क्या देखती है कि जस्सी वीणा बजाती और गाती-गाती चुप हो जाती है। अन्त में अंगुलियां रुक गईं और हाथ नीचे को गिर पड़े और मूर्ति की भांति अचल होकर बैठ गई, कितना समय उसी तरह उसी स्थान पर बैठी रही। धावली आज कुछ कहने के लिये व्याकुल थी पर उसकी बात सुनने वाले कान अभी तैयार नहीं थे। अत: धावली उसके मुंह की ओर ध्यान लगाकर देखती रही कुछ प्रसन्नता, कुछ दया तथा कुछ आश्चर्य के भाव में आई हुई एक ओर बैठ गई। कुछ समय के पश्चात् जस्सी ने लम्बे-लम्बे श्वांस लिये और ठण्डे-ठण्डे नयन फिर से खुले। फिर इधर-उधर देखकर धावली की ओर देखा और हाथ को मुह से लगाकर संकेत किया, जिसे धावली समझ गई और शीघ्रता से जाकर थोड़ा-सा गर्म दूध लेकर आई, जिसे जस्सी ने घूंट-घूंट करके पी लिया। शरीर में जो कि सुबह से बैठा-बैठा ठण्ड के कारण जकड़ गया था। तनिक गर्मी आई, तब वह उठकर अपने विश्राम वाले स्थान पर चली गई और जाकर सो गई। जब दोपहर से कुछ पहले उठी तो धावली ने भोजन कराया और फिर कहने लगी कि मुझे तुमसे एक बात करनी है।

जस्सी - भोजन कर ले, चौका सम्भाल ले, फिर चौबारे में आ जा, मैं ऊपर जाती हूं।

कुछ समय के पश्चात् धावली चौबारे में आ गई और कहने लगी, स्वामिनी! देख जिसके लिये तू रो रही थी वह आ गया है।

जस्सी (चौंककर, चारों ओर देखकर) - कहां, कौन? यह कहते हुये रोमों में से एक कम्पन-सा गुज़रा।

धावली - कौन, मुझे नहीं पता, बाहर एक स्थान पर कोई बैठा है; तुम तो साधु ही कहोगी, पर वह है वही जो कुछ तुम कहती हो कि होता है मन की बात अपने-आप जान लेने वाला।

जस्सी - मूर्ख! तुझे क्या पता इन बातों का !

धावली - ठीक, मूर्ख को कुछ पता नहीं; पर प्यार को पता चल जाता है चुटकी (बजाकर) हां प्यार को पता चल जाता है।

जस्सी - बात स्पष्ट कह कर बता।

धावली – एक कोई बाहर पुराने नीम के पेड़ के नीचे आया बैठा है, बहुत अच्छा लगता है। जितने भी तुम्हारे पासे आये हैं उनमें से कोई भी उसके तल्ले जैसा नहीं, नयनों जैसा तो मिलेगा कहां से। चलो उससे मिलो, यह तुम्हारा रोना बन्द हो जाये और आंखें बच जायें।

जस्सी – अब तो लालसा ही नहीं रही, अब किसी के पास नहीं जाना, अगणित देख चुकी हूं और थक चुकी हूं।

धावली – पर भूख तो नहीं मिटी न! विलाप तो उसी तरह कर रही हो।

जस्सी – जा, अब तनिक सो लेने दे।

धावली – अच्छा, जाती हूं। (जाकर फिर लौट आई) मुझे बताओ कि जब कोई मर जाता है तो सारा मांस का शरीर पड़ा रहता है, उसमें दोबारा जीवन नहीं आता, मूर्ति पहले मांस की कैसे बनेगी? फिर उसमें जीवन कैसे आयेगा?

जस्सी – जा, जा! ठाकुर सब कुछ कर सकता है।

धावली – फिर ठाकुर भक्तों के लिए यहां पर ही क्यों न ठहर गया। जब वह मांस के शरीर वाला लोगों की भांति था, तब वह क्यों चल पड़ा। उसका भक्तों के साथ प्यार है, वैसे ही भक्त उसके पीछे रो-रोकर मरते फिरते हैं।

जस्सी – उसकी इच्छा।

धावली – फिर चाहिये तो यह कि तुम्हारी इच्छा मर जाये। यदि उसकी इच्छा जाने में थी और वापिस लौटने में नहीं तो तुम अपनी इच्छा को जला दो, उसकी इच्छा में प्रसन्न रहो, रो-रोकर मत मरो।

जस्सी (चौंककर)– हैं! राम राम, मूर्ख के मुंह में से क्या निकला?

धावली – सुनो मूर्ख की बात, उसकी इच्छा फिर से हो आई है और वह आ गया है, अब अपनी न जाने की इच्छा को जला दो।

जस्सी (हंसकर)– तुझे क्या पता धावली।

धावली – अनजान को ही न जाने गए का पता चलता है और हे जानने वाली! यदि तुम्हें पता है, तो उसकी खोज कर लो! आयु व्यर्थ खो दी रो-रोकर और आंखें खारी कर-करके, कर लो खोज। .... हां, अब, स्वर्ण की मूर्ति बनवा लो।

जस्सी (तमककर) – मूर्ख ! तुझे क्या पता है ?

धावली – इतना पता है कि तुम जो साधुओं की परीक्षा लिया करती थीं उनमें से कोई भी पूरा न उतरा, अब आ गया है पूरा उतरने वाला। बस और क्या पता है, जो भक्तों की परीक्षा पर पूरा उतर पड़ा वही ईश्वर, जो उसकी परीक्षा में पूरे उतर गये, वह भक्त।

जस्सी – कौन सा ईश्वर?

धावली – मुझे क्या पता, मैंने बाल्यकाल में सुना था कि कोई ऊपर नीले आकाश में रहता है, जो सबसे बड़ा है।

जस्सी – बस इतनी ही तेरी बुद्धि है न!

धावली – ज्यादा बुद्धि है न सारी आयु मूर्तियों के सामने बैठ–बैठकर रोने की, न कोई सुने, न देखे और न ही कोई बोले, न कोई साधुवाद कहे और न ही कोई फिटकार दे।

जस्सी यह अपमान के वाक्य सहन न कर सकी, चांटा कसकर उठी, पर धावली भाग चुकी थी और नीचे चली गई थी।

जस्सी चौबारे में बैठी थी, लेट गई और सो गई। सोते ही उसे एक स्वप्न आया। क्या देखती है कि धावली उसे बलपूर्वक कंधे पर उठाकर नीमों के वन में ले गई है जहां पर सबसे बड़े नीम के वृक्ष के नीचे कोई चौकड़ी मारकर बैठा है। जस्सी दर्शनों के लिये अधीर हुई, पर उसके भाग्य। वह सफेद चद्दर ओढ़कर मुंह सिर ढांपकर बैठे हुए थे। जस्सी चारों ओर घूमी, अधीर हुई पर दर्शन न हुए तो उसकी 'अन्दर छिपी दर्शन न हो सकने की निराशा बाहर आ गई और क्रोध का रूप धारण कर गई। उसने धावली के सिर पर ज़ोर का तमाचा मारा, मूर्ख! कहती थी, चलो चलो, आये हैं, दर्शन करो, यह दर्शन कराये हैं? धावली भाग गई और जस्सी का तमाचा नीम के एक पेड़ पर लगा। हाथ को पीड़ा हुई और उसकी निद्रा खुल गई। जब उठकर देखा तो न तो नीम का पेड़ है, न दर्शन पर धावली खड़ी है। भली भांति होश करके जस्सी कहने लगी, फिर क्यों आई है? धावली कहने लगी कि नीचे पंसारी आया है और कोई बात करना चाहता है।

जस्सी – तू चल और चलकर उस दालान में उसे बैठा दे, मैं आती हूं। कुछ समय पश्चात् जस्सी नीचे आई और दालान में बैठी। पंसारी ने, जिसे लोग 'कस्तूरिया' कहते थे, शीश झुकाया।

जस्सी – चिरंजीव रहो, सुख भोगो। कैसे आये बेटा ?

कस्तूरिया – माता । नीम वाले ठिकाने पर उजाड़ में कई दिनों से कोई आया हुआ है, लगता है कि कोई तपोमूर्ति है, हर तपोमूर्ति तो सूखे पिंजर वाले होते हैं, यह कोई ओजस्वी प्रफुल्लिता वाली मूर्ति है। दर्शन करके शान्ति मिलती है। जब आप वचन करते हैं तो ऐसा लगता है कि बिलकुल ही नया खेल है। कोई ऐसी बात नहीं करते जो प्रायः आने–जाने वाले साधु करते हैं। भजन गाते हैं किसी और रंग के, पर माता! यों लगता है कि बहती हुई यमुना भी सुनने के लिए थम गई है। यदि इच्छा हो तो तुम भी देख आओ। आम तमाशा नहीं, कोई खास अद्भुत रहस्य की बात लगती है। मैं जैनी हूं, हम लोग दूसरों के सामने कम ही झुकते हैं, मेरा शीश वहां पर झुक गया और मैं मान गया हूं कि परमेश्वर अवश्य ही है और इस शरीर में से लपटें मार–मारकर अपना आप दिखा रहा है और आश्चर्य की बात यह है कि मुसलमान फ़कीर, जो किसी हिन्दू के सामने नहीं

झुकते, वे भी वहां जाकर झुके हैं। कल तो मैंने भी काज़ी को झुककर प्रणाम करते हुए देखा है।

जस्सी – किस मत का है?

कस्तूरिया – माता! आप कारक लगता है? किसी मत का उपासक नहीं लगता पर किसी मत की निन्दा भी नहीं करता। सबके गुण ले लेता है, किसी के अवगुणों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं करता। किसी को किसी स्थान से, यदि वह सच में लगा हुआ है तो बहकाता नहीं, उसकी भूल का ज्ञान करवा कर सीधे मार्ग पर चला देता है। मुझे तो धुर से आया लगता है। उसमें अपना तेज है, प्रभाव है, शक्ति है, आत्म–वैभव है।

पंसारी मुहल्ले में भला पुरुष प्रसिद्ध था। माई जानती थी कि यह छल–कपट वाला पुरुष नहीं। उसे निश्चय हो गया कि यह सत्य कहता है और मुई धावली भी सत्य ही कहती थी कि कोई नवीन वस्तु आई है; कहने लगी 'अच्छा, बेटा। जिस समय जाओगे, मुझे भी साथ ले चलना।'

पंसारी – माता! मैं घड़ी–दो–घड़ी तक जाऊंगा, सायंकाल से पहले उनका साथी जब कीर्तन करता है, उस समय तुम तैयार रहना, मैं जाते समय लिवा लूंगा। माई ने सत्य वचन कहा और पंसारी शीश झुकाकर चला गया। माई अब सोच में पड़ गई, रामरवन जी ने कहा था : किसी अन्य मत वाले से न मिलना, वह महात्मा है, उसका वचन न मानना भी ठीक नहीं। जाने को भी जी करता है, जीवन न जाने कितना समय और है, निराश होकर मर गई तो जन्म व्यर्थ गया, यदि अवसर सचमुच अलौकिक और पुण्यमय है तो अब इसे खो देने की आयु कहां! न जाने किस तिनके के पीछे कोई महान कोष निकल पड़ेगा। यह जैनी कहता है कि अच्छे हैं, यह भला है, बेग़रज़ है, उसने कुछ तो देखा ही होगा न। हैं ... कैसे करूं ?

धावली – स्वामिनी जी! क्या सोच रही हो ? रामरवन कह गया था कि किसी अन्य मत के ठाकुरों को मानने वाले से मत मिलना और यह किसी भी ठाकुर को मानने वाला नहीं। यह तो आप हुआ, इसके लिये उसने कब बर्जना की थी। हे स्वामिनी! यदि कभी रामवरन के नेत्र इस पर पड़ गये तो उसे अपने सारे पहले किये हुए पाठ भूल जायेंगे। देखो तो सही । देखे–सुने का अन्तर है। यदि देखोगी तो पता चलेगा।

जस्सी ने सोचा – पंसारी बता गया है कि वह किसी प्रवृत्त मार्ग के अनुयायी नहीं हैं। वहां पर तो कोई नया ही खेल है, नया रंग है और रंग भी सच का है। सो वहां पर जाने में स्वामी रामरवन जी की आज्ञा का उल्लंघन नहीं होता ।

यह धावली असभ्य है, मैं जानती हूं, विद्वान नहीं है, सूक्ष्म बुद्धि नहीं रखती पर इसकी साधारण बुद्धि कितनी तीक्ष्ण है, झट ही पते की बात कह देती है। फिर

है किसी प्यार तथा सूझ वाली। यह कभी किसी पर भरोसा नहीं लाई, आज यह भी विश्वास धारण किये हुए है। चलो, न जाने, यह धावली ही किसी गूढ़ रंग वाली हो, जिसे ईश्वर ने दासी बनाकर मेरे पास छोड़ रखा हो। यों विचार करती हुई माई तैयार हो गई और पंसारी के बुलाने पर उसके साथ चल दी। धावली भी अपनी बीकानेरी ढंग का घाघरा, चोली पहनकर और सिर पर चद्दर लेकर समझदारों जैसा पहरावा पहनकर साथ चल पड़ी।

: ८ :

नीमों वाले ठिकाने पर जाकर जस्सी क्या देखती है : एक दिव्य मूर्ति तेज के पुञ्य महापुरुष जी बैठे हैं। नयन मुन्दे हुए हैं, भजन गाया जा रहा है और दूर-दूर पांच-दस मूर्तियां बैठी हैं। कई तो नगर के निवासी हैं, पर बीच में दो तीन प्रतिष्ठित साधु महात्मा भी हैं और दो-तीन सूफी फकीर भी हैं और सचमुच काज़ी साहब और उसका पुत्र भी बैठा है। सबकी ओर एक दृष्टिपात करके जस्सी की दृष्टि तपोमूर्ति पर टिक गई और मन में आकर्षण हुआ। ऐसा आकर्षण इससे पूर्व कभी भी किसी मूर्ति पर नहीं हुआ था। देखो इस आकर्षण की खींच दोनों भृकुटियों तथा माथे के बीच में पड़ी और नयनों के अन्दर से यों लगा कि इन्हें भी खींच पड़ी है और इन दोनों की कसक की खींच पड़ रही है शीश में उस स्थान के नीचे, जो बाल्यकाल से हाथ लगने से कोमल-कोमल-सा लगता है, और जहां पर हाथ लगाने से हड्डी नहीं प्रतीत होती। इस तरह के आकर्षण के साथ ऊपर को खींचे जा रहे माई के नयन मुन्द गये। आज पहला दिन था कि माई ने इस तरह के आकर्षण का अनुभव किया था कि जिसका उत्थान तो कलेजे में से हो और कसक जा पड़े मस्तिष्क में और फिर और ऊपर शीश में अन्दर की ओर एक स्थान पर आकर्षण हो जाए। अब गाये जाने वाले भजन की समाप्ति हो गई। पर अब तपोमूर्ति के अपने ईश्वरीय अधर खुले और ईश्वरीय कण्ठ से नाद हुआ[१] -

तिलंग महला ॥१॥

इआनड़ीए मानड़ा काइ करेहि ॥
आपनड़ै घरि हरि रंगो की न माणेहि ॥
सहु नेड़ै घर कमलीए बाहरु किआ ढूढेहि ॥

---

१. 'तां बाबे जी ने शब्द बोलिआ'। (तवारीख खालसा)

भै कीआ देहि सलाईआ नैणी भाव का करि सीगारो।।
ता सोहागणि जाणीअै लागी जा सहु धरे पिआरो।।१।।
इआणी बाली किआ करे जा धन कंत न भावै।।
मरण पलाह करे बहुतेरे सा धन महलु न पावै।।
विणु करमा किछु पाईअै नाहि जे बहुतेरा धावै।।
लब लोभ अहंकार की माती माइआ माहि समाणी।।
इनी बाती सहु पाईअै नाही भई कामणि इआणी।।२।।
जाइ पुछहु सोहागणी वाहै किनी बीती सहु पाईअै।।
जो किछु करे सो भला करि मानीअै हिकमति हुकमु चुकाईअै।।
जाकै प्रेमि पदारथु पाईअै तऊ चरणी चितु लाईअै।।
सहु कहै सो कीजै तनु मनो दीजै अैसा परमलु लाईअै।।
एव कहहि सोहागणी भैणे इनी बाती सहु पाईअै ।।३।।
आपु गवाईअै ता सहु पाईअै अऊरु कैसी चतुराई।
सहु नदरि करि देखै सो दिनु लेखै कामणि नऊ निधि पाई।
आपणे कंत पिआरी सा सोहागणि नानक सा सभराई।
अैसै रंगि राती सहज की माती अहिनिसि भाइ समाणी।।
सुन्दर साइ सरूप बिचखणि कहीअै सा सिआणी।।४।।२।।४।।

इस शब्द का स्वर राग तिलंग का था और बहुत ही हृदयवेधी था। इसका प्रभाव जस्सी के मन में उतर गया। जस्सी आप राग में निपुण थी पर यहां पर उसने राग के साथ उसके प्रभाव का भी कमाल देखा। चाहे वह भजन लाहौर की भाषा में था पर उसका लगभग सारा भाव उसने समझ लिया। न जाने जस्सी भी पहले इसी देश की निवासी हो। उसे भजन की सूझ आई थी और भजन से उसे अपनी भूल का पता चल गया। मन ने कहा कि 'इन चरणों पर शीश रख दे और जो आज्ञा हो उसके अनुसार चल! वीतरागता है यहां वितृष्णा यहां है, भक्ति यहां पर है, रस यहां पर है।' सो जब शब्द समाप्त हुआ तो जस्सी उठी और जाकर चरणों में शीश रख दिया। गुरू बाबा ने, हां जी धन्य श्री गुरू नानक जी ने, शीश पर हाथ रखा और कहा : 'आ बुद्धिमान अनजान! किस बात का गर्व किया है? यदि तुम्हें दीख पड़ता, तेरे कहने पर देह धारण कर लेता तब तो गर्व की बात थी! सारी आयु विलाप-प्रलाप करती रही, अहंकार किस बात पर? यही लोभ लगा रहा कि मुझे प्राप्ति हो, मेरी स्तुति हो, भक्तों में मेरी गणना हो, पर अन्दर इतनी सूझ न आई कि देह रहती नहीं, इसका विनाश हो जाता है। जिसका विनाश हो जाता है उसकी मूर्ति बनाते हैं कि किसी तरह रूपरेखा ही दिखाई पड़ती रहे, पर वह बोलती नहीं और यदि यह जान लें कि वह फिर जीवित देह बन भी जाये तो उसका फिर विनाश होगा क्योंकि विनाश होना देह का धर्म है। जो उत्पन्न होती

है और जिसका विनाश होता है, वह अविनाशी ठाकुर कैसे बन गई? ठाकुर तो सदैव जीवित हैं, अविनाशी हैं। पर जो अविनाशी है वह रूप-रंग से पृथक है, घट-घट में उसका निवास है, जिस घट में वह अनुभव द्वारा प्रकट हुआ है, वह घट उसका मन्दिर है। अविनाशी दृष्टिमान नहीं, क्योंकि दृष्टिमान नाशमान होता है। अविनाशी कभी इन्द्रियों का विषय नहीं होता, क्योंकि जिसे इन्द्रीय विषय कहते हैं वह दृष्टिमान है। दृष्टिमान नाशवान है। निरंकार अविनाशी है, वह है, प्रत्येक स्थान पर है, सर्वव्यापक है, घट-घट में है, तेरे घट में भी है, हां पति-परमेश्वर तेरे हृदय से भी निकट है, और तू अपने से बाहर उसे खोजती रही। सो तुझे अब तक पति के सर्वव्यापी होने का और तेरे अन्दर होने का निश्चय न हुआ, उस सर्व-शक्तिमान का भय न हुआ, उस अन्दर बैठे हुए प्रेम स्वरूप का प्रेम मालूम न हुआ। इस तरह करती हुई तू जो अपने-आपको बुद्धिमान समझती थी, बच्चों की भांति अनजान हो गई; हां अनजान ही रह गई। यह अनजानपन है कि नहीं? बता अनजान बालिका को 'सदैव युवक शाह' कैसे वरे, पति-परमेश्वर तो बुद्धिमान है और तू अनजान। तूने पहले पहचान न की, फिर प्यार न किया, अत: कंत न मिला, कदाचित न मिला, अब कैसे मिले?' यह कहकर आप चुप हो गये।

जस्सी का शीश अभी झुका हुआ था। आपका दया-भरा हाथ उसके शीश पर धरा हुआ था। इस समय जस्सी मन-ही-मन में कह रही थी कि हे दाता! हे पति को मिले हुए ईश्वर! बता फिर मैं क्या करूं? जस्सी मन-ही-मन में प्रार्थना कर रही है पहले की भांति, पर देख यहां से तत्काल उत्तर मिलता है। आप अब फिर कहने लगे, "सुनो बिटिया! तेरे अन्दर है, वह व्यापक है, एकदेशीय नहीं, वह सर्वदेशीय है। तेरे निकट है, अन्दर प्रत्यक्ष है। उसमें भरोसा रख, जब उसके अस्तित्व पर भरोसा हो गया तो फिर उसे स्मृति में रख। यदि यह बात भूल गई कि वह मेरे अंदर है तो फिर तू उससे बिछुड़ गई। 'वह है, वह प्यारा है, मेरा प्यारा है', यह बात अन्दर बनी रहे, इसके आगे भूल का पर्दा न पड़े, यों जो ठाकुर अन्दर प्राप्त है उसकी हुजूरी में रह, उसके अस्तित्व की याद में रह । फिर जो कुछ घटे, उसको उसकी आज्ञा समझ, उसको भला समझ। जब इस प्रकार का दृढ़ विश्वास हो जायेगा, अवगुण दूर रहेंगे, तो वह तेरा नेतृत्व करेगा कि जो तेरे अन्दर था, जो है और जो सदैव रहेगा। उसकी पूजा यह है कि तूने उसे प्रेम पदार्थ द्वारा सदैव स्मृति में रखना है। अब वह तेरी अगुआई करेगा, जो वह कहे वही करना, उसकी आज्ञा में अपनी इच्छा को मिला देना। हां, शाह जो कहे वही करना, अपनी मरज़ी मत मनवाना, उसकी आज्ञा में अपनी इच्छा मिला देना। यों स्वयं भाव अथवा अहं मिटता है। हमारे तथा उस ईश्वर के बीच में दीवारों के परदे नहीं हैं, वस्त्रों के परदे भी नहीं, पर अहं का परदा है, यह इस प्रकार दूर होता है, जैसे तुझे बताया है। अब अहं चला गया अर्थात् स्वयं भाव चला गया, तब भरोसे सहित, स्मृति से प्रेम

से स्त्री-जिज्ञासु रूपी स्त्री-पति के वरे जाने वाले रंग में आ गई अब जब वह कृपादृष्टि करके देखेगा, दयादृष्टि डालेगा, वह सुहागिनी हो जायेगी, वही सुन्दर होगी, वही भक्त होगी, वही बुद्धिमान अर्थात् ज्ञानवान कही जायेगी। सो इन गुणों के अतिरिक्त, इस प्रेम-भक्ति के बिना, इस ज्ञान, ध्यान तथा सूझ के बिना, जो तुझे बताई है, तू ठाकुर की खोज करती रही, दर्शन तथा भेंट की खोज करती रही, तू अनजान बालिका ही रही! हां जस्सी! तू अनजान रही, ज्ञानहीन ही रही, तुझे सूझ न आई कि किस वस्तु का क्या मूल्य है। प्यार अमूल्य वस्तु है, यदि इसे अमूल्य स्थान पर लगायें तो कहीं इसका मूल्यांकन होता है। विनाशी के साथ यदि प्यार करें तो वह विनाश हो जायेगा, तब मन को पश्चात्ताप होगा। अतः अपने प्यार का मूल्यांकन करना था कि क्या इसका मूल्यांकन विनाशी शरीरों पर बिक जाने पर होता है और इसे चेतन्य के नाम तथा निर्मित निर्जीवों के अर्पण कर देने में होता है। तूने तो अमूल्य लाल को नाशवान शरीर के रूप के दर्शन में लगाकर खूब सस्ते भाव में बेच डाला। अब विचार कर। तेरी आत्मा अविनाशी है। अविनाशी का अविनाशी के साथ प्रेम करना, यह है प्रेम करना, यह है प्रेम का ठीक-ठीक मूल्य। जस्सी! आरम्भ से ही अविनाशी की सीध बांधनी चाहिये। अविनाशी निरंकार है, तेरी आत्मा अविनाशी है अविनाशी का अविनाश के साथ प्रेम अविनाशी है[१]।'

अब बाबा जी ने जस्सी का सिर जोर से उठा दिया। जस्सी उठकर बैठ गई थी। शरीर फूल की तरह हल्का हो गया था। एक शीतलता, एक स्वाद रोम-रोम में भर रहा था। उधर जो कुछ शब्द में आया था, जो कुछ गुरू बाबा ने समझाया था, वह ज्ञान वाला प्रकाश बनकर समझ को उज्ज्वल बना गया था। मन से कह रही थी: ठीक मैं अज्ञानता में रही, मैं भूल में रही, बात छोटी-सी थी, पर समझ में न आई। छोटी नहीं, इतनी बड़ी थी कि मेरी छोटी-सी समझ में वह न आ सकी। सफल ज्ञान, हृदय की निद्रा को हटा देने वाला ज्ञान, भक्ति, सफल भक्ति, मिला देने वाली भक्ति, आज दिखाई दी है। पर है सच, मेरे पास अब करने के लिये कौन-सा काम रहेगा? जो मैंने समझा है, यह भी रूपरेखा से पृथक-सा रंग है, मन का भाव है, जो अरूप है और अग्राह्य है। मैं किस वस्तु को पकड़ूंगी? मन कैसे बदलेगा? इस उलटे मन ने तो अपने ही मार्ग पकड़ने हैं। इसके बेग को कौन रोकेगा? पूछूं? पूछना तो अनादर है। इस समय धावली उसके मुंह की ओर देख रही थी, यों ही नहीं जैसे कि दास स्वामी की ओर देखता है बल्कि यों कि जैसे

---

१. यह वार्तालाप पीछे आये शब्द का खुला अनुवाद है।

ममता-भरी मां उस पुत्र के मुंह की ओर देखती है जो काफी समय के पश्चात् घर को लौटता है। कहने लगी, 'स्वामिनी! अब और कुछ पूछ लो। आप तो रस के मेघ हैं, आज यहां पर वर्षा करने के लिये आये हैं, कल को कहीं और जाकर वर्षा करेंगे। आज अपने खेतों को भर ले। भर ले अपने तालाब और अपने घड़े।'

(ऊपर को देखकर) 'हाय! मेरा शुष्क, जल-रहित बीकानेर, कभी तेरे पर भी झड़ी लगे। ... हे स्वामिनी! तू पूछ ले।' धावली की ठीक समय पर कही हुई बात उनके अन्तर्यामी होने की झलक चाहे जस्सी के मन पर न पड़ी पर वह समझ गई कि यह सच्चे प्यार का चमत्कार है, जो धावली के अन्दर है। धावली के कहने पर जस्सी ने साहस बटोरा और उसके करबद्ध होकर कहा, 'दाता, दाता, मेरे मन को कोई उद्यम दीजिये। केवल ज्ञान, विचार, जो कि अरूप-सा लगता है, इसे मन प्रत्येक समय कैसे पकड़कर रखेगा? या फिर स्फुरण के मार्ग पर आ जाया करेगा!!'

गुरू बाबा – 'वाहिगुरू अन्दर है, हमारे निकट से भी निकट है' इस बात को किसी समय भी नहीं भूलना। स्मृति मन का एक कर्म की भांति काम है, यदि मन इस स्मृति को सांसारिक स्फुरणों में मिला दे जो जिह्वा पर परमेश्वर का नाम बसाओ। रसना नाम का जाप करे, मन अपने-आपको साईं मे लगाये, उसके प्यार, उसके गुणों पर, उसके स्वरूप पर। मन का यह कर्म नाम स्मरण है, यह अविनाशी की पूजा है और 'अविनाशी पूजा' निरंकार की पूजा है। निरंकार की ओर, जिसका रूप, रेख, रंग नहीं है, जब लक्ष्य निश्चय कर लिया जाता है तो निश्चय हो जाता है, कि 'वह है' और यह उसकी 'है' को खूब रट लिया जाता है नाम का स्मरण करके और नाम जपकर स्मरण में पहुंचना होता है। अत: रसना पर कर्तार के नाम का निवास करना, यह तेरी शारीरिक पूजा होगी। यह कर्म है और यह धर्म-स्वरूपी कर्म मानसिक कर्म है। इस सेवा द्वारा तेरा शरीर तथा मन सफल होगा। नाम जपने से मन में नाम का स्मरण होता है और मन मे स्मरण द्वारा जीव साईं के साथ लगा रहता है। यों नाम जपने वाला-नाम-निरंकार-से मिला रहता है। इस मिलाप से फिर रस आता है, आनन्द मिलता है। फिर इस तरह हो जाता है कि नाम का कहना हमारे जीवन का जीवन बन जाता है। जस्सी! सदैव स्मरण में निवास करना! स्मरण सेवा है, पूजा है, उस अविनाशी निरंकार कर प्यार। तब गुरू बाबा ने जस्सी को यह शब्द प्रदान किया :-

आसा महला १

आखा जीवा विसरै मरि जाऊ ।।

आखणि अऊखा साचा नाऊ।।

साचे नाम की लागै भूख।।
ऊतु भूखै खाइि चलीअहि दूख ।।१।।
सो किऊ विसरै मेरी माइ।।
साचा साहिबु साचै नाइ।।१।।रहाउ।।
साचे नाम की तिलु वडिआई।
आखि थके कीमति नही पाई।
जे सभि मिलिकै आखण पाहि।।
वडा न होवै घाटि न जाइ।।२।।
ना ओहु मरै न होवै सोगु ।।
देदा रहै न चूकै भोगु।।
गुणु एहो होरु नाही कोइ।।
ना को होआ ना को होइ।।३।।
जेवडु आपि तेवडु तेरी दाति।।
जिनि दिनु करिकै कीती राति।।
खसमु विसारहि ते कमजाति।।
नानक नावै बाझु सनाति।।४।।३।।

जस्सी का उद्धार हो गया, सुख रूप हो गई, उसका जीवन स्मरण वाला हो गया। 'सो जीविआ जिसु मनि वसिआ सोइि' वाली बात हो गई। सोई हुई को आदेश से आई हुई ईश्वरीय ज्योति ने उठाकर साहब की देन प्रदान की, गुरू बाबा के करामाती नैनों ने जस्सी को नाम का स्पर्श दे दिया।

: ९ :

गुरू बाबा को जस्सी अपने घर ले गई। गुरू जी दस दिन वहां पर ठहरे। सत्संग का प्रवाह चल पड़ा। अनेकों जीव भूल में पड़कर भटक रहे तथा साधना में अटके पड़े थे, उनका आकर उद्धार किया। रामरवन को पता चला कि जस्सी ने उपासना बदल ली है और निरंकार की भक्ति में लगकर कर्मकाण्ड के स्थान पर सफल ज्ञान में परिवर्तित हो गई है, तो वह दौड़कर आया कि वहां अन्य मत वाले साधु बैठे होंगे जिन्हें वह पराजित करेगा। पर वहां तो आप ईश्वरीय बख्शीश के स्वरूप साक्षात् बैठे थे। देखकर, चौंका, प्रभाव छाया, और अन्दर से दब-सा गया। अन्य धर्म के पक्ष भाव का क्रोध आया। फिर अन्दर-ही-अन्दर से चौंक गया। जस्सी ने सत्कार दिया, गुरू बाबा ने भी देखा कि जस्सी का कर्म-काण्ड का शिक्षक आया है जो वैसे भला पुरुष है। उसकी ओर देखा और कहने लगे, 'आओ राम रवन! राम घट-घट में रम रहा है। अपने प्यारे को एक देश में नहीं बांधना चाहिये। देख, नयन खोल, देख सब ओर व्यापक है।' रामरवन को एक व्यापक

शरीर वाले का प्रवाह-सा अन्दर घूमता हुआ आभासित हुआ। पर रामरवन अपने मत का भली भांति ज्ञाता था, आपा सम्भालकर प्रश्नोत्तर करने लगा, पर थोड़ी देर में ही रुक गया, उसे मानना पड़ा कि निरंकार साकार एवं सगुण से परे है और सर्वोच्च है; उसका पथ-प्रदर्शक उसका नाम ही है और नाम पूजा की शिरोमणी पूजी है। रामरवन कुछ दिन वहां पर ठहर गया और आदेशीय सौंदर्य का सत्संग करके उसका उद्धार हुआ।

यों आगरा में सच्चे नाम की ज्योति जलाकर और परिश्रम वालों को भूल में से निकालकर, गुरू बाबा जी यों चल दिये जैसे परोपकारी पवन एक देश से दूसरे देश को जाती है।

अब आगरा में जस्सी गुरू के सिख मत की सत्मभा बन गई। रामरवन आगरा में ही निवास करने लगा। धावली, मूर्ख धावली जो सबसे मज़ाक करती हुई दीख पड़ती थी, आज वह भी स्मरण में लग गई। गुरू बाबा को इस बात का बड़ा शौक था कि जहां पर कोई कमाई वाले मनुष्य हों, चाहे वे किसी प्रकार की कमाई क्यों न करते हों, पर हों अपनी कमाई में सरल तथा सच्चे, तो वहां पर अवश्य ही पहुंचना और अनुकम्पा द्वारा उन्हें उठाकर सत्य-मार्ग पर चला देना। उन जैसे एक व्यक्ति के सुधार हो जाने से उनकी संगतों का सुधार हो जाता था और यही एक बड़ा तथा विस्तार वाला परोपकार हो जाता था। हां, आगरा में नींव डालकर जस्सी के घर को धर्म-स्थल बनाकर बाबा जी चल दिये। लो, वह घर आज तक गुरू का धर्म का स्थान (गुरूद्वारा) है और लोग उसे 'माई स्थान' कहते हैं। (तवारीख खालसा)

ऐतिहासिक पक्ष

आगरा में पहला चक्कर सतगुरू नानक देव जी ने लगाया और वहां पर सत्संग की नींव डाली। माई जस्सी का उद्धार किया (तवारीख खालसा १-१) फिर गुरू हरिगोविंद साहब जी आगरा मुगल सम्राट जहांगीर के साथ आये थे।

(गुरू प्रताप सूरज राशि ४ अं: ५७

फिर आगरा में नौंवे गुरू (गुरू तेग बहादुर) जी भी आये थे और आपको वहीं पर अत्याचारी औरंगज़ेब द्वारा बन्दी बनाया गया था। तवारीख खालसा में लिखा है कि उस समय एक भागो नामक माई निवास करती थी जिसने गुरू अर्जुन देव जी से वरदान प्राप्त किया था। गुरू के घर की, नाम में निपुण शिष्या थी। यह माई नौवें गुरू जी के समय यहां पर थी और दर्शन की याचना में थी। जब कि गुरू जी का अन्तिम समय आ गया। अत: आप पहले आगरा पहुंचे, माई भागो को निहाल किया। स्मरण रहे कि यह वह माई भागो नहीं थी जो दशम गुरू जी से खिदराणे

के युद्ध में मिली थी। गुरू तेग बहादुर साहब जी तब इसी 'माई–स्थान' के स्थान पर ठहरे थे और बाद में गुरू के बाग मे ठहरे थे जहां पर आपकी गिरफ्तारी हुई थी। इसलिये इस गुरूद्वारे को नौंवे गुरू का स्थान भी कह लिया जाता है। 'गुरू स्थान दर्शन' में इस प्रकार लिखा है–

माई स्थान मुहल्ले में गुरू तेग बहादुर जी की स्मृति में गुरुद्वारा है। बड़ा सुन्दर बना हुआ है। ठहरने का तथा (लंगर) भोजन का प्रबन्ध अच्छी तरह हो सकता है। दूसरा गुरुद्वारा बाग में है।... गुरू नानक देव जी भी आगरा में आये, माई जस्सी को 'इिआनड़ीए मानड़ा काहि करेहि' शब्द द्वारा उपदेश देकर उससे मूर्ति–पूजा का त्याग करवाया।

सूचना – आपके चरण अब देश की ओर लौट रहे थे, अब अधिकत: रुख स्वदेश की ओर हो गया, मार्ग में भी ईश्वरीय काम करते रहे और कभी अपरिचित दिशा में भी चले जाते थे। सारे कौतुक तो अप्राप्य हैं पर बाले की जन्मसाखी में एक भारी जगत पीड़ा के हरन का प्रसंग दिया है जो अवध के पास रुहेले पठानों के इलाके में घटित हुई, वह आगामी प्रसंग है–

□ □

४० रुहेलखंड के कौतुक

१. वियोग

पिर भावै प्रेम सखाई।
तिसु बितु घड़ी नही जगि जीवा ऐसी पिआस तिसाई।
(मल्हार महला १ अष्टपदी)

प्यारी मीठी, ठन्डी तथा सुहावनी गुलाबी ऋतु है। दो दिन तक नन्ही-नन्ही बूंदें पड़ चुकी हैं, जिसने इस ऋतु को भीनी-भीनी तथा स्वादमय बना दिया है। अमृत वेला है, ओस के मोतियों के से कण फूलों, डालियों तथा पत्तों पर पड़ रहे हैं। धीमी, परन्तु हृदय-स्पर्शी ठण्डीं-ठण्डी पवन चल रही है। तारों से जड़ी हुई आकाश की नीलिमा सौन्दर्य बिखेर रही है। फूलों से जड़ी हुई धरती की विस्तृत हरीतिमा हिलोरें खा रही है। इस समय एक पत्थर के टीले से आसा राग का प्यारा स्वर सुनाई दे रहा है। राग क्या है। मानों किसी ने स्वर्ग के द्वार पृथ्वी की ओर खोल दिये हैं। मिठास इतनी है कि कान सारी सुरत लेकर उस लय में जुड़ते ही जाते हैं। ऐसा नहीं लगता कि कोई कीर्तन कर रहा है, पर ऐसा लगता है कि वायु समुद्र के ऊपर संगीत की तरंगें धीरे से लहरा रहा है। इस प्रकार की कोमलता तथा सुरीलापन है कि सुनने वाला मन कोमलता के किसी दूसरे संसार में तैरने लग जाता है। इस प्यारी आवाज़ के बीच-बीच में किसी-किसी समय कोई और आवाज़ श्लोक की है। यह दैवी स्वर ऐसा रसभरा है कि झट ही लौ के मण्डल में ले जाता है। इस स्वर के सिवाय संसार का कोई भी और स्वर यह नहीं कर सकता कि सुनते ही, मन मे एक प्रकार की उच्च तथा शीतल आशा उत्पन्न कर दे। जो चित्त को किसी उत्तम विश्वास में ले जाय, जहां पर जाकर शरीर के सारे जंजाल विस्मृत हो जायें और एक शान्त सागर की भांति अचलता तथा रस छा जाय, और लौ लग जाय। इस प्यारे कीर्तन का आकर्षण उस टीले के ऊपर विवश खींच ले जाता है। यह एक प्रकृति की सजाई हुई शिला है, जिस पर एक ऐसी सूरत बैठी है कि जिसके चारों ओर प्रकाश की फुहार पड़ रही है। प्रकाश है पर सूर्य जैसा नहीं। इससे अधिक और ज़ोरदार है, परन्तु चुभने वाला तथा घबराहट वाला गर्म नहीं, बिजली जैसा है, पर चंचलता तथा कड़क से मुक्त है, सफेद है पर आंखों को चकाचौंध नहीं करता, चन्द्र का सा दूधिया है, पर मस्ती तथा लय अद्‌भुत रखता है। यह नहीं कहा जा सकता कि यह प्रकाश उस सूरत के अपने शरीर से निकल रहा है या उसके चारों ओर उमड़ रहा है पर इसमें आकर्षण वह है जो मन

की आकर्षित करता है और आकृष्ट होकर चरणों तक पहुंचे बिना रुक नहीं सकता। इस आकर्षक सूरत के पास एक संगीत का अवतार, एक अद्भुत प्रकार का छः तारों वाला ईश्वरीय साज़ लेकर बैठा बजा रहा है, वह रंग है, वह स्वाद है वह सुख है कि शरीर या तो खोया हुआ सा दीखता है, या अन्तस रम से लेकर रोम-रोम तक सारा-का-सारा सुख में आत्मविभोर हो रहा है। मस्तक झुकता है तो फिर उठना भूल जाता है। मन इस तरह नम्र हो जाता है कि अपने रंग को छोड़कर जिसके सामने झुकता है उसी के रंग में रंग जाता है, ठीक उसी तरह जिस तरह गुलाब के समीप पड़ा हुआ बिल्लौर गुलाबी हो जाता है। इस दर्शन, इस प्यारे दर्शन, इस ईश्वरीय दर्शन की ऐसी झलक है कि आंखें मदभरी होकर पहले रसीली हो जाती हैं, फिर रस इतना अधिक होता है कि पलकें तक भारी हो जाती हैं, फिर रस से भरे भारी नयनों को अधखुले करके पुतलियों को उलटे वेग के साथ ऊपर को चढ़ाता है। यों रसभरे कंवल नयन रस की अधिकता से मानों उलटते हैं और उलटते ही बाहर की ओर से मुंद जाते हैं। मुंदे हुए नयनों का प्रकाश जो बाहर की सुन्दरता में लगकर बाहर-दर्शन करता था। अब अन्दर की सुन्दरता के कण-केन्द्र के ऊपर जाकर ऐसा टिकता है कि फिर रस-ही-रस रह जाता है और अनजाने ही किसी महारस के सागर की शरण में महारसिक होकर खोया जाता है।

वह रस जो ठेठ अन्दर तक प्रभाव करे समय का पता नहीं लगने देता और पता नहीं रहने देता कि किस स्थान पर बैठे थे और कहां पर हैं और पता नहीं लगने देता कि क्या कारण और कौतुक घटित हो चुके हैं और यदि कहीं महारस आ जाये तो काल की गति और देश-स्थान का पता और कारण, प्रयोग, भावी का अनुमान कब लगने देता है।

सूर्य ने अब पूर्व की ओर से धरती के साथ मिली हुई सीध की अनुकूल किरणें फैलाईं। ये किरणें कितनी प्यारी हैं। प्रकाश की जिस टुकड़ी में से निकलती हैं, वह कैसी प्यारी लगती हैं। एक बार देख लेने से सारे शरीर में से प्रसन्नता की लहर निकलती है, दो पल खड़े रहने पर यों लगता है कि इस तेज के सागर में स्नान हो चुकने के बाद मन हल्का फूल सा हो गया है। उधर सूर्य किरणें फैंकता है, इधर उच्च संगीत समाप्त हो जाता है। इतना समय तो उन दोनों दैवी सूरतों को अचल बैठे हुए व्यतीत होता है, तो ओजस्वी स्वरूप पाले नेत्र खोलकर 'निरंकार' 'निरंकार' का शब्द इतने आश्चर्यजनक हिलोर से लेते हैं कि आंखों के सामने से सारा संसार लोप होकर केवल एक आनन्द का प्रभाव ही रह जाता है। इतने में आप 'कर्तार! कर्तार' का वाक्य उच्चारण करते हैं। सारी सृष्टि एक आश्चर्यजनक सुन्दरता के रंग से रंगी हुई दिखाई देने लगती है। एक क्षण के पश्चात् आप कहते हैं-"भाई मरदाना! तू कुछ दिन हम से दूर रहा।" यह वाक्य थें तो प्रेम से भरे हुए पर सुनने वाले को तेज कटार से भी तेज लगे, आंखों में से जल की धारा बहने लगी और अश्रु गिराकर कहने लगा-

हे निरंजनी ज्योति! मैं आरम्भ से ही भूला हुआ आपका मिरासी; किसी गुण वाला नहीं, सदैव आपने अपना ही जाना और अपने साथ रखा, आपने ही मुझे सम्मान दिया और अपने साथ रखा, मैं फिर भी भूला, पर आपने मुझे सदैव क्षमा की। मैं पग-पग पर विश्वास की सीढ़ी से फिसला और दु:ख तथा सुख के कारण व्याकुल हुआ, पर आपने सदैव मेरी बांह पकड़ी और लाड़ किया। हे आपने आप पसीजने वाले सतगुरू! हे हमारे दुख देखकर सच्च खण्ड में स्वयं आकर तारनहार ज्योति स्वरूप! हे सदैव मिलने वाले दयालु दाता! मुझ अवगुणहार को अपने चरणों के साथ लगाये रखिये और अपने से पृथक मत कीजिये। यदि मेरे पल्ले में कोई गुण हों तो कहूं, मैं तो हूं ही बिलकुल रिक्त, हे तृण से हलके को भी सम्मान देने वाले दाता! अपने चरणों का वियोग न दें!

सतगुरू नानक देव-मरदाना! संसार में सबसे बड़ा दु:ख ही वियोग का है, और वियोग ही सारे दु:खों की जननी है। सारा संसार यदि अपने प्यारे वाहिगुरू से पृथक न हो तो संसार बैकुण्ठ है। मैं जानता हूं कि वियोग की पीड़ा तुझे कष्ट देगी और मैं तुझ से... जो तू मेरे प्रियतम परमेश्वर जी का कीर्तन सुनता है- बिछुड़ना नहीं चाहता, पर क्या करें, मरदाना! काम भी तो करने हैं।

मरदाना - हे प्रेम की तरंगों से भरे प्रियतम जी! आपके कामों में मैं कुछ नहीं कहूंगा, जो कुछ आप करेंगे, मैं उसे देखूंगा, जो आपकी आज्ञा होगी, उसे आप की कृपा समझूंगा, जैसे-जैसे बन पड़े, कृपया, मुझे अकेला मत छोड़ना। हे सतगुरू दाता जी! मैं आपका हूं, मैं ठीक आपका हूं, मैं अवगुणों वाला हूं, हे बाबा नानक! जैसा कैसा भी हूं आपका हूं, आपका हूं, आपका हूं।

सतगुरू नानक देव जी - हे सज्जन! हम तुझसे बिछड़ना तो नहीं चाहते, पर कार्य ही ऐसा है जो तेरे ये प्रेम-भरे नयन देखकर सहन नहीं करेंगे : यह कर्तार की आज्ञा है, हे सज्जन! इसे आज्ञा मानकर इसके आगे गर्दन झुका देना ही उचित है और यदि तू अन्तरात्मा में हमारे साथ है तो फिर काहे का वियोग?

मरदाना - सत्य वचन, मेरे स्वामी जी! आपकी आज्ञा सिर-माथे पर मानता हूं। पर हे निरंजनी ज्योति जी! आपका वियोग कैसे सह सकूंगा?

सतगुरू जी - मरदाना! जिस वियोग में 'भूल' आकर मिल जाये वह 'मार देने वाला वियोग' होता है, जिसमें 'स्मृति' बनी रहे वह जीवित वियोग है और वह मिलाप करा देता है। इस मिलाप वाले वियोग को ही विरह कहा जाता है। जिन के अन्दर विरह नहीं, वह साईं की ओर से मृतक हो जाते हैं। जिनके अन्दर साईं का विरह उत्पन्न हो जाता है, उनके अन्दर साईं वाला जीवन झंकृत है। हे सज्जन! साईं का स्मरण करते हुए तो सदैव मंगल-ही-मंगल है। जितना समय हमारी फिर से भेंट नहीं होती, निरंकार का स्मरण करते रहना, फिर वह मालिक पालनहार सदैव अंग-संग है और रहेगा।

मरदाना – हे विरद पालने वाले सतगुरू जी! घर से निकले अनेक वर्ष हो गये हैं और दीदी जी आपके दर्शनों के लिये व्याकुल हो जाती हैं, आपने कल आज्ञा की थी कि दीदी याद कर रही हैं और अब हमें सुलतानपुर चलना है। हे दीन दयालु! आपका वचन है कि जब दीदी याद करेंगी तो पहुंचेंगे और आप अब और कार्य मे विचरने लगे हैं। दीदी जी का कोमल हृदय बहुत विरागी होगा। आप दया के सागर हैं, कोमल हैं और प्यारे हैं।

सतगुरू जी – मरदाना! तूने ठीक समय पर याद दिलाई है। पर क्या करें, यहां पर सृष्टि बहुत दु:खी है। घोर पाप हो रहा है, परमेश्वर के लोग कष्ट सहन कर रहे हैं। मरदाना! आज रात को हमें बड़े रोने और कलपने की आवाज़ आई, जब यह क्रन्दन सुना तो आंखें खोलकर चारों ओर देखा तो कहीं भी कोई ईश्वर का जीव बोल नहीं रहा था। जब फिर नयन मुन्दे तो बहुत विलाप की आवाज़ आई। मरदाना! तीन बार इसी तरह हुआ। यह अश्रु केरी छाती पर पड़े हैं, परमेश्वर जी के पुत्रों के विलाप ने इस कलेजे को वेध दिया है, इसलिए हे सज्जन! अब यहां पर ठहरना है और सुख देना है। सुख देकर फिर दीदी जी के दर्शन करेंगे।

मरदाना – हे दयानिधि जी! इस वन में तो ईश्वर का जीव भी नहीं है, रोने वाला कौन है?

सतगुरू जी – मरदाना! देख कर्तार के रंग।

हरणां बाजां तै सिकदारां एना पड़िआ नाऊ।।
फांधी लगी जाति फहाइनि अगै नाही थाऊ।।

(बार मलार महला १)

इस तरह का कोई क्लेश चल रहा है। परमेश्वर जी के प्यारे बीच में पकड़कर कष्ट सहन कर रहे हैं। नाम जपने वाले पुरुष का कष्ट कर्तार कैसे सहन कर सकता है?

मरदाना! तू उदास मत होना, साहस बटोरना, हम पृथक नहीं हो रहे, क्षण भर का वियोग है और वियोग से ही मिलाप होता है।

मरदाना – प्यार के स्त्रोत सतगुरू जी! कृपा करके बताइए कि यह दास किस ओर और किस दिन, किस स्थान पर आपके इस प्यारे दर्शन की लालसा करता हुआ प्रतीक्षा करे?

सतगुरू जी – मरदाना! तूने स्वामी को भुलाया नहीं है, तेरे सिर पर सत्य कर्तार है। जिस ओर तुझे तेरे पैर ले जायें, उसी ओर चले जाना, और जिस दिन तेरे अन्दर प्रेरणा हो, उसी दिन यहां पर अथवा जहां पर तुझे तेरे पैर ले जाएं आ जाना, अपनी बुद्धि को इसमें न मिलाना, कर्तार आप सारे कार्य सिद्ध करेगा।

मरदाना – सत्य वचन महाराज जी! सत्य कर्तार ! सत्य कर्तार! सत्य कर्तार!

मरदाना 'कर्तार कर्तार' कहता हुआ, चरणों पर झुकता, बार-बार शीश झुकाता, नयनों से अश्रु बहाता, पिछले पांव, मुख सतगुरू जी की ओर सामने रखकर उस टीले पर से उतरता हुआ कहीं वनों में लुप्त हो गया।

२. दासता

'इहु तनु वेची बै करी जे को लए विकाइ।।
नानक कंमि न आवई जितु तनि नाही सचा नाऊ।।४।।५।।७।।
(सूही महला १)

जब मरदाना लुप्त हो गया तो आकाश पर बादल छा गये। गरू नानक देव जी के चारों ओर जो प्रकाश फैल रहा था, उन्हीं के अन्दर लोप होने लगा। चेहरे पर एक और ही प्रकार की सुन्दरता आ गई, जिस तरह की सांसारिक मोह में लगे हुए लोगों को प्यारी लगा करती है, आप युवक से दिखाई देने लग पड़े। यों लगे कि कोई भोला-भाला, सरल, स्वच्छ, सुन्दर तथा उच्च घराने का युवक है, जिसका शरीर सुडौल एवं बलिष्ठ है, काम-काज तथा सिपाही का काम खूब कर सकता है और सुन्दर शूरवीर बन सकता है। पर वह रंग तथा रूप जो अमृत वेला में था, अब कहीं छिपा लिया लगता है। इस सूरत में कुछ समय तक बैठे रहे। कुछ बूंदा-बांदी बंद होने लगी, इतने में एक रुहेला पठान घोड़े पर चढ़कर आ निकला। दूर से घूरकर देखा कि कौन अकेला शिला पर बैठा है, देखते ही उसके चित्त ने भय खाया और एक कंपकपी-सी शरीर में हुई। फिर धीरे से घोड़े को इधर लाया पर डरता-डरता। जब डील डौल देखा तो दूसरा भय पैदा हुआ कि कहीं शस्त्रधारी न हो, तब ऊंची आवाज़ से बोला, 'तू कौन है'? पर सृष्टि को बोझ दूर करने वाले कौतुकहार जी चुप रहे। तब उसने पास आकर पहचाना कि कोई मार्ग भूला पथिक है, तगड़ा युवक है, यदि पकड़कर ले चलें तो अच्छा 'दास' बनेगा।

हे कर्तार! इस पृथ्वी के जीवों के हृदय कितने काले हो जाते हैं, पाप करते-करते कैसे अन्धकार में पड़ जाते हैं, जो तुझे तथा तेरे अपने को भी नहीं पहचानते। कितना काला हृदय है जो जगत के उद्धारकर्ता को दास बनाने के लिए सोचता है। क्या इस तरह का हृदय दग्ध नहीं हो जाता? पर हे कर्ता कर्तार! तूने जीवों को स्वतंत्रता प्रदान की है, तू अपना दान कब किसी से छीनता है? अपनी इस बुद्धि तथा बुद्धि की स्वतंत्रता से चाहे कोई देवता बने चाहे पापी।

हृदय कांपता है, कलेजा बैठता है, सोच मस्तिष्क से बावली होकर पल्ला छुड़ाती है कि हाय! ऐसे प्यार के स्त्रोत जगत रक्षक की शान में यह बातें सुनें? पर धन्य वह कोमल हृदय था जिसने हमें छुड़ाने के लिए अपने ऊपर बन्दी तथा चक्की पीसने का बोझ सहन किया, और कौन है जो इस तरह का प्यार कर

सकता है?

उधर देखो दुष्ट रुहेले ने घोड़े से उतरकर प्यार पुञ्ज को कलाई से पकड़कर कहा है : 'मेरे पीछे चल, तू मेरा दास हो गया है, खबरदार'।

गोबिन्द रूप गुरू नानक का रंग नहीं पलटा, भृकुटियों पर कोई बादल नहीं छाया, उसी तरह जुड़े तथा प्रसन्न मस्तक से चल पड़े हैं। पाप तथा दु:ख का कैदी निरंजनी ज्योति को पीछे लगाकर चलता है और वे उसके पीछे उसी तरह चुपचाप चले जा रहे हैं, जिस तरह अचल बैठे थे।

कौन जा रहा है? गुरू नानक प्यारा, अपने शरीर को बेचने के लिए जा रहा है। कौतुकी के कौतुक! पापी आत्माओं के लिए 'पुण्य का पुञ्ज' पापियों के पीछे जा रहा है। रोगियों के गन्दे घर में वैद्य, रोगी बनकर चला जा रहा है। रुहेला पठान, सतगुरू जी को अपने घर में ले गया, उसकी पत्नी देखकर चकित हुई, कहने लगी, यह तो कोई सुन्दर तथा तगड़ा युवक है, कहां से पकड़कर लाया है?

रुहेला – बीवी! इस दास का काफी मूल्य मिलेगा, आज अच्छा शिकार मिला है।

पत्नी– खां जी! इसे बेचो मत, घर में ही रखो, देखो तो सही कितना सुन्दर लगता है, इसकी मां रो–रोकर व्याकुल नहीं हो जायेगी? इसकी बहन रुदन करती–करती बेहोश न हो जायेगी? इसकी पत्नी विलाप करती हुई मर नहीं जायेगी क्या? जिनके घर का यह हीरा खो गया है वह सारे हीरा न चाट लेंगे? इसका चहरा देखकर तो मन चाहता है कि इसे इसके प्यारे बन्धुओं के पास पहुंचा दें और पाप न करें।

रुहेला – हिश मूर्ख! अपने व्यापार का सत्यानाश करती है? इसके मूल्य में तो ईराकी घोड़े मिलेंगे। तू कायर दयावान कहां से हो गई?

पत्नी – चलो न सही, पर बेचना मत। देखो तो कितने कोमल हाथ हैं, ये दासता में न जाने किन दुखों के मुंह में आयेंगे, इसे अपने घर में ही रखो और अपना पुत्र बना लो।

रुहेला – चुप मूर्ख, इसे अवश्य ही बेचना है और घोड़े लेने हैं। दूसरी सुबह को वाहिगुरू का प्यारा मंडी में बिकने गया। जिन अत्याचारियों की पृथ्वी पर आकर डेरा डाला है, उन अत्याचारियों के अत्याचार सहन करके स्वाद लेता है कि इस 'भूमि रंगावलि' को अत्याचारी मनुष्य ने 'विष भरा बाग' कैसे बना रखा है, हां मनुष्य है जिसने सुन्दर बाग को विष भरा वन बना दिया है।

मंडी में खरीदारों की भीड़ आ लगी, सारे इधर ही देखने लगे। ज्याद–से–ज्यादा मूल्य पड़ने लगा, अन्त में दो ईराकी घोड़े मूल्य पड़ा तो रुहेला विनिमय करके ले गया। ईश्वर की आज्ञा में चलने वाली प्यारी ज्योति, ईश्वर के द्वार की प्रेम–मूर्ति

और ईश्वर के प्यार का ज्येष्ठ फल श्री गुरू नानक आज–

"मुल खरीदी लाला गोला मेरा नाऊ सभागा"।।

सचमुच दास होकर चला है और प्यारे प्रियतम वाहिगुरू को प्रसन्न करने के लिए 'आप विचाई' (अपने–आपको विक्रय करना) को अक्षरश: पूरा कर रहा है। दिल को थाम लेना! सतगुरू नानक बिक हो गया है। जन्मसाखी में इस प्रकार लिखा है:–

"ओह रोहेला श्री गुरू जी को बेचण वास्ते लै गिआ... ते गुरू नानक जी उन्हां नू तारन वासते उस देश विच आये ते अपने आपनू विचावण वासते.... तां ओह रुहेला गुरू जी नू वेचण लै गिआ, दोड़ि घोड़े वह लै गिआ"।

'गुरू नानक सूर्योदय' में इस तरह लिखा है:–

तिह तारन हित कृपा निधाना।
चले बिकन तब संग पठाना।
एक मुगल सों मोल चुकावा।
दो घोड़े लै घर में आवा।

आह प्यारे! दु:खियों के दुखों का हरन करने के लिए निरंजनी ज्योति ने अपने–आपको बिकवा दिया। सृष्टि के साथ इतना प्यार कौन कर सकता है? कौन है जो दुखियों के दु:ख दूर करने के लिए स्वयं रोग को अपनी ओर खींचता है। कौन है जो सारा स्वतंत्र होकर बन्दीगण को स्वतन्त्र करने के लिए स्वयं बन्दीगृह में पड़ता है । जिस सतगुरू के एक रोम के तुल्य करोड़ ब्रह्माण्ड नहीं तुल सकते, वह सतगुरू सृष्टि के प्यार में घोड़ों के बदले में बिकता है।

३. मुक्ति

पूरे का कीआ सभ किछु पूरा घटि वधि किछु नाहीं ।।

(सलोक वारां ते वधीक महला १–१३)

अब कौतुकी सतगुरू जी अपने नये ठिकाने पर पहुंचे :– एक बड़ी चारदीवारी थी, जिसमें कई स्थानों पर वाटिकायें थीं और कई स्थानों पर मकान थे। मालिक के लिये एक सुन्दर निवास स्थान था। जब घर में आये हुए नये दास का पता चला और उसके भोलेपन और सुन्दरता की धूम मच गई तो स्वामिनी ने बुलाकर देखा कि सुन्दर है, तब पति–पत्नी ने यह मंत्रणा की कि सुबह स्नान के लिए यह पानी लेने जाया करे, और कोई काम न करे।

आश्चर्य की बात है कि इतने पत्थर–हृदय लोगों के लिए सुबह स्नान करने की क्या आवश्यकता थी? पर कारण और घट रहा था। उस समय कई एक लोग

फकीरों की गद्दियों पर थे, धीरे-धीरे बड़े अत्याचारी हो गये थे। एक ओर इन्हें इनके अनुयायी तथा चेले उपहार ले लेकर शीश झुकाने के लिये आया करते थे, दूसरी ओर यह लोग इर्द-गिर्द के ग्रामों में से सबल भूमि-कर प्राप्त करते थे और तीसरी ओर दूत तथा सवार छोड़ दिया करते थे जो सड़कों मार्गों से धन-मान छीनते तथा लोगों को पकड़कर लाते थे। इस प्रकार के अद्‌भुत चित्र स्थान-स्थान पर दिखाई पड़ते थे। यही कारण था कि इस अद्‌भुत स्वामी को सुबह उठने तथा स्नान आदि करने की आवश्यकता होती थी, जिससे धर्मी होने का तमाशा बना रहे। इस कार्य के लिए मुल्ला लोग मुसलमानों में और घूस के लिये ब्राह्मण लोग हिन्दुओं में आपका यश करते थे कि यह बड़े भारी पीर तथा करामाती फकीर हैं। इस करामाती सूरत की आजीविका के लिए सुबह उठकर स्नान के कार्य में जिस सेवा की आवश्यकता थी। उस फांसी का जाल बिछाना गुरू बाबा के अर्पण किया गया, जिस पर आपने उच्चारण किया है:-

हरणां बाजां तै सिकदारां एना पड़िआ नाऊ।।
फांधी लगी ज़ाति फहाइनि आगै नाही थाऊ।।

(वार मलार महला २)

कर्तार की प्रकृति कर्तार की आज्ञा में है, भला प्रकृति यह कब सहन कर सकती थी कि कर्तार की ज्योति में से प्रकट हुए ज्योति स्वरूप श्री गुरू नानक देव जी जल उठाते फिरें? जिस आज्ञा ने आकार किये निर्माण किया, उस आज्ञा के मण्डल के निवासी गुरू नानक जी पर किसकी आज्ञा चल सकती थी? प्रकृति के उस अचल सदाचारी नियम ने वेग धारण किया और आज्ञा हो गई कि इस नगर का जल सूख जाए। जब गुरू बाबा जी सवेरे जल लेने के लिये गये तो कुएं का जल सूख गया, गुरू बाबा जी वापिस लौट आये कि कुएं में जल नहीं है। जब दूसरे कुएं पर गये तो जल वहां पर भी नहीं था। प्रत्येक कुएं की खोज होने लगी, पर जल कहीं भी न रहा। सूर्योदय होते ही सारे नगर में हलचल मच गई। कवि बाबा गणेश सिंह जी ने 'गुरू नानक सूर्योदय' में इस व्याकुलता का समाचार इस प्रकार बताया है:-

शोर परियो तब सगरे देश, रहयो न कहूं नीर को लेश।
आपस मैं सभ करैं बरवाना, इह क्या अजरज भइओ महाना।
काल निसा जल भर सब सोये, सूक्यो आज न कितहूं जोये।
मुरव मलीन उपज्यो अति त्रासा, तजी सभी जग जीवन आसा।
बढ़ी देश में चिंत विशाला, तां मैं श्री गुरू रहे खुशाला।
जांहि नाम भव मिटैं कलेशा, तांहि होइ किम दुरव की लेशा ।।२०।।"

जल तो अभी थोड़ा बहुत लोगों के घर में था, पर एकाएक आगे के लिये सूख जाने की निराशा ने कमर तोड़ दी थी, चकित हो रहे थे। जीव-मात्र दुःखी

थे पर श्री गुरू जी उसी तरह आनन्दित तथा गद्गद्। यह बात कई एक बुद्धिमान पुरुषों की दृष्टि में पड़ी, उन्होंने मिलकर मालिक को जाकर कहा कि भाई सारा संसार हल्दी की भांति पीला हो रहा है, पर तेरा नया दास पूर्ववत् लाल है। इस जल के सूखने तथा उसके प्रसन्न रहने तथा भयभीत न होने में कोई गहरा रहस्य है, जिसे जानना आवश्यक है।

स्वामी ने स्वयं भी देखा कि जिस समय से आया है, इसके ऊपर एक ही रंग है। नया पकड़ा गया था, इसके चेहरे पर चिन्ता भी दिखाई नहीं पड़ी। दासता के भय ने भी भयातुर नहीं किया और जल न मिलने के सांझे दु:ख ने उदास नहीं किया। अवश्य ही कोई कारण है।

सांयकाल को गुरू बाबा को जल की खोज करने की फिर से आज्ञा हुई, पर जल के प्रबन्ध वाले अटल आज्ञा के बांधे हुए जल का आकार दिखाने के लिये वर्जित किये गए थे, जल मिलता तो कहां से मिलता? जिस आज्ञा के अनुसार प्रकृति के अटल भिन्न प्रकार के आकार तथा सामान का निर्माण करते हैं, वह आज्ञा वर्जित करने वाली आज्ञा दे चुकी है, जल कैसे साकार स्वरूप दिखाई पड़े। जब घना अंधेरा हो जाने के पश्चात् गुरू बाबा जी वापिस लौट रहे थे तो घमण्डी स्वामी खड़ा होकर देख रहा था; चारों ओर अन्धकार था पर गुरू बाबा के चारों ओर प्रकाश था। तब स्वामी ने क्या देखा कि गागर भी सिर से ऊंची-सी है, मानो गुरू जी ने उटाई ही नहीं हुई। अब तो उसका जो शेष धैर्य था वह भी टूट गया, कुछ भय-सा छा गया, रोमों में कुछ कम्पन-सा हुआ, आंखों के आगे अन्धकार के चक्कर से घूमने लगे। इतने में गुरू बाबा जी पास आ गये, मीठे तथा प्यारे कण्ठ में से राग-भरी आवाज़ निकली, कि 'जल तो किसी स्त्रोत तथा कुएं में भी नहीं'। स्वामी कोई उत्तर न दे सका; और कांपा और दूसरे ही क्षण चक्कर खाया, ऐसा लगा कि कोई ज़बरदस्त शक्ति सिर को नीचे कर रही है। दूसरे क्षण में गुरू बाबा के चरणों में गिर पड़ा और कहने लगा, 'हे किसी परोक्ष कला के स्वामी! क्षमा कर और ईश्वर से क्षमा करवा दे! मैं मूर्ख हूं और समझ नहीं सकता कि यह क्या खेल है। तू कोई कलाधारी है जिसकी मैंने अवज्ञा की है और मुझे यह फल मिला है।'

गुरू बाबा ने अपने चरण दूर हटाकर कहा, 'तेरी आज्ञा में तो सारे हैं, खिज़र (जल का देवता) को आज्ञा दे, कि जल भेजे।

स्वामी – मेरी आज्ञा में मेरे ऐसे ही तृष्णालु जीव हैं, खिज़र मेरी आज्ञा कहां मानता है?

सतगुरू जी – फिर यदि जल पैदा करने की शक्ति नहीं तो इन्द्रजाल बनाकर सृष्टि को यह क्यों बताया कि तेरी आज्ञा में सब कुछ है, इससे तेरा मन कैसे सन्तुष्ट रहता है और सुखी होता है?

स्वामी – शैतान ने कुछ पर्दा–सा डाल रखा है।

सतगुरू जी – बाहर से आने वाला शैतान कभी किसी ने देखा है? शैतान तो अपना ही मन है।...अपने दोष दूसरे के सिर लगा देने से जीव का दु:ख कम नहीं हो सकता।

स्वामी (घबराकर और चक्कर खाकर)– क्या शैतान कोई वस्तु नहीं?

सतगुरू जी – जो कुछ तू नहीं था, तू ने वह कुछ बनकर दिखाया, यह कर्तव्य शैतान का था।

यह सुनकर सतगुरू जी एक पत्थर पर बैठ गये और वह दोषी अब घुटने टेककर सामने जा बैठा और कहने लगा– "शैतानों वाले काम तो मैंने किये, पर प्रेरणा करने वाला शैतान नहीं था क्या?"

सतगुरू जी – तेरा अपना लोभ, तेरी अपनी बुरी वासना, तेरा क्रोध, तेरा अहंकार, ये सारे तेरे प्रेरक थे, बाहर से कौन तेरी गर्दन पकड़ता और अन्दर घुसकर कौन चाबी घुमाता था? .... भला यदि तू शैतान को अलग समझता है तो भी तुझ पर दु:ख है। जो शैतान के कर्तव्यों का तू कारण बना।

दोषी – है तो इसी तरह, पर ....

सतगुरू जी – पर काहे की, तू यदि अपने उच्च अस्तित्व पर रहता; अपने धर्म को पहचानता, तू अब की अपेक्षा देखने में चाहे गरीब दिखाई देता पर अन्दर आत्मा में बलवान् होता। तेरे अन्दर जो ज्योति जगमग कर रही थी, वह तेरी ही उत्पन्न की हुई परत के नीचे न दब जाती।... तूने आप ही अपने साथ शत्रुता की है।

दोषी– अब... अब मैं क्या करूं ?

सतगुरू जी (उसी वेग में)–तूने निर्दोषों को कैद में डाला, पशुओं की भांति धन लेकर बेच दिया। मूक पशुओं को पकड़कर तूने धोबी के वस्त्रों की भांति पटका। धर्म के खोजियों को कुपथगामी बनाकर अपने दास और पाप–कर्मों के सहायक बनाया। साईं की स्मृति वालों को तूने कैद में डाला; तुझ पर कर्मों का उल्टा चक्कर क्यों नहीं चलेगा। तू समझ ले कि तेरे चलाये हुए बाण चले ही जा रहे हैं, वे अगम्य में दूरी को चीरकर अन्त में तुझे ही आकर लगेंगे। दूरी की यात्रा किसी बंधी हुई सीध में नहीं, पर चक्राकार है। तू ने जो दु:ख के बाण चलाये थे वह चक्कर खाकर आ रहे हैं और चलाने वाले को बिंधने वाले हैं।

दोषी – क्या मेरे लिए कोई उपाय नहीं?... मैं पापी तथा दु:खी हूं ... मेरे पीछे सारा नगर दु:खी है ..... क्या मेरे पर कृपा हो सकती है? ... नहीं ? अच्छा जो दण्ड आप देना चाहते हैं, सो दीजिये।

सतगुरू जी – तेरा नगर तेरे साथ ही तेरे जैसा कठोर चित्त हो गया है। जो

तेरे अधीन थे, उन्हे चाहिए था कि वे कृपा का रूप और सुखदाता बनते, तूने अपने साथ उन्हें भी डाकू तथा बरदाफरोश (दासों को बेचने वाला) बना लिया। तेरा बोझ भारी तथा कठोर है।

गुरू बाबा की तीक्ष्ण, चीर देने वाली दृष्टि तथा आज्ञाभरी पर अचल भय से भरी हुई आवाज़ उसकी आत्मा के किवाड़ खोलकर अन्दर घाव कर रही थी। उसके ऊपर एक प्रकार का भय-सा छा रहा था और सारे शरीर में कम्पन-सा हो रहा था। कर्मों-तथा किये हुए कर्मों- के समूह खड़े थे और वह अपने-आपको दोषों के सामने एक हत्यारे की भांति खड़ा होकर देखता था। गुरू बाबा ने न जाने कौन-सी कला दिखाई कि उसका सारा चक्कर ही उलट-पुलट हो गया था। घर में तथा आसपास समाचार फैल गया कि नये पकड़कर लाये गए के आगे स्वामी जी झुके बैठे हैं। यह समाचार सुन-सुनकर लोग आ रहे थे, इकट्ठे होते जा रहे थे और गुरू बाबा की आज्ञा सुन रहे थे। और सभी - कुछ कांप रहे थे और कुछ चकित हो रहे थे।

दोषी (सवामी)-हे जगत राय! कृपा करके क्षमा करना!

सतगुरू जी -हे नीचे अग्नि जलाकर अटारी पर सोने वाले! बन्दीखाना खोलकर निर्दोषों को मुक्त कर दे और नगर में जितने दास, बांधकर लाये हुए अथवा क्रय करके लाये गये हैं, उन्हें छोड़ दे। ताज़े पापों से झटपट छुटकारा पा। लूट का जो माल है, लोगों के घरों मे उसे पहुंचा दे, अन्यथा निर्धनों में बांट दे और ठगी द्वारा जो कुछ चेलों ने ठगा है वह भी लौटा दे, निर्धनों को दे दे! हां, और कह दे कि मेरे देश में दासता और अत्याचार नहीं रहेगा।

इस ज़ोरदार आज्ञा-भरे वाक्य को सुनकर सबके सिर झुके, नि:श्वासों तथा पश्चात्तापों की एक दु:ख-भरी चीख से खिंची हुई एक आह का शब्द निकला और 'बहुत अच्छा' एक गूंज में सुनाई दिया।

उसी समय उल्काएं आ गई, वह देखो वाहिगुरू का 'मूल खरीदी लाला गोला' कारावास की ओर जा रहा है। जो आप बन्दी में पड़ा था, बन्दीखाने खुलवाकर बन्दियों को मुक्त करवा रहा है। जो बिक रहा था, बिके हुओं को अपनी अमूल्य आज्ञा द्वारा, अमूल्य कृपा प्रदान कर रहा है। देखो: जो वर्षों से जकड़े पड़े थे वे मुक्त हो रहे हैं। हां जो मुक्त होता है, वह अपने बन्दी से छुड़ाने वाले की ओर देखता है, धन्यवाद से टूट पड़ता है, चरणों पर गिरता है और यह आशीर्वाद लेता है, 'कर्तार चेता में आये'।

वह देखो अति सुन्दर डील का एक व्यक्ति छुटकारा पाकर निकलता है, बन्दीगृह से मुक्त कराने वाले की ओर देखता है, देखता क्या है चौंकता है और कहता है-

गुरि मिलिऐ मिलि अंक समाइआ।।
करि किरपा घरु महलु दिखाइआ।।
नानक हउमैं मारि मिलाइआ ।।४।।९।। (गऊड़ी महला १)

फिर चरणों से इस तरह लिपटता है कि उन्हें छोड़ना ही भूल जाता है।

इसके मुंह[1] से नानक नाम का निकलना ही था कि बिजली चमक गई। सभी कहने लग पड़े सत्य है यह तेज पीर बाबा नानक का है। नानक पीर (गुरू) का पता चलना था कि दोषियों के त्रसित हो चुके और दुखियों के वैराग्यपूर्ण दिल और पिघल गये। अब तो दोषी श्वास ले-लेकर रोने लगे – "हमने ईश्वर के भेजे हुए बाबा नानक का अपमान किया है"। पहले तो भय हो रहा था कि न जाने कोई अवतार अथवा देवता आया है, पर अब जबकि नाम पहचाना तो समझने लगे कि गुरू आया है। क्योंकि इस बात की सूचना तो सारे देशों में फैली हुई थी कि गुरू नानक नामक कोई महापुरुष प्रकट हुआ है।

४. सुधार

सतगुरू बाबा ने अब शहर का दौरा किया, प्रत्येक घर के दासों को मुक्त कराया। बाबा ने दासता का क्या कौतुक खेला था; सारी दासता की जड़ ही समाप्त कर दी। आधी रात को मुक्त होकर सतगुरू ने बड़े दोषी के घर में विश्राम किया। 'आज्ञा' अब जल को कुओं में ले आई, सारा नगर सुखी हो गया।

अब उस दोषी, जिसे बाबा गणेश सिंह ने 'मीर' नाम से लिखा है, ने आज पहला दिन था कि सचमुच स्नान किया और सचमुच ईश्वर के दरबार में रोया। दिन चढ़ने पर फिर गुरू बाबा ने सबको सत्य का उपदेश दिया, भक्ति दान दिया, सबके शरीर में से प्यार का कम्पन लहरा दिया। वे जो कल पापी थे आज प्रेम के मार्ग पर चल रहे थे। जैसा कि लिखा है:

पग पाहुल पुन दीनि क्रिपाला।।
कीने सगले लोग निहाला।।
नाम दान सच्च धर्म दृढ़ावा।।
पाप कर्म सभ ते छुटकावा।।
धर्मशाल बनवाई सुन्दर ।।
बैठत भए तहां गुन मन्दिर ।।

---

१. भाई हरा जो पंजाबी का निवासी था और मार्ग मे जाता हुआ इन्होंने पकड़ लिया था, बन्दीगृह में भी सतगुरू का स्मरण करता रहा और प्रत्यक्ष देखा कि सतगुरू इहलोक तथा परलोक में सहायक है, यहां का और वहां का त्राणकर्ता है।

श्रद्धा जुति सेवन सब लागे।।
गुर चरनन मैं करि अनुरागे।।

फिर लिखा है कि गुरू जी ने मीर को एक बड़ा ढेला उठाने को कहा, और देखो :–

जबै मीर वह ढीम उपारी ।।
निकस्यो तहां खजाना भारी ।।

गुरू बाबा ने यह बताया कि देख जिस धन के लिये तुम पाप करते रहे हो, वह ससुरी क्या वस्तु है। माया कर्ता की आज्ञा में चलती है, उस आज्ञा करने वाले के साथ प्यार करो। आज्ञा में जो धन मिले उसे सफल करो, और अत्याचार के साथ इकट्ठी न करो। सिख पथिक भिखारी जो भी आये, उसे पकड़ना मत, प्रत्येक प्रकार की सेवा करना। एक बड़े से भवन को धर्मस्थान बना दिया गया और उस स्थान पर सत्संग का प्रवाह चला दिया। आने-जाने वाले परदेशियों के लिये साथ ही एक कुटिया की तैयारी हो गई। इस तरह मनुष्य मात्र के एक भारी दुखदाई गढ़ को उखेड़कर और दुख देने वालों की एक भारी छावनी को केवल नम्रता, गरीबी, आपा न्योछावर करने, प्रेम तथा सच्ची आज्ञा के बल द्वारा जीतकर चल पड़े। देखो जहां पर बाबा बन्दी बनकर आया था, वहां पर सबको वाहिगुरू की कैद में डालकर चल पड़ा है। जोर से कैद में डाला गया, सबको जोर-अत्याचार से निकालकर अहं तथा पाप के बन्धनों से निकालकर प्रेम के बन्धन में बांधकर चला है और नाम की रत्ती दान में देकर चला है।

५. मिलाप

लाला गोला धणी को किआ कहऊ वडिआईऐ।।
भाणै बखसे पूरा धणी सचु कार कमाईऐ।।
बिछुड़िआ कऊमेलि लए गुरु कऊ बलि जाईऐ।।३।।

(मारू महला १ असटपदिया)

जिस टीले पर से सतगुरू जी रुहेले के हाथों पकड़े गये थे अब फिर वहीं आकर बैठ गये, वही रुहेला फिर वहां से होकर गुज़रा तो उसने पहचान लिया। उसने समझा "मैं इसे जहां पर बेचकर आया था, वहां से भागकर आ गया है। चलो आज फिर पकड़कर ले चलें। चल कर बेच दें। दो और घोड़े इसके बदले मिल जायेंगे।" इस रुहेले का यही व्यापार था। मार्ग में जब कोई परदेशी मिलता तो उसे बांधकर ले जाता और बेच देता। उस पार वाले नगर को तो सतगुरू जी साफ कर आये थे। डाकुओं, मनष्यों को पकड़ने वालों और धर्म की आड़ में पाप कमाने वालों का विष झाड़कर उन्हे सुखदाता बना आये थे पर यह पापी अभी शेष था,

सो आज फिर इसे शुद्ध करने के लिये उसके पीछे चल पड़े[१]। जब उसके घर आये तो उसकी पत्नी ने पहचाना, देखा। इस समय बाबा अपने आत्मिक तेज में दमक रहे थे। रुहेली का देखना क्या था, सूर्य-मण्डल पर दृष्टि जमाना था। दृष्टि फिर गई और एक गहरे भय का प्रभाव ले गई, कँपकँपी और त्रास खाकर 'हाय-हाय' करने लगी। रुहेले ने पूछा : 'क्या हुआ?' तो वह कहने लगी कि 'देख तो सही, तू किसको पकड़कर ले आया है? देख यह आदमी कौन है? यह तो मनुष्य के शरीर में कोई देवता है, तू जो इसे दोबारा पकड़कर लाया है, इससे तूने अपने लिये नरक की अग्नि तैयार की है। भला हो यदि क्षमा मांग ले।' रुहेले ने कहा, 'कहीं बावली तो नहीं हो गई?'

रुहेली कहने लगी – ज़रा नज़र भरकर चेहरे की ओर देख तो सही और ज़रा होश तो कर, सोच, जो बार-बार उसी स्थान पर आता है, तेरी कैद तथा बिक्री से डरता नहीं, वह क्या मनुष्य हो सकता है? यह बात कुछ चुभ-सी गई। रुहेले ने नज़र भरकर देखा तो क्या देखता है कि एक प्रकार के तीक्ष्ण प्रकाश की किरणें सतगुरू जी के शरीर के चारों ओर चक्कर लगा रही हैं और इस प्रकार तेज की वर्षा चारों ओर बरस रही-सी दीखती है कि मानो कोई बिल्लौर चमक रहा है। हां, ऐसे तेज़ से पापों के ढेर जल उठे। देखते ही रुहेले की चीख निकल गई, विह्वल होकर चरणों पर गिरा और कहने लगा, 'हे सौंदर्य ही सौंदर्य, सम्पूर्ण सौंदर्य,... हैं...हे सौंदर्य...'।

सतगुरू ने बड़े तेज-भरे स्वर में कहा-हे पावों पर कुल्हाड़ा मारने वाले, चतुर! जितने जीवों को तूने बन्दी बनाया है उतने ही बन्धन तेरी अपनी आत्मा के चारों ओर पड़ते गये हैं। तू अब कैद में है और कैद से छूट नहीं सकता, जब तक जीवन-पर्यन्त ईश्वर की याद में न लगे। तेरे छुटकारे की एक ही औषधि है, बता, वह तुझे स्वीकार है?

रुहेला-हे प्रकाश ही प्रकाश! क्षमा कर! जो कुछ तू करवायेगा, मैं वही करूंगा, मैं तो बुरा तथा नीच हूं? तब सतगुरू जी ने अनुकम्पा की और वह रुहेला शिष्य बना और उसने:-

तज्यो कुकर्मन को जु सुभावा।
सेव बन्दगी मैं चित लावा।
नाम दान इसनान दृढ़ाई।
तिहते गमन कीन जगराई।

जगत् की पीड़ा को हरने वाला, आप पीड़ा में पड़कर पीड़ा का सिर फोड़ देने

---

१. बाले वाली जन्म साखी में सतगुरू जी का तीन बार यह कौतुक करना लिखा है और बाबा गणेशा सिंह जी ने सात बार ऐसा करना लिखा है।

वाला, कोमल परन्तु अचल हृदय वाला प्यारा सतगुरू फिर उस टीले पर आकर बैठ गया। वह जो कौतुक था, जो सारे शरीर के सुख न्योछावर करके दुखियों को सुखी बनाने का असीम प्यार था, सतगुरू उसे बांट आया था। आधी रात के समय आत्मिक नाड़ी को पहचानने वाले सतगुरू जी ने जो रोने की आवाज सुनी थी, उसे अब प्रसन्नता से बदल आया था। नाम का एक रसिक 'भाई हरा' बन्दीगृह में था, उसकी सुरत नाम के तार में गुथी हुई होने के कारण उसके दुःख का आकर्षण ब्रह्माण्ड को हो रहा था, 'जनता के दुखी होने से' नन्दलाल जी ने लिखा है कि 'कर्तार दुःखी होता है' और हां 'हरि हरि जन दुइि एक है', हरि के जन का दुखी होना वाहिगुरू की आज्ञा वाले मण्डल में आकर्षण डालकर छुटकारे की आज्ञा को क्यों न खींच लाये। प्यारे सतगुरू ने इसीलिये उन रुहेलों तथा मीरों मुगलों को चलते समय सद्उपदेश देकर खास चेतावनी दी :-

आवे यहां जु सिख हमारा।
सेवा करनी तिह हित धारा। (गुरू नानक सूर्योदय)

सिख वह है जो वाहिगुरू के तार में अपनी सुरत को गुँथ चुका है, वाहिगुरू जी के एक सूत्र में पिरोये हुए मनके को जब आकर्षण होगा तो सारी माला खिंचेगी, सो सतगुरू वैद्य ने नाम के रसिक को प्रत्यक्ष मुक्ति दी और बन्दियों को भी पापों से मुक्त कराया और सारे कार्य सिद्ध करके फिर अपने सुख स्वरूप में आकर वहां पर ही डेरा डाला। वही पहले वाला तेज का प्रकाश फैल गया, वही वेग का आनन्द आकर झूलने लगा। उस गुरू जी के चरणों के भंवरे मरदाने की भी, जहां पर वह था वहीं पर आकर्षण हुआ, उसके अन्तस को प्रेम ने मार्ग बताया, उस अदृष्ट पर मन के झुकाव से रुख बदलने वाले प्रभाव ने पैरों को मार्ग बताया। जैसे उसे यह नहीं मालूम था कि वह कहां जा रहा है वैसे वह बेमालूम चल पड़ा, पर वहीं पर आ पहुंचा। जब दूर से देखा तो भागकर आया और चरणों के साथ लिपट गया, रोते-रोते हिचकी बंध गई और शरीर पसीना-पसीना होकर तथा पुलकित होकर, मरदाना असीम प्रसन्नता से बेसुध-सा हो गया। सतगुरू जी ने पीठ पर हाथ फेरा, प्यार किया और पास बैठाकर कुशलता पूछी।

मरदाना - मैं तो आरम्भ ही से भूला हुआ हूं, आपके द्वार का भिखारी हूं, क्या पूछूं और क्या कहूं, जो आपकी आज्ञा थी, वही हुआ, मुझे तो कोई सुध ही न रही, रात दिन वैराग्य में ही रहा हूं। किसी समय दर्शन होते थे और किसी समय दीदी जी दहलीज पर बैठी मार्ग देखती 'भैया भैया' कहती दिखाई पड़ती थीं। इसी तरह दिन व्यतीत हो गये, आज मन को आकर्षण हुआ और आपने बुला लिया है, अपने-आप मिला लिया है। हे निरंजनी ज्योति! तुम्हारी तुम ही जानो। मुझे दान दो कि तुम्हारी आज्ञा में रहूं, भूलूं न, यदि भूलकर भी बैठूं-मेरी बुद्धि तुच्छ है-सो तुम मुझे सदैव अच्छे लगो, सदैव प्यारे लगो, बस यदि तुम प्रसन्न हुए हो तो

यही दान दो, अपने इस द्वार के भिखारी को यह भिक्षा दो।

यह कहते-कहते मरदाना के नयन भर आये और वह कहने लगा—हे तारनहार दाता! मैं आपको कई बार मनुष्य समझकर आपसे लड़-झगड़ लेता हूं, मेरे अवगुणों की ओर मत देखना। यदि तुम मुझे मित्र बनाकर और आप मनुष्य बनकर अपने आंचल के साथ न लगाते तो मेरे अन्दर प्यार कहां से जागृत होता? यदि तुम ऊंचे-ऊंचे रहते तो मुझ डोम को तुम कब प्यारे लग सकते थे। जहां पर तुम्हारा निवास है वह 'सच्चा स्थान' मेरे कर्मों के इस कठोर देश से इतनी दूरी पर है, कि मुझे उसका कब पता लगना था? जब तुमने स्वयं आकर जगाया, अपने आंचल के साथ लगाया और प्यार किया, तब मेरे अन्दर भी प्रीति जागी मैं भूल भी ज्यादा करता हूं, सत्यानाश कर बैठता हूं, घबराकर विश्वास से डोलने लगता हूं, पर धन्य तुम्हारा विरद है जो तुम सदैव क्षमा कर देते हो। हे नीचों को ऊंचा करने वाले सतगुरू नानक! हे ऊंचे सतगुरू नानक! हे नीचों में आकर निवास करने वाले सतगुरू नानक! हे प्यारे, हे प्यारे! मैं बलिहारी, मैं बलिहारी, मैं बलिहारी यदि तुम प्रसन्न हुए हो तो मुझे इतना लम्बा वियोग फिर कभी मत देना। मेरे रोम-रोम में तुम्हारा जो आकर्षण है, जब तुम बिछुड़ते हो तो आकर्षण और अधिक हो जाता है, और वह मुझ से सहन नहीं किया जा सकता। कह दो न; "तू मेरा है, तू मेरा दास है, मैं तुझे कभी दूर नहीं करूंगा।" हे नीचों के मित्र! हे पतितों के यार! हे नीचों के साथी बनकर उन्हें ऊपर उठाकर ले जाने वाले ऊंचे! एक बार कह दो, 'डोम तू कभी भी मेरी दृष्टि से ओझल नहीं होगा।'

यह अति प्रेम-भरे वाक्य, 'जिसु लागी पीर पिरंम की सो जाणै जरीआ' वाले तेज अणिदार वाण की भांति चुभने वाले उस प्रेम अवतार के हृदय पर प्रभाव डाले बिना कैसे रह सकते थे? वह दैवी नेत्र बन्द थे और उन अमृत के स्त्रोतों में प्यार के अश्रु भर रहे थे। अचल बैठे हुए थे, पर प्यार सभी नाड़ियों में कंपकंपी छेड़ और प्रेम का संगीत बजा रहा था। दया के सिन्धु और विरद के प्यारे सतगुरू ने चरणों पर गिरे पड़े और रो-रोकर कह रहे, 'एक बार कह दो सतगुरू जी कि मरदाना मेरा दास है,' मरदाना को कण्ठ से लगा लिया सिर पर हाथ फेरा और कहा—'मरदाना तू धन्य है! तू धन्य है! मांग जो कुछ तू और मांगना चाहता है !!!'

प्रेमियों के प्रेम, त्याग तथा बलिदान! बलिहारी तथा न्योछावर होने की भावनाएं कितनी आश्चर्यजनक हैं? मरदाना मांग रहा था कि 'एक बार कह दे तू मेरा है' जब प्यारे ने कहा कुछ मांग, तब अपने लिए जो कुछ मांगता था, उसे भूल गया, उस प्रेम के जादू भरे हाथों के लगते ही आपा तो उड़ गया था, अब मरदाना किसके लिये कुछ मांगे? देखो प्रेम का आपा न्योछावर करने वाला रंग! कहता है, 'हे प्रसन्न हुए सतगुरू जी! दीदी बहुत बैरागी हो रही हैं जैसे कि मैं थोड़े दिन बिछुड़कर व्याकुल होता रहा हूं, वह पवित्र देवी वह सच्ची प्रकाशमान देवी,

विलाप करती है। हे भलों से भी भले! और ऊंचों से भी ऊंचे! हे सबसे अधिक प्यारे, यदि तुम प्रसन्न हुए हो तो दीदी को दर्शन दो। इस प्रकार यह आपा न्योछावर करके दूसरे के लिए सुख मांगने का सच्चा प्रेम था, यह गुरू के सिख मत की सांझा देवी; यह पूर्ण प्रसन्नता प्राप्त होने के समय अपनी झोली को हटाकर सत्संग की झोली दाता के आगे कर देना था कि अपने घर में आया हुआ दान उसमें पड़ जाये, यह प्रेम का प्रेम और ऊंचे दर्जे का भाव था जिससे सतगुरू नानक देव जी को मरदाना और अधिक मीठा लगने लगा, अपनाया गया और वाक्य हुआ : 'मरदाना! तेरा ईश्वर के स्वरूप में निवास हुआ। सत्य कर्तार, सत्य कर्तार।' पर लगी हुई समाधि से आत्म-रंग में डूबे और अब ऊंचे महारस में ऐसी निमग्नता में पहुंचे हुए मरदाना को कुछ पता नहीं रहा। दृष्टिमान में मरदाना बनकर बैठे हुए को इस रंग से बेखबरी हो गई। उस रूप में जाकर ऐसा रंग खिला कि प्रेम तथा रस में रसरूप रसिक वाहेगुरू ही जाने क्या हो गया! पर जब उस रस तथा रंग और मस्ती की मौज में से-जो देश-काल से परे निवास करती है-फिरा, तो पहला वाक्य यही था कि उस सत्संग में रंगी, सच्चे भरोसे वाली दीदी जी को दर्शन दीजिये, तब मरदाना के कानों ने आवाज सुनी, 'सत्य कर्तार, निरंकार भली करेगा।'

रात आधी हो गई थी, आकाश में तारे दमक रहे थे, मानो उस नीले फर्श पर सत्संगियों का सामान इकट्ठा हुआ बैठा दृष्टि उठा-उठाकर देख रहा है और प्रार्थनायें कर रहा है कि हे गुरू रूप चन्द! आ, अपना उच्च, बड़ा, तथा फिर हम पतितों के साथ मिलकर बैठने के प्यार वाला, तथा शीतल और सुन्दर, प्रकाश ला, प्रकाश कर कि तेरे प्रकाश में मिलकर हम भी नाम महारस पी लें। इस समय सतगुरू ने एक लम्बा, पर अति शान्त रस से भरे स्वाद वाला श्वांस लिया और कहा:-

प्रेम जीवन है,

प्रेमहीनता मृत्यु है।

हे मरदाना! सुन-

तब मरदाना ने कान लगाये, पवन में विरह का रंग छा रहा था। इस तरह धीमी चलती-रुकती और फिर चलती थी, मानों किसी गुरुमुख, गुरू के संवारे के मार्ग की अगुवाई के लिये जाती है, फिर रुककर देखती है, कुछ सुनती है कि पैरों की आहट आती है कि नहीं, फिर लौट आती है और विश्राम करती है, पर अन्दर की लालसा टिकने नहीं देती, फिर प्रतीक्षा के मार्ग पर रुमक पड़ती है। मरदाना ने भली भांति कान लगाये पर इस भाव के बिना और कुछ न समझ सका, तारे देखे तो चांद की प्रतीक्षा में लगे हुए दिखाई पड़े। तब सतगुरू जी ने धीरे से पूछा,

'सज्जन! सुना तुमने? तब मरदाना ने कहा-'हे सतगुरू! प्रतीक्षा तथा लालसा का प्रभाव दिखाई पड़ता है।'

सतगुरू जी - मरदाना! जिस पवित्र आत्मा की तूने उस दिन सिफारिश की थी, उसी की आवाज़ सुन।

जब मरदाना ने कान लगाये तो कोई आवाज सुनाई न पड़ी। अब सतगुरू ने प्यारे सिख के सिर पर हाथ रखा और कहा, 'हे मित्र! समय तथा दूरी (काल तथा देश) आत्मा के लिए कोई बाधा नहीं है, सुन।' जब मरदाना ने कान लगाये तो उसके अन्दर जो रस छाया हुआ था, उसमें थरथराहट धीमी और सुखभरी हिलोर वाली होने लगी फिर तो अति कोमल, उत्तम तथा रसभरा संगीत सुनाई देने लगा, और उस वाहिगुरू को हृदय में बसाने तथा सदैव स्मरण में लगी रहने वाली दीदी की दैवी आवाज़ को पहचाना। सफेद वस्त्र हैं संगमरमर की सी शिला पर बैठी है, सामने एक स्वच्छ सरोवर है, नेत्र मुंदे हैं, टप-टप अश्रु गिरते हैं और उस सरोवर में चमक कर जा मिलते हैं। रोम-रोम में लालसा है और किसी सरोद की ध्वनि की भांति शरीर में से संगीत उठ रहा है, जिसका आकर्षक तथा कसक शान्ति, प्यार तथा वैराग्य से भी पड़ी है। मरदाने ने सुना, आत्मसुख की लहर तीव्र हो गई, संगीत् को समझता है, और छमछम अश्रुओं की झड़ी लगाता है। जो कुछ भाव उस पर वैराग्य तथा दैवी प्रेम-भन्ति का छा जाता है, वह अकथनीय है। पर यदि कुछ समझना हो तो इस प्रकार के भावों वाला समझ में पड़ता है जो निम्नलिखित गीत[१] में अंकित है:-

हे भैया, देर हो गई है, तुमने घर का चक्कर नहीं लगाया और न ही सुख का कोई सन्देश ही भेजा है, क्या तुमने मोह के बन्धन तोड़ दिये हैं? तुम्हारे दर्शन कभी स्वप्नों में भी नहीं हुए, ध्यान भी अब हार चुका है, हे अदेशी भैया, तुम्हारी बहिन बलिहारी ! तुमने हमें क्यों भुला दिया है? भैया जी! तुम आत्मस्वरूप हो हमने तुम्हें अपना बन्धु समझ रखा है, पर तुम तो दया-रूप हो और हमारे अवगुणों को कभी भी नहीं देखते। हां हम रिश्तेदारी के अधिकार को जमाकर आप पर मान करते हैं, आपको ईश्वरीय रूप नहीं समझते और अपना करके समझते हैं, परन्तु आप सूर्य की भांति सबके सांझे हैं और सबका उद्धार करते हो, पर मैं कमल की भांति स्वार्थी हूं और इस बात का ध्यान नहीं रखती। आप क्षमा कर देने वाले हैं, हे सतगुरू! हमारी भूल को क्षमा कीजिये। अब घर को लौटिए, आप से मिलने की बहुत तीव्र इच्छा हो रही है। नेत्रों में जल भर-भर आता है, और गिर जाता है, फिर भर आता है, और फिर गिर जाता है, मैं उन्हें रोकती हूं, परन्तु यह सहन ही नहीं किया जा सकता। जब कभी कोई सुन्दर आवाज़ आती

---

१. यहां पर गीत का अनुवाद प्रस्तुत किया है।

है तो मैं बाहर की ओर भागकर जाती हूं, मैं दहलीज़ में ठिठककर निराश होकर लौट आती हूं। जो भी कोई मीठी आवाज़ आती है, मैं समझती हूं कि भैया आ गये अथवा कोई गुरू का प्यारा उनका समाचार लेकर द्वार पर आ गया है, हे भैया? मेरी दशा को तो सोचो, मैं निराश हो रही हूं, मेरा हृदय धड़कता है, मन टूटता है और मैं छमछम रोती हूं। जब ओस से भीगी हुई रात तारों को लेकर सुशोभित होती है, जब प्यारी वायु चलती है और प्यारा एकान्त आ जाता है, मैं आकाश पर देखती हूं कि ईश्वरीय छवि छा रही है, पर ईश्वरीय गायक भैया के बिना घबराकर और निराश होकर कहती हूं, हे भैया जी! मैं विलाप करती, हां अति व्याकुल होकर विरहनी की भांति तड़पती हूं। हे भैया जी ! न जाने किस विदेश में चले गये? यदि इस बात का पता चले तो किसी दास को भेज दूं जो मेरी दशा जाकर बताये। वह सौभाग्यशाली दिन कब आयेगा जब मेरे कानों में यह गुहार पड़ेगी– वह चन्द्रमुख कहे : "दीदी" और दीदी उस पर बलिहारी हो जाये उस समय अपने-आपको न्योछावर कर दूं मैं अपने भैया से व्रत, हठ तप जाप आदि सबको न्योछावर कर दूं, मैं सम्बन्धी होने के मान का त्याग कर दूं, हे गुरू! मानो मैं आपकी शिष्या हूं, मैंने भारी भूल की है, मैं अब आपसे यह शिक्षा मांगती हूं– हे पूर्ण गुरू! दान दीजिए, अपने दर्शन का दान दीजिये, मैं नीची होकर आपके दर्शनों की लालसा किये हुए आपके द्वार पर पड़ी हूं। हे दूर बैठे हुए सतगुरू ! पर आप तो हृदय की जानने वाले हैं। इस जीव को जीवन प्रदान कीजिये आप तो विरद् को पालने वाले हैं।

मरदाना प्यारे सतगुरू जी को अति वियोग के पश्चात् मिला था इस मिलाप का ऐसा रस निकला कि शरीर में निवास करने वाले गुरू ज्योति की दया का आनन्द आ गया। उस समय सतगुरू ने उसे उस दशा में पहुंचाया कि कोसों की दूरी पर बैठे हुए भक्तों की भक्ति की भावना का अनुभव करवा दिया। यह रंग-रस और आनन्द-भरे हिलोर क्या पता चलने देते हैं कि समय क्या वस्तु है? समय कोई परदा नहीं, दूरी कोई दूरी नहीं। जिन प्रेमियों ने आत्मा में ज्योति प्रकाशमान कर ली है वे मानो किसी अन्य देश में विचरते हैं और फिर कर्तार की प्रकृति का गोविन्द रूप गुरू नानक जब यह खेल करवा रहा हो। धन्य जन्म वाले मरदाना को क्या परवाह है कि मेरा ऊंचा हो चुका देखनहार आपा अब भी समय तथा दूरी के अधीन है। मरदाना के विचार में रात व्यतीत हो चुकी है, सवेरे के पक्षी चहक रहे हैं, सूर्य की लाली पूर्व की ओर छा रही है।

वह टीला है नहीं; वेई नदी का किनारा है, सुलतानपुर की सीमा है, दीदी– वाहिगुरू की संवारी हुई, सतगुरू की प्यारी, पवित्रता को पवित्र करने वाली दीदी– का गांव है।

कौतुकी, ब्रह्माण्ड की कला के रहस्यों के ज्ञाता तथा कौतुकी खिलाड़ी ने

क्या कर दिया! 'धन्य सतगुरू नानक' कहता हुआ मरदाना उठा तो सतगुरू जी ने कहा, मरदाना! आज इतना प्रेम में मस्त हुआ है कि आसा दी वार का कीर्तन भी भूल गया।

मदाना – हे निरंजनी ज्योति! मैं मूर्ख, तेरे चोज क्या जानूं, हे मेरे चोजी सतगुरू! आप ही जानते हैं, मैं, क्या जानता था कि आज दीदी जी के पास पहुंच सकते हैं? आपका इस समय यहां पर पहुंचना दीदी को बहुत ही प्रसन्न करेगा।

सतगुरू जी सुनकर मुस्कराये और फिर वाहिगुरू के नाम और रस में रंगी हुई बहन के घर में आये, अभी दहलीज से परे ही थे कि दासी ने भागकर अन्दर सूचना दी।

दीदी, जो भाई में पूर्ण सतगुरू और अपने सच्चे सतगुरू की पूर्ण भक्ति-भावना रखती थी, नम्र सिख की भांति एक पैर पर ही बाहर आई ड्योढ़ी में ही (भाई) सच्चे सतगुरू के चरणों मे झुक गई। पर उस निरंजनी ज्योति ने दीदी का सिर हाथों पर सम्भाला और कहा: बड़ी दीदी, कर्तार! कर्तार! बहन के नेत्र छमछम बरस रहे थे, भाई का आदर भी भूल रही है, सिर भाई के हाथों में है छमछम झड़ी लग रही है, सतगुरू जी कर्तार, कर्तार, कर रहे हैं और अपने आत्म-तरंगों के वेग को तीव्र करके बहन की आत्मा को वाहिगुरू जी के चरणों की शरण में समा रहे हैं। इसी तरह ही अन्दर चले गये। आप बैठ गये, बहन पास आकर बैठ गई। हृदय में वाहिगुरू के नाम की सच्ची सुगंधी, गुरू जी ने दीदी के घर में देखी। चारों ओर नाम-रंग का प्रवाह छा रहा था। दीदी के कर्तव्य पर अति प्रसन्न होकर प्रसन्न हुए और कहने लगे-

हे निरंकार की संवारी हुई दीदी! तुम्हारा परिश्रम फल लाया है, तुमने वाहिगुरू के देश में जाकर निवास किया है, हे दीदी! हमको अभी निरंकार के कार्य करने हैं, तुम ईश्वर की स्मृति में रहो, स्मरण सर्वोच्च देन है। प्रेम का यह प्रकाश है यह प्रकाश प्रेम में लीन हो जाता है, प्रेम आप निरंकार है।

इतने में जीजा जैरामदास आ गये, अति प्यार-सहित चरणों पर झुके तब सतगुरू जी ने सिर संम्भाल कर कण्ठ से लगाया और कहा : 'कर्तार तुम्हारी सहायता करे, कर्तार लौ लगवाये, कर्तार तुम्हारा प्यार निभा दे।'

क्षण-भर में समाचार फैल गया, जो-जो सिख सतगुरू के प्यारे निकट-दूर थे, आ इकट्ठे हुए। दीदी चाव-आनन्द में थी, पर सच्चे सतगुरू ने अखण्ड कीर्तन का एक ही चाव पसन्द किया। सतगुरू जी तो चलने के इच्छुक थे पर प्रेमियों के प्रेम के कारण एक रात ठहरे। सो दीदी के घर पर सत्संग वालों का मेला-सा लग गया। अखण्ड कीर्तन ऐसा लगा कि सारी रात इसी रंग में व्यतीत हो गई। मरदाना के रबाब, सतगुरू जी की वाणी तथा प्रेमियों के कीर्तन का ऐसा

ठाठ बंधा कि जो भी देखने के लिए आया सिख बनकर वापिस लौटा। एक दिन और एक रात दीदी के घर में इस तरह रहते हुए प्रतीत हुए। अब मरदाना ने नैन खोले तो क्या देखता है कि उसी टीले पर बैठे हैं और ठण्डी-ठण्डी पवन चल रही है और तड़के का सफ़ेद प्रकाश फैल रहा है।

सूचना - रूहेलखण्ड से लौटकर न जाने किन मार्गों पर चले और क्या-क्या परोपकार किया। अन्त में शनै:-शनै: देश को लौटे। पहले जैसे कि परिवार तथा प्रेमियों को वियोग विह्वल कर रहा था और लालसा हो रही थी, उसका समाचार आगामी कथा में है।

□ □

४१ देश में आगमन

१. गुरू का सिख

आश्विन अपने अन्त पर है। पंजाब की नदियों का जल कम हो चुका है। वह वर्षा ऋतु वाली उमड़ती हुई लहरें, जो मीलों तक उछलती थीं। अपने-आपको समाप्त कर चुकी हैं। जहां बल्लियों पानी चढ़ आया था, वहां अब थोड़ी-सी आर्द्रता शेष है। सरकण्डों तथा काही के वनों के वन उपजे खड़े हैं और किसी ने सफेद तो किसी ने लाल रंग के फूल खिलाये हुये हैं, मानो नदियों के दोनों ओर प्रकृति के अपने बाग खिल रहे हैं। बीच में कम पानी की धारा ढलती हुई आयु की गम्भीरता के वेग की भांति बह रही है। जल नीचा हो गया है और साथ-ही-साथ शीतल भी हो गया है। शीतल ही नहीं निर्मल भी हो गया है सचमुच नम्रता के साथ शीतलता और शीतलता के साथ निर्मलता का स्वाभाविक ही संयोग है। जहां पर ये तीनों हैं, वहां पर ईश्वरीय सुन्दरता अपने-आप झलकती है।

इस प्रकार प्रकृति से सजाई गई नदियों के ऊपर जिस समय कार्तिक का शीतल प्रकाश पड़ता है तो आश्चर्यजनक आनन्द आता है। निर्मल जल में चन्द्रमा सहित तारा-मण्डल झिलमिलाता है निर्मलता के बल द्वारा नीचे सोई हुई नदी ने धुर आकाश को अपने में समाविष्ट कर लिया है। पड़ी हुई है नीचे, पर बसा लिया है आकाश को अपने में, किस तरह समग्र आकाश के तारे नीलिमा-सहित जल में बिछे पड़े दिखाई देते हैं। रातें अडोल तथा चुप हैं, चांदनी श्वेत तथा जल उज्ज्वल और उसके चारों ओर सफेद फूलों वाले सरकण्डे तथा काही फूल रहे हैं। पंजाब की नदियां हैं या एक प्राकृतिक सौंदर्य के टुकड़े। कहीं पर किनारों पर खिले हुए वन हैं, कहीं खेत हैं। आबादी वाले ग्रामों में खेत सुन्दर लग रहे हैं, जिन में मीठी ऋतु होने के कारण काफी रात तक कबड्डी आदि खेल होते हैं। यों लगता है कि सरल तथा स्वच्छ हृदयों वाले निवासी प्राकृतिक उल्लास में जीवन की लहरें ले रहे हैं। प्रातःकाल ही किसानों तथा जागीरदारों के घरों में दही बिलोने का संगीत आरम्भ हो जाता है। मथानी के घूमने से लस्सी का मटकों के साथ टकराना, कितना मीठा स्वर बांधता है। बीच-बीच में किसी घर से लगातार घूं-घूं चरखे की आवाज़ और किसी में से चक्की की सांय-सांय की आवाज से अद्भुत राग उत्पन्न होता है। पौ फटने के समय के नये अचल दर्शन सरल हृदय लोगों के निर्मल हृदयों के निश्छल चेहरे क्या प्रकृति और प्रकृति के आनन्द लेने

वालों का एक रंग बना रहे हैं। पंजाब पांच नदियों का देश[१] सचमुच कर्तार ने जल की भांति निर्मल बनाया था, इसकी नदियों के किनारों की सुन्दरता ने शताब्दियों पर्यन्त वैदिक ऋषियों को मोहित रखा। उस स्वाभाविक जीवन हिलोर के समय उन सरल लोगों ने अपनी गउओं और भूमि की वृद्धि के गीत तथा ऋचायों की रचना इन मनमोहक प्राकृतिक दर्शनों के प्रभाव के आधीन रचीं और गाईं। उनके साधारण हृदयों पर सूर्य, चन्द्र, वायु, आकाश, बिजली, उषा के चमत्कारों ने अपने तेज के बल से वह संगीत उत्पन्न किया कि शताब्दियों पर्यन्त वह प्रकृति के प्रेमी, प्रकृति के दृष्टा और रसिक – अभी कर्तार को दर्शन की समस्याओं में गणना करने से अनजान – शताब्दियों पर्यन्त गीत गाते और राग आलापते रहे। शताब्दियों पर्यन्त प्रकृति के चमत्कारों के प्रेमियों को यह मन को आकृष्ट करने वाले दृश्य, संगीत के साजों की भांति आलाप में लगाये रखा और यही काव्य संगीत तथा स्तुति की हिलोर अन्त में उन्हे प्राकृतिक चमत्कारों के पीछे निवास कर रहे कर्तार की ओर ले गये।

समय बदलते रहे, पर पंजाब के यह प्राकृतिक चित्र न बदले और सरलता का प्रभाव कम न हुआ। भांति – भांति के आक्रमणकारी देश में आये, रीति, रिवाज, व्यवहार, स्वभाव बदल गये पर पंजाब की नदियों के आनन्द अब भी वैसे ही हैं। प्रकृति के रसिकों के लिए यह किनारे जीवित संगीत हैं, जीवित छन्द और राग हैं। हां कर्तार स्तुति के संगीत अब गुरू का सिख सीधे वाहिगुरू की हुजूरी में होकर इन ही नदियों के किनारों पर गाता है, प्रकृति से हिलोर लेता है और कर्तार में जा छलांग लगाता है। कविता और संगीत, कीर्तन और स्तुति, पर सबकुछ कर्तार का समझकर सीधा हुजूरी में निवास रखता है, पंजाब में गुरू का सिख।

वेईं नदी के समीप सतगुरू नानक के जगाये हुए गुरू के सिख आज प्रकृति की रचना के बीच के नदी के नीर चन्द्र, सूर्य, पक्षियों के चहकते हुए उल्लास को देख रहे और 'धन्य गुरू नानक' कह रहे हैं और अश्रु भर – भरकर प्रार्थना कर रहे हैं, 'हे दाता! हे क्षमा करने वाले! कभी तो फिर से अपने चन्द्र – मुख के दर्शन कराओ'।

२. गुरू बन्धु

यदि भारत की ओर से पंजाब प्रान्त में आयें तो पंजाब की पहली नदी शतद्रु सा सतलुज है, जिसके रमणीय किनारों को हमारे सतगुरू नानक ने अपने दशम रूप में पवित्र किया। दूसरी नदी व्यास को दूसरे तथा तीसरे सतगुरू जी ने पवित्र

१. वास्तव में सात नदियों का देश है। इसीलिए कभी इसका नाम 'सप्त सिन्धु' था, उस समय सिन्धु देश सम्मिलित था। अब तक वह देश, जिसमें सात नदियां एक होकर बहती हैं, 'सिन्धु' कहलाता है।

किया। पर इस समय से पहले ही व्यास के दूसरे किनारे ने सतगुरू नानक जी के निजी चरण कमलों के मकरन्द का स्वाद चखा था और गुरू नानक देव जी की बहन नानकी ने सच्चे प्रेम के संगीत सुने थे।

पंजाब की सभी नदियों से नीची, अपने इर्द-गिर्द से नीची, यह व्यास नदी, जिसमें से कोई नहर भी आज तक नहीं खोदी गई; इस निम्न नदी के पास किनारे से कुछ दूरी पर सुलतानपुर नगर[१] है। सुलतानपुर वह स्थान है[२], जहां पर सच्चे सुलतान (शासक) गुरू नानक ने दूकान की थी और जहां पर गृहस्थी बनकर 'पुन्न दान का करै सरीरु' की सुगन्धि फैलाई थी। सच्चे सुलतान ने यहां पर से ही गृहस्थ का त्याग करके संसार के उद्धार के लिए उदासी धारण की थी।

आज देखो प्रात:काल का समय है, इसी व्यास नदी के किनारे पर एक माता बैठी है, नदी की तरंगों को देखती-देखती बातें करने लगती है और कहती है- वाह री नदी! तेरा हृदय किस प्रकार एक रस ही रहता है, शताब्दियां तथा युग व्यतीत हो गये, तू उसी तरह बह रही है। तेरे किनारे पर बैठकर कई लोग हंसे और रोए, पर तू मौज मनाती चली जा रही है! देख! मैं सुहागिन हूं, लोग मुझे कहते हैं- कि मैं भाग्यशील हूं, पर वर्षों के वर्ष व्यतीत हो गये, मुझे मेरे सुहाग के दर्शन तक प्राप्त नहीं हुए। मैं कैसी भाग्यशील हूं, जिसके साथ सुहाग ने न कोई हृदय की बात की न सुनी। यदि कभी वे बोले भी तो केवल यह कि 'संसार तथा पदार्थ एकत्र मत कर, इन्हें त्याग देना पड़ता है, यहां पर चोर आते हैं, संचित पदार्थों का भय रहता है, ऊपरी धन का संचय कर जो तेरे साथ चल सके।' यह है मेरे सुहाग का मेरे साथ हंसकर बात करना और मिलकर बैठना। पर अच्छा! कोई बात नहीं, दर्शन तो होता था, अभिलाषा रखकर खाना तो बनाती थी, अब तो इस दशा से भी गई। कितने वर्ष, बारह कि कम ज्यादा? हाय ईश्वर! युग व्यतीत हो गया। रिश्ते वाले मुझे कहते हैं : कि मेरा पति में प्यार नहीं, यदि प्यार न होता तो मैं निगुनी रो-रोकर क्यों व्याकुल होती? क्यों एक-एक दिन मुझे युग जैसा लगता? क्यों मेरे हृदय को कष्ट होता? क्यों मेरी आंखें निरंतर जल बरसातीं? जिस दिन से मेरे स्वामी जी परदेश को गये हैं, मुझे उसी दिन से अन्न स्वाद नहीं लगता, जल शीतलता नहीं देता। वियोग के समय मैंने कितना रुदन किया, मिन्नतें की, नि:श्वास भरे, प्रार्थनायें की पर उन्होंने एक नहीं मानी और कहा - हमें अपने स्वामी की नौकरी पर जाना है और वहां पर तेरा काम नहीं। नौकरी पर जाने वाले प्रतिदिन के सैनिक भी बारह वर्षों में सात-सात चक्कर घर

---

१. अब व्यास नदी सुलतानपुर से चार-पांच कोस की दूरी पर है, उस समय यह नगर के साथ बहती थी।

२. सुलतानपुर किसी समय दोआबे की राजधानी थी।

के काट गये, न जाने किस जबर्दस्त स्वामी की नौकरी है कि मेरे कन्त को कभी भी अवकाश नहीं मिलता। पर नहीं, स्वामी के बस में क्या है? मेरे पति जी के हृदय में घर के साथ प्यार ही नहीं, उन्हें तो पहले दिन से ही घर का मोह नहीं लगा। (नि:श्वास भरकर) कोई करे भी क्या, सब भाग्य की बात है। मैं सुहागिन भी, पुत्रवन्ती भी, फिर वियोग के आघात और चिन्ता में रात दिन रह रही हूं! आह मेरे भाग्य! मेरे लिए रोने को कोई स्थान नहीं। मायके में रहती हूं, यदि वहां पर रोऊंगी तो मां-बाप झिड़कते हैं, - कहते हैं भाईयों की कुशलता की इच्छा कर, पुत्रों का सुख मांग। कभी-कभी यहां आती हूं, यदि यहां पर घर में रोऊं तो ननद प्यार-भरी झिड़की देती है - कहती है मेरे भाई की कुशलता मांग। पर यदि कोई मेरे अन्दर झांककर देखे तो पता चले कि वहां पर कितनी उदासी निवास करती है। मायके में, जहां पर रहकर मैंने यह दिन व्यतीत किये हैं, माता-पिता कहते हैं कि मैं शुभ भाग्यों वाली पुत्री नहीं हूं, क्योंकि यह सब कुछ होते हुए भी प्रसन्न नहीं हुई सच्ची बात है। हे नदी! तुझ में कई बार बाढ़ आई, कई बार तेरा पानी उतर गया, मैं निमानी वर्षों से निमानी ही रही।

लोग कहते हैं कि मैंने पति से प्यार नहीं किया, निगुनी का बाल-बाल प्यार के साथ ओत-प्रोत हो रहा है, हां, मुझे अनोखे पिया को अनोखे ढंग से प्यार करने का पता नहीं चला। मैं उसके अंतस से अनजान क्या जानूं? यदि संसारी लोगों की भांति घर में रहते, आजीविका कमाकर घर मे लाते, परिवार के मोह में हंसते-प्रसन्न होते तो मेरे प्यार का चित्र भी संसारी लोगों को दिखाई देता। परिवार भी सुखी होता, मैं भी सुखी होकर बैठती, मेरे प्यार की भी कदर होती। उस प्यार का, जिसका पता मेरे योगी पिया को है, मुझे कोई पता नहीं। योग का मुझे क्या ज्ञान?

'हां, व्यास! कभी मेरी भी आशा पूरी कर दे, मैं घी के दीपक बहाऊंगी, कभी तो मेरे पति जी भी घर को लौटें, कभी तो घर में चरण रखें, कभी तो मैं सुलक्षणी भी भाग्य सुलक्षणी बनूं'। यों कहती के नयन छमाछम भर आये, रोई। पास कोई हटकने वटकने वाला नहीं था, जी भरकर रोई। इसीलिए आज घर से दूर निकल आई है और उजाड़ में आकर बैठ गई है, कि जी भरकर रो ले और मन का भार हल्का कर ले। रोती-रोती के नयन मुंद गये, रोने ने संगीत का रूप धारण कर लिया और विरह-सा छिड़ पड़ा, उसके हृदय में से जो भाव उस समय निकले वे निम्नलिखित गीत[१] में देखे जा सकते हैं: -

'न तो मैं जीवित हूं और न ही मरकर समाप्त हुई, तेरा मार्ग देख-देखकर थक गई हूं। नदियां भी सूख-सूखकर नीचे चली गई हैं, पर मैं सिक-सिक कर

१. यहां पर गीत का अनुवाद सरल हिन्दी में प्रस्तुत किया है

मर-मर चुकी हूं। अब तक मैंने मिलने की आशा बांध रखी थी, रो-रोकर मेरी आंखें सूज गई हैं। हे मेरे स्वामी! अब तो वापिस लौट, यदि मुझसे कोई भूल-चूक हुई है तो उसके लिये क्षमा कर दे'।

कुछ समय के लिय स्तब्धता छा गई, फिर एक आह निकली तो यह भाव प्रकट हुए:-

'विरह ने मुझे मार दिया है और मुझे कहीं से भी कोई सूचना नहीं मिली; किसी ने कभी कहीं से आकर मेरे कानों में भनक नहीं डाली। मैं मूर्ख हूं और भारी अनजान हूं, मुझे कुछ ज्ञान नहीं, मैं प्रियतम को प्रसन्न न कर सकी, मैंने तो व्यर्थ ही जन्म धारण किया है। मैं निमानी अवगुणों से भरी हुई हूं, मुझे कोई पता नहीं, परन्तु प्यार के कारण आकृष्ट हुई, सदैव रोती रहती हूं। जिस प्रकार का प्रेम, प्रेमी लोग करते हैं, मुझे उसका भी कोई ज्ञान नहीं। मैंने तो केवल अपने मन में यही धारण कर रखा है कि कन्त मेरा है, बस मेरा। हे दयालु। तूने संसार का उद्धार किया है। मैं दिन-रात तड़प रही हूं, आकर मुझे भी शीतलता प्रदान कर। हे मेरे स्वामी! तुमने जगत का उद्धार किया और अनेकों डूबने वालों को बचाया है, मेरा भी उद्धार होना चाहिये।

३. गुरू का बन्धु भी और गुरू का शिष्य भी

'दीदी', आहा, ये दो अक्षर कितने प्यार-भरे हैं। यों तो यह प्यार से भरे हुए तो थे ही, पर प्यारपुंज गुरू नानक ने यह दो अक्षर उस प्यार-भरी आत्मा के लिये प्रयुक्त किये थे, जिस जैसा सौभाग्यवान कोई विरला ही होता है। इसने अपने दैवी भाई के बावरे रंग में उसके वास्तविक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। इसने उसे निरंकार की ज्योति का प्रकाशदाता बाल्यकाल के खेलों में ही पहचान लिया था। जिस समय बीस रुपये से फकीरों को भोजन कराने पर पिता जी, उस पारब्रह्म के सौन्दर्य से भरे चेहरे और आदेश के रंग से दमक रहे मुखड़े पर क्रोध-दृष्टि डाल रहे थे और सृष्टि के पदार्थों का स्वामी बिना संकोच के सहन कर रहा था, उस समय किसी से भी न टाला जाने वाला महता कालू का क्रोध इसी प्यारी बहन ने जाकर टाल दिया था। इस दैवी मूरत ने जाकर पिता तथा भाई के बीच में होकर गले लगकर कहा था -'बापू जी! मेरी ओर देखो, इस चन्द्र-मुख भैया से बीस रुपये न्योछावर कर दो'। इस प्यार के स्त्रोत को गुरू नानक ने 'बेबे' (दीदी कहकर सारी उमर याद किया। जब कभी इस आत्मा के दर्शन प्राप्त हुए गुरू नानक जी ने कहा 'दीदी'। जब कभी इन दो अक्षरों द्वारा बुलाई जाने वाली पवित्र आत्मा ने कहा, 'भैया जी दर्शन' तब दूरी को चीरकर गुरू नानक आया और आकर कहा, 'दीदी'। आज देखो वह 'दीदी' याद कर रही है और गुरू नानक कह रहे हैं:-

मरदाने सों गिरा अलाईः–
"कियो याद भगिनी मुझ ताईं
चल सुलतानपुरे सुध लीजै।
"बेबे" जी की खुशी करीजै"। (नानक प्रकाश)

"बेबे" कितना प्यार वाला शब्द है, जिसकी प्रसन्नता की प्राप्ति के लिए गुरू नानक जी चल पड़ते हैं।

उधर देखो व्यास के पास सुलतानपुर में अपने घर में बैठी दीदी अपने भाई की याद कर रही है, कुछ इस प्रकार:–

'हे भैया! हे गुरू जी! जीवनदान देने वाले! हे विरद पालने वाले प्रभु जी! भवसिन्धु के तारने वाले! लगता है तुम्हारे ईश्वरीय दर्शन कई युग हुए व्यतीत हो गए हैं, अब तो और सहन नहीं किया जा सकता। अब आकर हमारी सम्भाल कीजिये। हे प्रभु जी! करुणा कीजिये! कृपा करके हे वीर जी आओ! हे अपने विरद का पालन करने वाले जी! आप ही उद्धार करने वाले हैं।'

इस रंग में बहन नें न जाने कितना वैराग्य और करना था कि श्रीचन्द (गुरू नानक का पुत्र) जी भागकर आ गये:–

बुआ जी! आज माता जी सवेरे से नदी की ओर गई हुई अब तक नहीं लौटीं, नाश्ते का समय हो गया है। यह सुनकर बहन चौंक उठी, कलेजे में कसक उठी, फिर एक दासी और एक दास साथ लिये और श्रीचन्द के सहित नदी की ओर चल पड़ी। जब काफी दूर तक जाकर इधर–उधर फिर रहे थे तो अत्यन्त रुँधे कण्ठ में से रोने की आवाज़ आ रही थी और बीच–बीच विलाप करने की आवाज़ भी आई जो इस प्रकार की थी:–

'मैं तेरे योग्य नहीं पर तेरी कहलाती हूं, क्योंकि तूने आप मुझे अपने आंचल के साथ लगाया था, अब उसी का पालन कर। हे स्वामी मेरी लाज रख! जो प्यार तूने किया था उसे अब सम्पूर्ण कर, जिस दासी को चरणों के साथ लगाकर लाया था, अब उसका उद्धार कर। मेरे अवगुणों की ओर देख, तू अपने गुणों की ओर देख जिसे तूने अपनाया है अब उसे निबाह दे। निमानों को जो तूने मान दिया, अब तू हे स्वामी अपनों की लज्जा का पालन कर। हे प्यारे कंत तू आ! हे मेरे सिर के स्वामी आ। स्वयं आकर अपना दर्शन दे और मुझे पार कर।'

इस विलाप को बहन ने सुना। आह! जगत के गुरू नानक जी की पत्नी 'सुलक्षणी' विलाप कर रही है। यद्यपि पति के दैवी स्वरूप को नहीं पहचानती तथापि पति–प्रेम का विरह कितना गहरा है। पति को गुरू नहीं समझती, पर पति को प्यारा, पति करके प्यार करती है और विलाप करती है। जिस विलाप करने वाली के प्यारे को बिछुड़े हुए वर्षों व्यतीत हो गये और भनक तक न आई, उस

विरहिणी के दुख को वह स्वयं ही जान सकती है। इस प्रकार के विचार करती हुई बहन आगे बढ़ी, जाकर भाभी के अंग मिल गई, नयन पोंछे और कहा, – 'प्यारी भाभी रो मत।'

सुलक्षणी – बहन! यदि रोऊं नहीं तो बता और क्या करूं? मेरे जीवन का कोई लाभ है?

"बिना कंत के दर्शनों के, जीवन का क्या लाभ है। मैं न तो कभी सुख से बैठी हूं और न ही मन भरकर दर्शन प्राप्त किया है। मैं अन्य किस को दोष दूं, मुझे स्वयं कोई ढंग नहीं आता। जिनको कोई ढंग नहीं आता वे खूब रोते हैं।"

यह सुनकर बहन के अपने नेत्र भी भर आये, पर सम्भल कर कहने लगी – अब आ रहे हैं। भाभी जी! उनका विरद है, अब आयेंगे, तू धैर्य धारण कर।

सुलक्षणी – धैर्य क्या रखूं। मेरा क्या है, मेरा क्या बना?

बहन – तेरा पति ईश्वर की ज्योति है और तेरा इहलोक तथा परलोक बन गया।

सुलक्षणी – रो-रोकर आंखें खाली हो गई हैं, प्रतीक्षा करते-करते सिर खाली हो गया है। सुहाग प्राप्त करके भी एक दिन भी सुहाग का स्वाद न देखा, जिस दिन से सुहाग की मेंहदी हाथों पर लगाई, रक्ताश्रुओं से रोती हुई को यह दिन आ गये।

बहन – भाभी! दुःख मत कर, तू सचमुच सुलक्षणी है तेरे भाग्य धन्य हैं। यदि तू एक ही बात कर ले, तेरे ऐसा ऊंचा अन्य कोई देहधारी हो ही नहीं सकता, पति में परमेश्वर को देख, पतित्व के मान का त्याग कर, संसार के मोह-प्यार को मत देख। वह तो ज्योति है, तू ज्योति के दर्शन प्राप्त कर, जिससे तेरा सुहाग तुझे स्थिर सुहाग दिखाई दे। तेरा पति जीव नहीं, परमेश्वर है, जगत का उद्धार करने के लिये आया है, संसार का उद्धार कर रहा है। देख तो, पृथ्वी किस प्रकार विलाप कर रही है, उसे शीतलता प्रदान कर रहा है। तू जो कष्ट सहन कर रही है, वह तो संसार पर परोपकार हो रहा है, भगवन्त तुझे इसका फल देगा। हां तुझे साईं के द्वार से इस तपस्या का फल अवश्य ही मिलेगा, तू भाग्यशाली होगी तेरा विलाप संसार का विलाप दूर कर रहा है, तेरे विरह से संसार का विरह कट रहा है। प्यारी बहन! हीरे को हीरा बींध रहा है, तेरे दुःख संसार का दुख दूर कर रहे हैं।

सुलक्षणी – बहन! यही बात तो मेरे मन को न लगी। तुम सच कहती हो, पर मुझ अनाड़ी के मन में भी कुछ लगे तब बात है।

बहन – एक बार भाई ने तुम्हें परब्रह्म के कौतुकों का दर्शन भी करवाया था और पृथ्वी का सन्ताप दिखवाया था। फिर बताया था कि हमको प्यारे वाहिगुरू का यह काम करना है।

सुलक्षणी सत्य है, बहन! पर न जाने मेरे मन पर कैसी माया पड़ी हुई है यह बात मेरे मन को नहीं लगती। एक ही निश्वास मुझे खाये जा रही है कि मेरा पति मेरे पास क्यों नहीं रहता, और हमारा घर एक गृहस्थियों की भांति बस रहा घर क्यों नहीं बनता।

बहन – आ भाभी, घर को चलें, अब अधिक दिन चढ़ आया है।

सुलक्षणी – मेरा जी चाहता है कि यहां पर ही बैठी रहूं और बस रोती ही रहूं।

बहन ने प्यार दिया और काफी समय के पश्चात् उसे शान्त करके घर को ले आई।

यह दिन व्यतीत हो गया, दूसरा भी गया, माता सुलक्षणी जी के अश्रु नहीं सूखे। वह जगत–गुरू के मोह से भरी, पर पति को परमेश्वर की भेजी हुई ज्योति न पहचान सकने वाली सुलक्षणी एक ओर अश्रु गिराती और सिसकियां भरती रही। यह सिसकी वाला रुदन, कमी वाला और रिश्ते के अधिकार से भरा हुआ घबरा देने वाला रुदन है। इसमें घबराहट तथा कमी पड़ती है। उधर बहन भी रोती है, पर उसके रोने में शीतलता है, रस तथा टिकाव है। उसके अश्रु आकर शीतलता प्रदान करते हैं, रोमों में से नाम की झंकार छेड़ते हैं। सतगुरू जी का आत्म–ध्यान आंखों के सामने लाकर लौ लगाते हैं। हां मोह का आकर्षण और प्रेम के आकर्षण का यही अन्तर है।

तीसरा दिन आ गया, पौ फटी और मीठी–मीठी वायु चल पड़ी।

"चिड़ी चुहकी पहु फुटी वगनि बहुतु तरंग ।।
अचरज रूप संतन रचे नानक नामहि रंग।।"

बहन अपने घर में बैठी दही बिलो रही थी, एक हाथ मक्खन से भरा था, 'आसा दी वार' का पाठ कर रही थी कि सतगुरू भैया की सौन्दर्य–भरी सूरत ड्योढ़ी से आकर आंगन में आती और 'निरंकार' की गूंज से गूंजती हुई दिखाई दी, दीख ही नहीं पड़ी, कानों ने वर्षों के पश्चात फिर वही प्रेम के अक्षर सुने : 'बेबे' 'बेबे' का शब्द सुनते ही, 'धन्य बेबे' उठी। भागकर भाई के पैरों पर झुकी[१], सिर में से वैराग्य, धन्यवाद और आत्म हिलोर ने एक ऐसी तरंग छेड़ दी कि शरीर बेसुध–सा होकर गिरा। पर उस सच्चे जगत को तारने वाले ने बहन का शीश हाथ पर थामा और अति प्यार–सहित धैर्य दिया और आशीर्वाद दी। जानते थे कि बहन को तो अपने–आपकी सुध नहीं, स्वयं ही खाट पर बैठ गये। बहन

---

१. सदन सुसा के प्रविशे जबि ही। हरख भरी तूरन उठि तबि ही।।
करन वंदना पग पर धाई।
लोचन ते जलधार बहाई।। कर पर ले सिर, कहि बैना।
बैस गए मंच पर गुण अैना।। (गुरू नानक प्रकाश)

ने अब सिर उठाया, टिकटिकी बांधकर भाई के ईश्वरीय ज्योति द्वारा प्रकाशित चेहरे को देखा, सतगुरू से भेंट हुई, सतगुरू से भेंट करके आनन्द की प्राप्ति होती है। फिर आनन्द का वेग आया पर बहन की सुरत ने एकाग्रता में ऐसी लौ बांधी कि मानो बेसुध है। इतने में भाग्यशील जीजा जैरामदास आ गया, बड़े प्रेम-सहित शीश झुकाया, सतगुरू ने थामा, कुशलता पूछी, हृदय में शीतलता आई। बार-बार चेहरे को देखा और प्रसन्न हुआ, अन्त में-

हाथ वन्दि बोल्यो जैरामा।
करुण करहु रहहु अबि धामा।।
बैंसे सिमरहु सदाँ गोबिन्दं।
हम कऊ देवत रहहु अनंदं।' (नानक प्रकाश)

इतने में श्रीचंद जी भी आ गये, पिता जी को देखकर चरणों में गिर पड़े, सतगुरू जी ने आशीर्वाद दिया, 'साईं की ओर रहो।' उधर बहन अब होश में थी। भाभी को लिवा भेजा, मोह से भरी हुई और सिसकियां भरने वाली, गुरू नानक, जगत गुरू स्वामी जी की अर्धांगिनी कहलाने वाली, सत्कार योग्य आत्मा शुभ लक्ष्णों वाली सुलक्षणी आई। प्रसन्न है, वैराग में है परन्तु प्यार माया से घिरा हुआ है, वैसे इस समय है अत्यन्त प्यार। चरणों पर झुकी और रोने लगी। घट-घट के जानने वाले श्री गुरू जी मुस्कराये, कृपादृष्टि द्वारा देखा और दया की सतोगुणी वर्षा की। अन्य प्रेमी भी आये, सबसे मिले एक दिन और एक रात वहां पर मंगल लगा रहा, फिर आप चल दिये :-

'बहु प्रकार दे धीरज सभही।
रैन बसेरा किय तहिं तबही।
भोर होत मिलिकै सभि साथा।
गमन करयो बेदी कुल नाथा। (नानक प्रकाश)

४. लाहौर

चार सौ वर्ष से कुछ अधिक समय व्यतीत हुआ होगा कि एक दिन रावी, पंजाब की नदियों के बीच वाली नदी, इसी ऋतु में अपने भाईयों की बहन अपने रंग में गम्भीर चाल से चली जा रही थी। नदी का किनारा है, चांदनी रात का प्रातःकाल है मीठी-सी ठण्ड है, एक तेजी से चमकती हुई और सौंदर्य से दमकती हुई सूरत किनारे पर बैठी है। पास संगीत अवतार धारण करके इस तरह से प्यार सहित रबाब बजा रहा है कि सारंगी, सरोद तथा वीणा को भी मात कर रहा है।' 'आसा राग' का आलाप हो रहा है, बस यों लगता है कि सारी प्रकृति द्रवित होकर सुन्दरता का रूप बन गई है।

रात समाप्त हो गई, तारों ने अपने अन्तिम दर्शन देना भी बन्द कर दिया है,

उषा पौ का प्रकाश पसर गया है, जिसमें प्रकाश का श्वेत रंग भी छिप गया है। चन्द्र का चेहरा नीले आकाश पर दिखाई तो पड़ता है पर कुछ मन्द-सा हो गया है उस संगीत-अवतार के मुख से एक मनोहर शब्द गुजरित हुआ।

देखो अडोल बह रही रावी नदी किस प्रेम से सुन रही है और मुग्ध हो रही है। जिसके किनारे पर शताब्दियों-पर्यन्त प्रकृति के रसिक प्रकृति के गीत गाते रहे, जिसके किनारे पर 'जीव दया' के प्रेमी 'जीव दया' की ध्वनियां अलापते रहे जिसके किनारे ज़ोर तथा अत्याचार के ढोल बजते रहे, वह आज किस पूर्णता की मौज में है? आज वह भक्ति तथा प्रेम के संगीत सुन रही है और प्रकृति तथा जीव दया से गुजरकर और ज़ोर अत्याचार से दूर' 'कर्तार तथा कर्ता' के प्रेम के यश सुन रही है। रावी सचमुच धन्य हो रही है, जिसके पवित्र किनारे और जिसके संगीतपूर्ण किनारे पर आज कर्तार की ज्योति स्वयं बैठकर करतार का संगीत वेग में ला रही है, और दया कुदया सब से दूर जाकर प्रेम का पाठ पढ़ा रही है।

सूर्य की टुकड़ी अभी अन्दर से बाहर आ रही थी कि यह संगीत तो समाप्त हो गया पर दूर से एक हृदय-वेधक आवाज़ सुनाई दी-

"मुंध रैणि दुहेलड़ीआ जीउ नीद न आवै।।
साधन दुबलीआ जीउ पिर कै हावै।।
धन थीई दुबलि कंत हावै केव नैणी देखए।।
सीगार मिठ रस भोग भोजन सभु झूठ, कितै न लेखए।।
मै मत जोबनि गरबि गाली दुधा थाणी न आवए।।
नानक साधन मिले मिलाई बिनु पिर नीद न आवए।।१।।

(राग गऊड़ी पूर्वी महला १)

यह हृदय-वेधक सच्चे प्यार की ध्वनि सुनकर सौंदर्य के अवतार ने सौंदर्य से भरे हुए नयन खोले, गुलाब से भी सुन्दर मुख से रसभरे वचन उच्चारण किये-

'मरदाना! भाई मनसुख विरह कर रहा है'।
अभी मरदाना ने 'हां जी' कहा था कि फिर आवाज़ आई-

सुणि नाह प्रभु जीउ एकलड़ी बन माहे।।
किउ धीरैगी नाह बिना प्रभु वैपरवाहे।।
धन नाह बाभहु रहि न साकै बिखम रैंणि घणेरीआ।।
नह नीद आवै प्रेमु भावैं सुणि बेनंती मेरीआ।।
बाझहु पिआरे कोइि न सारे एकलड़ी कुरलाए।।
नानक साधन मिलै मिलाई बिनु प्रीतम दुखु पाए।।१।।

यह विरह सुनकर मरदाना उस ओर चला था कि प्रकाश पुंज जी ने रोक लिया, सच है पतंगों को कौन प्रेरणा देने जाता है। विरह के वेग में बावरे हो रहे

मनसुख जी रावी, प्रेम की सजीव बानगी देख रही रावी की ओर खींचे हुए उधर आ निकले और पुकार की जिसका भाव निम्नलिखित गीत (यहां अनुवाद) में है–

बारह वर्ष व्यतीत हो गये हैं प्रियतम को परदेश में गये हुए। उसकी ओर से कोई सुख का सन्देश नहीं आया, प्रतीक्षा करते–करते वृद्धावस्था आ गई है। आयु का सूर्य ढल गया है, पर प्रेम नहीं फिरा, रो–रोकर वर्षों व्यतीत कर दिये हैं, पर प्रियतम देश में नहीं आये। हे प्यारे! कभी तो आओ और दर्शन दिखाओ, मैं तो कभी कहूं कि 'प्यारे स्वदेश में आये हैं'। मेरे यह प्यासे नयन तरस रहे हैं, दर्शन के जल को खोजते हैं, चरण कमल को परसने के लिये, विशेष रूप से फिर रहे हैं। मेरा हृदय उछलता रहता है, मेरा यह कलेजा कांपता है, यह सन्देश सुनने का इच्छुक है, कि 'तेरे नरेश जी आ गये हैं'। परन्तु हाय! प्यारे जी नहीं आये, मेरी लालसा भी उन्हे खींचकर नहीं लाई। मेरे सभी उपाय हार गये हैं, कोई वश नहीं चलता। अब तो आप ही दयालु होकर, आप ही दर्शन दीजिये। हे प्यारे! आपके दर्शन के बिना मेरा कष्ट कैसे दूर हो? आ, हे दयालु! हे प्यार के माली! इस अपने बाग का पालन कर, यह तो बहुत सूख रहा है? मेरी आयु बड़ी होती जा रही है, पर आपका दर्शन नहीं हो रहा, विरह तो नये–नये वेश धारण करके आ रहा है। विरह ही तो मेरा रोग है, और आपके दर्शन ही उसकी औषधि है, हे मेरे वैद्य! अब तो आ जा, मेरी आयु व्यतीत होती जा रही है। हे प्यारे गुरू आ जा! अपने विरद के लिये आ जा, मेरे सभी उपाय थक गये हैं मेरा कोई वश नहीं चलता। आपकी दया तथा अनुग्रह आपकी अनुकंपा तथा आप पर मान, और आपकी कृपा के बिना, मेरा दुख दूर नहीं होता।

इस प्रकार वैराग्य से नयनों में अश्रु भरकर जब एक चार कदम का चक्कर लगाया तो मनसुख को प्यारे प्रियतम की ज्योति जगमग करती हुई सामने दिखाई पड़ी है, यह क्या है? जहां वैदिक ऋषि की दृष्टि बिजली को देखकर चौंधियाती तथा भय के साथ नीची होती थी उस पवित्र किनारे पर प्रेमी की आंख दैवी तथा ईश्वरीय प्रियतम को देखकर चौंधियाती तथा सप्रेम नीची होती रस ही जिह्वा से कहती है– आह! त्रसित नयनों ! आह! मेरे अधीर नयनों, उड़ने वालो! सच है? क्या यह सच है? पर प्रेम का एक और हिलोर उठता है और इतनी सुध भी नहीं रहती। 'गुरू प्यार' का विह्वल हुआ प्रेमी चक्कर खाता हुआ नशेबाज की भांति लड़खड़ाता हुआ उनमन दशा में गिर पड़ता है और उसी क्षण प्रेम के आकर्षण से पसीजे हुए तथा द्रवित हो चुके प्रेम पुंजजी उसे कण्ठ से लगाते हैं और सिर गोद में रखकर प्यार देते हैं।

"मनसुख ! तेरे स्मरण तथा ध्यान के रंग सफल हुए। उठ! तू धन्य हो गया।"

कितना रस–भरा आनन्दमय समय है। प्रियतम की गोद में लालसा करने

वाला सिर है, प्रियतम की गोद में इच्छुक नेत्र हैं। प्रियतम की गोद में विरह करने वाली रसना है, प्रियतम की गोद में ध्यान धारण करने वाला आपा, स्मरण करने वाला मन है और प्रियतम जी का एक हाथ शीश पर है और दूसरा हाथ अत्यन्त प्यार सहित पीठ पर फिर रहा है। अब देखो, प्रियतम तो आप प्रेमी बन रहा है, जगताधार प्रियतम के नयनों में से अपने-आप अश्रु टपक रहे हैं और मनसुख के सुखी मन वाले के शीश पर पड़ रहे हैं। हे प्रेमी! तू धन्य है, जिसे प्यारे के दर्शन हो गये हैं। जिस दर्शन के लिये योगी कई जन्मों तक साधना करते हैं, तेरी एक निमानी लालसा ने थोड़े से वर्षों में ही देन दे दी है। पास बैठा रबाब बजाने वाला गरीब मरदाना, पर सदगुरू जी का सम्मानित निमाना सिख, उस सिख के चरणों की ओर से धूल को लेकर माथे पर लगा-लगाकर नयन भरता है और मन-ही-मन में विचार करता है - धन्य है, प्यार वालों के चरणों की धूल मुझ ढाढी डोम तथा मिरासी को भी मिल रही है। यह धन्य है जो इतने लम्बे समय तब बिछुड़कर भी निरन्तर प्रेमी बना रहा। मैं तो प्रतिदिन संयोग में रहकर भी विचलित रहा हूं, यह धन्य है जो कि विरह में भी उसी तरह, बल्कि उससे कहीं अधिक प्रेमी बना रहा है। मनसुख तू धन्य है। तेरी धूलि तारनहार है।

यों प्रेम के रंग का सूर्योदय हो गया, सुख-भरी मीठी-मीठी किरणें प्रेम के पुंज के चेहरे पर पड़ीं तब प्रेमी को कहने लगे, 'हे भले पुरुष! सावधान हो और प्यारे के रंग में डूबा रह'। अब मनसुख को होश आया, चेहरा लाल हो रहा है, आंखें प्रेम के नशे से भरपूर हैं और अन्दर से प्रत्येक अंग गद्गद् हो रहा है।

एक क्षण और गुज़र गया। जब सुरत तृप्त हो चुकी तो नयनों ने बार-बार देखकर झुक-झुककर रस प्राप्त किया, जब 'नैन रहे रंगु लाई' तब जिह्वा ने धन्यवाद आलापा!

मेरी इछ पुनी जीऊ हम घरि साजनु आइआ।।
मिलि वरु नारी मंगलु गाइआ।।
गुण गाइ मंगलु प्रेमि रहसी मुंध मनि ओमाहओ।।
साजन रहंसे दुसट विआये साचु जपि सचु लाहओ।।
कर जोड़ि साधन करै बिनती रैणि दिनु रसि भिंनीआ।।
नानक पिरु धन करहि रलीआ इछ मेरी पुनीआ।।४।।१।।
(गऊड़ी पूरबी छन्त महला १)

इस धन्यवाद भरे आलाप के साथ मरदाना का रबाब तथा मरदाना का दैवी कण्ठ भी सम्मिलित था। रावी का किनारा प्रेम का मन्दिर बन रहा था।

अब सूर्य आकाश में चढ़ आया, मनसुख बड़े प्रेम सहित श्री गुरू जी को अपने घर में ले गया। जहां पर पहुंचते ही लाहौर ऐसे नगर के आसपास के आपके

प्रेमियों को सूचना मिल गई 'गुरू नानक आया' सुन-सुनकर सभी आ एकत्र हुए। प्रेम तथा विस्मय का बाग़ खिल पड़ा। दो दिन तक आश्चर्यजनक मिलन होते रहे। फिर सतगुरू जी आगे को चल पड़े।

५. तलवण्डी

शनैः-शनैः चलते, उपदेश द्वारा जागृति में लाते और अनुग्रह द्वारा उद्धार करते गुरू जी अपनी अवतार भूमि, तलवण्डी आ पहुंचे। नगर से बाहर दो कोस की दूरी पर एक कुआं था, वहां पर बैठ गये। घड़ी-दो-घड़ी के पश्चात् मरदाना ने कहा, 'हे जगन्नाथ जी! यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं जाकर अपने परिवार से भेंट कर आऊं, देखूं यदि कोई जीवित शेष भी है'? तब दासों के कार्यों को संवारने वाले सतगुरू जी हंस पड़े :-

सुनकर बिगसे कृपा निकेता।
बोले हर्ष देन के हेता।
'जे तेरे सनबन्धी मर हैं,
अवर काज हम जग कस करि हैं?
हम होवत नहिं चिन्ता करिए।
निकट न जमको त्रास विचरिए।
जे अब तो मन ऐसी आई।
मिलहु कुटम्ब सरब को जाई'। (गुरू नानक प्रकाश)

यह सुनकर मरदाना चला गया। सतगुरू जी ने जाते समय यह चेतावनी भी कर दी कि शीघ्रता से लौटकर आ जाना, और हमारे घर में हमारे आने की सूचना मत देना।

आयु एक ढलती हुई परछाईं है। युवावस्था में आशाएं तथा आकांक्षाएं और होती हैं, पर जब आयु ढलने लगती है तो आशाएं और आकांक्षाएं भी ढलने लगती हैं। तृष्णा चाहे कम नहीं होती पर उमंगें तथा उत्साह शरद ऋतु की नदियों तथा तालाबों की भांति ढल जाते हैं। यदि इस आयु में कोई आघात अथवा विरह का वाण कलेजे में आकर लगे तो आश्चर्य से निराशा-भरी दशा हो जाती है। हां, एक सौभाग्य, वृद्ध माता है, जिसे एक ओर तो प्यारे की भेंट की लालसा खाये जा रही है, दूसरी ओर अपनी मृत्यु का विचार दुख देता है। न जाने किस समय बुलावा आ जाये और बिना मिले ही चल पड़ूं। जैसे-जैसे आयु व्यतीत होती है, वैसे-वैसे प्रेम के आघात वाले मन विरह में पीड़ित होते हैं। फिर वह माता, जिसका इकलौता बेटा हो, बड़ी मिन्नतों से उसे मिला हो, वह वर्षों पर्यन्त घर को न लौटे और मां की वृद्धावस्था हो गई हो, उस मां का ही हृदय जानता है कि मोह क्या वस्तु है, मोह की कमी क्या है और पुत्र का वियोग किस वस्तु का नाम है?

आइए देखें, एक तृप्ता नामक सौभाग्यशील माता है। यह वर्षों से पुत्र को घरबारी तथा सुखी बसता हुआ, परिवार में मान-प्राप्त करने वाला, बड़ों की दिखावे की सेवा करता और बिरादरी में ऊंचा कंधा करके चलता देखने की लालसा कर-करके वृद्ध हो गई है। इसने अपनी इच्छानुसार अपने पुत्र को फलता-फूलता हुआ देखकर तृप्ति प्राप्त नहीं की। पुत्र-प्रेम की दृष्टि से अतृप्त माता तृप्ता, वैसे चाहे जगत को तृप्त करने वाले की माता है, ज्यों-ज्यों वृद्धावस्था में पहुंचती है, रोती है और अब तो इतनी ही उसांस लेती है कि एक बार सदैव के लिए मुंद जाने वाले नेत्रों के अन्तिम मुन्दने से पहले पुत्र को तृप्त होकर देख ले, पर पुत्र की कोई सूचना तथा समाचार नहीं मिलता। कई शर्द ऋतुऐं, कई गर्मियां आईं और व्यतीत हो गईं, पर पुत्र के घर में आये बिना यह सब कुछ व्यतीत हो गया। एक ओर आशा और लालसा, दूसरी ओर निराशा और उसांस है। घर में बैठती है, आकाश की ओर देखती है, कभी-कभी कान लगाकर सुनती है कि न जाने कहीं से कोई आवाज़ कानों में पड़ जाये। रोती है और कहती है, 'हे विधाता! हे कठोर विधाता! कभी जी भरकर पुत्र के दर्शन न हुए, तूने पुत्र दिया जगत से सुन्दर और सर्वोत्तम, पर मेरे दुर्भाग्य! कभी जी भरकर भी पुत्र का मस्तक न देखा। पुत्र फकीरी में भागा-फिरा और मां उसांसे लेती रही। काले बाल सफेद और सफेदी से अब पीले होने को आये हैं। सपूती होकर, पुत्रवती होकर मैं निःश्वास भरती हूं, हे विधाता! तू ने क्यों कठोरता धारण की है"? इस प्रकार माई विचार करती हुई आंगन में बैठी है कि बाहर से किसी पड़ोसिन ने आकर क़हा, "ले री तृप्ता मां! तेरे पुत्र का मिरासी मित्र घर में आया है।"

'आह! मरदाना'? कहकर मां की आंखें सजल हो गई, साहस बटोरकर उठी, पसीना हुई-हुई कहती है:- जा री तेरे भाई जीयें! मैं बलिहारी! उसे मेरे पास लिवाकर ले आ, मां बलिहारी, री भागकर जा।'

पड़ोसन तो मरदाना की ओर भागी और अधीर माता आप भी उसके पीछे चल पड़ी, अभी ड्योढ़ी में कदम रखा ही था कि मरदाना आ गया। मोह की मारी हुई माता ने :-

'जब आवत देख्यो मरदाना।
गल सों ला बिराग बहु ठाना।
भयो मोह सरिता सु प्रवाहा।
धीरज सिकता सेत नसाहा।

... ...

श्री नानक को भा अनुरागा।
कीनो जननी बहु वैरागा। (गुरू नानक प्रकाश)

कुछ समय वैरागी रहने के पश्चात् माता ने अपने पुत्र के मित्र से अपने पुत्र

की कुशतला पूछी। मरदाना चुप होकर सुन रहा था, पर माता अपने वेग में भीगती रही।

निस दिन करतयो रुदन बिताऊं।
कर उर याद बैठ पछताऊं।
विध ने इक सुत दीनो मोही।
नहिं समीप कब राख्यो ओही। (गुरू नानक प्रकाश)

इतने में अड़ोसी-पड़ोसी 'मरदाना का आना' सुनकर तृप्ता जी के घर में आये। मरदाना से पूछते हैं पर उस बेचारे को कुछ भी न बताने की सतगुरू जी की आज्ञा थी। वह डरता है, इधर प्रेम के वेग को देखता है, मन-ही-मन रोता है कि मैं किन लालसा-भरे नेत्रों के सामने अधर मूंद का बैठा हूं। पर उसकी सदैव गाने वाली जिह्वा ने इस समय मूकता में ही अपने अन्दर वाले 'प्रेम-राग' का आलाप होता अनुभव किया। चार घड़ी माता जी के पास बैठा रहा, माता जी कई बार बेसुध हो गईं, पर मरदाना कलेजे पर पत्थर रखकर अपने कौतुकी प्रियतम के रंगों में एक और रंग देखता हुआ, बे-मालूम नि:श्वास भरता हुआ, माता जी को धैर्य देता हुआ उठ चला। अब माता के कलेजे में वाण लगा। निराशा ने उदासी को बढ़ाया पर इस उदासी में एक विचार आया कि न जाने बेटा साधु है, इसीलिये घर में न आया हो, कहीं एकान्त में बैठा हो, मैं मरदाना के पीछे-पीछे जाकर देखूं तो सही।

इस बिध माता मन गुनति, मधुर असन ले ओल (गेदी में)
तुरन गवनी धाइि कर लोने रुचिर निचोल (वस्त्र)।
मिली गैल मैं जहिं मरदाना।
आतुर ह्वै कर वचन बखाना :-
'सुत नानक सों मेलहु मोको।
सुध मरदाने है कहु तोको।
बहुत बरस से देख्यो नाही।
मोह बढ़यो अतिशै मन माहीं'।
सुन मरदाने तूशनि (चुप) कीनं।
गुरु भय लख्यो, न उत्तर दीनं। (नानक प्रकाश)

माता जी अब प्रेम में अत्यन्त व्याकुल हुईं, भोजन लेकर मरदाना के पीछे-पीछे उसांस भरतीं और अपने नयन जल से धरती को पवित्र करतीं चली जा रही हैं। आयु-भर इसी मान में रही कि 'नानक' पुत्र है और मैं मां हूं। आज ईश्वर ने क्या रंग बनाया है? वर्षों के विरह ने मोह की अग्नि तीव्र करके प्रेम के किनारे तक पहुंचा दी है; हाथों में भोजन है और पुत्र को, हां पुत्र सतगुरू को खोजने के लिए जा रही है। प्रेम की प्यास आज उस अणि पर जा रही है, जहां

पर नाम का कण जाकर अटक जाता है। माता, पुत्र से ही मिलने के लिये जा रही है, पर चित्त की गति अनजाने प्रेम की–वास्तविक आत्म–प्रेम की–तार वाली, होती जा रही है।

जब मरदाना कुएं पर पहुंचा, तो माता के त्रसित तथा लालसा–भरे नेत्रों में प्यारे पुत्र की मोहिनी मूर्ति आ गई, भागकर आई, पर उस प्यार तथा सत्कार के साईं ने उठकर माता के चरणों पर वन्दना की, अत्यन्त उत्सुक माता ने पुत्र को कण्ठ से लगा लिया। रोती हुई ने नदियां बहा दीं, तरसती हुई माता की, इन दर्शनों तथा भेंट की लालसा को, कौन वर्णन कर सकता है। कवि सन्तोख सिंह जी ने लिखा है :–

कौरी (अंग मिलन) भरि नानक को जननी।
रुदन करत न जाई गननी।
चल्यो बिलोचन ते बहु नीरं।
सतु दिरहानल जनु करि सीरं[1]।
अश्रु पात सों वस्त्र भिगोये।
जो देखत सो गदगद होये।
कौरी ते सुत को नहि तजई।
अधिक बिरह ते मिलत न रजई।
बदन बिलोकत सूंघत माथा।
करत नेह सिर फेरत हाथा।
हुती वृद्ध बल ते तन हीना।
पुन समीप बैसी सुख लीना।

इतने में सारी तलवण्डी में यह समाचार फैल गया कि गुरू नानक देव आया है और बाहर कुएं पर बैठा है। महता कालू, प्यारे गुरू नानक से क्रोधित होने वाला महता कालू भी सुनकर घोड़ी पर चढ़कर आया। अब वियोग ने कदर डाल दी है अब लम्बे विरह ने बता दिया है कि वह चन्द्रमुख जिसकी अपेक्षा बीस रुपये अधिक प्यारे किये थे, लाखों तथा करोड़ों से नहीं मिल सकता। अब वियोग की पीड़ा से सुबुद्धि प्रदान कर दी है कि वह कमलनयन, सुन्दर बदन, यदि जीवन देकर भी प्राप्त हो तो भी सस्ता है। हां, महता कालू के हृदय को भी विरह–रूपी सुलतान ने कुछ वेध दिया है, किसी तरह शीघ्रता से पहुंचूं और चन्द्रमुख के दर्शन करूं, सोचता हुआ महता कालू घोड़ी पर चढ़कर सरपट दौड़कर पहुचा। वे जगत के पिता, मर्यादा के पूरे, अपने पिता के चरणों पर झुकने के लिये उठे, पर वियोग की अग्नि के कारण शुद्ध हो रहे पिता ने भागकर कण्ठ से लगाया और यों प्यार किया–

---

१. पुत्र के वियोग की अग्नि को मानो शीतल कर रही है।

जन बहु भूखे मिल्यो अहारा।
मरत्यो प्यासे पायो बारा (जल)।
नीर बिमोचन लोचत दर ते।
गद्गद् बोल्यो जाय न गर ते।

कुछ समय के पश्चात् सारे स्नेही वहां पर आ गये। बीच में प्रेम मण्डल के चन्द्र विराजित हो रहे हैं। चारों ओर परिवार का परिवार पड़ गया है।

अब माता ने धैर्य से कहा, 'हे लाल! बहुत वर्ष व्यतीत करके घर में आये हो, मैं बलिहारी, मुझे मेरे अनन्त से पहले दर्शन देकर कृतज्ञ किया है।'

"मैं वारी सुत! तो पर वारी"
बार बार कहि गुर महतारी ।। (गुरू नानक प्रकाश)

यह सुन-सुनकर श्री गुरू जी कहने लगे :-

अमली अमलु न अंबड़ै मछी नीरु न होइ ।।
जो रते सहि आपणै तिन भावै सभु कोइ ।।१।।
हऊ वारी वंञां खंनीऐ वंञां तउ साहिब के नावै ।।१।। रहाउ।।
साहिबु सफलिओ रुखड़ा अमृतु जाका नाउ।।
जिन पीआ ते तृिपत भए हउ तिन बलिहारै जाउ ।।२।।
मै की नदरि न आवही वसहि हभीआं नालि।।
तिखा तिहाइआ किऊ लहै जा सर भीतरि पालि ।।३।।
नानकु तेरा बाणीआ तू साहिब मै रासि।
मन ते धोखा ता लहै जा सिफति करी अरदासि ।।४।।१।
(रागु वडहंस महला १ घर १)

तब माता ने भोजन आगे रखा और कहा- लाल जी! खाओ। श्री गुरू नानक देव जी ने कहा- हे माता! मैंने एक ऐसा भोजन किया है कि मुझे भूख व्याकुल ही नहीं करती। मैं तृप्त हुआ हूं और अधा गया हूं। महता कालू ने आश्चर्य चकित होकर कहा- हे तात! ऐसी कौन-सी वस्तु है जो तुमने खाई है, कि भूख ही नहीं लगती? तब उच्चारण हुआ:-

सभि रस मिठे मंनिऐ सालोणे ।।
खट तुरसी मुखि बोलणा मारण नाद कीए ।।
छतीह अंमित भाऊ एकु जाकऊ नदरि करेइ ।।१।।
बाबा होरु खाणा खुसी खुआरु ।।
जितु खाधै तनु पीड़ीऐ मन महि चलहि विकार ।।१।। रहाउ।।

इस पर माता तथा पिता के कलेजे में नोक-सी चुभी, पर अभी माया के बाग

आंखों के सामने हैं, अभी आशा है कि पुत्र घर में आकर बैठे और आंखों को शीतलता प्रदान करे। माता जी ने धीरे से पुराने वस्त्र उतारकर नये और सफेद वस्त्र पहनने के लिये कहा, तब सतगुरू जी ने कहा, मैंने वह पहनावा पहना है, जो न तो फटता है, न मैला होता है।

तब पिता ने कहा, "वे वस्त्र हमें तो दिखाई नहीं पड़ते?" तब आप कहने लगे :-

रता पैनणु मनु रता सुपेदी सतु दानु ।।
नीली सिआही कदा करणी पहिरणु पैर धिआनु ।।
कमर बंदु संतोख का धनु जोबन तेरा नामु ।।२।।
बाबा होरु पैनणु खुसी खुआरु ।।
जितु पैधै तनु पीड़ीऐ मन महि चलहि विकार ।।१।।रहाउ।।

फिर पिता ने कहा : "अब घर पर ही रहो, विश्राम करो, घोड़ों की सवारी करो, सुख प्राप्त करो, अब हम तुम्हें काम करने के लिये नहीं कहते, हमारे कमाये हुए ध न पर सुख प्राप्त करो, हमें दर्शन दो, दूर मत जाओ।" तब श्री गुरू जी ने कहा :-

घोड़े पाखरु सुइने साखति बूझणु तेरी वाट।।
तरकस तीर कमाण सांग तेग बंद गुण धातु।।
वाजा नेजा पति सिऊ परगटु करमु तेरा मेरी जाति ।।३।।
बाबा होरु चढ़ना खुसी खुआरु।
जितु चढ़िऐ तनु पीड़ीऐ मन महि चलहि विकार ।।१।। रहाउ।।

फिर माता ने कहा, "लाल जी ! घर पर चलो, परिवार में निवास करो, सबको आमंत्रित करें और खुशी मनायें। हमने नये घर का निर्माण करवाया है, तुम निवास करो, बीच में निवास करते तथा सुख प्राप्त करते हुए दिखाई पड़ो।" तब श्री गुरू जी ने कहा :-

घर मंदर खुसी नाम की नदरि तेरी परवारु ।।
हुकुम सोई तुध भावसी होरु आखणु बहुतु अपारु ।।
नानक सचा पातिसाहु पूछि न करे बीचारु ।।४।।
बाबा होरु सऊणा खुसी खुआरु ।।
जितु सुतै तनु पीड़ीऐ मन महि चलहि विकार ।।१।। रहाउ ।

(सिरी राग महला १)

आपने फिर कहा :-

सुन जननी मम बचन को अव लौ रिदा उदास।
देस वदेस विलोक के बहुरो आइं अवास ।।

तब माता जी ने कहा :-

हे सुत! तैं अस बैन उचारे।
रिदै शांत किऊं आव हमारे।।
द्वादश बरख बतीते आये।
प्रविशे सदन न पग इक पाये।
वहिर ते वहिर करहु तुम प्याना।
हमरो कहयो न इक मन आना।।
किह दुख ते मन कीन उदासू।
जिऊं तुम कहऊं करैं तिम आसू।।
निज स्त्री कऊ जे दुख मानऊ।
और बयाह कर देहिं, बखानऊ ।।
सभ किछु घरि महिं दीन बिधाता ।
जिऊं तुम चहहु करहिं तिऊं ताता।

यह सुनकर श्री गुरू जी हंस पड़े और राग सूही छंत महला १ का शब्द 'जिनि कीआ तिनि देखिआ जुग धंधड़ै लाइआ' उच्चारण किया।

तब बाबा ने कहा, "पिता जी, माता जी वह विधाता पुरुष है, वह भूलने वाला नहीं। जो संयोग उसने बनाया है, वही भला है।' तब माता ने कहा, 'बेटा! तू उठ और चल, अब इधर-उधर की बातों का त्याग कर, फिर क्या संयोग बनेगा, जिससे फिर मिलेगा।' तब बाबा ने राग मारू महला १ में शब्द उच्चारण किया :-

पिछहु राती सदड़ा नामु खसम का लेहि ।
खेमे छत्र सराइचे दिसनि रथ पीड़े ।।
जिनी तेरा नामु धिआइआ तिन कऊ सदि मिले ।।१।।
बाबा मैं करमहीण कूड़िआर ।।
नामु न पाइआ तेरा अंधा भरमि भूला मनु मेरा ।।१।। रहाउ ।।
साद कीते दुख परफुड़े पुरबि लिखे माइ ।।
सुख थोड़े दुख अगले दूखे दूखि विहाइ ।।२।।
बिछुड़िआ का किआ बीछुड़ै मिलिआ का किआ मेलु ।।
साहिबु सो सालाहीऐ जिनि करि देखिआ खेलु ।।३।।
संजोगी मेलावड़ा इनि तनि कीते भोग ।।
विजोगी मिलि बिछुड़े नानक भी संजोग ।।४।।१।।

तब बाबा ने कहा, "पिता जी! माता जी! हम आये हैं, कहा था न कि आयेंगे पर अब तुम विनय स्वीकार कर लो, हम अभी उदास हैं।"

तब माता ने कहा, "बेटा, मेरे मन को संतोष कैसे होगा; तू बहुत वर्षों तक

उदासी भोगकर आया है।" तब बाबा जी ने कहा, "माता जी! तुम मेरा कहा मानो, तुम्हें सन्तोष प्राप्त होगा, अब हम आस-पास का भ्रमण करेंगे और फिर शीघ्र ही तुम्हारे पास आ जायेंगे।" (बाले वाली जन्मसाखी)। तब माता चुप हो गई।

उधर राय बुलार तक भी समाचार पहुच गया था कि गुरू जी आये हैं। उसने पक्का समाचार मंगवाया और चलने के लिए तैयार हुआ, पर हृदय का साहब जानता था कि राय का शरीर वृद्ध है, अतः स्वयं चलकर उसके पास आ पहुंचे। लालसा उत्सुकता के रूप का दर्शन करके राय बहुत प्रसन्न हुआ, विवश होकर चरणों पर झुका, पर गुरू बाबा ने झुकते हुए सिर को थामकर कण्ठ से लगा लिया, दोनों ने भली-भांति अंग मिलन किया। फिर राय ने आपको पलंग पर बैठाया और यात्राओं के समाचार पूछे, सुने और शीतलता प्राप्त की। रात को गुरू जी ने उसके पास विश्राम किया और दूसरे दिन फिर तैयार हो गये। आज्ञा के प्रेमी राय ने आज्ञा को सिर पर रखा और कहा- मेरा परलोक संवारना, मुझे तुम्हारा ही आश्रय है।

□ □

४२ माता तृप्ता जी और भाई मरदाना की बातचीत

जब पहली यात्रा करके सतगुरू जी तलवण्डी आये तब मरदाने के साथ माता तृप्ता की जो बातचीत हुई उसकी एक एक बानगी:– (कविता का अनुवाद)

मरदाना मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तुमने एक युग विदेशों में व्यतीत किया है।

एक–एक दिन एक–एक वर्ष का व्यतीत हुआ है और रो–रोकर समय बीता है। न तो रात को नींद आती थी और न दिन को चैन पड़ता था। जी उदास रहता था, मैं प्रत्येक आवाज़ पर चौंक उठती, मानो मेरा लाल घर आ गया है। इकलौता पुत्र जो दैवी तारा मंडल का एक तारा है विराने देश चला गया है; न तो काई सुख सन्देश ही आता है और न कोई पता–ठिकाना मिलता है। दिन बीत–बीत कर महीने और महीने साल हो गए, और एक–दो साल भी नहीं न जाने कितने साल हो गए।

हे बेटा, बता क्या तुम्हारे ध्यान में मैं भी कभी आई हूं? क्या तूने कभी लाल को यह याद दिलाई थी कि 'तुझे माता याद करती है? अब देश को चलो और मिलनातुर माता को मिलो और शीतलता प्रदान करो।'

हे मरदाना! क्या तूने कभी मेरा दु:ख मेरे पुत्र से कहा?

मरदाने ने हाथ जोड़कर कहा, 'मैं मोह–माया का कीड़ा हूं, मैं अपने परिवार की याद करता और उसकी पीड़ा सहन करता रहा हूं। परन्तु, माता! मैं आपको भी याद करता और गुरू जी को याद कराता रहा हूं।

मैं तेरा वियोग याद करके नयन में नीर भर लाता रहा हूं। तेरे दु:ख, अन्दर की पीड़ा, और मोह–ममता को जब सोचता रहा हूं, तब मेरा कलेजा उछलकर बाहर निकलता रहा है और मैं उसे बड़ी मुश्किल से थामता रहा हूं।

पर एक और समय भी कभी–कभी आता है उस समय मेरा दिल तेरी याद अवश्य करता है।

किसी जली–भुनी आत्मा को नानक जब शीतलता प्रदान करता है, जब बिछुड़े हुए नारकीय पात्र मरे हुए को जिलाता है।

जब किसी भूले–भटके और दुख भरे को प्रकाश देकर रास्ते पर लाता है।

जब किसी कोढ़ी–कपटी को स्वस्थ करके अदेशी रंग में रंग देता है तब

वह जीवित हुई आत्मा का रोम-रोम धन्यवाद देता है।

तब वह आत्मा नयन भरके उत्साह से उछलकर मुंह से यह वाक्य कहती है-

"धन्य जननी जिसने तुझे जन्मा, धन्य तेरा बड़भागी पिता जिसने जलते जगत की रक्षा के लिए अपनी मोह ममता का त्याग किया है।

जब किसी मृत आत्मा में गुरू नानक ने रूह फूंकी तब वह विह्वल होकर धन्य जननी-धन्य जननी कहकर चिल्लाई। तब हे मां तू मुझ दास को याद आती रही है।

मैं तुम्हारे चरण-स्पर्श करके प्रत्यक्ष दर्शन करता रहा हूं।

तब मेरा रोम-रोम ध्यान धर कर यह प्रार्थना करता रहा है।

हे मां! तू सचमुच धन्य है लोक और परलोक यह कह रहा है।

हे मां, तब तुम मुझे बहुत मीठी लगती हो, मैं तुम्हारा यशगान करता हूं।

मैं हृदय में तुम्हारी महिमा धारण करके विस्मय में पड़ जाता हूं ।

और कहता रहा हूं कि मां मिलनातुर हो रही होगी, पर उसका धन्यवाद हो रहा है।

प्यार के उभार में भरा हुआ यह असल असली आशीर्वाद है;

जो दुनिया के दुखियों से उठकर मां की ओर जाता है।

अम्मां भाग्यशालिनीं है और लोक परलोक को शोभायमान करती है।

इसमें कोई शक नहीं कि तू दुखिया है और विरहिणी है पर तू, हे मां धन्य है, इसे हर कोई कहता है।

□ □

स्वदेश में सतनाम का चक्र

सूचना – सतगुरू जी फिर मरदाने को साथ लेकर सतनाम का झण्डा फहराने के लिए चल पड़े। पर पहिले रावी की ओर गये। कुछ दिनों तक एकान्त वनों तथा निर्जन स्थानों पर टिककर यहां से फिर वापिस लौटे और चिनाब नदी की ओर आये। चिनाब के किनारे भ्रमण करते फिर अन्दर को चल पड़े। फिर उजाड़ से होकर (सांदल बार[१]) चलते फिरते, रावी नदी पर पहुंचे, वनों में से चलते–फिरते पाकपट्टन के बाहर आकर ठहर गये।

चिनाब के इलाके के समाचार अभी तक अप्राप्य हैं, पर एक कथा वहां पर किसी परगने में घटी थी जो आगामी प्रसंग में अंकित है। उस समय तलवण्डी के परगने की भांति परगने तथा परगनों के स्वामी हुआ करते थे जो एक प्रकार के राजाओं की भांति हुआ करते थे। एक परगने का सरदार बहुत शक्तिशाली था, जो अपनी शारीरिक शक्ति के कारण 'राठ' की उपाधि प्राप्त कर चुका था। उसकी एक बेटी थी जिसको उसने पुत्रों की भांति पाला था। चिनाब देश में अलक्षेन्द्र के समय में रह गये पुरातन यूनानी लोगों का वंश चला आ रहा दिखवाई पड़ता है। या पंजाब की वास्तविक जाति का रक्त चला आ रहा है। लोग बहुत स्वतंत्र तथा खुले स्वभाव के थे और हैं भी। तब युवतियों और लड़कियों में पूर्ण स्वतन्त्रता थी। दामोदर कवि ने अपनी रचना 'हीर' में जो आंखों देखे हाल लिखे हैं, उनसे भी लड़कियों की स्वतन्त्रता तथा साहस का प्रमाण मिलता है और आजकल भी उधर प्राय: और विशेष रूप से जंगली लोगों में स्वतन्त्रता और स्त्रियों के साथ भले व्यवहार दिखवाई देते हैं। अत: उस इलाके के एक परगने के एक राठ के सिख मत धारण करने के समाचार अगले प्रसंग में वर्णन किये गए हैं।

---

१. पंजाब के एक निर्जन प्रान्त का पहला नाम ।

४३ प्यारे का प्यारा

यहां प्रसंग इस प्रकार लिखा गया है कि मानो एक पथिक अपने मुंह 'एक घटी घटना के' समाचार का चित्र अपने स्वप्न में देखता है और उस स्वप्न का वर्णन करता है।

: १ :

मूसलाधार वर्षा होने लगी। चारों ओर जंगल, न कोई गांव और न कोई बस्ती, वस्त्र भीग गये। थैला भी भीग गया। अब सर्दी भी आ गई। नीचे से पांव फिसलते थे और ऊपर से बूंदे पड़ती थीं। चारों ओर पवन शरीर की गर्मी उड़ा रही थी। हे वाहिगुरू! इस समय क्या हो? हृदय ने खूब प्रतीक्षा की! आंखों ने आपा फाड़कर भी चारों ओर दूर तक नज़र दौड़ाई, पर कोई ठिकाना नज़र न आया। ठिकाने के बिना ठहरना बेकार था और चलते जाना कदम-कदम पर कष्ट को बढ़ाये जा रहा था। हां, चलते रहने में ठहरने की अपेक्षा एक सुभीता था कि शरीर का ताप जितना उड़ता था उतना अन्दर से और उत्पन्न होता जाता था और कुछ जीवन के तार के चलते रहने की आशा हो सकती थी। परन्तु अब अंगों में थकान-सी प्रतीत होने लगी जो चलने को भी भारी किये जा रही थी।

इस प्रकार के कष्ट झेलते हुए एक बुर्जी-सी दिखाई दी। मन ने इच्छा की कि यह कोई ठोस बुर्जी न हो। ईश्वर करे कि यह कोई मन्दिर, समाधि अथवा मकबरा हो जिससे मुझे इस कष्ट से छुटकारा मिले। आंखों ने निशाना बनाकर देखा, पांवों ने साहस बटोरा, मन ने मिन्नतें मानीं। वह बुर्ज आ गया, सौभाग्य था, वह ठोस बुर्ज न निकला, एक द्वार था, जिसमें कोई किवाड़ नहीं था, पर अन्दर खुले बैठने और घुटने जोड़कर लेटने के लिए ही जगह थी। पहले तो कदम रखते ही बीते समय के किसी भले पुरुष की भभूति का विश्राम स्थल होने के कारण उसके प्रति सत्कार के भाव ने रोका कि कदम संभालकर रख, पर फिर उसी भलाई के ख़्याल ने कहा कि जीते जी जिन्होंने सुख देकर भला कहलवाया क्या मरकर अपने द्वार पर आये अतिथि के दु:ख को दूर करने से दूर हटना पसंद करेंगे? यह विचार करके मैं बढ़े हुए छज्जे के नीचे आकर खड़ा हो गया, जूता उतारा, वस्त्र उतार कर रख दिये, थैला खोला। बाहरी भाग भीग चुका था, पर अन्दर से एक चद्दर, कच्छा, कुरता और चादर कुछ सूखे से निकल आये। शरीर पोंछकर यह वस्त्र पहन लिये और उस छोटी-सी जगह के अन्दर जा डेरा लगाया। शरीर को कुछ गर्मी आ गई और सुख-सा हो गया। जब सर्दी तथा यात्रा की ओर

से ध्यान हटा तो अपने सुख की ओर आ गया और सुख की ओर से सुख के कारण की ओर जा पड़ा। 'आह! अगर यह स्थान प्राप्त न होता तो न जाने मेरी क्या दशा होती? किन सौभाग्यवान हाथों ने इस स्थान का निर्माण किया होगा? न जाने मेरी ही रक्षा के लिए किसी ने किसी बीते समय में ये सामग्री इकट्ठी करवाई होगी?' अब विचार आया कि 'यह गुरूद्वारा भी नहीं, मन्दिर भी नहीं, समाधि भी नहीं दिखाई देती यदि है तो क्या है?' फिर मन ने कहा-पेड़ गिनने से क्या लाभ, आम खाने चाहिए। सुख प्राप्त हो गया है और साईं ने दिया है, धन्यवाद कर और जितना है उसके अनुसार पांव पसारकर विश्राम कर। जब लेट गया तो थोड़े ही समय में चूने वाली दीवारों तथा मेहराब वाली छत की सफेदी पर फिरती-फिरती दृष्टि भारी होकर वापिस लौटी और पुतलियों द्वारा नीचे उतरकर मुझे निद्रा में मग्न कर गई।

जब मैं सो गया तब उस स्थान पर प्रकाश हो गया और उस प्रकाश में कुछ सूरत का भ्रम होने लगा। पर बाद में एक अच्छी सूरत गोरे रंगी की सुडौल स्त्री पर दृष्टि पड़ी, जिसके चेहरे पर सुख की चमक और शान्ति की दमक थी। नेत्र स्वच्छ, ऊंचे तथा प्यार से भरे हुए थे। मुझे कहने लगी - 'हे सुखों के प्यारे! शहीदों के स्थान पर बेअदबी के साथ क्यों पड़ा है? जिस स्वामी ने तुझे यह स्थान बताया था, उसका प्रतिदिन करने वाला कीर्तन भी नहीं किया और लगा है निद्रा करने? धन्यवाद के बिना मनुष्य, मनुष्य नहीं, मलिन है। आज के कष्ट तथा कष्ट में सुख की इच्छा तथा निराशा में सुख की प्राप्ति ने सुख भोगने की ओर इतना आकृष्ट कर लिया है कि तुझे रहरास (सांयकाल को जिस वाणी का सिख पाठ करते हैं) का पाठ भी भुला दिया और सोहिला (रात को सोते समय जिस वाणी का पाठ किया जाता है) भी याद न रहा। प्रेम के मार्ग में इस तरह, बेअदब हो जाना और फिर ईश्वरीय रहस्यों के परदे हटाने का संकल्प लेकर सो जाना ईश्वर के साथ प्रेम है कि अपनी बुद्धि को ज्ञान से भरने का लोभ है? 'फरीदा जा लबुत नेहु किआ तबु त कूड़ा नेहु'।

मैंने कहा - जी! सच है, मेरा प्रेम ऐसा ही है, प्रेम नहीं लोभ है, पर अब स्वामी को विरद की लज्जा है जिसके हम कहलाते हैं यदि कुछ आशा हो सकती है, तो इसी में। यह कहते ही मुझे पश्चात्ताप तथा वैराग्य ने आकृष्ट कर लिया और सचमुच अपने निकम्मे होने का चित्र आंखों के आगे आकर खड़ा हो गया। मैं इसी दशा में था कि आकाश से ध्वनि उठी और सांयकाल का कीर्तन होने लगा प्रतीत हुआ। कब किसी ने इतने सुरीले मधुर, प्यारे तथा रस-भरे स्वर में यह कीर्तन सुना था। कीर्तन की समाप्ति होकर उसी तरह के प्यारे स्वर में 'रहरास' की वाणी का पाठ तथा आरती का उच्चारण सुना। यह कीर्तन कौन कर रहा था और वह कहां पर बैठा था, यह दिखाई नहीं देता था, यों ही लगता था कि पवन को जिह्वा लग गई है।

झण-भर के पश्चात् वह प्रकाश वाली सूरत फिर दिखाई दी। मैंने कहा, क्या मैं पूछ सकता हूं कि इस उद्यान में कैसा मन्दिर है? तब उस भाग्यशालिनी ने कहा – भले पुरुष! यह बौद्ध मत के साधुओं के समय का एक मठ है; यहां पर उनके मत का एक तत्वज्ञ साधु बैठकर तप किया करता था; यह स्थान इसीलिए तंग है कि कहीं वह असावधानी से सो न जाये। शताब्दियों पर्यन्त इस छोटे से स्थान में कई महान व्यक्ति अपने असाध्यनों को सिद्ध करने के लिए निवास कर गये हैं। समय पलट गया, बौद्ध मत का प्रभाव कम हो गया। जिस देश ने उसे जन्म दिया था उसने उसे देश निकाला दे दिया और वह वृक्ष परदेशों मे जाकर प्रफुल्लित हुआ। इस तरह के उनके स्थान कुछ तो समय ने जर्जर कर दिये, कुछ मुसलमान आक्रमणकारियों ने नष्ट-भ्रष्ट कर दिये। यह स्थान भी खंडहरों के रूप में पलट रहा था कि प्रकृति ने इसकी मुरम्मत करवाने में सहायता की और फिर से बनवा दिया। उसी के ढेर में कलश, गुम्बज़ की ईंटें तथा पत्थर मिल गये और वे गिरी हुई कुछ नई सामग्री लेकर फिर अपने स्थान पर खड़े हो गये और इसमें दोबारा जीवन भर गये। बस अब यह सारी बात जानकर तेरे मन का आश्चर्य शान्त हो गया है? अथवा मनुष्य के स्वभाव की भांति एक विजय के पश्चात् और झगढ़े में पड़कर नई विजय के यत्न में लाने की भांति और हैरानी में जा पड़ी है?

मैंने कहा – सच तो यही है कि अब मेरा मन यह चाहता है कि यह भी जान लूं कि इस गिरे पड़े को किस भावना से किसी सांसारिक हाथ ने फिर उठाया और उसमें आपका क्या भाग है?

हंसकर, प्यार सहित उस परी से भी प्यारी सूरत ने कहा–हे पथिक! व्यक्ति जानने के लिए तो बहुत अधीर है, पर काश ! जितना कुछ जान लेता है उतनी कमाई भी तो करे। हां, प्रत्येक बात को जानकर बुद्धि से ज्ञान के भण्डार भर लेता है पर उस ज्ञान द्वारा यह काम नहीं करता कि जो कुछ ज्ञान प्राप्त किया है, वही कुछ कर भी ले तो वही हो भी जाये। फिर अन्तस् जानने वाला जान ले कि अपने जानने तथा जानी हुई और जानने योग्य का मैं तो ज्ञाता हूं और यों पृथक हूं और पृथक होकर स्वतंत्र हूँ। और स्वतंत्र होने के लिए प्रसन्न हूं।

हे पथिक, हे अतिथि! तेरे सत्कार के लिये मैं तुझे व्यथा सुनाती हूं, तू इसे सुन और समझ। यह राम कथा लम्बी है और तनिक सी गहरी है, यदि तू इसे हैरानी से सुनेगा तो कुछ भी न जान सकेगा, पर यदि प्रीति-सहित ध्यान लगाकर सुनेगा तो समझेगा कि इस ठिकाने पर क्या-क्या घटना घटी थी और तू उससे क्या लाभ प्राप्त कर सकता है। इसके साथ मेरी व्यथा जुड़ी है अत: मैं अपना समाचार आरम्भ से सुनाती हूं :–

मैं राजसी घर में उत्पन्न हुई। मेरा पिता इस परगने का स्वामी था और अपनी

शक्ति द्वारा इर्द-गिर्द के सारे परगने पर शासन किया करता था। आसपास के लोगों तथा अन्य कुलों के सरदारों में सदैव विजय प्राप्त करने के कारण 'राठ' कहलाता था। मेरा जन्म उसके घर में बहत लालसा के पश्चात् होने के कारण परिवार की ओर से मुझे प्यार किया जाता था। उस समय कुछ भय के कारण कुछ देखादेखी से और कुछ बड़ाई के कारण पर्दा प्रचलित हो गया था, पर पिता के भुजबल के कारण मैं निर्भय थी और अपनी पुरातन कुल-रीति के अनुसार स्वतंत्र थी। घोड़ों पर चढ़कर इन वनों में प्रसन्नता से घूमती थी। शिकार भी करती थी, निशाना लगाती और बरछे भी चलाती थी। बल्ले का खेल तथा गेंद-पट्टी सखियों के झुण्ड बनाकर खेला करती थी। अर्थात् संसार मेरे लिये सुख तथा आनन्द का एक अखाड़ा था। सवेरे से रात तक हंसना, खेलना, खाना, देन-देना, छेड़ना, आनन्द में मग्न दौड़ना, सुख से बैठना, आनन्द से सोना। कोई ऐसा व्यक्ति नहीं था जो मेरे सुख में बुरा मनाता और यदि कोई बुरा मनाता भी तो मुंह से न बोल सकता। मैं मां की लाड़ली थी, इसलिये मैं पिता से अधिक प्यारी थी। माता-पिता की इकलौती बिटिया होने के नाते परगने-भर में मेरे जैसा कौन था। प्रजा में मैं बड़ी थी और मेरे बड़े मेरे प्यार के कारण मेरे सिर पर भय का अंकुश नहीं रख सकते थे। इन्हीं रंगों तथा मौजों में अठारह वर्ष व्यतीत हो गये। मुझे पुण्य तथा पाप का कोई ज्ञान न रहा और न ही मेरी आत्मा पर स्त्री तथा पुरुष का कोई गहरा अन्तर पड़ा। मेरे लिए संसार सुखों, खेलों का स्थान था और जो कुछ दिखाई देता था सब कुछ मेरे आराम के लिए बना दिखाई पड़ता था। मैं सारा दिन हंसती, प्रत्येक सखि के साथ चुहल करती और इस तरह फिरती थी, जिस तरह वन में मृग चौकड़ी भरते हैं। जब रात को मैं घर आई तो मां की गोद में जा बैठी और मैंने पुकारा; 'अम्मा खाना खिला।' वह कस-कसकर छाती के साथ लगाती और अनजान बालिकाओं की भांति मेरे मुंह में कौर दे-देकर मुझे खाना खिलाती थी। वहां से उठी, दूध का कटोरा पिया और जा पलंग पर छलांग लगाई, सिरहाने पर सिर रखा और सो गई। रात-भर कभी करवट नहीं ली, कभी कोई स्वप्न नहीं देखा, सूर्य को मैंने अपने बाद कभी नहीं जागने दिया। झिरियों में से धूप अन्दर आई तब मैं जाकर कहीं उठी, जब उठी तो छलांग लगाकर उठी, झट वस्त्र पहने और बाहर घोड़े पर चढ़ी हुई सखियों के झुण्ड को साथ लिया और वनों की ओर उड़ गई। वनों में ही स्नान, वहीं पर खेल-कूद। दोपहर को खिलखिलकर हंसती हुई प्रसन्नता के पंखों पर उड़ती हुई घर को आई और उसी तरह खाती-पीती-हंसती हुई सो गई। सांयकाल को पिता के साथ प्यार करती हुई उनके सामने घोड़े पर चढ़कर फिर खेलों के मैदान में जा पहुंची। रात हुई तो उसी तरह कबूतर की भांति गुटकती हुई घर को लौट आई। चिनाब नदी हमारे से कुछ दुरी पर थी, पर मेरा बेड़ा वहां पर भी था। मेरे पिता को लोग 'पृथ्वीपति नदीपति'

कहते थे, क्योंकि नदी में भी उसके आगे कोई खड़ा नहीं हो सकता था।

एक दिन मैं शिकार को गई। जब मैंने बहुत दूर देखा तो मुझसे एक चीते का भुलावा हुआ। मैंने सखियों से कहा देखें तो सही क्या है? कईयों ने कहा कि चीता है। कईयों ने कहा वैसे पत्थर पड़ा है। एक ने कहा 'पाढ़ा' नामक मृग है, एक ने कहा ज़रा आगे हो चलें और पहचान कर लें। पर मेरे शरीर में जो जीवन के चाव आनन्द तथा प्रसन्नताओं से भरे असह्य हिलोर उठते थे वे इन बातों की क्या चिन्ता करते थे, मैंने निशाना बांधकर वाण सीधा किया। जब मैं बाण छोड़ने लगी तो आज यह पहला दिन था कि मेरे जी में कुछ हुआ, जिसे मैं उस समय तो नहीं जानती थी, पर बाद में पता चला कि वह भय था। बाण निकल गया और ठीक निशाने पर जा लगा। वह जीव उठा नहीं, भागा नहीं, वहां पर ही दो चक्कर खाकर ढेर हो गया। तब हम भागकर वहां पर पहुंचीं तो हाय ईश्वर! मैंने क्या देखा कि वह वन-पशु नहीं था, वह तो एक मनुष्य था। मनुष्य भी वह था कि जिस जैसी सूरत मैंने पहले कभी नहीं देखी थी। वह भला युवक था, अच्छे-से-अच्छे युवक तो हमारे दल में भी थे, पर वह कुछ और ही था और न जाने वह और क्या था। वह कुछ ऐसा अच्छा-अच्छा था कि मुझे यों लगा कि मैंने बाण तो इसे मारा है, पर मैं स्वयं बिंध गई हूं। कभी माता-पिता इतने अच्छे नहीं लगे थे, कभी खेल और शिकार भी इतने अच्छे नहीं लगे थे और न ही कभी सखियां इतनी मीठी लगी थीं, जितना कि अच्छा वह लगा। मेरे वश में कुछ न रहा, मैं जो अपने आपको सर्वोत्तम समझती थी, विवश होकर उसके आगे चारों खाने चित्त गिर पड़ी। हां मेरा न झुकने वाला सिर झुक गया, मेरे हाथ बंध गये और जो बात पहले कभी मुझ पर नहीं घटित हुई थी, आज आकर घटित हुई। मेरी आंखों में से जल के कण गिरने लगे। उस मोहिनी मूर्ति के शरीर में बाण चुभ रहा था और उस बाण की जड़ में से रक्त की धारा बह रही थी। मैं रोई, कांपी, मैंने अपने हाथों से उस बाण को निकाला, उस छेद को, जिसे मेरे ही मूर्ख हाथों ने किया था, बन्द करने के लिये कसकर पकड़ा। सखियां मुझ में यह रंग देखकर-जिसे उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था, वे महल को भागीं। मैं अकेली रह गई। उस सूरत को इस दशा में देखकर मेरा कलेजा मेरे अधिकार में नहीं था। मुझे समझ नहीं आती थी, पर मेरे नैनों में से जल की धारा रुकती नहीं थी। मैं चाहती थी कि वह एक बार आंखें खोले, पर मेरा साहस नहीं बंधता था कि मैं उसे हिलाऊं; भय लगता था कि न जाने निद्रा में हो और मेरे बुलाने पर कहीं जाग उठे और उसे फिर पीड़ा हो। उस समय मेरा जी चाहता था कि उसकी पीड़ा मुझसे हो जाये, उसका रक्त जो घाव के कारण बह रहा था, बन्द हो जाये और वह उठकर बैठ जाये और मेरी ओर देखकर कह दे :- हे युवती! तेरे अपराध का मैं तुझे यह दण्ड देता हूं, कि सारी आयु के लिये मैं तुझे अपनी दासी बनाऊंगा।' मैं सोचती थी कि यदि मेरे पिता ने

न माना तो मैं इसके कण्ठ से लगकर उसकी छाती पर सिर रख कर रो-रोकर मनवा लूंगी और कहूंगी, 'हे पिता जी! मैं उसकी दासी बन गई हूं, मेरे अपराध ने मुझे इसके हाथों विक्रय कर दिया है, तुम यदि मुझे राज्य-सहित इसकी दासी बना दो तो भी मेरी भूल का बदला नहीं दिया जा सकता।' अम्मा तथा बापू को बता दूंगी कि इसकी बंदी में प्रसन्नता तथा स्वतन्त्रता समझूंगी। उस समय कलेजा उछल रहा था और मेरा एक हाथ उसके शरीर पर इस तरह फिरता था कि जिस तरह मुझे चकित हुई को मेरी दासियां पलोसा करती थीं। काफी समय यों व्यतीत हो गया। रक्त की धारा वाली नाड़ी मेरे हाथ ने दबाई हुई थी, मेरा दूसरा हाथ उसके पांवों को दबा रहा था कि फिर विवश ही मेरा सिर उन पैरों पर जा पड़ा और चिनाब नदी की भांति उछल रहे मेरे नैनों ने उन्हें भली-भांति धो दिया। इस समय उसने लम्बा श्वांस लिया, मैंने सिर उठाकर देखा तो उसने नेत्र खोले थे। उसकी आंखों को जब मेरी आंखों ने देखा तो मेरे सारे शरीर में झन्नाहट पैदा हुई मैंने कब ऐसे नेत्र देखे थे? मैं चाहती थी कि कह दूं, "हे सर्वोच्च व्यक्ति! मैं अनजाने ही तुझे बींध बैठी हूं, पर मैं अपना दोष स्वयं मानती हूं। ये मेरा धनुष है और यह बाण है जिससे मैंने तुझे बींधा है, अब उठ और इसी से मेरी छाती को बींध दे, और यदि मेरे अपराध को क्षमा कर दे तो मेरे कान बींध कर बालियां डाल दे और मुझे दासी बनाकर अपने साथ ले चल। मैं सारी आयु के लिये तेरी दासी बन गई" पर हाय! मेरा गला रूक गया, मैं बोल न सकी, मेरी आंखों ने जो कुछ कहा सो कहा और उसकी आंखों ने जो कुछ पढ़ा सो पढ़ा। अभी मैंने जी भरकर आंखें देखी ही नहीं थीं की पलकें गिर पड़ीं और वे आंखें मुंद गईं! पैरों को दबाने वाला मेरा हाथ अब उसके चेहरे पर पहुंचा, मिट्टी झाड़ी, साफ किया, जैसे मेरी मां चाव के समय मेरे चेहरे पर हाथ फेरा करती थी कुछ उसी तरह और कुछ लज्जा सी में मैं चेहरे पर हाथ फेरती थी और चाहती थी कि यह एक बार फिर से आंखें खोल दे। मेरी आशा पूरी हो गई, नेत्र खुल गये और खुलकर मेरी आंखों में जम गये, मेरे नैन झपकी लेना भूल गये। वह स्वाद इस रंग में आया कि मैंने पहले कभी नहीं देखा था, मुझे एक प्रकार की बेसुधी हो गई कुछ समय व्यतीत होने के पश्चात् मुझे पता चला कि अधर खुलने लगे हैं और कहने लगे हैं कि "तू मेरी दासी है।" अधर खुले और कुछ कहने लगे, पर मैं न समझ सकी क्या कह रहे थे। हां अधर जो कुछ बोले उनका मुझे ध्यान हो गया, 'श्री वाहिगुरू।' इतनी ही बात थी जो उसने कही, पर मैं उस समय नहीं समझती थी कि यह क्या कहता है।

अब कुछ मेरे अधिक बल लगाने पर मेरे अधर भी खुले और मैंने कहा :- 'जी! क्या आज्ञा है?' पर इसके उत्तर से पूर्व अधर और नैन फिर से मुंद गये और चेहरे के रंग में कुछ सफेदी-सी और आ गई।

इतने में मेरा पिता, माता तथा हकीम-वैद्य और कई दास आ गय गये। आज पहला दिन था कि मेरे चेहरे की ओर देखकर मेरे माता-पिता प्रसन्न नहीं हुए; उदास हो गए और मैं भी रोने लगी। मेरी मां ने भागकर मुझे गोदी में ले लिया, उसकी शीघ्रता के आकर्षण ने मेरा हाथ हटवा दिया और रुकी हुई रक्त की धारा फव्वारे की भांति मेरे चेहरे पर आ पड़ी। हाय! आज पहला दिन था कि मैंने आने-आपको मां की प्यारी कलाई से छुड़ाकर उसे धक्का दिया और शीघ्रता से उसकी रक्त वाली नाड़ी को पकड़ा, जिसमें कि मैं चाहती थी कि मेरा सारा रक्त चला जाये, और निकल चुके रक्त की कमी पूरी हो जाये। फिर मैं निस्शंक होकर इस तरह लेट जाऊं कि वह जैसे पड़ा था मेरे सिर को उठाकर अपनी गोदी में रखकर चेहरे से मिट्टी पोंछे।

वैद्य और हकीम अब भागकर आये और घाव को मेरे हाथों से लेने लगे, पर मेरा हाथ वहां से हटता नहीं था। पिता ने आकर शीघ्रता से मेरा हाथ हटाया और जोर से मुझे अपने अंगों में लेकर अपने कमरबन्द के साथ मेरे चेहरे से रक्त पोंछा और कहा, "राठ की बिटिया! यह क्या हो गया है? तेरा हृदय तो इतना कायर नहीं था?" पर मेरे पर क्या प्रभाव पड़ता था, करबद्ध होकर कहा, 'बापू जी! शीघ्रता से रक्त बन्द करवाइए, मैंने निर्दोष को मारा है।" मेरी आवाज़ में कुछ बहादुरी नहीं थी, कुछ वह था जिसे अनजाना मन कहते हैं, कुछ कम्पन-सा और कुछ थर्राहट सी थी, जिससे राठ बापू का हृदय भी घबरा गया। आज्ञा की, 'शीघ्रता से घाव को सी डालो।" वैद्य जी तथा हकीमजी ने फुर्ती दिखाई, मोमियाई तथा अन्य औषधि दी, घाव को सीकर बांधा गया। अब मैंने कहा-"पिता जी घर में ले चलो; वहां पर सेवा करेंगे।" मेरे कहने पर कौन इनकार कर सकता था? डोली में डालकर मैं उस सूरत को-जिस ऐसा और कोई भी अब मुझे अच्छा न लगता था-महलों की ओर ले चली। अब मुझसे घोड़े पर नहीं चढ़ा जाता था, जी चाहता था कि मैं डोले के साथ चलूं और उस मुखड़े को क्षण-भर के लिए नज़र से ओझल न होने दूं, पर आज बापू जी ने कुछ ज़ोर देकर मुझे घोड़े पर बैठाया। हम घर पहुंचे, मैंने अपने सोने वाले कमरे में उसका डेरा डलवाया।

मां मुझे एक ओर ले जाकर पूछने लगी-"बिटिया! यह कौन है? इसका तेरे से परिचय कब का है? तुझे इसके साथ इतना स्नेह क्यों हो आया है, हैं इतना प्रेम?"

मैंने रो-रोकर कहा-अम्मां! आज से पहिले मैंने इसे कभी नहीं देखा। बाण मारते समय मुझे पता नहीं था कि यहाँ पर सबसे अच्छा लगने वाला मनुष्य बैठा है। मैंने तो चीता समझकर बाण मारा था और मैं प्रसन्न थी कि इसका चर्म बापू के रथ के नीचे बिछाऊंगी। पर हे अम्मां! बाण चलाते समय मेरे जी को अवश्य

ही कुछ हुआ था, न जाने वह क्या था! और जो तुम मुझे 'प्रेम' कहती हो वह क्या होता है? मुझे तो इसका पता ही नहीं ।

मां ने हंसकर कहा–जो हम तेरे साथ करते हैं। मैंने कहा अम्मां! वह तो लाड़–प्यार है। मैं जब इससे परिचित हीं नहीं थी, तब मैं इसे लाड़–प्यार कैसे कर सकती थी? मेरे इस भोलेपन को सुनकर मां हंस पड़ी और कहने लगी, "जो व्यवहार तू इसके साथ कर रही है, यह प्रेम है।" मैंने कहा, "अम्मां! मैंने तो इसके साथ अब भी लाड़–प्यार नहीं किया, वह तो बोलता भी नहीं। नाड़ी दबाई है, पांव दबायें हैं और चेहरे पर से गर्द झाड़ा है, लाड़ तो कोई किया नहीं, वह तो बोलता भी नहीं। अम्मां जी! यह मुझे बहुत ही अच्छा लगता है, कोई और इस जैसा अच्छा कभी भी नहीं लगा।" अम्मां कहने लगी–"क्या मुझसे और तेरे बापू से भी अच्छा लगाता है?" मैंने उत्तर दिया, "हां अम्मां, तुम्हारे से बहुत ही अच्छा लगता है। तुमने नहीं देखा किस तरह का अच्छा है! भला तुमने कभी पहले इस जैसा व्यक्ति देखा है कि नहीं सब की अपेक्षा और सा? मां जी! मैंने बहुत ही पाप किया है जो सबसे अच्छे मनुष्य को इतनी पीड़ा दी है। यही है न पाप, जिस बात को पण्डित जी एक दिन पाप कह रहे थे और मैं क्रोधित होकर उठकर चली गई थी और बापू जी को कहा था कि यह मुझे कायरों की–सी बातें सुनाता है। उसका अब मुझे स्मरण आ रहा है कि वह पाप यही बात होगी, जो आज मेरे से हुई है। अम्मां! यदि यह मुझे बाण मारे तो मैं छाती आगे कर दूंगी और यदि यह मुझे दासी बनाकर मुझ से अपनी सेवा करवाये तो भी मैं करूंगी। अच्छी अम्मां! मुझे रोकना मत।"

यह सुनकर अम्मां पहले तो मुस्कराई, पर फिर रोने लग पड़ी। मैंने कभी भी मां की आंखों में जल नहीं देखा था। नौकरों को जब पीटा जाता था तो वे लोग रोते थे। मैं जानती कि हम राजा लोग हैं, हमारे नेत्रों में इन जैसा कच्चा जल है ही नहीं, पर आज तो मैं स्वयं रोई थी, मैं सोचती थी कि मैंने पाप किया है, और पण्डित जी ने बताया था कि पाप नीच कर देता है– मैं तो नीची हुई हूं, पर अम्मां ने कोई पाप नहीं किया था वह क्यों रोई? इतने में अम्मां कहने लगी, 'बिटिया! क्या कहूं? तेरे बापू के हाथों से युद्ध में अनेकों व्यक्ति मरे। न जाने राज्याधिकार तेरे हाथों में आये। चारों ओर शत्रु राय लोगों का निवास है, यदि तु तगड़ी न हुई और लड़कर विजय प्राप्त करके राठ न बनी तो राज्य को कैसे सम्भालेगी? बुरा तो हुआ, पर क्या हुआ, एक कंगला मर गया तो मर गया सही!" यह सुनकर मेरी चीखें निकल गईं। मैं अनजान बच्चे की भांति रोई। मां ने कण्ठ से लगाकर प्यार किया, पर मेरा रोना रुकता न था, मैं कहती : "अम्मां तेरी आंखों को क्या हो गया है? वह सबसे अच्छा मनुष्य है इसीलिए तो मुझे अच्छा लगता है। उसे तू कंगला' कहती है? 'यदि वह मर गया

तो कोई बात नहीं', अम्मां! यदि वह मर गया तो यही बाण जिससे मैंने सबसे ऊंचे को मारा है। मैं अपनी छाती में चुभो लूंगी और न तेरी गोद में खेलूंगी और न ही बापू जी से अंगमिलन करूंगी। अम्मां! तूझे क्या हो गया है? जो वस्तुऐं मुझे अच्छी लगती थीं, तू उन्हे चाव से लेती और कहती थी कि वे बहुत सुन्दर हैं। आज तू मूझे सबसे अच्छा लगने वाले को 'कंगला मर गया तो क्या हुआ?' कहती है। वैद्य को तो बुला, आकर देखे कि मेरी आंखों में जाला तो नहीं पड़ गया अथवा तेरी आंखों में तो नहीं पड़ गया? हाय! अब हे अम्मां? मेरे कलेजे पर हाथ रख, यहां पर कुछ उछलता है । यह क्या है? मेरा जी उस उछाल से घबराता है। यदि तू कहे, 'वह अच्छा है और तुझे भी अच्छा लगता है और हम उसकी सेवा करेंगे', तब तो यह उछाल कम होती है और मन लगता है अन्यथा छाती में उछाल होकर मेरे सिर को चढ़ रही है और नैन थामे नहीं जाते। आह, देख मेरे अश्रु थमते नहीं अंजुलि कर और भरकर देख। बता अम्मां! अब मैं क्या करूं?

मेरी यह दशा देखकर अम्मां कहने लगी–"रो मत, वह चंगा तो है, चंगा लगता भी है, तुझे जो चंगा लगे वह मुझे कभी भी बुरा नहीं लगा, पर कंगला तो मैंने इसलिए कहा था कि वह कोई सज्जन पुरुष थोड़े ही हैं। कोई मजदूर काम-धन्धा करने वाला होगा, मर गया, तू उसका दु:ख मत कर।" मैंने कहा, "अम्मां! कपड़े खूब सफेद नहीं, पर माथा तो किसी सज्जन पुरुष का इतना विशाल, गोल तथा चमकने वाला नहीं होता और यदि बापू जी उसे धरती तथा पशु दे दें तो वस्त्र भी अपने आप सफेद हो जायेंगे। पर अच्छा मां जी! जिस समय उसने नेत्र खोले और तुमने देखा, अब अपने-आप कहोगी कि यह तो लाहौर का कोई सेनापति है।"

यह सुन कर मां ने कहा– "अब तू मुझे बता कि तू किस बात पर प्रसन्न होगी?" मैंने कहा– "वही मेरे पास रहे, वैद्य तथा हकीम बाहर उपस्थित रहें, मैं सेवा करूं, वह औषधि करें, यदि एक बार स्वस्थ हो जाये तो मैं कहूं, "हे सर्वोच्च मनुष्य! मैंने अपराध किया है मुझे जो तेरी इच्छा हो दण्ड दे।"

मां के मन में न जाने क्या आया : कहने लगी– "दासियां, सेविकायें काफी हैं, पर यदि तेरा मन स्वयं सेवा करने को चाहता है तो अच्छा, तू सेवा करना, वैद्य तथा हकीम यहीं पर रहने लगेंगे।" सो वैद्य-हकीम आ गये, मैं सेवा करने लगी। जिस तरह मेरी सेविकायें मेरी सेवा किया करती थीं, उसी तरह मेरा जी उसकी सेवा में लग गया। मेरा निजी पलंग खूब नर्म था, मैंने उसके ऊपर उसे सुलाया, सारा दिन पास बैठकर पंखा झलती रहती और उसके चेहरे की ओर देखती रहती और इसी बात की प्रतीक्षा में रहती कि कब नेत्र खुलते हैं और मैं देखूं, कब अधर खुलें और वह 'श्री वाहिगुरू' फिर से सुनूं।

: २ :

तीसरे दिन आधी रात के समय उसके अधर खुले और नि:श्वास की आवाज़ आई, इसके पश्चात् आवाज आई, "धन्य ना...न...क" और उसके नेत्र खुले। नेत्र क्या खुले मेरे लिए बन्दीगृह से प्रसन्नता मुक्त हो गई। मैं खुले नैन देखकर बहुत प्रसन्न हुई और फिर कहा–"हे चंगे! सबसे अच्छे? मैं अपराधिनी हूं"। उन नेत्रों ने मेरी ओर देखा और फिर मुंद गये, पर जिह्वा ने पूछा, "मैं कहां पर हूं?" तब मैंने उसके कानों के पास मुंह लगाकर सारी व्यथा सुनाई और अपनी बातें भी कहीं पर फिर न तो नैन ही खुले और न ही अधर। कोई चौथे दिन सवेरे के समय फिर आवाज़ आई:–

मंदा मूलि न कीजई दे लंमी नदरि निहालीअै ।।
जिऊ साहिब नालि न हारीअै तेवेहा पासा ढालीअै ।।
किछु लाहे उपरि घालीअै ।।२१।।

पर मैंने उस समय सारी बात न समझी, हां इतना समझी की कहता है मेरे साथ तूने बुरा किया है, यह नहीं करना चाहिए था, बाण चलाते समय भली भांति देख तो लेना था, मैं प्रतीक्षा कर रही थी कि अब कहेगा कि तुझे मैंने कैद किया, इस पाप के बदले में । पर फिर नयन खुल गये और मेरी ओर देखा, फिर अधर खुले और कहने लगे, "तुमने बहुत सेवा की है, बाण तो मेरे पापों ने मुझे मारा है, तुम बहुत अच्छी हो, जिसने मेरी सेवा की है, प्रसन्न रहो"। यह कहकर वह सो गया। उसे सोया देखकर मैंने मां के पास जाकर उसे अंगों में लेकर कहा, "देख ले मां! वह मनुष्य कितना अच्छा है? कहता है – बाण तूने नहीं मारा मेरे पापों ने मारा है और तू अच्छी है जो सेवा कर रही है। देख मां! जो पापी को अच्छा कह रहा है; अम्मां! वह कितना अच्छा हुआ? मैंने तुझे कहा नहीं था कि वह बापू जी से ज्यादा अच्छा लगता है, भला बापू जी कभी पापी को अच्छा कहेंगे, वे तो पापियों को फांसी लगा देते हैं और यह कहता है– "तू अच्छी है"। मां हंस पड़ी और कहने लगी, "जा आज से जाकर खूंडी का खेल खेल ले।" मैंने कहा, "मां! जी नहीं करता, पास बैठे रहने के बिना और किसी बात को जी नहीं चाहता। अब जब कि तुम्हारे पास बैठी हूं तो जी यही कर रहा है कि क़ौन सा समय हो मैं फिर से उसके पास जाकर बैठूं।"

इस तरह करते कुछ दिन व्यतीत हुए, 'चंगे' जी का जी स्वस्थ होता दिखवाई पड़ने लगा। एक दिन रात को नैन खोले और मुझे पास बुलाकर कहने लगे :–

'देख तूने एक परदेशी की सेवा की है और यह सेवा भी राजा की बेटी होकर की है, मैं गरीब हूं, मेरे पास तुझे देने के लिए क्या है? पर एक बात तुझे बताता हूं, जो तुझे सुख देगी, वह बात ध्यान देकर समझ ले, वह बात यह है कि, "तू

यह शरीर नहीं है, तू आत्मा है" – मैंने पूछा, "आत्मा क्या होती है?" तब उनका मुंह बन्द हो गया दूसरी रात को फिर मुंह खुला तब कहने लगे, "मैं कहता हूं कि तू आत्मा है, तू शरीर से अलग है, तू शरीर से ऊंची है, यदि शरीर न रहे तो तुम तब भी रहेगी। यदि तू विशुद्ध शरीर हो तो निःसन्देह हंस, खेल, खा पी लिया कर पर तू आत्मा है अपने-आपकी पहचान किया कर, दूसरों में अपने जैसी आत्मा देखकर ! धन तथा शरीर तो परदे हैं जो अपने-आपको आत्मा देखने ही नहीं देते इन परदों को फाड़कर आत्मा को देखा कर। तू बहुत ऊंची है, पर अपने लिए जैसा सुख प्राप्त करती है, वैसा दूसरों को सुख भी दिया कर।"

मैं घबरा गई, मेरे आगे अन्धकार-सा छा गया, मैं चकित होकर हक्की-बक्की रह गई । मैंने कहा – "मैं नहीं जानती तुमने क्या कहा? 'मैं आत्मा हूं? मुझे शरीर के मर जाने पर नहीं मरना है मुझे सुख देना है ? 'हाय! क्या यह सच है? यदि सच है तो और मत कह, मेरा जी बैठता है। मैं यह शरीर ही रहूं और तेरे शरीर की सेवा करूं, सेवा में मर जाऊं और फिर न होऊं।" बस जी और मैं कुछ भी न होऊं। वे कहने लगे – "हे सरले! तू आत्मा है, तू पृथ्वी पर चलने वाली, तू पक्षियों की भांति नहीं! किसी और आकाश में उड़ने वाली है। तू मिट्टी मांस हड्डी नहीं तू प्रकाश की भांति ज्योतिस्वरूप है, केवल रोने-धोने, खेलने तथा हंसने वाली नहीं, पर सदैव सुखी सदैव आनन्द है।"

मैंने डरकर आंखें मूंद लीं और कहा, "हे सबसे चंगे पुरुष! मुझे कुछ होता जा रहा है, मुझे वह कुछ होता जा रहा है, जो बापू जी कहते हैं कि कायरों को होता है और मत बता। जब मैं तेरी बातों के पीछे-पीछे जाती हूं तब मैं इतनी सिकुड़ती तथा फैलती हूं कि खो-सी जाती हूं। मत कह कि "मैं आत्मा हूं।" फिर वह कहने लगा- 'हे अच्छी! सेवा कर सकने वाली! सुन, तू आत्मा है। तुझ में मोह नहीं है, तुझ में लोभ नहीं है, तू मांगने वाली नहीं, तू दाता है, तू सबसे एक जैसा प्यार करने वाली है। हां तू है, तू उच्च है, अपने-आपकी पहचान कर।" अब मुझे वह लगा, जिसे 'भय' के नाम से सुना करती थी। हां मैं सचमुच डर गई। मैं सहमकर बैठ गई। मैं चाहती थी कि कानों को बन्द कर लूं कि कहीं और सुनकर बावली न हो जाऊं। पर सबसे अच्छे मनुष्य की अच्छी आवाज़ के आगे कान कैसे बन्द करूं?" मैंने फिर साहस बटोरकर कहा – "बस कर, हे ऊंचे मनुष्य! और मत कह, मेरी बुरी दशा हो गई है। मैं यह आत्मा न होऊं। मेरी इस भय से रक्षा कर, जो मुझे इस विचार में जाने से लगता है।" पर उसने फिर कहा 'तू आत्मा है, हां, जैसे तू वाण नहीं, धनुष नहीं पर तू बाण चलाने वाली है। तू भोजन नहीं, तू भोजन करने वाली है। तू देह नहीं, देह को चलाने वाली है। तू मन नहीं पर मन को हांकने वाली है। तू आप कहती है कि नहीं, "मेरा मन आज प्रसन्न है" "आज व्याकुल है" सो तू मन नहीं, पर मन की स्वामिनी है, हां तू

चरखा नहीं, पर चरखा कातने वाली है। हे सुन्दरी! तू सुन्दर नहीं पर सुन्दरता तेरे से निकलती है। तू धूप नहीं पर सूर्य है। तू चांदनी नहीं, पर चन्द्र है, हे अच्छी! वैसे ही तू देह नहीं, पर आत्मा है"।

यह सब कुछ मैंने टक बांधकर, मन को एकाग्र करके और विवश होकर सुना, पर सुनते-सुनते अब की बार चक्कर आ गया। आंखें बन्द हो गईं, मानो पृथ्वी और आकाश उलट गये। मैं बेहोश होकर उसके चरणों पर गिर पड़ी। मुझे पता नहीं रहा कि मैं हूं भी कि नहीं। जब मैं काफी समय के पश्चात् उठी तो मैं भय से कांप रही थी। क्या मेरे सिर पर इतना पर्वत टूटेगा कि मुझे आत्मा होना है, जैसे यह कहता है? यह तो बड़ा कठिन है, पर यह सबसे अच्छा मनुष्य जो कहता है, वह अच्छा ही होगा। मैं तो बावली होती हूं, डरती हूं कि यदि यह कुछ मैं हूं तो मैं तो बहुत दुर्बल हूं, कौन इस भार को सहन करेगा कि मैं आत्मा हूं? इस उच्च पर्वत की शिखा की ओर देखने से मेरी दृष्टि फटती है जब मैं यह सुनती हूं तो अन्दर से फैली हूं, फिर मैं घबरा जाती हूं।

मैं अब तक हंसती-खेलती, लाड़ों में पली प्रसन्न-प्रसन्न रहती थी। क्या यह मेरे चाव तथा प्रसन्नताएं अपरिचित हैं? हाय! मेरा कलेजा फिर टूट गया। वनों के मृग, ठण्डी छांह, बहते हुए जल सखियों के झुण्ड में मुश्की रंग की घोड़ी पर सवार हुई, मेरे हाथ में धनुष बाण, ममता की मारी मां प्रतीक्षा करती हुई और बापू मेरा मार्ग देखने वाला, शीश झुकाने वाली प्रजा, क्या यह सब कुछ अच्छा मेरे शरीर के लिए है? अपरिचित है? क्यों जो यह कहता है कि तू शरीर नहीं, हां यदि मैं शरीर नहीं हूं तो यह शरीर को अच्छे लगने वाले सभी आडम्बर भी मेरे न हुए। हाय! हाय! मैं अकेली हूं, यदि शरीर मेरा नहीं तो मां तथा बापू भी मेरे नहीं, और यदि वे नहीं मेरे तो सभी सुख और प्रसन्नताएं, जिन्हें वे देते हैं, सम्बन्धी तथा सखियां मेरी न हुईं। हाय! मैं आत्मा हूं तो अकेली हूं। इस समय मेरी आंखों के आगे अकेलापन रूप धारण करके आ गया। तब मैं प्रसन्नताओं के पालने में झूलने वाली सरल तथा बिलकुल अनजान क्या जानती थी कि कुछ और बात भी है? चंगे पुरुष की बात सोचते-सोचते मेरे चारों ओर 'अकेलापन' छा गया। इस अकेलेपन ने मेरे ऊपर ऐसा भय डाला कि मुझे कुछ भी दिखाई न पड़े; कलेजा कांपे, रोम पुलकित हो गये, मैं सिसकियां भरकर रोने लगी और कहने लगी-हाय मैं किसी तरह आत्मा न हूं। ज्यों-ज्यों मैं सहम खाती और डरती त्यों-त्यों वह अकेलापन बढ़ता जाता और मैं टूटती जाती। काफी समय के पश्चात् मेरी आंखें खुलीं। अब मैंने उठने की इच्छा की, पर अब उठे कौन? जिन मेरी टांगों ने सारा-सारा दिन वनों के चक्कर काटे थे, वे अब उठना भूल गईं। जिन मेरी बाहों ने सिंहों का वध किया था, अब, पृथ्वी पर टेक रखकर आश्रय देना भूल गईं।

फिर मुझे ख्याल आया कि मैंने निर्दोष तथा सबसे अच्छे मनुष्य को मारा है,

मैंने यह पाप किया है। मेरे पाप का दण्ड मुझे इसने दिया है जो इसने मुझे अकेला कर दिया है। हाय! अब मैं सदैव दुख भोगूंगी। मैं सदैव अपने-आपको अकेलेपन में देखूंगी, मेरा कोई नहीं, मैं अकेली हूं? हाय! मैं अब से नित्य रोया करूंगी और अकेली ही दिन काटा करूंगी? मेरे दिन कैसे व्यतीत हुआ करेंगे? मेरी रात कैसे व्यतीत हुआ करेगी। जब शरीर मेरा नहीं तब दूसरों के सुख मैं कैसे प्राप्त करूंगी? साथ वह यह भी कहता है, 'तू सुख दिया कर, सुख प्राप्त मत किया कर' कितनी असम्भव बात कही है? जब शरीर भी मेरा नहीं तो मैं किसी को दिया क्या करूं? यदि किसी के पास कुछ हो तब ही तो दूसरे को बांट सकता है जब मेरे पास है ही कुछ नहीं तो बांटकर क्या दूंगी? अब फिर मेरी आंखों के सामने एक अन्धकार-सा उठा और सब कुछ लुप्त हो गया; मैं अकेली अंधकार में रह गई, इस समय मैं इतना डरी कि मेरी चीख से सारा घर गूंज उठा । मां भागकर आई और मुझे गोदी में ले लिया। मेरा माथा चूमने लगी, आंखें पोंछी, दबाया, प्यार दिया और बलि-बलि जाने लगी, पर मुझे होश न आया। मेरे धड़कते हुए कलेजे की आवाज़ मेरी मां के कानों में पहुंची। मां ने मेरा मुंह धोया, मेरे मुंह में पानी का एक घूंट डाला और पूछने लगी, क्या हुआ है? जब मैंने आंखें खोलीं तो मैंने कहा! "अम्मां! मुझे छोड़ दे, तू मेरी नहीं, और मैंने तेरे दिये हुए सुखों को लेना भी नहीं है।" अम्मां बलिहारी होकर कहने लगी- "क्यों बिटिया" तब मैंने कहा, "अम्मां! मैं शरीर नहीं, मैं-मैं आ...त्मा...हूं और इसलिए अकेली हूं और अकेली को मुझे भय लगता है, वह भय मुझे खाये जा रहा है और खा जायेगा, जा मां तू जाकर सो जा मुझे चंगे मनुष्य ने मेरे अपराध का दण्ड दिया है, अब मुझे अकेलापन खाये जा रहा है, तू जा, मैं उसे कहती हूं कि बाण लेकर मुझे चुभो दे, मैं इस तरह मरने के लिए तैयार हूं, पर यह आत्मा बनकर अकेलेपन के हाथों इस तरह का मरना मुझे बड़ी पीड़ा देता है, जो पीड़ा कि असह्य है।"

यह सुनकर मां को क्रोध चढ़ा, कहने लगी-"अभी इस बावले को कब्रिस्तान भेजकर जीवित ही गड़वा देती हूं जो मेरी लाडली इकलौती बेटी को डराता है और निर्भय सिंह जैसी बिटिया का कलेजा निकाल रहा है, इस चाण्डाल बाबा के अभी टुकड़े करवाती हूं"। यह सुनकर मेरे प्राण निकलने लगे। मैंने दोषी सेविका की भांति मां के चरण पकड़ लिये और कहा-"अम्मां! और पाप मत करना मैंने पाप किया है, उसका बदला देना है। यही बात पण्डित जी कहा करते थे कि नहीं? फिर तुम उस निर्दोष को क्यों और दुख देती हो, जिसे मैंने पहले दुख दिया है और अब पाप का फल मुझे लगा है कि मैं अकेली हो गई हूं। मैं तो फल भुगतूंगी पर तू जा विश्राम कर, जा अम्मां तू जा।" मां जाती नहीं थी, वह दांत पीस रही थी, मैं उसे भेजना चाहती थी; अन्त में मैंने कहा, "यदि तुमने इस चंगे मनुष्य को कुछ कहा तो मैं अपने-आप अपने कलेजे में बाण चुभो लूंगी।" तब जाकर मां

टली, पर क्रोधित होकर गई। अब मैं उसी मैं अकेलेपन के भय में बैठी थी, "तू आत्मा है" यह आवाज़ मेरे कानों में गूंज रही थी कि एकाएक याद आया कि चंगे मनुष्य ने बातें भी तो की थीं की तू उच्च है। मैं उच्च हूं, पर्वत ही शिखा ऊंची होती है वह भी अकेली और उजाड़ होती है बादल ऊंचे होते हैं, पर सुनसान हैं, चन्द्र ऊंचा है, पर वह भी अकेला है, सूर्य ऊंचा है, वह भी अकेला है; यदि मैं ऊंची हुई तो भी अकेली ही हुई न, हाय! मैं क्या करूं? अकेलापन खाये जाता है।

'तू आत्मा है, तेरे में मोह नहीं,' तभी तो आज मैंने मां को नाराज कर लिया है। चंगे मनुष्य ने कहा था, 'तू निरिच्छ है, निरिच्छ हो जा', पर मुझे भोजन की तो आवश्यकता है, इससे निरिच्छ कैसे होऊं? और यदि मेरा कोई नहीं, फिर मैं भोजन कहां से करूंगी। हाय! कोई आकर मेरी सहायता करे। मैं किसी तरह आत्मा न हो पाऊं? मैं सुख दिया करूंगी, सुख लिया नहीं करूंगी, भोजन आप बनाऊंगी, जल आप भरूंगी, चारपाई आप बिछाऊंगी, वस्त्र आप धोया करूंगी, पर यह भी कैसे करूंगी? मैं जब देही ही नहीं, तो देह के काम कैसे करूंगी? आत्मा हूं, सबसे पृथक हूं, शरीर से पृथक होकर अब मैं इसी दशा में अकेली रहा करूंगी और अकेलापन मुझे खाया करेगा और मैं सूखकर मर जाऊंगी।

मैं इन भ्रमों में बह रही थी कि चंगे मनुष्य के फिर नयन खुले और देखकर मुस्कराये। अधर मुस्कराये और नयन भरकर मेरी ओर देखा, तब मेरे में प्राण आये, उस समय मेरा अकेलापन भाग गया और मुझे प्रसन्नता आ गई। मैंने पास जाकर हाथ बांधे और फिर उसने कहा, "तू आत्मा है, पर अकेलापन तुझे नहीं खा सकता।" मैंने कहा, "हे चंगे मनुष्य! कह दे मैं आत्मा नहीं, यह दण्ड मेरे लिये असह्य है, मुझे कैद कर ले और मुझे कह दे तू मेरी दासी है, सदैव मेरे साथ रह और मेरी सेवा कर।" मैं सेवा करूंगी, या बाण लेकर मेरी छाती में चुभो दे, मैं उसे चुभवा लूंगी और सहर्ष मरूंगी, पर मुझे आत्मा मत कह।" उसने फिर नैन मूंद लिये, काफी समय के पश्चात् खोले और कहा, "तू अकेली नहीं है, तेरे साथ निरंकार है।" मैंने रो कर कहा, "तू मेरे पास रह, मुझे और किसी की आवश्यकता नहीं, सबसे अच्छा तू है, तेरे से अच्छा कोई नहीं। मुझे 'मैं आत्मा हूं' और 'मेरे साथ निरंकार है' की आवश्यकता नहीं।" उसने कहा, "मैं आत्मा हूं, परमात्मा मेरे साथ है। तू आत्मा है, परमात्मा तेरे साथ है।" मैं अब और सहम गई।

उसने फिर कहा, "परमात्मा सदैव तेरे साथ है, तू उसकी ओर देखती नहीं, वह तुझे देखता है। तू सो जाती है, वह जागता है, तू जो करती है वह उसे देखता है, जो सोचती है वह जानता है। तू उसे नहीं देखती और न ही जानती है।" आह! अब मेरे पर और भय छाया। मैंने मन से कहा, मेरे साथ कोई छिपकर रहता है जो मेरे सारे कामों को देखता है, दीखता नहीं, पर देखता है। सो फिर साथ तो हुआ, पर न हुए जैसा हुआ। हाय! मैं क्यों आत्मा न हूं? यदि वह देखता, जानता

और सुनता है; तो मैं प्रत्येक काम करते समय झिझका करूंगी, बोलते समय सोचा करूंगी, और सोचते समय क्या किया करूंगी? डूब जाया करूंगी?

फिर मैंने उसे कहा, हे चंगे मनष्य । मैंने पाप किया है, मुझे दण्ड दे, पर इतना कठोर दण्ड मत दे।' पर उसके नेत्र मुंदे हुए थे जो फिर सारा दिन न खुले और मैं डोलती, डरती, सोचती डूबती, तैरती पर उसके पास ही बैठी रही। पिताजी आये, मैं भागकर उनके कण्ठ से चिपट गई, वे भी कुछ उदास-से होकर आये। मेरा चेहरा देखकर और उदास हो गये मुझे गले लगाने लगे तो मैं तनिक-सी झिझकी, पर उन्होंने जबर्दस्ती मेरा सिर छाती के साथ लगाकर दबाया और सिर पर हाथ फेरकर मुझे प्यार दिया। जिस समय उनका हाथ मेरे सिर पर प्यार सहित छुआ तो मेरी सिसकी निकल गई और गर्म-गर्म अश्रु उनकी छाती पर बहने लगे। यह देखकर वह राठ, राठों में भी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका राठ पिता, निःश्वास भरकर- कहने लगा, "बिटिया! होश कर, तेरा दुख अभी दूर कर दूं, पर तेरा प्यार ही कुछ नहीं करने देता।" मैंने कुछ न कहा, मुझे एक शीतलता-सी मिल रही थी, पिता के प्यार में एक सुख मिल रहा था, मैं प्रसन्न हो रही थी, ध्यान में आता था कि सुख देना है, लेना नहीं। पर मैं इतनी व्याकुल हो चुकी थी कि अब मेरे से पिता के लाड़ तथा दिलासे के सुख का त्याग नहीं किया जाता था। मुझे अब ढाढस बंध गई कि मुझे खाने वाले अकेलेपन से रक्षा करने वाले बापू जी आ गये हैं। बापू जी ने मुझे फिर समझाया। जब मैंने उन्हे अपना दुख बताया, तो वे हंसने लगे और कहने लगा : बिटिया तेरा भोलापन ही तेरा शत्रु हो रहा है, मैंने तेरा बड़ी सादगी, सीधे तथा भोलेपन में पालन किया है, तुझे संसार तथा धर्म का कोई ज्ञान नहीं। बिटिया! होश कर और समझ जो कुछ तुझे उसने कहा है, उससे लगता है कि वह साधु है और उसने तेरे से बदला नहीं लिया। जो बात वह अच्छी समझता था, उसने वही तुझे कही है। तू बड़ी भोली है, उस समय जब एक बार पण्डित ने पाप-पुण्य की बात कही थी तो तूने मन से लगा ली थी और उठकर भाग गई थी कि कहीं कोई और बात न कह दे जिससे तेरा जी छोटा हो जाये और यदि इसने कह दिया है कि तू आत्मा है तो भय से ही सारी निचुड़ती जा रही है। बिटिया! यही बातें हैं जो बेकार रहने वाले लोग हमें सुनाकर अपनी आजीविका कमाते हैं, इन बातों में कुछ नहीं रखा। तू साधारण तथा शुद्ध है, अन्दर और बाहर से एक है, जो कुछ तू सुनती है उसी के पीछे ख्याल में चल पड़ती है और बाबली हो जाती है। तगड़ी हो, वीरों की सन्तान वीर हुआ करती है। कल मेरे साथ चल; एक सिंह ने वन में एक सिपाही का वध किया है, उसकी खोज करनी है और उसे मारना है। शिकार में चलकर तेरा हृदय प्रसन्न हो जायेगा।

मैं कुछ बोल तो न सकी, पर मुझे ढाढस बहुत आ रहा था। पिता जी कुछ समय के लिये प्यार देकर चले गये। फिर सन्ध्या हो गई। मैं इसी दशा में ही लेट

गई। लेटते ही निद्रा आ गई।

मैं स्वप्न सुना करती थी, पर आप कभी स्वप्न देखा नहीं था, आज पहला दिन था कि मैंने स्वप्न देखा। मुझे रात को तकिये पर सिर रखने और सवेरे सिर उठाने का पता होता था। बीच में नहीं रात किस तरह व्यतीत हो जाती थी। आज जब आंख लगी तो मैं एक छोटे पत्थरों के विशाल मैदान में जा पहुंची। क्या देखती हूं कि बड़े-बड़े पत्थर और मिट्टी तथा रेत के कण-ही-कण पड़े हैं पर उस तरह नहीं जैसे मैं देखा करती थी, बल्कि अब यों लगे कि यह सारे जीवित हैं पर वैसे पड़े हुए निर्जीव लगते हैं। यदि कोई तनिक-सी कला फिरे तो इन्हें होश भी आ जाये। इतने में मैंने क्या देखा कि वहां पर जल आ गया है और उन कणों को जल कहने लगा "हे कणिको! तुम तो सजीव हो, उठो, होश में आओ, तुम जड़ पत्थर नहीं हो; तुम जीवन हो, उठो होश करो, जल को बोलते तथा कणिकों को सुनते देखकर मैं हक्की-बक्की रह गई कि यह कैसे हो रहा है? यह कैसे बोल और सुन रहे हैं, पर यों ही हो रहा था और मेरा शौक बढ़ रहा था, अत: मैं और आगे होकर सुनने लगी, तब छोटे बड़े सभी कणिकों ने कहा, "हम इस दशा में पड़े अच्छे हैं, हे जल! तू आगे चल।" तब जल कहने लगा, "हे सरल हृदय! तुम जीवन हो, आओ मेरे साथ चलो मैं तुम्हें वहां पर पहुंचा दूं, जहां पर तुम अपने आप कह सको कि तुम जीवन हो।" अपने चलने की बात सुनकर एक ने कहा, "जा भाई अपने मार्ग पर चल, हम मंत्रणा करके तुझे कल उत्तर देंगे।" तब जल पीछे हट गया। अब कणिकों की पंचायत लगी। बड़े-बड़े पत्थर कहने लगे,-"हम बड़े सुखी हैं, सुख-सहित पड़े हैं, यह जल कोई स्वार्थी है, हमें दुखी करेगा। पहले हम उच्च पर्वतों पर निवास करते थे, एक जैसी सुन्दर तथा अधिक सफेद सी कोई आई थी, जो अपना नाम 'बर्फ' बताती थी, कहने लगी, मेरे कन्धे पर सवार हो जाओ, तुम्हें सैर कराऊँ। यहां पर लाकर हमें पटक दिया और स्वयं लुप्त हो गई। सौभाग्य से हमारे हृदय विशाल हैं, अन्यथा धूप से जल उठते, वह गर्म धूप हमनें पर्वत की धारा पर कभी नहीं देखी थी। इसी तरह यह जल हमें कहीं किसी उलटे स्थान पर जा मारेगा।" अब कुछ और कणिकायें कहने लगीं-"भाईयो? इस जल के हाथ हम देख चुके हैं, हम भी कभी चट्टान और बड़े-बड़े शिला पत्थर थे, यह जल धीरे से हमारी अदृष्ट झिरियों में घुसकर इस तरह जम गया और बल लगा दिया कि हमें टुकड़े-टुकड़े करके फेंक दिया। फिर अपने प्रवाह तथा लहरों में ऐसे पीसता कि हमें कण-कण करके बिखेर दिया।" कई कणिकाओं ने कहा कि "यह ठण्डा है, लोभी नहीं दिखाई देता, कहा जाता है कि आकाश पर भी जा चढ़ता है और गहराई में भी चला जाता है और दूसरों को सुख देता है, इसलिये हमें भी सुख देगा। आओ इसका कहा मानें, जीवन बनें। इस अन्दर के अन्धकार में शताब्दियों पर्यन्त जिस ओर पड़े-सो-पड़े रहने से

छुटकारा मिले। "जीवन" देखें तो सही कौन-सी वस्तु है? चलो चलें तो सही"। यह सुनकर बड़े ढेले और पत्थर तो नाराज़ हो गये और छोटे कणिके तैयार हो गये। बात यह कि उनमें एकता नही रही और दो दल बन गये। आगामी दिन जब जल धीरे-धीरे चलता हुआ और 'आओ जीवन बन जाओ' की सीटी बजाता हुआ आ गया तब छोटे बारीक कणिके तो 'सत्य वचन' कहकर उसके साथ चल दिये और बड़ों ने कहा, "हमें इच्छा नहीं।" जल ने क्रोध न किया, 'फिर सही' कहकर छोटों को साथ लेकर चल दिया।

अब जब वह चला तो वे कणिके आपस में रगड़ खाकर और बारीक होने लगे। बेचारे रोने और पछताने लगे कि हमने बड़ों का कहा क्यों न माना। जल ने उन्हें इतना बारीक कर दिया कि अपने स्वरूप में ही मिला लिया, कोई पता न लगता था कि विशुद्ध जल ही है कि इसमें मिट्टी, पत्थर धातुओं के अति छोटे कणिके भी मिले हुए हैं। इस तरह करके अन्त में जल एक खेत में पहुंचा और धरती के अन्दर घुस गया। वहां पर कितने ही बीज थोड़ी-थोड़ी दूरी पर पड़े थे। जल ने आकर कहा-'हे अंकुर जी! आप बीज के मठ में समाधिस्थ हो रहे हैं, मैं आपके चरणों में जिज्ञासु लेकर आया हूं। आप इन्हें चरणों के साथ लगा लो।' तब अंकुरों ने कहा, 'हे जल! हम समाधिस्थ हैं और सुख में हैं, हमें कष्ट न दे।' तब पानी ने बहुत मिन्नतें कीं। वह जो बीज का चारों ओर कठोर कोट था उसमें सुख से बैठे हुऐ अंकुरों ने कहा-'अच्छा भाई कल बताएंगे'; तो जल पीछे हट गया। रात को अंकुरों की पंचायत ने मन्त्रणा की। कईयों ने जो बहुत पके थे, कहा "हम आप बहुत सुखी हैं, हमें किसी से क्या," कई बच्चे थे कहने लगे "बड़ी मुश्किल से कोई पूछने वाला आया था, जो कुछ देता था शीघ्रता से ले लेना चाहिए था, भूल हो गई" इसी खींचातानी में थे कि पवन के उस भाग ने जो धरती में समाया हुआ था, अंकुरों को कहा-'अरे भोले! तुम जीवन हो, यह शेष बीज तुम्हारा तोष है, तुम स्वयं जीवन हो, मेरा कहा मानो, मैं तुम्हें धरती से बाहर ले चलता हूं और दिखाता हूं कि तुम प्रकाश में किस तरह आनन्द प्राप्त करते हो। यह जिज्ञासु जो आये हैं इन्हें चरणों के साथ लगा लो। यह तुम्हारे साथ मिलकर जाग उठेंगे और अपना जीवन देखेंगे। तुम इनके जीवन को अपने जीवन में लेकर और ऊंचे जीवन में आ जाओगे।' पवन का यह उपदेश सुनकर दूसरे दिन जब जल आया तो बहुत सों ने उसे चरणों के साथ लगा लिया और कई क्रोध से इतने लड़े कि जल गये, कई कूदकर बाहर आ गये उन्हें धूप ने मार डाला, कई इतने नीचे चले गये कि फिर उठ न सके, पर जिन्होंने उपदेश को माना था वे इर्द-गिर्द के कोट को

फाड़कर बाहर निकल आये और उनके अन्दर जड़ें और बाहर पत्ते निकल आये। वे अन्दर खाने-पीने लग पड़े और बाहर वायु फांकने लगे। उन्होंने कहा, "देखो जी! 'पवन गुरू के उपदेश ने हमें सच ही बताया था, कि हम जीवन हैं।' यह रंग, यह रूप, यह लहरें, यह प्रकाश हमने कहां देखने थे, जिन्हें हमने धरती से बाहर आकर देखा है, निःसन्देह हम जीवन हैं।" अब पत्ते-पत्ते, शाख-शाख, फूल-फूल तथा फल-फल में वे कणिके, जो जल में मिलकर आये थे, अपने पहले रूप की स्मृति करने लगे, जब वे मैदान में मृतक होकर पड़े थे। तब कहने लगे, "हम सचमुच जीवित हैं, हमारे साथ जल ने पिता वाला प्यार किया है। कहां से उठाकर हमें अपने में समा लिया है और किन के चरणों में लगाया और अब हम इनका रूप बनकर बढ़े हैं, प्रफुल्लित हुए हैं, रग-रग में रस रखते हैं, झूलते हैं और आनन्द लेते हैं।"

अब मैंने क्या देखा कि सभी फल, फूल, पत्ते आदि रोने लग पड़े और कहने लगे, "हमारा जीवन उड़ चला है।" तब उन्हें आवाज़ आई, "नहीं तुम ऊंचे होने लगे हो, 'जीवन' बनने लगे हो, जैसे पहले अस्तित्व से समाप्त होकर जीवन में प्रफुल्लित हुए थे अब जीवन से मरकर प्राणों में प्रफुल्लित होगे," पर वे न समझ सके और सहम गये। इस समय कई प्रकार के जीव आये हुए थे, कोई चार पैरों वाले, कोई पंखों वाले कोई सीधे चलने वाले, कई झुककर चलने वाले। कोई आकर पत्तों को खा गया, कोई डालियां खा गया, किसी ने जड़ें खा लीं, कोई फूल तथा फल खा गया, पर उनके अन्दर जाकर देखो, वे कणिके उनके शरीर का भाग बन गये और जहां पर यह पौधे बनकर धरती पर एक स्थान में गाड़े हुए थे, भागने-दौड़ने लगे, जहां पर यह मूक थे, जिह्वा में पहुंचकर बातचीत करने लग पड़े, जहां पर यह अन्धे थे, नयनों में आकर देखने लग पड़े। जब मैंने लौटकर देखा तो इन सब में वे पवन, जल तथा धरती के कणिके रूप परिवर्तित करके सजीव होकर जीवन बन फिरते थे। एक तो प्राणधारी मनुष्य अपने-आपको एक जीवन वाला समझता है और कहता है कि मैं जीवित हूं, अथवा मेरे में जीवन है, दूसरा मैंने क्या देखा कि उसके शरीर का प्रत्येक कणिका भी जीवित है।

अब मैं अचम्भित हो गई कि मैं जिस संसार को मृतक पत्थर की भांति जानती थी, वह सारे का सारा जीवित है, कोई कणिका भी जड़ नहीं है। इस समय एक नम्रमूर्ति की आवाज आई :- 'सरले ! जिस तरह मिट्टी के कणिके में तुझे विशुद्ध निर्जीवता लगती थी इसी तरह किसी और सिरे पर विशुद्ध प्राण हैं, बीच में एक मार्ग है जो निर्जीवता से जीवन तक जाता है। तू जहां पर खड़ी है यह

दोनों सिरों के बीच में, जहां पर एक स्थान[1] है, तू पीछे से चलकर यहां तक पहुंची है, आगे और यात्रा है, तू ने चल-चलकर, स्वच्छ हो-होकर अन्त में "विशुद्ध जीवन" के पास पहुंचना है, पर तू अभी समझती नहीं।" मैंने कहा, "मैं जीवित हूं" यह तो मैं समझती हूं, पर मेरे शरीर का भाग जीवित है, इसे नहीं समझ पाई। तब आवाज़ आई, "तू आत्मा है, शरीर आत्मा नहीं, पर हां शरीर भी तेरा जड़ नहीं जीवित है। पर शरीर के कणिके-कणिके का जीवन नीचा है जो जड़-सा लगता है।" फिर किसी ने कहा, 'सूर्य अपने में प्रकाश का गोला है। सूर्य का प्रकाश धरती के ऊपर मन्द है। पर धरती के ऊपर खुले स्थान की अपेक्षा परछाई में प्रकाश कम है और बन्द कमरे में और भी इसकी अपेक्षा कम है। तू तो कहती है कि बन्द कमरे में अन्धकार है, पर हम कहते हैं कि प्रकाश बन्द कोठरी में भी है, पर बहुत कम है। वह अंधेरा नहीं पर अति घटिया प्रकार का प्रकाश है। इसी तरह तू जीवन है, तेरे जीवन के सामने तेरा शरीर जड़ है, पर वैसे यह भी जड़ नहीं। इसके कण-कण में भी प्राण हैं चाहे वे बहुत ही नीची स्तर के हैं।

अब मैंने क्या देखा कि उन जीवों में एक भाग खड़ा था। जब मैंने भलीभांति देखा तो यह मेरे ही जैसा मनुष्य था। इसके शरीर के कण-कण को मैंने देखा उनमें जीवन था, पर वह जीवन यह नहीं कह सकता था या जान सकता था कि वह जीवन है, पर इस मनुष्य में कुछ और ऐसा था जो कहता था - मैं जीवन हूं मैं प्राण हूं, और वह अपने-आपको ही मनुष्य समझता था और इसके अतिरिक्त सब को अपने सापने मृतक समझता था, पर तब भी अपने शरीर के पवन पानी धरती के कणों को अपनी जान के समीप कुछ जीवित-सा समझता था और इस पवन पानी धरती को इससे दूर तथा जड़ समझता था। इसके शरीर के रहस्य को स्पष्ट रूप से देख-देखकर मैं अचम्भित हो रही थी कि किसी और मनुष्य ने इस मनुष्य को आकर कहा - "अरे भोले ! तू तो बुद्धि है। तू क्यों अपने-आपको केवल प्राण तथा जीवन समझता है? तू तो विशुद्ध बुद्धि है। यदि तू बुद्धि हो जाये, तो सुखों का, जो झूठे हैं, त्याग कर दे।" तब वह रोने लगा और उसने समझा कि यदि मैं जीवन तथा प्राण नहीं तो मेरी मृत्यु हो जायगी। जब वह मृत्यु से डरा तो बताने वाले ने कहा - "सुणिऐ पोहि न सकै कालु।" पर मैं समझ न सकी कि क्या है ? तब उसने बताया - भोले ! तुझे मृत्यु मार नहीं सकती; तू तो नख से लेकर शिख तक प्राण है। मरता कुछ नहीं, केवल रूप परिवर्तित होता है। "मंनै सुरति होवै मनि बुधि ।। मंनै सगल भवण की सुधि ।। मंनै मुहि चोटा ना खाइ ।। मंनै जम कै साथि न जाइ ।। ऐसा नामु निरंजनु होइ ।। जेको मंनि जाणै मनि कोइ ।।१३।।

मैंने तो उस समय इसे पश्तो[2] की भांति अपरिचित समझा पर उस बड़े मनुष्य

---

१. अघ पंधै है संसारोवा ।। (वडहंस महला १)

२. अफगानिस्तान की भाषा ।

ने कहा - यदि तू मान ले, जो कुछ तूने अब मेरे से जाना है और नाम को जाने तो तू जानेगा कि मरता कुछ नहीं। सुरत मन तथा मन बुद्धि और बुद्धि शुद्ध (अथवा सीधी) हो जाती हैं। यदि तू शरीर को जानता है कि यह मृतक है तो भी मुर्दा नहीं, अपने रंग ही तबदील करता है। पवन, पानी, धरती के नाना रूप हैं जो संयोग (आकर्षण) तथा वियोग (धक्के) के साथ परिवर्तित होते, बनते, प्रफुल्लित होते, फैलते तथा सिकुड़ते, शुष्क होते रहते हैं। यह सुनकर उस मनुष्य को दीख पड़ा कि मैं बुद्धि हूं तो वह बहुत प्रसन्न हुआ, पर अब वह बाहर से चुप पर अन्दर से उसे अपना-आप ऊंचा लगने लगा, उसे भूल कम लगती। जैसे मैं बाण मार बैठी थी और बाद में पता लगा था कि मैंने बुरा किया है कि पहले पता करके मारना था। अब में देखती कि उस मनुष्य को पहले ही पता चल जाये कि अमुक काम बुरा है और अमुक अच्छा है। यह देखकर मुझे होश आ गया कि यदि कभी मेरा चंगा मनुष्य कहता कि तू बुद्धि है तो मैं भी इस मनुष्य की भांति प्रसन्न हो जाती। पर अभी में देख रही थी कि आवाज़ आई "तिथै घड़ीअै सुरा सिधा की सुधि ॥" मुझे फिर पश्तो ही लगी, पर उस मनुष्य ने उसे कहा - 'तू बुद्धि नहीं तू सुधि (सिद्धि) है। बुद्धि खो दे और सिद्धि प्राप्त कर ले।' तब वह रोने लगा कि इतना प्रकाश खोकर मैं अन्धकार हो जाऊंगा, पर रोते-रोते, वह सिद्धि वाला हो गया पर उसे और बात-जिसका हमें पता ही नहीं-दिखाई देने लगी। बुद्धि भी जिस बात के सामने निकम्मी थी उसे प्रत्यक्ष हो गया। बुद्धि तो पता, खोज लगाकर देखती थी, कारण तथा कारज विचार कर अनुमान लगाती थी, पर सिद्धि को वैसे ही समझ आती थी। अब वह बहुत प्रसन्न हुआ तो बुद्धिमान ने कहा, "हे पवन गुरू, पानी पिता, धरती माता, काल(दिन-रात) धाय (गर्मी, प्रकाश, सर्दी अंधेरे) की गोदी में खेलते हुए जीवन के कणिके ! देख! तू मर-मरकर कहां पर आ गया? तेरी यात्रा समाप्त हो चली है। तू अब दृष्टा से दृष्टमान होने लगा है, देख तू आत्मा है," यह कहते ही उसने एक हाथ मारा और गायन किया, "वेखै विगसै करि वीचारु।" और देखो वह मनुष्य और का और हो गया। मेरी आंखें उसके प्रकाश-रूप को देख न सकीं, सिर झुक गया। मेरी जिह्वा, कान नेत्र सब बन्द हो गये और मैं डर गई; पर इस भय में मैं प्रसन्न हुई, रोई नहीं।

मैं अभी स्वप्न में ही थी, पर अचम्भित हो रही थी कि सब कुछ आंखों के आगे से हट गया। चन्द्रमा का प्रकाश था, एक मैदान था और एक मैं थी। पर अब चल नहीं रही थी; मैं शरीर-सहित उड़ रही थी और प्रसन्न थी, पर यह प्रसन्नता कुछ और तरह की थी, वैसी नहीं थी जैसी मुझे प्रतिदिन घर में तथा खेलों रंगों में प्राप्त होती थी। यह हलकी, ठण्डी, मन्द तथा अन्दर की ओर खींचने वाली थी, जब मेरी निद्रा खुली, मैं शीघ्रता से नहीं उठी, पर अचम्भित हो गई, देखती और सोचती थी कि यह स्वप्न था कि प्रत्यक्ष ? जब प्रत्यक्ष रूप से कुछ भी दिखाई न

दिया तो मैंने समझा कि यह स्वप्न था और इसी तरह के दिखावे को लोग स्वप्न कहते हैं – पर जितने स्वप्न मैंने सुने थे वे प्राय: भय तथा उदासी वाले होते थे और मैं स्वप्न में से प्रसन्न होकर उठी थी। जब पूरी होश में आ गई तो उसकी चारपाई पर से मन्द सी आवाज़ आ रही थी, जो उस समय तो मेरे लिए पश्तो थी, पर जीवन वही है, वह यह है :–

"जतु पाहारा धीरजु सुनिआरु ।।
अहरणि मति वेदु हथीआरु ।।
भउ खला अगनि तप ताऊ ।।
भांडा भाऊ अंमितु तितु ढालि ।।
घड़ीऐ सबदु सची टकसाल ।।
जिन कउ नदरि करमु तिन कार ।।
नानक नदरी नदरि निहाल ।।३८।। (जपुजी)

मैं उठकर बैठ गई। उधर (चंगे) जी के अधर मुन्द गये, पर नयन अभी खुले थे। मैं पास गई और देखा, मैंने उस चंगे मनुष्य के हाथ पकड़ लिये और कहा – "क्या मैं सचमुच आत्मा हूं?" तब उसने कहा, "हां !" उसने मुस्कराकर कहा – "तू 'बुद्धि' है, तू 'सिद्धि' है, हां तू 'सुधि' है, तू 'आत्मा' है।" मैंने कहा – "यह तो स्वप्न में सुना था, तो वह स्वप्न से सुना था, तो वह स्वप्न नहीं प्रत्यक्ष था?" फिर वे हंसकर कहने लगे, 'तिथै सीतो सीता महिमा माहि।' में समझ न सकी, पर वह कहने लगा "तैयार हो जा, तूने वाण मारा था, तुझे वाण लगेगा? तेरे वाण ने शरीर का वध किया था, जो वाण तुझे लगेगा वह तुझे शरीर से आत्मा बनायेगा।" मैं फिर भी न समझी। दो घड़ी के पश्चात् कहने लगा – "रोना मत। रोना तो शरीर का काम और मन का स्वभाव है। बुद्धि रुदन नहीं करती, सुधि नहीं रोती, आत्मा नहीं रोती। अब तू भी मत रोना।"

मैंने कहा "मैं कभी नहीं रोई, जब केवल शरीर थी और यह भी नहीं जानती थी कि मैं शरीर हूं या कुछ और उस अज्ञानता में भी कभी अश्रु नहीं गिरे, पर तब रोई हूं जब तुझे तीर मार बैठी हूं जब तुमने कहा है कि तू कुछ और भी है।"

कहने लगे "और कुछ होने ने नहीं रुलाया शरीर के विछोह के डर सहम ने रुलाया है और अब तू इस भय से पार है अब न रोना ।"

फिर कहने लगे– "पर तुझे अभी रोना है, पर रोने में ही समाप्त न हो जाना; सुन! मुझे चला जाना है, तू प्रसन्न रह और आबाद रह ।"

यह कहना ही था कि मेरे नयन भर आये? दिल टूट गया, अन्धकार छा गया। सपने की बातें और ऊंचा मान – कि मैं शरीर से ऊंची हूं–उड़ गया। मैंने चंगे के दोनों हाथ दबाकर कहा – 'जाओ मत, यदि जाओ तो मुझे भी साथ ले चलो।' कहने लगे, 'मेरा शरीर तो कहीं नहीं जा रहा, शरीर तो यहां पर ही रहेगा, पर,

मैं नहीं रहूंगा। वैद्यों ने बहुत प्रयत्न किया है, तुमने बहुत सेवा की है मैं तुम्हारा ऋण नहीं उतार सकता और मैं अब जी भी नहीं सकता। मेरे जाने के पश्चात् पण्डित के कहे अनुसार दुःख न करना कि तुमने पाप किया है और मैं उसका बदला लूंगा। तुमने जो कुछ किया है, अनजाने में किया है, मेरे भाग्य इसी तरह के थे। यदि अब भी तुम अन्दर से पाप का विचार 'कि मैंने वाण मारकर पाप किया है,' न निकाल सकी तो मैं कहता हूं कि मैंने तुम्हें क्षमा कर दिया, इसलिए निर्भय हो जाओ। जो मैंने कहा है: 'तू आत्मा है,' इसे ध्यान में रखना, पर इसे ध्यान में रखना कठिन है।

मैं अब फिर सिसकियां भरकर रोई, सर्वोत्तम मनुष्य जिसके देखे बिना में एक क्षण भी नहीं रह सकती, जिसकी सेवा में सुख है, जिसका आकर्षण मुझे अपने-आपसे बांधे रखता है, जिसके चंगे लगने से सभी आनन्द, खेल और सुख, रंग भुला दियो हैं, वह कहता है कि मुझे मर जाना है। वैद्य जी कहते थे- "स्वस्थ हो गया है" यह कहते हैं- "मर जाना है।" पर वैद्य तो लोगों ही जैसा है, वह क्या जानता है? यह सर्वोत्तम है, यह जानता है, इसलिए जो कुछ यह कह रहा है, ठीक है ! "ऊंह।" मैं साथ ही मरूंगी। उसी बाण को छाती में चुभो लूंगी, तेरी चिता में छलांग मार दूंगी।" वे चुप हो गये, नयन मूंद लिये, पर फिर खोले और कहने लगे- "तू आत्मा है, न बाण चुभोना और न ही जलना, जहां पर मैं जा रहा हूं, तूने यदि आत्मघात किया तो तू वहां पर नहीं पहुंच पायेगी; यदि तूने मेरा कहा माना तो तुझे मृत्यु अपने-आप आयेगी और तू वहां पर आयेगी।" मैंने रोकर कहा- "कैसे आऊंगी? मुझे तो खेलों ने मुग्ध कर रखा है, मैं प्रसन्नताओं में मुग्ध रही हूं। चंगे ! कभी मेरे धनुष से बाण निकलने से पूर्व ही तेरे से भेंट जो जाती !" तब वह कहने लगा, "एक और मनुष्य है, मनुष्य का सरदार और उच्च व्यक्तियों की सरकार जो संसार में सर्वोत्तम है, जिसे मैं वह कुछ करता हूं जो तूने मेरे साथ किया है, जिसे प्रेम कहते हैं। यदि तू मेरा एक कहा माने तो वह तेरे पास आ जायेगा। वह मुझे बहुत प्यार करता है, वह तुझे भी बहुत प्यार करेगा और तुझे सचमुच आत्मा बना देगा। मैंने जो कुछ कहा है, वह उसे पूरा करेगा। वह मेरा साहब है, मैं उसका दास हूं। वह मेरा मिता है, मैं उसका दास हूं-पुत्र हूं। तूने मेरी सेवा की है, मेरे साथ प्यार होने के कारण वह तेरे पास आयेगा। तूने जो मेरे साथ प्यार किया है वह इसका तुझे पुरस्कार देगा वह पुरस्कार जो राजाओं तथा राठों के पास भी नहीं होता ।

तब मैंने कहा -"तेरे से अच्छा और कौन है? पर तू जो सर्वोत्तम है, जो कहता है मैं उसे मानती हूं कि वह अवश्य ही उत्तम होगा तू कहता कि वह तुझे प्यार करता है इसलिए मुझे अच्छा लग गया है, पर तू उसका पता बता, मैं भाग कर उसके पास चली जाऊं और मिन्नतें करके कहूं-हे मेरे चंगे-के-चंगे ! मेरे चंगे के शरीर की रक्षा कर। मैंने जो अपराध किया है उसे इस तरह क्षमा कीजिए

कि सारी आयु जी भरकर सेवा कर लूं और एक क्षण भी पृथक न होऊं। मैं उसे वह करती हूं जिसे 'वह चंगा' प्रेम बताता है, तुम भी उसके साथ वही कुछ करते हो। मेरा जी नहीं चाहता कि वह मरे, तुम उसे कैसे मरते हुए देख सकते हो? तुम जो शरीर से आत्मा बना सकते हो, शरीर की भी रक्षा कर सकते हो, आओ और साझे से प्यारे की रक्ष कर लो।"

मेरी इस भोले प्यार की तीव्र तृष्णा को देखकर 'चंगे' जी हंसने लगे और कहने लगे–"सरले ! उनका प्यार एक ओर है : जो कभी शरीर में नहीं आया, जो सारे संसार को रचने वाला स्वामी, पालने वाला और शिक्षक है, उसकी इच्छा है कि मैं अब भेजा जाऊं। अपने प्यारे की इच्छा में वे प्रसन्न हैं, उसकी इच्छा में मैं प्रसन्न हूं, तुझे यदि मेरे साथ सच्चा प्यार है तो मेरी इच्छा है तू प्रसन्न हो।" मैंने कहा, "क्या तुम मरने में प्रसन्न हो?" उत्तर मिला, "प्यारे की इच्छा मानकर प्रसन्न हूं।" मैंने कहा, 'अहो ईश्वर ! यह इसलिये तो सबसे अच्छा है। सारा संसार मृत्यु से डरता है, यह मृत्यु में भी प्रसन्न है।" मैंने कहा – "तुम क्यों नहीं डरते?" उत्तर मिला – "मरता कुछ भी नहीं, देही मिट्टी में चली जाती है, 'आत्मा'–जो मैं हूं–सचखण्ड (सत्यलोक) में प्रसन्नता तथा आनन्द प्राप्त करती है; मुझे अपने प्यारे के चरणों में जाना है, इसलिये में रोता नहीं, प्रसन्न हूं कि मुझे तेरे प्यारे का प्यारा आकर मिल जायेगा। तू भी मत रो, प्रसन्न हो और यदि तू रोई तों मैं तेरे साथ प्रसन्न नहीं होऊंगा ।

यह सुनकर मैं डरी और कांपी और कहने लगी : "क्या तेरा प्यारा मुझे तेरे जैसा लगेगा?" उसने उत्तर दिया, "अब जो कुछ तुझे पेरे में प्यारा लगा है वह वही है। मैं मनुष्य जैसा हूं, पर मेरे में वही है, जो चंगा है और तुझे प्यारा लग रहा है। हां वह तुझे अवश्य ही प्यारा लगेगा, वह है ही सारा प्यार, वह तुझे प्यार भी करेगा, पर उससे तब भेंट होगी जब तू प्रतिदिन एक काम करेगी।" मैंने कहा, "क्या?" कहने लगे : "चलते–फिरते, उठते–बैठते, प्रत्येक समय 'वाहिगुरू' कहती रहना।" यह कह कहकर उसने अधर मूंद लिये, नेत्र मुन्द गये, एक क्षण के पश्चात् 'वाहिगुरू' की आवाज़ कितनी बार आई, नेत्र आश्चर्यजनक ढंग से खुले और फिर मुन्द गये। मैंने समझा कि सो गये हैं। अब दिन हो गया था, मां आ गई और चंगेजी की ओर देखकर कहने लगी,– "बिटिया। इसकी तो मृत्यु हो गई है।" मेरी चीख निकल गई, रोने लगी, पर किसी ने कान में कहा, 'यदि तू रोई तो मैं प्रसन्न नहीं होऊंगा।' फिर मुझे भय लगा, मैं सहमी, कण्ठ शुष्क हो गया कि 'इसकी मृत्यु नहीं हुई' फिर ध्यान आया कि प्यारे का प्यारा आयेगा। फिर ध्यान आया कि यदि 'वाहिगुरू' कहूंगी तो आयेगा। अतः मैं चुप कर गई और 'वाहिगुरू', 'वाहिगुरू' करने लग पड़ी। मेरा रोने को जी करता, कण्ठ रुंध जाता, कलेजा टूटता, हाथ बाण की ओर जाता, पर फिर प्यारे की आज्ञा ध्यान में आ

जाती और मैं 'प्यारे के प्यारे' को अपने अन्दर–ही–अन्दर 'वाहिगुरू', 'वाहिगुरू' करके आवाज़ें लगाने लग पड़ती।

इस तरह दुख, चिन्ता और उसकी आज्ञा का पालन करने के यत्न में मन–ही–मन में ठोकरें खाते उस सबसे चंगे, सर्वोच्च, सबसे प्यारे के शरीर का दाह किया। तब इस बात का पता न चला कि यह किस देश का निवासी था, क्यों आया था, किस सुलक्षणी मां तथा भाग्यशील पिता का पुत्र था ?

: ३ :

मेरी अम्मां तथा बापू जी को बड़ा भय था कि इस चंगे मनुष्य के मर जाने के दुख में कहीं बिटिया की मृत्यु ही न हो जाये, पर मेरे धैर्य को देखकर वे हैरान तथा प्रसन्न थे। दिन बीत गये, पर मेरे खेल, मेरे प्रयत्न और मेरी मौज़ बहारें न लौटीं। इनमें से किसी में भी मेरा जी न लगा। बापू जी ने बड़े यत्न किये पर कोई वश न चला। मैं रोती नहीं थी; पर वे प्रसन्नताएं, जो मेरे माता–पिता के महलों में मेरे लिए स्वर्ग थीं, बन्द हो गईं। वे डर के मारे मुझे कुछ भी कहते थे कि मै कहीं ज्यादा न हो जाऊं। मैं कभी–कभी हंस भी पड़ती थी, बापू जी से कण्ठ मिलकर प्यार भी करती थी, अम्मा की गोदी में भी जाकर बैठती, पर वह हिलोर तथा वह चाव, वह खेलकूद और वह बकवाद सपना हो गए। मेरी आंखों के आगे सर्वोतम की मूर्ति प्रत्येक समय फिरती दिखाई देती और जिह्वा उसके प्यारे को आवाज़ें लगाती और मन इस लालसा में रहता कि प्यारे–का–प्यारा आयेगा ।

मेरा जी अब कुछ घर महलों से उदास हो गया। मैंने बापू जी से कहा – 'मुझे वन में एक कोठरी बनवा दीजिये, जहां पर मैं मन बहलाने के लिये जाया करूंगी। बापू जी प्रसन्न हुए कि बिटिया का मन बहलेगा। कहले लगे, "जहां पर तू कहे, वहीं पर बन जायेगी।" मुझे और किस स्थान की खोज करनी थी? "चंगे जी" जिस खंडहर पर आप बैठे थे, उनके रक्त से पवित्र हुई और अपने किये हुए अपराध से किसी और लगन में लग जाने की कृतज्ञता में मैंने इसी स्थान को पसन्द किया। बापू जी महल बनवाने लगे, पर मैंने कहा कि 'पुरानी ईंटें, पत्थर तथा अन्य सामग्री ढेर में से निकालो और छोटे–से स्थान कर निर्माण करवा दो। गिरे हुए में ही प्राण भर दो और यदि वही नहीं तो उस जैसा ही बना दो।" अत: कारीगरों ने ढेर में से सामग्री की खोज की, कुछ और सामान मिलाया और इसका निर्माण करवाया। अब मेरी यह रंगभूमि थी। तड़के एक पहर, सायंकाल को एक पहर मैं यहां पर आकर प्यारे–के–प्यारे को जी भरकर आवाज़े लगाती थी। जी तो चाहता था कि यहां पर ही निवास करूं, पर बापूजी और अम्मां जी इस बात में दुख मानते थे।

एक दिन जब दोपहर को मै घर में गई और खाना खाकर लेटी, पंखा झुलाया जा रहा था तो मैंने नैन मूंद लिये और लगी अन्दर-ही-अन्दर प्यारे का देखने और प्यारे-के-प्यारे को, जिसे मैंने अभी देखा नहीं था, आवाज़ें लगाने लगी। अम्मां ने समझा कि मैं सो गई थी, बापू से कहने लगी, "बिटिया अब बड़ी हो गई है, इसका विवाह कर दें, विवाह हो जाने से इसे गृहस्थ का बन्धन पड़ जायेगा और उदासी का त्याग कर देगी।" बापू जी भी सोच में पड़कर कहने लगे, "जी तो मेरा भी चाहता है पर क्या करूं? डरता हूं कि कहीं विवाह करवाकर भी उदास ही रही और यदि सुसराल में न रही तो नाक कट जायेगी और कष्ट अलग होगा। अच्छा आज महतो से तथा पण्डित जी से मन्त्रणा करूंगा ।"

जब बापू जी चले गये जो मैं उठी और अम्मां की गोदी में जाकर उससे गले मिल करके कहा, "प्यारी अम्मां ! तुमने जो कुछ आज बापू जी से कहा है, मैंने वह सब कुछ सुन लिया है, मैं सो नहीं रही थी। तुमने जो मन्त्रणा दी है मेरी भलाई के लिये दी है और मैं तुम्हारा तथा बापू जी का कहा टाल भी नहीं सकती, पर मैं इस तरह और ज्यादा दुखी हो जाऊंगी। अब मैं कुछ सुखी हूं। यद्यपि खेलती-कूदती नहीं तथापि मैं रोती-चिल्लाती भी नहीं और कभी-कभी ऐसे ही होता है कि मेरे अन्दर एक प्रसन्नता की झंकार होती है, जिससे मेरे रोम में से सुख के फव्वारे निकल पड़ते हैं, मैं फूल की भांति हल्की और शीतल-सी हो जाती हूं। उस समय मेरा मन नाचता-कूदता नहीं, कुछ सुकड़-सा जाता है और यही इच्छा होती है कि मैं इसी तरह बैठी रहूं। इस तरह का सुख कभी झलक-सी मार जाता है। उसके पश्चात् फिर मैं चलती-फिरती हुई दुखी नहीं होती। यदि तुमने मेरा विवाह कर दिया तो मेरा यह सुख चला जायेगा और पहला सुख लौट नहीं सकेगा, तब मैं अब की अपेक्षा भी अधिक दुखी हो जाऊंगी। इस मन्द तथा शीतल सुख के लिए, जो मुझे अब कभी-कभी प्राप्त होता है, किसी दूसरे सुख की आवश्यकता नहीं, यह अन्दर से ही उत्पन्न हो जाता है और कई बार मुझे आशंका होती है कि यह प्रसन्नता ही तो कहीं आत्मा नहीं, जो चंगे मनुष्य ने कहा था कि तू आत्मा है और शरीर नहीं। मुझे पक्का पता तो नहीं पर इतना अवश्य ही जानती हूं कि मुझे अन्दर से शारीरिक सामग्री के बिना कभी-कभी एक शीतल-से सुख की झलक पड़ जाती है। अच्छी अम्मां ! यदि तुमने मेरे सुख तथा मेरी प्रसन्नता के लिए विचार करना है तो मुझे और बन्धन में मत डालना, मैं तुम्हारा कहा तो नहीं टालूंगी, पर मैं प्रसन्न नहीं रह सकूंगी ।"

यह सुनकर मां ने कहा – "बिटिया ! तू सच कहती है, पर अब तू बड़ी हो गई है, कुछ तो सोच भी कर न, पहली आयु में तू खेल में निश्चिन्त रही। जब तेरी आयु अक्ल तथा होश वाली हुई तो तू वैराग्य में बहकर उदासिनी हो गई। अभी तक उदासी से तेरा मन नहीं लौटा, अब समय बेफिक्री में व्यतीत हो जाने

का नहीं। हमारी आयु बढ़ रही है और तेरे बिना हमारी और कोई सन्तान नहीं। इस परगने में हमारा ही राज्य चलता है। आस-पास के खरल भट्टी[१] तथा अनेकों अत्याचारी मुसलमानों के परगने हैं, यदि कोई व्यक्ति हमारे जीवित ही हमारे राज्याधिकार के योग्य न हो जाये तो हमारे पीछे हमारी इस परिश्रम की कमाई को शत्रु ले जायेंगे; इससे बचने के लिये हम यही कर सकते हैं कि तेरा विवाह किसी बड़े बहादुर शूरवीर के साथ कर दें और अपनी आंखों से तुम्हारी शूरवीर सन्तान को देख लें; और शीतल हृदय से मृत्यु को प्राप्त करें, इसलिये कि हमारे राज्य को संभालने वाले पीछे हैं। यदि तूने उदासी धारण की तो एक भय और भी है-सारे मुसाहिब, महतो तथा पण्डित साहित अब तेरे बापू जी को दूसरा विवाह कर लेने की मन्त्रणा दे रहे हैं कि किसी तरह पुत्र सन्तान पैदा हो जाये। तेरे बापूजी का मेरे साथ अत्यन्त स्नेह है, वे जानते हैं कि दूसरे विवाह से मैं दुखी हो जाऊंगी और मेरे दुखी होने से बिटिया और दुखी होगी, इसलिये उन्होंने अभी किसी की मन्त्रणा की ओर ध्यान नहीं दिया । पर बिटिया! कब तक? प्रतिदिन की सीख तो पत्थर भी फोड़ देती है। दूसरे, राजाओं के तो कान ही होते हैं, आंखें तो होती ही नहीं। प्रतिदिन की सलाह ने बड़े-बड़े राजघरानों को फोड़ दिया, बड़े-बड़े विद्वान तथा चतुर राजा, जिनके सम्बन्ध में कहा जाता था कि चापलूसी के चक्कर में पड़ते ही नहीं, चतुर मन्त्रियों तथा चापलूसों के चक्कर में आकर भूल करते हैं।"

बेटी – अम्मां जी ! भला कभी देखकर भी कोई विष खाता है ?

मां – बिटिया ! विष मीठे के भुलावे में से खाया जाता है, जान-बूझकर कौन खाता है? इसी तरह यदि राजा को दीख पड़ा कि मन्त्री चापलूसी करते हैं और धोखा दे रहे हैं तब तो राजा नहीं फंसता। राजा लोग भी तब फंसते हैं जब झूठ तथा चापलूसी को सच समझ लेते हैं और किसी तरह उनके सामने वास्तविक रहस्य नहीं खुलता। बिटिया ! ऐसी घटनायें राजघरानों में हैं। मेरा प्यार कब तक अपना प्रभाव बनाये रखेगा? जहां पर दुष्ट मन्त्री रात-दिन कान भरें, फिर तू ही सोच ले कि तेरी और मेरी क्या दशा होगी? मैं तेरे दुख में प्रसन्न नहीं, पर दूसरी ओर भी सुख की आशा नहीं है।

यह सुनकर मैं सोच में पड़ गई, पर जन्म से ही मेरा स्वभाव सोचने का कम था। जो बात आई उसे झट समझ लिया और सीधी बात सोचकर कह दी, उसी तरह अब एक सीधी-सी बात सोची और मां से कहा – "अम्मां जी ! यदि एक भैया आ जाये तो फिर तो किसी मन्त्री का वश नहीं चल सकता?" मां हंसकर कहने लगी – "बात तो तेरी ठीक है, पर बिटिया ! यह कोई अपने वश की बात है ? तेरे भैया की प्रतीक्षा करते और मिन्नतें मानते हुए यह दिन आ गये हैं, पर

---

१. उस समय की राजपूतानियों के नाम ।

ईश्वर की इच्छा, हमारे भाग्य में यह सुख नहीं, इसलिये हमारी इच्छा पूरी नहीं हूई, तब मैंने कहा, "मां जी! तुम डोलो मत, मेरा अंतस जो कभी-कभी प्रसन्नता की लहरें लगाया करता है, वह मुझे कहता है कि सबसे अच्छे मनुष्य का जो प्यारा है वह बहुत बलवान् और राठों का कोई सरदार राठ है। यद्यपि मैंने उसे देखा नहीं, तथापि मुझे पास-पास ही दिखाई पड़ता है, वह, वह तब का ही मुझे नहीं भूला। मेरे अन्दर इस तरह की लहर भी उठती है कि वह जानता है कि मैं उसे प्रतिक्षण स्मृति में रखती हूं। यदि मैं उसे कहूं कि वह एक भैया हमें दे दे, तो न जाने क्यों? पर मेरा मन साक्षी भरता है कि वह सुन भी लेगा और दे भी देगा।"

अम्मां सुनकर मुस्कराई। कहने लगी, "बिटिया! तू जैसी बेपरवाह होती थी वैसी ही भ्रमशील भी हो गई है।" मैं रोने लगी, फिर अंगमिलन करके कहा - "जी ! यदि एक भैया आ जाये, फिर तो तुम्हें कोई दुख नहीं होगा?" मां हंसने लगी और कहने लगा, "फिर मैं तो अवश्य ही सुखी हो जाऊंगी पर तेरा इस तरह रहना भी सुखदाई नहीं।" तब मैंने कहा, "अम्मां ! मेरे दुख की चिन्ता मत कर, मैं तो किसी और चक्कर में पड़ गई हूं। तुम्हारा दुख मेरे चले गये प्यारे का आने वाला प्यारा अवश्य ही दूर करेगा। मुझमें कोई अक्ल नहीं, पर मेरा जी कहता है कि यह कुछ होगा ।"

इस तरह की बातों के पश्चात् मैं अपने 'मठ' को चली आई। प्यारे जी को चले गये तीन वर्ष व्यतीत हो चुके थे। मेरे अन्दर उनकी सूरत प्रत्येक समय बैठी दिखाई देती थी और मेरे मन में से उस प्यारे-के-प्यारे की स्मृति कभी नहीं भूली थी, जो नाम वे मुझे बता गये थे वह मुझे किसी क्षण भूलना तो दूर रहा, मुझे इस मठ में बैठे कभी-कभी यों लगा करे; जैसे मेरे सारे रोम जिह्वा हो गये हैं और सब में से वही आवाज़ सुनाई दे रही है। एक दिन तो ऐसी झलक आई कि मैं इसी दशा में आंखें खोलकर देख बैठी; और फिर तो वृक्षों के पत्ते-पत्ते को जिह्वा लगी हुई दिखाई पड़ने लगी। जिस ओर मेरी दृष्टि जाती, प्रत्येक ओर वस्तु उस प्यारे-के-प्यारे को वही नाम लेकर पुकारती हुई दिखाई देने लगी। मुझे इस दशा में एक अनोखी-सी प्रसन्नता लगती थी, और इस रंग के अलावा उस समय और कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता था। केवल इसी रंग का होश था, और कोई सुधि नहीं थी। काफी समय मैं इसी दशा मे रही। फिर धीरे-धीरे मुझे होश आ गया, पर इस दिन से यह हो गया कि मेरे रोमों ने किसी समय भी जिव्हा का काम नहीं छोड़ा; न बैठे समय, न चलते-फिरते, न बातें करते समय और न ही सोते समय। मैं कहती, "हे मेरे मन ! यह क्या बन रहा है? प्यारे-के-प्यारे की केवल स्मृति ही इनती स्वादिष्ट है, उससे भेंट न जाने कितनी स्वादिष्ट होगी।" फिर मैं सोचती कि जीवन के बिना तो कुछ है ही नहीं, मैं तो सारे सब कुछ को जीवित देख चुकी हूं। सब कुछ इसी प्यारे के आश्रय से होता दिखाई पड़ रहा है, पर मुझे अब दिखाई

पड़े कि पत्थर तो अभी पड़े हैं, पौधे गड़े ही हुए हैं, पशु-पक्षी बेसमझ ही हैं, फिर यह सारे कैसे आवाज़े लगा रहे हैं? फिर ख्याल आया कि मैं आत्मा हूं, पर हां ! वे प्यारे जी बताया करते थे कि वह परमात्मा छिपकर देखने वाला है, कहीं यह उसी के चमत्कार की झलक तो नहीं थी? पर फिर मुझे ध्यान आया, कि सोचने और सोच-सोचकर चकित होने और चकित होकर मूर्ख बनकर उदास होने का क्या लाभ है? इस तरह का स्वाद भी खो जाता है, प्यारे के प्यारे का नाम भी भूलने लगता है, मुझे सोच में बहकर क्या लेना है? जो था वह था, जो है, सो है, जो होगा, पड़ा होगा, मैं जैसे पहले कभी फिक्रों में नहीं पड़ी और बाहरी मौज लिया करती थी, अब क्यों न चिन्ताओं से उसी तरह बेपरवाह रहकर अन्दर की मौज लूं और चिन्ता को बहा दूं?

एक दिन मैं इसी तरह इस सुख में थी, जिसे मैं समझती नहीं थी कि यह क्या है, मुझे अम्मां की बात का ध्यान आ गया, मेरे अन्दर इच्छा हुई कि, "हे प्यारे-के प्यारे ! जिसकी स्मृति में मैं हूं, मेरी माँ को मेरा एक भाई भेज दो, जिससे वह भी सुखी हो जाय। तू जो वृक्षों, पौधों में प्राण भरकर मुझे दिखा रहा है कि वे सभी तेरा स्मरण कर रहे हैं, यदि तू किसी अच्छे से को हमारे घर में भेज दे तो तेरे लिये कोई बात नहीं ?" मुझे पता नहीं, पर मेरे अन्दर पक्का निश्चय था कि मेरी बात 'प्यारे-के-प्यारे' ने सुन ली है और 'अच्छा' कह दिया है। आज मैं भागी भागी घर पहुंची। बापू जी ड्योढ़ी में खड़े थे, मैं उनसे लिपट गई और उनके कान के साथ मुंह लगाकर कहा - "बापू जी ! भैया आ रहे हैं।" पिता जी ने अचम्भित होकर मेरी ओर देखा और कहने लगे, "कौन से भैया, बिटिया?" तब मैंने कहा, "जो आकर तुम्हारी गोदी में मेरी भांति खेलेंगे और तुम्हें सुखी करेंगे।" ये सुनकर वे समझ गये कि मैं कोई भ्रम की बात कर रही थी, पर मेरे वहम पर ही मेरे से लाड़ करते हुए मुझे अन्दर ले गये। मैंने भागकर मां को अंगमिलन करके कहा, "अम्मां ! प्रसन्न हो, भैया जी आ रहे हैं।" वह भी अचम्भित होकर देखने लगी। बापू जी हंस पड़े, पर मैंने अपने स्वभाव के अनुसार ज़ोर से ताली बजाकर कहा, "तुम देख लेना, जो कुछ मैंने कहा है, सच हो जायेगा, मेरे प्यारे-के-प्यारे ने मुझे 'अच्छा' कह दिया है।" इस समय कुछ हंसी तथा कुछ उदासी-सी ने दोनों को चकित तथा प्रसन्न कर दिया, पर मैं अपने अन्दर प्रसन्न थी। जो कुछ मैंने तुझे बताया है वह हिलोर तो मेरे अन्दर निवास करती थी, पर जो कुछ प्यारे की स्मृति में अब एक और लाभ यह हो गया था कि प्यारे-का-प्यारा मुझे पास-पास दिखाई देता था। कभी-कभी मैं चौंककर देखा करती कि मानो वे आ गये या यों कि मेरी पीठ के पीछे खड़े हैं। कभी-कभी यों लगा करे कि शीश पर बैठे हैं, दीखते नहीं, पर हैं मेरे साथ। कभी-कभी यों लगे कि वे मुझे प्यार करते हैं। तब मैं कांप जाया करती और सोचती कि मैंने तो इनके प्यारे का वध किया है, यह

क्यों मुझे प्यार करते दिखाई पड़ते हैं? पर इन कभी-कभी के सोचों ने अब मेरे स्वाद पर बल न डाला और मेरा यह स्वाद अन्त में परिपक्व हो गया, कि प्यारे-का-प्यारा - जिसका किसी स्थान पर होने का पता, प्यारा दे गया था - वह "है" और अवश्य ही है और वह सबसे अच्छा प्यारा, जो और उच्च था - सच्चा था वह सच कह गया है। प्यारे-का प्यारा, "है" अवश्य 'है' और मेरे अन्दर से यह लहरें जो अब उठती हैं, कि वह मेरे साथ है, सचमुच मेरे साथ है। जब मेरे रोम उसका स्मरण कर रहे हैं, वन, तृण, पर्वत, आकाश-पाताल, सभी स्मरण कर रहे हैं तो वह निःसन्देह बिना दिखाई दे सकता है और मेरे पास है। फिर स्वाद आता रहे और अपने-आप ही स्वाद में से प्यार की सुगन्धि आती रहे एक दिन तो इसी वन में इसी मठ के एकान्त स्थान पर बैठे-बैठे मेरे जी ने कहा - "वे तो, जैसे मैं इस मठ में निवास करती हूं, मेरे शरीर में आकर बस गए हैं।"

बात क्या, दिन व्यतीत होते गये, मेरा स्वाद, उस प्यारे की स्मृति और उसकी ओर से प्यार, और कभी-कभी मेरा मन अपने-आप रोने लगता, पर सदैव अन्हीं ध्वनियों में रहना, एक स्वभाव-सा बन गया। एक वर्ष और व्यतीत हो गया। हमारे घर में सचमुच एक भाई आ गया। भाई के आने से माता-पिता के मन में से मेरे भ्रमशील होने का भय दूर हो गया। बल्कि अब उन्हें मेरे साथ एक और तरह का प्यार हो गया। बापू जी एक दिन कहने लगे - "बिटिया तो देवी हो गई लगती है, इसका सत्कार करना चाहिये।" पर मुझे उनके सत्कार करने में स्वाद न आता। मैंने उन्हें कहा, "मुझे उसी तरह लाड़ किया करो, मुझे तूम्हारे सत्कार में स्वाद नहीं आता ।"

भैया का रंग-रूप अत्यंत सुन्दर था और आंखें, बिलकुल मेरे हाथों द्वारा मारे गये प्यारे की-सी थीं। मैं भाई से बहुत लाड़ करती थी, कई बार लाकर इसी मठ में लिटा देती थी और लेटे हुए की आंखों को देखकर कहा करती - "इसी स्थान पर मुझ मूर्ख ने तीर से बींधकर यह नेत्र देखे थे, इसी स्थान पर यह नेत्र खेलते तथा हंसते हुए फिर से दीख पड़े हैं। हे नयनो ! तुम वही हो जिन्हें मैंने बन्द किया था और फिर मेरी प्रार्थना से आकर खुले हों, या तुम उन नयनों जैसे हो? कैसे भी हो, अब तुम मेरी ओर लाड़ से देखते हो, मुझे देखकर खिलते तथा हंसते हो और मुझे प्यार करते हो, मेरे माता-पिता का हृदय शीतल करते हो, हे नयनों ! तुम धन्य हो ।"

मैंने बाद में समझा कि संसार स्वार्थी है, उस समय मैं इस बात को नहीं जानती थी। पर उस समय भाई के आने की मुझे एक और प्रसन्नता हुई-भाई के जन्म से पूर्व मेरे माता-पिता मेरे प्यार को, जो अदृश्य प्यार के साथ लग पड़ा था, प्रसन्नता से नहीं देखते थे; वे मेरे प्यारे को भिखारी साधु और उसके प्यार को कोई और उसी जैसा समझते थे और चाहते थे कि मैं किसी तरह इस चक्कर में

से निकल जाऊं। पर मेरे हृदय के टुट जाने के भय के कारण न तो मुझे जोर देकर समझाते थे और न ही भय देकर रोकते थे, उनके जी में जो मेरे साथ अटूट प्यार था, वह एक बाधा थी, अन्यथा वे मेरी इस लगन को डंडों के बल से तोड़ देते। अब उनके हृदय की यह पीड़ा भी हट गई। उनके जी में भी 'प्यारे-के-प्यारे' का कोई प्यार उत्पन्न हो गया और उन्हें भी दर्शन की इच्छा हो गई। उनका जी मान गया कि बेटी किसी पूर्ण शक्ति की लगन में है, बावली नहीं जो हंसी-मज़ाक में बात करके भैया आ गये' भाई को ले आती है। जब मैंने उनके मन में प्यारे का प्यार देखा तो वे मुझे पहले की अपेक्षा ज्यादा प्यारे लगने लग पड़े। अब मैं घर में अधिक समय - कुछ मां के पास और कुछ भाई के पास लगाती, क्योंकि अब एक और कौतुक हो गया था। प्यारे की स्मृति मेरे अन्तस में घर कर गई और यों चिपट गई जैसे बेल पौधे से चिपट जाती है। चाहे मैं हंसती, चाहे खेलती, अपने आप स्मरण करती अथवा न करती, प्यारे की स्मृति तो कभी भी नहीं भूलती थी। 'मैं मठ में नैन मूंदकर ही बैठूं तो स्मृति मूझे स्वाद प्रदान करे', केवल यह बात न रही, बल्कि मैं जिस दशा में होती, स्मृति बनी रहती। उसे तो निद्रा भी नहीं भुला सकती थी। अब मैं प्यारे को आवाज़े नहीं लगाया करती थी, पर आवाज़ें मुझे नहीं छोड़ती थीं। इस रंग ने मुझे कुछ और ही स्वाद दे दिया ।

एक दिन अम्मां ने कहा, "बिटिया ! यदि तेरे प्यारे का प्यारा हमारे अभागे परगने में आ जाये हम भी जीवित हो जायें। तेरा प्यार सचमुच कोई अवतार था, हमने उसकी उस समय कदर न समझी, तुझे भी उसकी स्मृति से रोकते रहे, पर अब होश आई कि हम भूल करते रहे हैं। अब जी यही चाहता है कि उस तेरे प्यारे-के-प्यारे के दर्शन हों और उसके चरणों पर झुककर अपनी भूल के लिए क्षमा मांगें।' यों मेरे माता-पिता भी मेरी लगन के विपरीत होने के स्थान पर, पक्ष में हो गये। अब हमारे घर में सभी को दर्शनों का आकर्षण होने लगा। एक दिन मैंने मां को यह बात भी बता दी 'प्यार, यदि परदेश में हो प्यार करने वाला कभी भी उसको भूल नहीं सकता और इस स्मृति में प्यार का खूब स्वाद होता है और यदि तूम भी उसको अपना प्यारा मान लो और उसका स्मरण किया करो तब तुम्हें बहुत ही स्वाद आया करेगा।' बात यह हुई कि इस तरह सुनकर तथा हृदय में चुभ गई बात से बापू जी और मां जी भी उस 'प्यारे-के-प्यारे' का स्मृति मे लग गए।

एक वर्ष अथवा कुछ अधिक समय व्यतीत हो गया। अब अपने आप मेरे मन से छंद निकला करें और उन वनों में, जिनमें मैं कभी अनजानेपन में तथा बेपरवाह होकर फिरा करती थी अब कभी-कभी कबूतरों की भांति गुटकती और पपीहे की भांति गाती, हंसती और कभी-कभी नैनों से प्यार भरे अश्रु गिराती-फिरती। यह मठ मेरा एकान्त ठिकाना था, जहां पर मैं सवेरे-शाम अवश्य आकर बैठा करती थी। अब यहां पर कभी-कभी बापू जी और अम्मां जी

भी आकर बैठा करते थे।

एक दिन मैं जब तड़के ही आई तो मुझे दूर से गाने की आवाज़ आई, मैंने समझा कि मेरे कान बज रहे हैं, या वन को गीतों वाली जिह्वा लग गई है, पर जब मैंने ध्यान देकर सुना तो बड़ा रस भरा स्वर था और बड़ी ही वैराग्य भरी आवाज़ थी। मैं कुछ मुग्ध हुई प्यारे की लालसा में अश्रु गिराती हुई आ रही थी, इस स्वर ने मुझे हिलने तक नहीं दिया। मैं जहां पर थी, वहीं पर रेत के टीले पर बैठ गई। यह कोई गाना था, कोई आवाज़ थी कि वध करने के लिए छुरी थी? यह राग था कि प्राण भर देने वाला अमृत था? मैं स्वाद क्या बताऊं? एक तो रस भरता था, साथ सारे रोम कांपते थे, कंपकंपी होती थी, साथ-साथ वैराग्य भरता था, फिर स्वाद भी आता था। मैंने जो तुकें सुनीं और जिन्हें मैंने कभी न भूला, वे यह थीं -

आसा महला १

एक न भरीआ गुण करि धोवा ।।
मेरा सहु जागै हउ निसि भरि सोवा ।।१।।
इउ किउ कंत पिआरी होवा ।।
सहु जागै हउ निसि भरि सोवा ।।१।।रहाउ।।
आस पिआसी सेजै आवा ।।
आगै सह भावा कि न भावा ।।२।।
किआ जाना किआ होइगा री माई ।।
हरि दरसन बिनु रहनु न जाई ।।१।।रहाउ।
प्रेमु न चाखिआ मेरी तिस न बुझानी ।।
गइआ सु जोबनु धन पछुतानी ।।३।।
अजै सु जागउ आस पिआसी ।।
भई ले उदासी रहउ निरासी ।।१।।रहाउ।।
हउमैं खोइ करे सीगारु ।।
तउ कामणि सेजै रवै भतारू ।।४।।
तउ नानक कंतै मनि भावै ।।
छोडि वडाई अपणे खसम समावै ।।१।।रहाउ।।२६।।

मैं इसी रंग में बैठी रही और सुनती रही। मैं चाहती थी कि किसी तरह यह बन्द न हो, पर अंत में यह राग बन्द हो गया। मेरा अन्तस पिघल रहा था और नैन

छम-छम बरस रहे थे। प्यारे की सूरत आंखों के आगे खड़ी थी। और मैं मिन्नतें कर रही थी कि हे प्यारे जी ! अपने प्यारे से भेंट कराइए[१]।

इस तरह के वैराग्य में मैं रो रही थी। प्यारे के प्यारे की चाह विह्वल कर रही थी कि एक लम्बा, पतला वृद्ध पुरुष दूर से आता हुआ दिखाई पड़ा। मैंने समझा कि कहीं प्यारे-का-प्यारा आ गया है, जब मैंने देखा तो उसके नेत्र तो मेरे प्यारे के साथ मिलते थे और मुझे प्यारा भी लगता था, पर बहुत आकर्षण न हुआ। समीप आकर इसने पूछा "हे वनवासी कन्या ! इस वन में कोई साधु तो निवास नहीं करता ?" मैंने उत्तर नहीं दिया, "जी नहीं।" कोई नया आया हो? उसके प्रश्न के उत्तर में मैंने फिर कहा, "जी नहीं।" फिर कहने लगे, "यह वही वन तो नहीं, जहां पर छः वर्ष पूर्व राजा की पुत्री ने एक मुसाफिर को चीते के भुलावे में मार डाला था?" मैंने सहमकर कहा- "जी हां, यह वही वन है।" फिर 'वाह' कहकर वह चल दिया। मैंने उससे कहा कि ठहर जाओ; कुछ विनती सुनो। पर वह ठहरा नहीं और शीघ्रता से चल दिया। मैं यहां से उठकर मठ में जाकर बैठ गई। बैठने की देर थी कि मैं बिलकुल इकट्ठी-सी हो गई। वह स्मृति, वह प्यारी स्मृति थी तो अन्दर ही, पर इसमें मेरी चाह तीव्र हो गई। मुझे और प्रकार का स्वाद आने लग पड़ा। प्यारे-का-प्यारा ज्यादा पास दिखाई पड़ने लगा, वह ज्यादा प्यार करता हुआ लगा और अपने आप एक सुगन्धि-सी आने लगी। फिर जी चाहता कि आ जाये तो चरणों पर गिर पड़ूं और वह कहे, "बिटिया ! हम आ गये हैं।" दोपहर तक मैं बैठी रही, पर मुंदे हुए नेत्रों में से भी अश्रुओं का तार चलता रहा। जब रोती-रोती मैं घर की ओर चली तो उस वृद्ध पुरुष को मैंने फिर देखा, वह खोज कर रहा था, जैसे किसी खोई हुई वस्तु की खोज की जाती है, हम भी आपकी सहायता करें?" पर इसके नेत्रों में से अश्रु गिर रहे थे और आप कह रहे थे, "दीदी कभी नहीं भूली।" उन्होंने मेरी बात नहीं सुनी और अपनी ध्वनि में मगन रहे। जब मैं घर पहुंची तो वहां पर मां रो रही थी। मैंने आकर पूछा, "अम्मां! क्यों रोती हो?" वह कहने लगी : "बिटिया ! मैं भी भ्रमशील हो गई हूं, आज मेरा कलेजा तड़प रहा है कि तेरे 'प्यारे-के-प्यारे' दर्शन कब होंगे और मुझे

---

१. जैसा किसी प्रेमी का वाक्य है :-
बह-बहकर नदियों में पानी उतर रहा है, सरकंडों के फूल निकल आये हैं। मेरा प्यारा विदेशों में फिर रहा है। मैं उसके पास किसके हाथों सन्देश भिजवाऊं। आने जाने वाला तो कोई है नहीं, सन्देश कौन ले जाये। यदि कोई उसकी सूचना ले आवे तो मैं उसके चरण धो-धोकर पी लूं अथवा चमेली के फूल की भांति खिल जाऊं

(पंजाबी गीत का अनुवाद)

उदास देखकर तेरे बापू जी भी, आज पहला दिन है कि इसी लालसा में घर से रोकर गये हैं। देख तेरे भाई की आंखें भी आज कैसी चौंक-चौंककर देखती हैं। भाई ने मुझे देखकर बांहें ऊंची कीं, मैंने उसे उठाकर कण्ठ से लगाया और कहा, "प्यारे भैया ! तू बता तो जिन्होंने तुझे भेजा है, वे कब आयेंगे?" अनजान भोला भाई मेरी ओर देखकर ऊपर की देखने लगा। कुछ मुस्कराया और फिर रोने लगा मैंने कहा, 'हे मेरे मन ! आज क्या है? मैं सवेरे से रो-रोकर पानी-पानी हो गई हूं, प्रसन्न रहने वाली मां रो रही है और पिता जी सारी आयु में पहली बार नेत्रों में से जल गिरा रहे हैं, यह शिशु भी रोता है।' अपने-आप मेरा कलेजा चीरकर एक स्वर निकला, मैं रोई और इस दर्द से गाया कि महल के सभी निवासी रोने लगे -

हे प्यारे ! नैनों ने झड़ी लगा दी है और प्रतीक्षा कर करके हार गये हैं। लालसा करते यह दिन आ गये हैं, अब तो लौटो । हे प्यारे ! आओ और हमारी लालसा पूरी करो और हमें खुले दर्शन दो। हम भूल से मारे हुए अवगुणों वाले तुम्हारे द्वार पर गिरकर पुकार कर रहे हैं।

आज का सारा दिन इसी तरह व्यतीत हो गया पर वैसे मेरे अन्दर शान्ति तथा सुख था। एक सुख था, इस सुख में स्मृति लहरें मारती थीं, इन लहरों में से एक ऐसी तीव्र इच्छा उठती थी कि नेत्रों में छम-छम झड़ी लगाकर फिर चुप, शान्ति सुख अधिक ठंड तथा रस बंध जाता था, फिर बिजली की तरह लालसा का फर्राटा बजाता था और रोंगटे खड़े होकर सिर से नीचे से कुछ उतरता था जो नेत्रों से टपटप गिरता था। सायंकाल हो गया और मैं आज वन में भी नहीं गई। शिखर छत पर और चन्द्र की चांदनी और मीठी-मीठी पवन में इसी दशा में बैठी रही। रात गहरी हो गई । भीनी रैन तथा ओस की फुआर पड़ती। धुले हुए आकाश में तारा मण्डल से सुशोभित शरद चांदनी द्वारा ठण्डी रात उस लालसा में निद्रा को निकट न आने देती। मैं इसी सुख तथा वैराग्य में बैठी रही और रात के पहर व्यतीत होने लगे। कभी आनन्द का झोंका, कभी प्रेम की हिलोर, कभी शान्ति का ठहराव, कभी चाह और कभी चाव, कभी बहाव, तब पता चला जब सवेरा हो गया। किसी ने नीचे से आकर कहा - एक फकीर आया खड़ा है, कहता है, "बता दो कि तुम्हारे 'प्यारे-का-प्यारा' मैं आ गया हूं।" अम्मा यह सूचना लेकर दौड़ी हुई मेरे पास आई और कहने लगी, "उठ बिटिया ! प्यारे-का-प्यारा आ गया है।" मैं सुनकर उठ न सकी और पूछा, 'कहां पर है?' मां ने उत्तर दिया, "नीचे खड़ा है और सन्देश भेजा है कि, 'मैं आ गया हूं' चल हम आप चलकर उसे लायें।" मैंने हंसकर कहा, "अम्मां ! कोई कंगला मज़ाक करता है या छलिया हमें छलता है। भला सम्राट भी कभी इस तरह चलकर आते हैं ? अम्मां ! वे द्वार पर कब रुकते हैं? जो छाती को चीरकर अन्दर चले जाते हैं, उन्हें द्वारपाल कब बाधा डाल सकते हैं? फिर मेरे हृदय में कसक नहीं उठती, अपने आप विवश होकर उठकर

नहीं भागे। प्यारा तो चुम्बक की भांति खींचेगा।' मां चकित होकर कहने लगी, 'बिटिया ! कहीं भूल न हो।' मैंने उत्तर दिया, 'जा उससे उसका नाम पूछना और यह भी पूछ कि क्या कहता है?' दासी गई और सूचना लाई कि वह अपना नाम 'वाहिगुरू' बताता है और कहता है कि 'उद्धार करने के लिये आया हूं।' मैंने कह दिया कि 'जा, उसे कह दे कि अभी अवकाश नहीं, ड्योढ़ी में बैठे, चार घड़ी तक हम नीचे आयेंगे।' यह सन्देश सुनकर वह प्रतीक्षा में बैठ गया, हमने भोजन भेजा, उसने भोजन किया, हमने पांच मुद्राएं भेजीं उसने स्वीकार कर लीं। फिर हमने कहला भेजा, 'आज नहीं कल आना!' यह सुनकर वह सत्य वचन कहकर चला गया। अब मां भी हंसने लगी और कहने लगी, 'बिटिया ! तेरे आकर्षण का तार सच्चा जिससे तुझे प्यार की सूझ हो रही है। यह तो घड़ी का तमाशा था, पर मुझे क्रोध आता था कि इस छलिये को कैद में डाल दूं, पर फिर कहती थी कि दोष मेरा है। जो मेरी भांति किसी अदृष्ट आकर्षण में बहते उन्हें कौन मज़ाक करता और कौन उनसे अपनी स्वार्थ-सिद्धि के यत्न बहाने नहीं करता ।'

दोपहर को पिता जी आये तो खबर लाये कि वह तो कोई रमता साधु था, यहां पर आकर किसी दासी से तुम्हारी कथा सुनकर उसने छल किया है। जिस सराय में उसने डेरा डाला है, वहां का सरदार आकर सारा समाचार बता गया है और अब वह हवालात में है। अम्मां मेरे अंगों से मिलकर कहने लगीं-'वहमी लड़की! तू प्यारे-के-प्यारे को अवश्य ही मिलेगी।' अब मेरी चीख निकली और प्यारे-के-प्यारे को मिलने की लालसा और भड़क उठी। उस ठग को तो मैंने मुक्त करवा दिया, पर घर में प्रतीक्षा तथा दर्शन की बातें होने लगीं। सारा दिन हम सारे वैराग्य में बैठे रहे और इसी तरह की वार्तालाप करते रहे। जब सूर्य अस्त होने लगा तो मैं वन को चल दी। इस समय दो और मनुष्य देखे जो एक वृक्ष के नीचे बैठकर गा रहे थे। इनका गाना बहुत आकर्षक था, जो कुछ वे गाते थे, वह यह था -

राग सूही महला १

मनहु न नामु विसारि अहिनिसि धिआईऐ ।।
जिऊ राखहि किरपा धारि तिवै सुखु पाईऐ ।।१।।
मैं अन्धुले हरि नामु लकुटी टोहणी ।।
रहऊ साहिब की टेक न मोहै मोहणी ।।१।।रहाऊ।।
जह देखऊ तह नालि गुरि देखालिआ ।।
अंतरि बाहरि भालि सबदि निहालिआ ।।२।।
सेवा सतिगुर भाइ नामु निरंजना ।।

तुधु भावै तिवै रजाइ भरमु भऊ भंजना ।।३।।
जनमत ही दुखु लागै मरणा आइकै ।।
जनमु मरणु परवाणु हरि गुण गाइकै ।।४।।
हऊ नाही तूं होवहि तुध ही साजिआ ।।
आपे थापि उथापि सबदि निवाजिआ ।।५।।
देही भसम रुलाइ न जापी कह गइआ ।।
आपे रहिआ समाइ सो विसमादु भइआ ।।६।।
तूं नाही प्रभ दूरि जाणहि सभ तू है ।।
गुरमुखि वेखि हदूरि अंतरि भी तू है ।।७।।
मैं दीजै नाम निवासु अंतरि सांति होइ ।।
गुण गावै नानक दासु सतिगुरू मति देइ ।।८।।३।।५।।

जहां पर में खड़ी थी वहीं पर बैठ गई। यह गाना भी बन्द हो गया, पर मैं हिल न सकी। तब हिली जब यह दोनों मनुष्य, जो अत्यन्त शीतल तथा सुखी लगते थे, आये और पूछने लगे, 'बिटिया ! तू किसी ऋषि की देवी है और इस वन में तप करती है?' मैंने उत्तर दिया, 'जी नहीं, मैं साध्वी नहीं हूं।'

'भला कोई सन्त यहां पर आये हैं?' मैंने उत्तर दिया, 'जी नहीं।'

'क्या यह वही वन हैं जहां पांच-छः वर्ष पूर्व, किसी परदेशी का राज्यकन्या भूल से वध कर बैठी थी?'

मैं कांपी, नेत्रों में जल भर आया, सिर झुकाकर उछलते हुए कलेजे से मैंने कहा; "जी हां, पर आप आज्ञा कीजिये, आप क्या चाहते हैं?" "और कोई इच्छा नहीं" कहकर वे चल दिये। मैं जाकर मठ में बैठ गई। पिछली स्मृति ने आज मुझे खूब रूलाया। यह भी समझ में न आता कि यह तीन पुरुष क्या पूछते थे, कौन थे और किसकी खोज करते थे? बहुत रात व्यतीत हो गई, मुझे कोई सुध न रही, कहीं से यह आवाज़ आ रही थी-

आवहु सजणा हऊ देखा दरसनु तेरा राम ।
घरि आपनड़ै खड़ी तका मै मनि चाऊ घनेरा राम ।।

(सूही महला १)

मैं आज घर को जाना भी भूल गई थी। बापू जी को चिन्ता लग लग गई; डोली, दासियां तथा सवार, उलकाएं साथ लेकर मेरी खोज करते हुए मुझे घर में ले जाने के लिये आये। मेरे बिना जाने कुछ लोग पिता जी की मुझसे दूर रहकर मेरी रक्षा किया करते थे, वे मुझे वन में अकेला छोड़कर डेरे पर नहीं गये थे, रात हो जाने के कारण आसपास ही छिपकर रक्षा कर रहे थे। अब मैं घर मैं पहुंची और उत्कंठा ने और तीव्र रंग पकड़ लिया। नये मिले लोगों का समाचार मैंने

माता-पिता को बताया। हम सभी चिन्ता में थे और दुखी थे।

रात को हम तीनों व्यक्ति इन तुकों का प्रेम-सहित पाठ करते रहे। तड़का होते ही मैं मठ को चली आई, मेरी अम्मां तथा बापू जी भी मेरे साथ आये कि वे वन में नये व्यक्तियों के मनोहर गाने सुन सकें। आगे मेरे मठ से थोड़ी दूरी पर चार व्यक्ति खड़े होकर उत्तर की ओर देख रहे थे और गा रहे थे –

हम घरि साजन आए ।। साचै मेलि मिलाए ।।
सहज मिलाए हरि मनि भाए पंच मिले सुखु पाइआ ।।
साई वसतु परापति होई जिसु सेती मनु लाइआ ।
अनदिनु मेलु भइआ मनु मानिआ घर मंदर सोहाए ।।
पंच सबद धुनि अनहद वाजे हम घरि साजन आए ।।

(रागु सूही महला १ छंतु घरू २)

हम पत्थर की मूर्तियों की भांति खड़े के खड़े रह गये। जब आंखें खोलीं तो यह चारों के चारों लुप्त थे। हम मठ के बाहर चबूतरे पर आकर बैठ गये। एक क्षण के पश्चात् मेरे कलेजे में एक जोर की कसक-सी उठी, यों जैसे कि कोई मुट्ठी भरकर कलेजा निकालकर ले जाता है। शरीर झूठा हो गया, अपरिचित हो गया, "मैं शरीर नहीं" इस समय मुझे दीख पड़ा, प्रत्यक्ष हो गया कि "मैं शरीर नहीं हूं।" मेरे अन्दर से विवश ही निकल गया, 'अम्मां ! प्यारे का प्यारा आ गया।' तब फिर नेत्र मुंद गये, होश नहीं रहा, न जाने क्या हुआ? माता-पिता को मैंने चौंकते हुए देखा है, फिर न जाने क्या हुआ ?

जब मेरी आंखें खुलीं, मेरा सिर किसी अत्यन्त प्यारे के चरणों पर पड़ा था; मेरे नैन उन पर अश्रु गिरा रहे थे, मेरे सिर पर कोई हाथ फेर रहा था जो अत्यन्त सुख प्रदान कर रहा था, मेरा जी इतना सुखी था कि सिर को उठा नहीं सकती थी। इस गहरे प्यार वाले हाथ ने मेरा सिर उठाया, जब मैंने दृष्टि भरकर मुखड़े की ओर देखा तो एक झलक-सी पड़ी और बिजली की भांति चकाचौंध हो गई। मेरा सिर फिर गिर पड़ा और चीख-सी निकल गई, 'प्यारे-का-प्यारा ।'

उस सुख तथा आनन्द वाले हाथों ने मुझे फिर उठाया, मुझे बैठाया। मैं फिर चेहरे की ओर नहीं देख सकी। अम्मां ने कहा-'बिटिया ! प्यारे के प्यारे जी आ गये हैं, देख।'

मैं क्या देखती ! कौन आ गये? प्यारे के प्यारे जी आये कि मेरे प्राण आ गये, जीवन आ गया, आत्मा आ गई। उन पवित्र तथा प्रेम भरे हाथों में पहला विचार मुझे यह आया कि यह प्यारे का प्यारा आप है कि प्यारा आप है। मेरे नैनों में फिर जल भर आया, सिर फिर चरणों पर झुक गया, पर वे मेरे सिर पर हाथ फेर फेरकर मुझे प्यार करते थे। मैंने कहा कि यह सचमुच मेरे प्यारे को प्यार करते थे जो

उसके लिये मेरे साथ इतना सुन्दर प्यार करते हैं। मैं उस समय क्या करती ? कुछ समझ में नहीं आता था। शरीर को काटती, टुकड़े-टुकड़े करती ? टुकड़े-टुकड़े करके न्योछावर करके अग्नि में डालती जाती? मन तन बलिहारी करती? जो होता उसे लुटा देती ? मैं धन्य हो गई, मैं जो पापिनी, हत्या करने वाली थी, अब मुझे प्यार किया जा रहा था। जिनके प्यारे को मैंने बाण मारा था वे आकर मुझे प्यार कर रहे थे! आश्चर्य था कि अति आश्चर्य !

मैंने रोकर कहा, "हे मेरे प्यारे के प्यारे !" पर कण्ठ रुक गया और मैं काफी समय तक रोती रही। फिर साहस बटोरकर मैं बोलने लगी पर कण्ठ फिर रुक गया। इस समय कोई ईश्वरीय राग छिड़ पड़ा और यह ध्वनि हुई –

आवहु मीत पिआरे ।। मंगल गावहु नारे ।।
सचु मंगलु गावहु ता प्रभु भावहु सोहिलड़ा जुग चारे ।।
अपनै घरि आइआ थानि सुहाइआ कारज सबदि सवारे।।
गिआन महा रसु नेत्री अंजनु त्रिभवण रूपु दिखाइआ ।
सखी मिलहु रसि मंगलु गावहु हम घरि साजनु आइआ ।।२।।

(सूही महला १)

जब यह ध्वनि बन्द हुई तो अम्मां ने मुझे झंझोड़कर कहा, "बिटिया ! प्यारे के प्यारे' की सेवा शुश्रुषा कर। दूर से आये हैं, स्नान, जल, अन्न।" यह सुनकर मेरा कलेजा फिर कांपा, हाय मैं सदैव भूलती ही रही, मैं अब भी अपने ही स्वाद में पड़ी हूं, प्यारे जी के सुख की ओर ध्यान नहीं दिया। हृदय को चोट लगकर दिल कड़क सी आवाज करके टूटा और मैं बेसुध होकर धड़ाम से गिर पड़ी। मुझे जब बेसुधी से होश आया तो कलेजे को फाड़कर यह आवाज निकली - "हे पापियों से प्यार करने वाले ! हे अपराधियों का उद्धार करने वाले ! हे हत्यारों को प्यार द्वारा सच्चा बनाने वाले ! हे अपने सुख मन्दिरों का त्याग करके वनों में कीटाणुओं पर दया करने वाले ! हे विशुद्ध प्यार तथा दया के स्वरूप ! मेरे जैसी पापिनी, भूली हुई तथा अपने सुखों की प्यारी पर दया कर, क्षमा कर, तू क्षमा करने वाला है, मैं भूलने वाली हूं, तू विशुद्ध दया है। हे प्यारे के प्यारे ! मैं नहीं, मैं टूट गई हूं, मैं मर चली हूं, मैं गई, ओह मैं मरी" कहती हुई मैं धड़ाम से फिर चरणों पर गिर पड़ी, पर हुआ क्या ? मैं शरीर न रही। शरीर चरणों पर पड़ा था और मैं आश्चयर्यित होकर क्या पड़ी देखती थी कि मैं शरीर से बाहर निकल कर खड़ी हूं और क्या देखती हूं? सारी सुन्दरता, सारा प्यार, सारा रस, सारा आनन्द, एक तार से में पिरोया पड़ा है, जिसका मुझे अब पता है कि वह सुरत का तार था। सारे सुन्दर, सभी रसिक, सभी प्यारे, सभी आनन्द लेने वाले उसमें एक रूप होकर झलक रहे थे। मैं देख रही थी, वे दीख रहे थे, यह कहना भी असत्य है। वे भी देखने वाले और मैं भी देखने वाली ही थी, पर फिर तमाशा देखो कि सभी एक रूप, अन्य

कोई दिखाई ही न देता, पर फिर सभी झलक भी दें। मैं सबके साथ अभेद, एक रूप, फिर कुछ भिन्न, दोनों रंगों में रस, रस में प्रेम प्रेम में आनन्द और मैं सारी स्वयं आनन्द। मैं क्या बताऊं कि क्या थी? जिह्वा क्या कह सकती थी? जैसे एक वस्तु में दूसरी वस्तु समा जाती है और भिन्न नहीं रहती, पर फिर रस रह जाये, एकता हो, पर जीवन नष्ट न हो, दूरी तथा अन्तर मिल जाये पर स्वच्छ आपा न मरे। यही दशा होगी जो 'तू आत्मा है' प्यारे ने जब मुझे कहा था और मैं सुनकर डरी तथा कांपी थी, तब मुझे क्या पता था कि एक कीटाणु ने गुलाब के फूल पर पहुंचना है और तितली बनकर सुन्दर हो जाना है। फिर अब मैंने क्या देखा कि इसी सुरत का एक नीचे लटकता हुआ तार है जिसमें सारा संसार गुंथा पड़ा है, जो भिन्न-भिन्न लोक तथा शरीर थे सभी एक ही तार में गुंथे हुए थे। यह और कौतुक था जो अत्यन्त आश्चर्यजनक था। फिर एक झलक पड़ी। मैं एक आनन्द रूप थी, सर्वानन्द थी। फिर न जाने क्या था, अज्ञानता की-सी दशा थी, जहां से लौटने पर आपा देखने वाला आभासित होता था, हैं ? साक्षी ।

फिर मैंने क्या देखा कि मेरी निद्रा खुली है और मैं उठकर बैठी हुई हूं, मेरा शरीर फूल से भी हलका था, और मैं बीच में पृथक थी। प्यारे के प्यारे जी मेरी ओर देखकर मुस्कराये और कहने लगे, "बिटिया ! तू आत्मा है कि नहीं ?" अब यह सुनकर मुझे भय नहीं लगा। धन्यवाद से नैन भर आये और टप-टप अश्रु बहे। आप कहने लगे, "क्या तू आत्मा है?" मैंने बड़े प्यार तथा सत्कार सहित कहा, 'सच्चे स्वामी ! मैं कुछ भी नहीं, तू सब कुछ है, हां, मैं पापिनी तेरे प्यार की अनुग्रहीत तेरी हूं, मुझे अपनी बना ले। मैं क्या कहूं? कुछ नहीं हूं! मुझे अपने चरणों में समा ले और मुझे भिन्न मत कर, वह वियोग दे गया है, अब तुम न वियोग देना। मैं मूर्ख आत्मा का सन्देश सुनकर रोया करती थी। आज तेरे कौतुक देखकर चकित हुई हूं। मैं अपनी बुद्धि पर क्या भरोसा करूं, मेरी बुद्धि तुच्छ है, मेरा प्रकाश धुंधला है, मेरा मार्ग मुझे कंपाता है और सबसे डरावनी मैं आप हूं। चरणों में-हां जहां पर मुर्दा चर्म के जूते का स्थान है-इस मुर्दा मांस को भी-वहीं पर समा ले।"

मैं यह सब कुछ बड़ी कठिनता से बोल सकी, मेरा कण्ठ रुकता था, नेत्र बरसते थे, रोंगटे खड़े हुए, हल्का-हल्का सा पसीना आने लगा, बीच-बीच में प्रसन्नता तथा नम्रता के साथ यह लहर भी बजती : प्यारे चरणों में निवास कर लिया है और अपने शरीर का त्याग करके वहां पर निवास करने लगी हूं।

मेरे पिता जी ने अब करबद्ध विनय की, "हे वाहिगुरू जी ! अब कृपा करके दास का गृह पवित्र कीजिए और इस कूकर की ओर से भोजन की सेवा स्वीकार कीजिए।" प्यारे के प्यारे जी यह सुनकर कुछ चौंके और कहने लगे, "वाहिगुरू नाम तो मेरे प्यारे का है।" मैं यह सुनकर तनिक-सी चौंक उठी कि हैं तो प्यारे के प्यारे, इन सुन्दर जी ने यह क्या कहा है? यह कैसी और कठन बात कह रहे

हैं? मैं अभी सोच ही रही थी कि आपने फिर कहा, "वाहिगुरू तो मैं उसे कहता हूं जिसे मैं अपने आप से भी अधिक प्यार करता हूं।"

अब मैं और डरी कि कहीं पहले की भांति किसी और प्यारे की आशा बांध कर यह 'प्यारे के प्यारे' जी भी चले न जायें। पर वह अन्तर्यामी कृपालु अपने आप ही कहने लगे, "बिटिया ! यह नई बात नहीं, तुझे अच्छे लगने वाले उसका नाम तुझे परमात्मा भी बता गये हैं, जो तू डरती थी कि छिपकर तेरे साथ रहता है। वह तार जिसमें तूने आश्चर्यजनक कौतुक के साथ सब कुछ गुंथा हुआ और रूप अरूप देखा है, उसका नाम सुरत है, उस सुरत का सुरता वाहिगुरू है। उसका रूप अरूप रंग भेस कोई नहीं, पर वह सबके अंगसंग है। सबके अपने आपके आपा का भी दृष्टा है, वह यों मिलता है जैसे अब तुमने उसके चरणों को परसा है वह 'वाहिगुरू' नाम उसी का है; तुम उसे याद करती हो, वह तुम्हारी स्मृति के कारण बंधकर तुम्हें अपनी ओर खींचता रहा है। यह जो आनन्द तुझे अन्दर से आता है, यह उसका है। वह सदैव प्रेम है–

'आपे प्रीति प्रेम परमेसुरु करमी मिलै बड़ाई' (प्रभाती महला १)

और वह मिलता भी प्रेम से ही है। वह सर्वव्यापक है, अन्दर बाहर है। अन्दर होने के कारण उसे बाहर नहीं खोजना पड़ता। प्यार सहित स्मरण करते ही अपने आपको दिखा देता है। उस प्यारे के साथ लगे रहने से ही जीवन है और उससे बिछुड़ना मृत्यु है। इसी संयोग को कहा गया था कि "तू आत्मा है।" यह वास्तविक जीवन है, संसार इस जीवन से बाहर है, इसीलिये दुखी है। इस जीवन के बिना जो जीवन है, वह जीवन नहीं।" यह कहकर आपने बाईं ओर देखा और कहा, "मरदाना ! रबाब बजा, वाणी आई है"। आप तो कहते ही लवलीन हो गये और मरदाना ने एक यन्त्र बजाया जो सरोद के साथ कुछ मिलता-जुलता था। मुझे बाद में पता चला कि इसका नाम रबाब है और प्यारे के प्यारे जी की ही निर्मित है। यह साज़ इतना सुरीला था कि बजते ही मन एकाग्र हो गया। अत्यन्त प्यारे स्वर में गायक ने यह गायन किया –

हरि बिनु किउ जीवा मेरी माई ।।
जै जगदीस तेरा जसु जाचउ मैं हरि बिनु रहनु न जाई ।।१।।रहाउ ।।
हरि की पिआस पिआसी कामनि देखउ रैनि सबाई ।।
स्त्रीधर नाथ मेरा मन लीना प्रभु जानै पीर पराई ।।१।।

(राग सारंग असटपदीआ महला १ घरू १)

जब समाप्ति हुई तो पिता जी ने फिर आपसे घर चलने के लिये विनती की। प्यारे के प्यारे जी ने आज्ञा की कि हम इस मठ में ही अच्छे हैं, जहां पर प्यारी पुत्री वाहिगुरू को आवाज़ें लगाती रही है, परन्तु मेरे थिरकते हुए अधरों की और

माता-पिता जी की करबद्ध विनती फिर हुई और दीन दयालु जी ने स्वीकार कर ली और हम पापियों के राजसी-गृह में चरण पड़े।

हमारे लिये अब चाव, प्रसन्नतायें, आनन्द, मंगल, विनोद आश्चर्यजनक रंगों के खुल गये। मैं क्या करूं, आज हमारा जीवन ही और प्रकार का हो गया। प्यारे के प्यारे जी की सेवा के रंग में जो रस था उसका हमें ही पता है। उस रंग का वर्णन बहुत ही कठिन है।

आज दिन तक मुझे क्या पता था कि क्या हो रहा है? मुझे कौन खींच रहा है ? मैं किधर जा रही हूं ? अब सब पता चला। यद्यपि इन सूचनाओं के बिना जो बीज मेरे अन्दर उत्पन्न हुआ और पनप उठा था, वह ठीक था, पर पता लगने पर कुछ और धैर्य तथा भरोसे का रंग बंध गया। मेरे प्यारे के प्यारे श्री सतगुरू नानक देव जी थे। हां, एक दिन किसी मूकता में प्यारे जी के मुंह से भी यह नाम निकला था, पर मुझ बेसमझ को उस समय कुछ पता न चला ।

अब मुझे भी पता चल चुका था कि रबाब बजाने वाला मरदाना उनका निजी सेवक था जो श्री गुरू जी का गायक था। दो चार दिन पहले ही जो अच्छे लगने वाले मनुष्य मुझे वन में गाते अथवा पता पूछते मिले थे, वे भाई भागीरथ, भाई सीहां और तारा जी थे जो श्री गुरू जी के प्यारे सिख थे, जो उनके परदेश से घर आने पर दर्शन करने के लिये आये थे। पर उन्हें पता चला था कि आप चिनाब नदी की ओर चल दिये हैं। वे सूचना प्राप्त करने के लिये कुछ पहले ही पहुंच चुके थे । इस स्थान पर, जहां पर वे पहुंचे वे जानते थे कि सतगुरू जी पहुंचेंगे क्योंकि तिलोका - मेरे प्यारे-की मृत्यु पर वैराग्य की वार्ता गुरू जी के सिखों तक पहुंच चुकी थी और दीदी (गुरू नानक जी की बहन) का अनुमान था कि सतगुरू जी, जो चिनाब नदी की ओर गये हैं, अवश्य ही राजकन्या का उद्धार करने के लिये जायेंगे। दीदी जी के अनुमान और समाधि-दर्शन ने भी सिखों को इस बात का पता दिया था।

यह सभी प्यारे के दर्शनों के लिये आये थे और गुरू जी जब वापिस लौटें तो यह उनके आगे विनती कर सकें कि दीदी जी घर पर आकर दर्शन देने के लिये प्रार्थना करती हैं। श्री गुरू जी यहां पर प्यारे सिख के दिये हुए वचनों को पूरा करने और हमारा उद्धार करने के लिये आये थे और वह निरंजनी ज्योति जिस पर से मैं सारी की सारी न्योछावर हूं, प्यारे सिखों से कहने लगे; दीदी नानकी बहन है, पर यह भाग्यशील भी पुत्री होकर दिखाई दी है । अब हमने कुछ दिन इसके पास व्यतीत करने हैं, फिर चलेंगे और दर्शन तो दीदी जी को आज ही हो जायेंगे। मैं इस गरीबनिवाज़ की दयालुता के प्यार को, जो उस उद्धारकर्ता ने निमानों तथा ग़रीबों के साथ किया है, देख-देखकर मुग्ध हो रही थी। मैं सतगुरू जी के अनुग्रह को देख-देखकर बलिहारी होती रही और धन्यवाद में अश्रु टपकते रहे ।

अब मुझे पता चला कि हमारे परगने में फिरणा और जोध नामक गुरुमुख प्यारे तथा और अनेकों सिख मेरे सच्चे पिता श्री नानक देव जी द्वारा उबारे गये हैं और उस निरंजनी ज्योति वाहिगुरू के प्रेम में मग्न होकर निवास करते हैं। कौन जानता था कि ऐसे हीरे हमारे राज्य में छिपे हुए हैं । इन प्रेमियों का अपना सत्संग था और इनसे मिलने के लिये, मुझे अच्छा लगने वाला मनुष्य हमारे नगर में आया था । निर्जन स्थान देखकर अपने निरंकार के प्यार यथा प्रेम में मस्त होकर बैठा था, जब मेरे पापी हाथों ने उसे बींध दिया था। उस गुरू के संवारे हुए, गुरू के प्यारे का नाम भाई तिलोका था। उस वृद्ध पुरुष भाई भागीरथ का वह पुत्र था। श्री गुरू जी इस प्यारे से बहुत प्यार करते थे और इसे आपने बाल्यकाल से ही पूर्व पुरुष बना दिया था। जिस दिन मेरे इन हाथों ने बाण मारा था उस चंगे की उस समय बाईस वर्ष की आयु थी । हां, आज पता चला कि जिसे मैंने मारा था , वह मुझे आत्मा के जीवन में जीवित कर गया है। जिसके पुत्र को मैंने विलग किया था, वह आज मुझे पुत्री की भांति देख रहा है और उसे ईश्वर की आज्ञा कहता है और मेरे अवगुणों पर ध्यान नहीं देता। जिस सतगुरू के लाडले सिख को मैंने उसकी युवावस्था में ही बींध दिया, वह पतित पावन मुझे 'बिटिया' कह रहा है। तभी तो यह गुरू के सिख एक दूसरे को भाई-भाई कहकर बुलाते हैं। प्रेम तो सारा इन्हीं के पास है, द्वेष तो कहीं पास नहीं फटकता, इनके घर में ही अपरिमित क्षमा है, यह सत्संग धन्य है।

मुझे अपने रंगों में मुग्ध हुई को क्या पता था कि जगत में दुख भी कोई वस्तु है। अब पता चला कि सृष्टि-भार से दबी पड़ी है, सारा देश हाहाकार कर रहा है, पाप की काली रात छा रही है और उस अन्धकार को मिटाने के लिये सतगुरू देव जी आये हैं, जिन्होंने ऐसे गुरुमुख प्यारे अत्पन्न किये हैं, जो संसार का उद्धार करते हैं। सारे नगर में गुरू के आगमन की तथा मेरी कथा सविस्तार फैल गई। भाई तिलोके का परिश्रम तथा गुरू नानक जी की अनुकम्पा का वह साया पड़ा कि सारा नगर गुरू का सिख बना ।

वाह-वाह, प्यारे सतगुरू जी हमारे घर में आये हैं। माता-पिता तो वहीं करते जो कुछ बड़ों के घर आने पर किया जाता है। मैं मूर्ख, जो भूली रही और हत्या करती हुई उद्धार हो गई और फिर से सनमानी गई, हां मैं अमोल, जन्म से बेपरवाह, बेखबर, मूर्ख, अनजान क्या जानती थी कि इतने बड़े दाता का स्वागत पूर्ण रूप से कैसे किया जाता है और प्यारे के प्यारे की प्रसन्नता कैसे प्राप्त की जाती है और सत्कार कैसे किया जाता है। मेरे तो मन में जी कुछ भी आया प्यारे सतगुरू जी से कह देती थी। मैंने करबद्ध प्रार्थना की कि हे त्राणकर्ता जी ! मुझ मूर्ख को कुछ अक्ल नहीं, मेरे सभी लोग कहते हैं कि आज बड़ी खुशी की जाये, मैं क्या खुशी करूं ? अनजान हूं, समझ नहीं सकती। मुझे यह दान दीजिये कि मुझे

फिर मान विस्मृत न हो। यह जो नाम की अनुकम्पा हुई है और अन्दर सत्य होकर लग रहा है, यह सदैव मिला रहे। एक तो मुझे यह प्रसन्नता लगती है। मुझे यह दान दीजिए कि इस अभाग्य पर अब सौभाग्य हो गई। नगरी में अपने पवित्र हाथों द्वारा धर्मस्थान की नींव डालिये, जहां पर आपके प्रेमियों का सम्संग हुआ करे और यह दया भी कीजिये कि नगर के लोग जो मेरी भांति भोले तथा अनजान आपकी शरण में पड़कर सिख मत के मार्ग पर चलकर उभर जायें। दूसरी प्रसन्नता तो मुझे यह लगती है।"

प्यारे त्राणकर्ता जी मेरी प्रार्थना सुनकर प्रसन्न हुए। वे दासों के सम्मान तथा अनाथों के त्राणकर्ता थे, आपने उल्लास सहित धर्मस्थान कि नींव डाली। जहां पर धर्मस्थान की नींव डाली। जहां पर धर्मस्थान का निर्माण होना था, वहां बैठकर सभी प्रेमियों को नामरूपी अमृत पिलाया और सत्य के मार्ग पर चला दिया। सारा दिन इसी तरह जीवनदान देकर प्यारे सतगुरू जी ने नगर का उद्धार किया। सायंकाल 'सोदर' नामक वाणी का कीर्तन होने लगा। फिर वह आरती श्री गुरू जी ने स्वयं पड़ी, जिसे सुनते ही आत्मा की लहर अपने आप में ले जाती है। हे अतिथि पथिक ! यह वह स्थान है जहां पर प्यारे जी शहीद हुए थे, जहां पर मैंने प्यारे जी की वर्षा पर्यन्त आराधना की थी, जहां पर सतगुरू नानक देव जी आकर विराजमान हुए थे और जिसके आगे वाले चबूतरे पर सतगुरू जी के निवास समय से ही बाद में कीर्तन होता रहा।

श्री गुरू जी कार्तिक और मार्गशीर्ष के दो मास हमारे नगर में ही रहे, परगने तथा आसपास के गांवों में दूर-दूर तक "धन्य श्री गुरूनानक; धन्य श्री गुरू नानक" हो गया। बड़े-बड़े अधम जीवों का उद्धार हुआ। अब आपको स्वयं किसी और धरती का उद्धार करने के लिए जाना था, मेरा प्यार यह कब सहन कर सकता था कि स्वयं बिछड़ जाएं ? पर अब मेरे प्यार का आकाश तथा सीमाएं ऊंची हो गईं थीं। आपका अवतार संसार के प्राणियों के लिए हुआ था और मुझे यह लगता था कि आपकी प्रसन्नता में प्रसन्न, और आपकी आज्ञा में उपस्थित होकर मेरा यह सत्कार वाला प्रेम हो सकता है। जी को टोट लगते और कलेजे में बाण लगते इस उच्च भाव ने मुझे पहले दिनों के सीमाबद्ध प्यार में नहीं दबाया। मैं प्रसन्न थी और यह प्रार्थना करती थी[१] -

हे सतगुरू ! जिस मार्ग पर आप जा रहे हैं, उसी मार्ग पर फिर लौटकर आना। आप जब आंखों से ओझल हो जाऐं तो आपका मेरे हृदय में अवश्य ही निवास हो। जो स्मृति आपने प्रदान की है, उसे आप ही निभाना - हमें आप कभी एक क्षण-मात्र भी न भुलाइयेगा ओर अपने चरणों में रखना। यदि हमारी स्मृति में कुछ

१. लेखक की कविता का अनुवाद प्रस्तुत है।

कमी हो तो आप ही उसे खींचकर रखना। यदि आज आप जा रहे हैं तो फिर लौटकर भी कभी चक्कर लगाना। आप हम भटकने वालों और नीचों से कभी भी आंचल मत छुड़ाना ।

इस तरह के प्यार विरह के हमारे रंगों में सतगुरू जी ने जाने की तैयारी की। जाने से एक दिन पहले मेरे विवाह की बात पिता जी ने सतगुरू जी के आगे प्रार्थना की। जब आप जी ने कृपा-भरे नेत्रों द्वारा मेरी ओर देखा तो मैं चरण पकड़कर रोने लगी, "हे अन्तर्यामी जी ! संसार की अग्नि से रक्षा कीजिए !"

आपने कहा, "हमने अग्नि में जल रखा है, और बन्धन में मुक्ति रखी है, गृहस्थ में निर्वाण का ढंग सिखाने के लिए आये हैं।" मैंने कहा, "सत्य वचन, जो आपकी आज्ञा है वही मेरा जीवन है।" तब आपने कहा, "गृहस्थी वाहिगुरू जी तक पहुंचे। 'वाहिगुरू का प्यार तथा 'गृहस्थ' दोनों कैसे निभें, इस बात को करके दिखाने के लिए, हमने 'गृहस्थ उदास' का मत चलाया है। गृहस्थ करे[1] वह बुरा है और जो कोई हठ भेस तथा दिखावा करके नहीं पर स्वाभाविक ही गृहस्थ न करे और साईं के प्रेम में रंगा हो, तो उसे हम बुरा भी नहीं कहेंगे। पाखण्ड बुरा है, प्रत्येक दशा में बुरा है। दिखावा प्रत्येक रूप में बुरा है। कपट को भूलकर भी नहीं करना, अन्त में जीव को हिसाब देना पड़ जाता है ।"

फिर आप मेरे पिता जी की ओर देखकर कहने लगे -"इस लाड़ली बच्ची को दु:ख मत देना इसके सिर पर वाहिगुरू का हाथ है, यह जो कुछ करेगी, उसका फल बुरा नहीं होगा। इसको किसी बात पर भी तंग मत करना। स्वाभाविक ही यदि इसकी इच्छा हो, तो इसका विवाह कर देना, यदि इसकी इच्छा न हो तो मत करना। इसके सिर पर साधु-संगत की सेवा का भारी बोझ रहेगा । इसकी सुरत नाम से रसिक हो चुकी है, यह सुखी रहेगी ।"

फिर मेरे भाई के सिर पर हाथ फेरकर आपने उसे 'हरिदास' नाम प्रदान किया। कहने लगे, "हे सिख तुझे राज्य करना है और तेरी बहन योग धारण करेगी। तेरे राज्य में उसका योग चलेगा, उसके योग को तेरा राज्य आश्रय देगा। यों दोनों राजयोग कमाकर ज्ञान पद में पहुंचकर खेलोगे।" क्या बताऊं? इस तरह के असीम दान प्रदान करते हुए, बादल की भांति बरसते हुए प्यारे जी किसी और ठिकाने को चल दिये। हम शान्ति तथा प्यार भरी उदासी में पड़ गये। पर नित्य का सत्संग, सवेरे की वेला में 'आसा दी वार' का कीर्तन, सायंकाल 'सोदर' का कीर्तन और आरती आदि सच्चे आमोद-प्रमोद हमारे साथ थे। पिता जी राज्य का कार्य किया करते थे और मैं संगत की सेवा किया करती थी। इस तरह जब भाई ने राज्याधिकार संभाला तो गुरू जी का वचन सफल हुआ। इसी तरह मेरी पचास

१. कबीर जऊ गृहु करहि त धरमु करू ... । (श्लोक कबीर)

वर्ष की आयु - जो मुझे प्रारम्भ से प्राप्त हुई थी - व्यतीत हुई।

हां, पथिक ! यहाँ पर एक अनजान गरीब सिख पथिक वाणी का पाठ कर रहा था, जो अकेला था और जिसे कोई भी नहीं जानता था, जो मूर्ख तथा खुरदरे हाथों द्वारा घायल किया गया और दो आंखों के सिवा किसी और के अश्रु गिरे बिना दाह किया गया। वह गुप्त ही आया और गुप्त ही चला गया, पर वह गुरू नानक देव जी के कण वाला अपनी गुप्त यात्रा में एक ऐसा वाक्य कह गया कि जिस दिन श्री गुरू नानक देव जी हमारे परगने से चले थे, पर परगने की सीमा तक जो सिख आपको विदा करने के लिए आये थे, उनकी संख्या कोई नौ सौ से अधिक थी। एक सिख का जीवन अपनी 'मूक आवाज़' से हजारों का उद्धार करने का कारण बना। वह प्यारी आत्मा यहां बैठी थी, पर उसके रक्त की एक-एक बूंद के बदले यहां पर एक-एक सिख पैदा हुआ। हे पथिक ! क्या तू सिख है ? सिख तथा सिख मत क्या होता है ? और गुरू नानक जी के उस सुख सन्देश का, जो उसने देकर 'हानि-पक्ष' मे से निकालकर 'लाभी पक्ष' में लोगों को डाल दिया, आवाज़ सुन और सीख और फिर संसार को बता और देख कि एक सिख में कितना सामर्थ्य होता है। देख कि कैसे एक सिख सवा लाख के तुल्य हो जाता है। हानि को कैसे लाभी में बदला जा सकता है ?

यह कुछ कहने के पश्चात् वह सूरत चुप हो गई, मेरी ओर से दृष्टि हटाकर आकाश की ओर देखा, फिर मेरी ओर देखा और कहने लगी :-

मनहु न नामु विसारि अहिनिसि धिआईऐ ।।
जिऊ राखहि किरपा धारि तिवै सुखु पाईऐ ।।१।।
मैं अंधुले हरि नामु लकुटी टोहणी ।।
रहऊ साहिब की टेक न मोहै मोहणी ।।१।।रहाउ।।

(सूही महला १)

इसे अति प्यार सहित गाती हुई मुझ पर प्रसन्न हो-होकर दृष्टि डालती हुई, फिर ऊपर चढ़ती-चढ़ती आकाश में एक किरण की भांति चमकती हुई, दूर होती, मन्द पड़ती हुई अन्त में खो गई। मुझे निन्द्रा में उसके खो जाने का दु:ख हुआ और चित कुछ अधीर हुआ। उस अधीरता में निन्द्रा खुल गई। एक मैं थी और एक वह मठ था। एकान्त तथा शान्ति थी, पर एक सुगन्धि तथा रस फुहार वहां पर भरी हुई लगती थी, जिसका छिड़काव मेरे रोमों से छूकर अन्दर को खींचता था और अन्दर से कोई सरसराहट-सी होकर रोमों का रोमांचित करती थी। 'वाह! वहा! सतगुरू नानक तेरा विरद्, पतित पावन ! वाह ! कैसे उद्धार किया और कैसे मुझे भूल के गोदी में खेलने वाले बालक को अपने अगम्य देश की झलक दिखाकर सच्ची सूझ प्रदान की है।"

यह प्रसंग, यह वार्ता, बड़ी अद्भुत है। सतगुरू जी के इस जैसे तारने वाले विरद के अनेकों कौतुक हुए, जो शोक है कि लिखे नहीं गए। लिखित में तो बहुत ही कम आये थे। हां, कौन समय के चिट्ठे खोले और उनका वाचन करे। मुझे यह वार्ता सुन्दर दिखाई पड़ी है, आश्चर्य वाली है, शिक्षा-भरी है, उद्धार करने वाली है। मुझ पर इसका उपकार हुआ है ।

प्रभ की उसतति करहु सन्त मीत ।।

सावधान एकागर चीत ।। (मऊड़ी महला ५)

का उपदेश मेरे हृदय पर लिखा गया है। ऐसे ही यह वार्ता औरों के लिये सुखदाई हो सकती है, इसलिये मैंने सवेरे ही स्वप्न को स्मरण करके निरख-परखकर याद किया और स्मृतियें लिख लीं, कि किसी तरह किसी लिखित में आकर किसी सौभाग्य लिखित द्वारा गुरू यश के चातक नैनों तथा पपीहा रूपी कानों तक पहुंचती हुई हृदयों में अमृत की शीतलता प्रदान करे।

यों यह 'भोले भाइि मिले रघुराइिआ' का सतगुरू जी का कौतुक प्राप्त होकर लिखित में आया ।

दर्शन की देन[1]

गुरुमुख वाक्य :-

बुलबुल ! रुदन मत कर ।

गुरू नानक रूपी फूल चारों ओर खिला हुआ है, तू हृदय के नेत्र खोलकर देख।

तू दर्शन कर, जिससे तेरा हृदय खिल पड़े और यह दर्शन कभी भी ओझल न हो। यहां पर प्रेम की गोद सफल होती है और इस स्थान पर सुख और चैन की प्राप्ति होती है।

□ □

१. यहां पर लेखक के पंजाबी गीत का अनुवाद प्रस्तुत किया है ।

४४ गोष्टि शेरव ब्रह्म : दूसरी

: १ :

समय व्यतीत होता गया, जैसे चल रही पवन जगत को शीतलता प्रदान करती है तथा घूमते हुए बादल जगत पर बरसते, जल देते तथा अन्न उत्पन्न करते; वैसे ही गुरू बाबा जी जलते हुए जगत को शीतलता प्रदान करते, नाम का दान देते और मृतकों को जीवित करते हुए जलते रहे। इस प्रकार ईश्वरीय प्रवाह में फिरते हुए स्वदेश को आये, घर पहुंचे, पर वहां पर ठहरे नहीं, देश में परदेश की भांति शीतलता प्रदान करते, फिर निकल पड़े। चिनाब के किनारे पर घूमते, फिर रावी नदी की ओर आये और फिर पाकपट्टन के समीप आ निकले। पट्टन के बाहर जंगल में आ डेरा डाला।

समय के चक्करों को देखिए-यह पाकपट्टन कभी हिन्दुओं का स्थान तथा तीर्थ की भांति ऋषियों का ठिकाना था, फिर यह बौद्ध स्थान रहा। उस पुरातन समय में इसका नाम अजोधन था। संवत १२३१ के लगभग पहले फ़रीद जी का जन्म हुआ और उन्होंने अजोधन को ही अपना ठिकाना बनाया। इनके यहां पर निवास करने के कारण इनके अनुयायियों ने इसे 'पाक पतन' कहना आरम्भ कर दिया, जो पाकपट्टन प्रसिद्ध हो गया। इनकी गद्दी पर ग्यारहवें-बारहवें स्थान पर शेरव इब्राहीम अथवा शेरव ब्रह्म-जिन्हें फ़रीद सानी, फ़रीद सालस तथा बल-राजा आदि भी कहते हैं-हुए। गुरू नानक देव जी के समय यह शेरव ब्रह्म जी हुए हैं। शेरव फ़रीद के श्लोक तथा और वाणी गुरू ग्रन्थ साहब जी में अंकित हैं[१]।

जब श्री गुरू जी पट्टन से बाहर दो तीन कोस की दूरी पर आ बैठे और जंगल को भाग्य लगा दिया तो वहां पर ही कीर्तन का रंग जम गया। एक दिन प्रात: कीर्तन हो रहा था कि दिन चढ़ आया। इस समय शेरव का एक मुरीद, जिसका नाम कमाल था, उस वन में अपने पीर के घर के लिए लकड़ियां इकट्ठी कर रहा था। कीर्तन की मधुर आवाज़ सुनकर स्वाद का बंधा हुआ उधर को आ गया, तब मरदाना उस समय यह वाणी गायन कर रहा था-

आपे पटी कलम आपि ऊपरि लेखु भि तूं ।।
एको कहीऐ नानका दूजा काहे कू ।।२।।

इस श्लोक की आवाज़ ने उसे स्वादमग्न कर दिया, फिर इच्छा हुई कि इसका

---

१. यह वाणी शेरव इब्राहीम फ़रीद सानी की है।

अर्थ भी भली भांति समझ लूं। तब आगे बढ़कर विनती की, कि श्री मान्! आप यदि आज्ञा करें तो रबाब बजाने वाला इस श्लोक को दोबारा उच्चारण करे। तब आज्ञा हुई, 'मरदाना'! फिर से श्लोक का उच्चारण कर'। मरदाना ने फिर दो-चार बार श्लोक गायन किया तो कमाल ने कण्ठस्थ कर लिया। फिर इकट्ठी की गई लकड़ियों को बांधकर सिर पर उठाकर अपने डेरे पर आ गया! लकड़ियां डालकर अपने पीर को जाकर प्रणाम किया और कहने लगा :- पीर जी! आज मैंने खुदा के एक प्रेमी को देखा है, पर वह 'एक' खुदा कहता है। वह दो नहीं कहता, खुदा (ईश्वर) और रसूल (अवतार)। एक ही ईश्वर बताता है। तब पीर ने कहा, जो कुछ तूने उससे सुना है वह सुना दे। उसने फिर वह श्लोक, जिसे उसने कण्ठस्थ किया था, सुना दिया। 'नानक' का नाम सुनकर कम्पन-सी पैदा हुई । वही नानक रसिक, तपस्वी, वैरागी, तथा रंग को रंगा नानक, जिसने रस का कण प्रदार किया था और तपों से मुक्त कराया था। शेख के हृदय में से अनेकों भाव गुज़रे, पर वह (मुसलमान धर्म के नियम) तथा कट्टरपंथियों का भय सिर पर था और गद्दीदार होने का सम्मान प्रत्येक समय प्राप्त था। यों अंतस् के विशुद्ध सच के आगे कई रेखायें खिंच जाती हैं। अत: प्यार उल्लास उठकर कुछ सोच भी हुई। फिर कहने लगा-बेटा! क्या तूने ठीक पता किया था, कि वह नानक स्वयं था? उसने उत्तर दिया कि कोई आकर्षण था कि कोई सरलता थी, कैसे कहूं, कौन था। तब शेख समझ गया कि नानक स्वयं ही है। फिर कहने लगा-'बेटा! क्या तूने श्लोक के अर्थ समझे हैं? तब उसने उत्तर दिया-तुम्हें सारा ज्ञान प्राप्त है। हूं ... कहकर पीर ने फिर कहा - 'बेटा! जिनका उच्चारण किया हुआ यह श्लोक है, उसका दर्शन किया है? वह खुदा का फ़कीर है। मुझे भी ले चल। उसने, फिर खुदा की बातें की हैं। (पुरातन जन्मसाखी)।

फिर शेख अपने चेले कमाल को साथ लेकर सुखपाल में बैठकर कोस-दो-कोस की दूरी पर पहुंचा और गुरू जी के पास खड़े होकर प्रणाम किया। गुरू बाबा ने उठकर प्यार किया और अपने पास बैठाया। कुशलता पूछी, फिर आपस में वार्तालाप चल पड़ी।

ब्रह्म - कमाल ने आज मुझे आपका श्लोक सुनाया है, जिसमें आप कहते हैं कि पट्टी भी आप हैं, लेखनी भी आप हैं, और लेखक तो आप हैं ही। सभी स्थान पर एक ही हैं। 'पर हिन्दू लोग कहते हैं कि हमारे में उपस्थित है और मुसलमान कहते हैं कि हमारे में है - मैं आपसे पूछता हूं कि किसमें उपस्थित है और किसमें अनुपस्थित आप निश्चय करते हैं ? (पुरातन जन्मसाखी) .

तब श्री गुरू जी ने कहा - शेख! साहब एक है, उसकी मन्त्रणा तथा शिक्षा एक है, जो उसे एक करके मानता है, वह ठीक है। जो उसे एक से अधिक करके मानता है उसक त्याग कर दे। शेख जी! एक है, एक प्रियतम है, प्रत्यक्ष है, 'एक

तू है, एक तू है' कहते-कहते आप उस एक के विस्यम-भरे रंग में मग्न हो गये। शेख जी को भी रस आया, फिर शेख को वैराग्य हुआ, सोचने लगा कि क्या फ़कीरी और क्या शाहजादों वाला जीवन, प्यारे से भेंट हो, आठों पहर उसके रंग में कैसे रहूं। यों सोचता हुआ विवश होकर गाने लगा-

फरीदा पाड़ि पटोला धज करी कंबलड़ी पहिरेऊ।

जिनी वेसी सहु मिलै सेई वेस करेऊ ।।१०३।।

फिर शेख जी चुप हो गये। तब गुरू बाबा जी ने कहा - शेख जी! पति-परमेश्वर तो अंतस् में निवास करता है, पर हम जो उत्कंठित हैं, परदेश में रहते हैं, यदि हम झूरें, अपनी इस वियोग वाली भूल का स्मरण करें, तब उस प्यारे से मिलते देर नहीं लगती; पर बात तब बनेगी, जब हमारा मन शुद्ध हो जायेगा[1]।

शेख-युवावस्था व्यतीत होती है, आयु बढ़ जाती है, मृत्यु सिर पर है, कब्र में पड़कर भी आत्मा पुकार करेगी - हाय न मिले प्यारे[2]।

गुरू जी (लम्बा श्वाँस लेकर रस तथा वैराग्य में) - शेख जी! हम अनाड़ी हैं, शरीर के प्रेम में मग्न हैं, मन अशुद्ध तथा काला है। हममें अवगुणों का निवास है। यदि गुण आ जायें तो प्यारा हमारा मिल जाये[3]।

शेख (नेत्रों में जल भरकर)-वे कौन-से अक्षर हैं जिनके द्वारा प्रियतम को प्रसन्न करूं, वह कौन-सी माला और कौन-सा मंत्र है, जिसका जाप करके उसे बस में कर लूं? वह कौन-सा वेष है जिसे पहनूं तो वह मोहित हो जाये[4]।

श्री गुरू जी-मन को मान का त्याग करना और झुककर चलना, यह तो अक्षर है, बोल-कुबोल और दुख-सुख सहन करना और ईश्वरीय आज्ञा में रहना, यह गुण और मनके हैं। फिर जिह्वा ही माला बन जाये। वह नाम मन्त्र का जप करे। इन तीनों को धारण करना मानो वेष धारण करने के समान है, क्योंकि यह इन्हें

---

१. घरही मुंधि विदेसि पिरु नित झूरे संभाले ।
मिलदिआं ढिल न होवई जे नीअति रासि करे ।।१।। (वार वडहंस महला १)

२. फरीदा नंढ़ी कंतु न राविओ वड़ी थी मुईआसु ।।
धन कूकेंदी गोर मैं तै सह ना मिलीआस ।।५४।। (सलोक फरीद)

३. महल कुचजी मड़वड़ी काली मनहु कुसुध ।।
जे गुण होवनि ता पिरु रवै नानक अवगुण मुंध ।।१।। (वार मारू महला १)
अर्थ : -महल-पत्नी (जिज्ञासु)
मड़वड़ी-शरीर रूपी मन में घुसी हुई, देह से प्यार करने वाली।

४. कवणु सु अखरु कवणु गुणु कवणु सु मणीआ मंतु ।।
कवणु सु वेसो हउ करी जितु वसि आवैं कंतु ।।१२६।।

तब ही धारण करना जब अन्तस् में साईं के लिए उत्कण्ठा होगी। अत: वेष हो गया – मिलने की उत्कण्ठा[१]।

इस समय शेख का हृदय बहुत द्रवित हो रहा था। प्रत्येक ऊंचे साधक को अपने अन्दर अवगुणों की वायु के तनिक से झोंके की भी पीड़ा होती है। सो शेख किसी ऐसे भाव में कहने लगा – "हे गुरू नानक! मुझे कोई हंसिया अथवा कोई छुरी दे, जिसके साथ अपने मन के इस मान का वध करूं। पशु का वध करने के लिए लोहे की छुरी होती है, मनुष्य का वध करने के लिए भी लोहे का हंसिया होती है; पर इस 'मान' का वध करने की कोई छुरी है तो बता"।

यह सुन गुरू बाबा के चेहरे की आभा में से प्यार तथा प्रताप की दोनों आभाएं परिवर्तित होकर दृढ़ता का एक गंभीर और एकाग्रता भरा भाव ले आईं और बोल का स्वर भी अचल हो गया – "शेख! 'सच' एक लोहा है जो इस्पात तथा फौलाद से भी पक्का है, इसके हृदय में निवास करने से इसकी दृढ़ता तथा पक्कापन बढ़ता है। इस सच के लोहे से एक छुरी तैयार होती है, उसकी मूठ भी किसी लकड़ी, पत्थर अथवा हाथीदांत की नहीं होती, उस सारी का निर्माण इस लोहे से ही होता है। इसका निर्माण अग्नि के ताव तथा हथोड़े की चोट से नहीं होता, बल्कि अन्दर की शुद्धता के यत्नों के ताव से और सच के विनिमय में सिर पर पड़ने वाले दु:खों की चोटों से इस हंसिये का निर्माण होता है, इसलिए इस घड़न्त को अपर अपार कहा जाता है, क्योंकि जब इसका निर्माण हो जाता है सुन्दर भी लगती है, फिर इंसे सान पर नहीं चढ़ाया जाता। इसे निरंकार के नाम से तेज़ किया जाता है। जब यह पैनी छुरी तैयार हो जाए तो इसे म्यान में संभालकर रखा जाता है, पर वह म्यान चर्म की नहीं, गुणों की होती है। इस छुरी के साथ यदि किसी का वध किया जाए तो कहीं शेख (महापुरुष) बन जाता है, वैसे तो शेख पद एक उपमा मात्र ही प्रयुक्त होता है। तुम जानते ही हो कि शेख बड़े पुरुष को कहा जाता है, नेता को, धर्म के नेता को। सो वास्तव में शेख वही है, जिसका वध इस छुरी ने कया है, क्योंकि इस छुरी के लगते ही लोभ का सभी रक्त निकल जाता है, 'और–और लेने' की चाह; 'प्रत्येक वस्तु मेरी हो जाए' जब इसका लोभ दूर हो गया तब जीव की सब कमी पूरी हो गई, क्योंकि यह लेने की वृत्ति तथा अतृप्त रहने की वृत्ति ही तो सभी अवगुण करवाती है और सत्य के स्थान पर असत्य, छल और कपट सिखाती है। इस छुरी के साथ जिसका वध हुइा, वह सचमुच ही हलाल (उचित) हो गया, क्योंकि इसमें से हराम (वर्जित) फिर सारा दूर हो जाता है, वह फिर समझता है कि मेरे लिए कौन–कौन–सी बातें

---

१. निवणु सु अखरु खवणु गुणु जिहवा मणीआ मंतु ।।
ए त्रै भैणे वेस करि तां वसि आवी कंतु ।।१२७।।

वर्जित हैं, कौन-कौन-सी बातें उचित हैं और क्या-क्या सत्य है। यों जानता ही नहीं, सत्य की प्राप्ति करता है। हक़ सत्य को भी कहते हैं, परमेश्वर का नाम भी है। वह पहले एक हलाल (सत्य तथा उचित) की पहचान करता है, फिर जब हक हलाल से लिपटता है, तो सत्य में निवास हो जाता है, इस 'आचरणिक सत्य' से नाम के साथ चला हुआ, 'मूलक सच' अर्थात 'सच्चे परमेश्वर' को प्राप्त करता है और साईं की स्मृति में, वह साईं के दर्शन में, समा जाता है[१]। इस छुरी से मन के मान को काटा जाता है।

यह सुनकर शेख भी झूमने लगा। विवश होकर बाबा की स्तुति करने लगा- "वाह! वाह! खुदा ठीक करने वाला है। खुदा का प्यारा है, खुदा ने बड़ी अनुकम्पा प्रदान की है। नानक! ईश्वर के प्यारे से पूछना अनादर है"। लगता है कि गुरू जी ने यह सुनकर समझ लिया कि शेख कुछ पूछना चाहता है। तब गुरू जी ने कहा - "कहो।" तब उसने पूछा कि पीरी मुरीदी में भांति-भांति के लोग आकर सिर खपाते हैं, उनके साथ कैसे बातचीत की जाये? तब गुरू बाबा ने कहा - "जो लोग भी आते हैं अपने स्वार्थ के लिए, करामातें लेने के लिए फकीरों के पास आते हैं। उनमें नाम के प्रेमी तो कम ही आते हैं। कामी पुरुषों को सुन्दरता के साथ, भूख से आतुर लोगों को स्वादिष्ट भोजनों के साथ प्यार होता है, लोभी पुरुष माल-धन के मोह में फंसा होता है, निद्रा के कारण ऊंघ रहे पुरुष को पलंग तथा रज़ाई की इच्छा होती है, क्रोधी पुरुष गुस्से के वाक्यों में भागदौड़ करता तथा दु:खी होता है और फक्कड़ लोग वैसे ही बकवास करते रहते हैं। अत: शेख जी! भलाई का उपदेश तो प्रत्येक जीव को देना है, पर कामी, पेटू, तृष्णालुओं, दरिद्रों, क्रोधियों तथा बकवास करने वालों की संगत नहीं करनी चाहिए। उनके अन्दर से दुर्गन्ध उठती है[२], और नाम तो पवित्रता है। अत: सत्संग केवल नाम के इच्छुकों था नाम के प्रेमियों का है। तब शेख बाबा के चरणों पर गिर पड़ा। कहने

---

१. सच्चे पातशाह का यह वार्तालाप उस श्लोक का खुला अनुवाद है जिसे श्री गुरू नानक देव जी ने रामकली राग की वार में उच्चारण किया है और पुरातन जन्मसाखी में इसी समय उच्चारण किया लिखा है—

सच की काती सचु सभु सारु ।। घाड़त तिसकी अपर अपारु ।।
सबदे साण रखाई लाइ ।। गुण की थेकै विचि समाइ ।।
तिसदा कुठा होवै सेखु ।। लोहू लबु निकथा वेखु ।।
होइि हलालु लगै हकि जाइ ।। नानक दरि दीदारि समाइ ।।२।।

(वार रामकली महला १)

२. सतगुरू जी का कथन उनके रचित इस श्लोक का अनुवाद है -

रूपै कामै दोसती भुखै सादै गंढु ।। लबै मालै घुलि मिलि मिचलि उघै सऊड़ि पलंघु
भऊकै कोपु खुआरु होइि फकडु पिटे अंधु ।। चुपै चंगा नानका विणु नावै मुहि गंधु ।।१।।

लगा – वाह नानक! तुमने ईश्वर के मार्ग का पता बताया है। हमें ईश्वर के मार्ग का कुछ पता चला, हम आज जीवित हुए हैं। हमें ईश्वर का कोई अवतार मिला है। अब हमें ईश्वर से मिलने में कोई शंका बाकी नहीं रही।

: २ :

लगता है कि कुछ दिन गुरू जी ने वहीं पर वन में ही विश्राम किया। जन्मसाखी में लिखा है कि शेख ने कहा – मेरे घर चलो। पर गुरू बाबा ने वन में ही रहना पसन्द किया। अत: शेख वहां पर आकर मिलता रहा और ईश्वर का यशो – गान होता रहा। एक दिन शेख ने कहा – हे सतगुरू, ईश्वर के प्यारे! जिस साईं को आप एक कहते हैं उसकी स्तुति तो कुछ सुनाइए। उसने किस तरह संसार का सृजन किया? एक था, एक है तो संसार जो दूसरा है, इसका सृजन कैसे हो गया? एक में तो एक ही है, फिर जगत तथा सृजन कैसे हुआ ?

गुरू जी – हे शेख! वह एक है, अपने – आपमें सम्पूर्ण है और सदैव है। वह कैसा और क्या है? यह बात अकथनीय है। उसकी आज्ञा, इच्छा, हुकुम कोई है, उस सर्व चेतना से परे परम चेतन स्वरूप में, जैसे उसका स्वयं वर्णन नहीं किया जा सकता, वैसे ही उसका 'हुकुम न कहिआ जाई'। सो अपने किसी रंग में वह अपने आपकी रचना करता है।[१] क्या रचता है? निर्गुण सगुण हो जाता है।[२] हो जाना भी क्या? निर्गुण सगुण एक ही है[३]। फिर वह अपने नाम की रचना करता है, जो उसके साथ अभेद है और जो द्वैत के आरम्भ को आकर छू जाता है। इससे आगे वह दूसरी वस्तु 'प्रकृति का सृजन करता है। यह (प्रकृति) उसकी बराबरी नहीं करती, पर उसकी उत्पन्न की हुई होती है। यह स्वतन्त्र भी नहीं, पर इसे फिर वह अपने – आपसे भिन्न भी नहीं करता। इस रचना में, जो प्रकृति है, और उसके बिना अविनाश नहीं, वह मानो आसन लगाकर बैठता है और आनन्द स्वरूपता में ही बैठता है। वह सच का आसन है[४]। यों एक ही है, रचना से पहले एक है, रचना के पश्चात् और रचित से अलग भी है और बीच में व्यापक भी है।

---

१. आगे जो वार्तालाप गुरू जी कर रहे हैं वह 'आसा राग की वार' की पहली ९ पौड़ियों का अनुवाद है।

२. निरगुन ते सरगुन द्रिसटारं ।। (गऊड़ी महला ५)
निरगुणु सरगुणु आपे सोई ।। (माझ महला ३)

३. निरगुनु आपि सरगुनु भी ओही ।।
कलाधारि जिनि सगली मोही ।। (गऊड़ी सुखमनी महला ५)

४. माइआ जलु खाई पाणी घरु बाधिआ सत कै आसणि पुरखु है ।। (रामकली महला १)

सच के आसन पर पहले भी था और फिर भी। 'आनन्द' उसका स्वरूप है। रचना करके भी वह रचित को देखता, पालन करता हुआ फिर चाव (आनन्द) स्वरूप है।[१] जो उसने रचना रची है, इसमें जीव उत्पन्न किये, जिनको बुद्धि तथा ज्ञान दिया, कर्म करने की छूट तथा चुनने का अधिकार दिया, इन्हें धर्म दिया और न्याय के लिए 'धर्म का विवेचक' भी स्थापित किया। अत: जिन्होंने सच के साथ प्यार किया, सच से आकर मिले। पर जिन्होंने असत्य के साथ स्नेह किया, वे ठगे गये। सच की कमाई के लिए नाम बताया जो उस नामी के साथ अभेद मानो उसी का ही रूप है। सो नाम वाले उसे आकर मिले[२]। परन्तु जो जीव नाम को भूलकर संसार के असत्य में व्यस्त हो गये और भोगों में लगे रहे जब अन्त में मृत्यु हुई और आत्मा आगे पहुंची, वहां पर शुभ कर्म तथा ईश्वर के किए हुए यश का मूल्यांकन होता है, सो उन्हें – क्योंकि जीवित समय उसका रस नहीं मालूम हुआ था, जीवन में – वहां पर स्थान प्राप्त नहीं होता, मन परचता नहीं, कोई रहने नहीं देता, फटकार पड़ती है, अब पश्चात्ताप करते हैं कि आप अन्धे होकर जन्म खो आये हैं[३]।

शेख – फिर हमारे मतानुसार तो वे अपवित्र आत्माएं सदैव मारी गईं, प्रलय के दिन देखा वे सदा के लिए नर्क में जाएंगी।

गुरू बाबा – यह शरीर जगत में गिनती के दिन रहता है, चाहे सौ वर्ष तक रहे। कर्म गिनती में है चाहे वह कितने ही करे। इसलिए सदैव के लिए दण्ड नहीं हो सकता। ईश्वर का प्रभुत्व है कि भूल से दु:ख प्राप्त होता है, पर दु:खों आगे के लिए भूल न करने का गुरू बन जाता है, क्योंकि मनुष्य में बुद्धि है, पशुओं

---

१. 'अपीनै आपु साजिओ आपीनै रचिओ नाऊ ।।
दुयी कुदरति साजीऐ करि आसणु डिठो चाऊ ।।
दाता करता आपि तूं तुसि देवहि पसाऊ ।।
तूं जाणोई सभसै दे लैसहि जिंदु कवाऊ ।।
करि आसणु डिठो चाऊ ।।१।। (वार आसा महला १)

२. 'नानक जीअ उपाइकै लिखि नावैं धरमु बहालिआ ।।
ओथै सचो ही सचि निबड़ै चुणि वखि कढे जजमालिआ ।।
थाऊ न पाइनि कूड़िआर मुह कालै दौजकि चालिआ ।।
तेरै नाइि रते से जिणि गए हारि गए सि ठगण वालिआ ।।
लिखि नावै धरमु बहालिआ ।।२।।' (वार आसा महला १)

३. 'आपीनै भोगि भोगिकै होइ भसमढ़ि भऊरु सिधाइआ ।।
वडा होआ दुनीदारु गलि संगलु घति चलाइआ ।
अगै करणी कीरति वाचीऐ बहि लेखु करि समझाइआ ।
थाऊ न होवी पऊदीई हुणि सुणीऐ किआ रुआइआ ।।
मनि अंधै जनमु गवाइआ ।। (वार आसा महला १)

की भांति इसकी बुद्धि बंधी हुई नहीं। दु:ख सहन कर-करके जीव को उससे बचने की सूझ आ जाती है, जिससे दु:ख होता है। फिर दु:खी जीव अपने आपसे बुद्धिमानों की खोज करता है, दु:ख दूर करने की मति लेने के लिए, और वह दाता फिर इस तरह के बुद्धिमान पुरुष भेज भी देता है-जीवों को सुमति प्रदान करने के लिए। यों जीव को पता चल जाता है कि दु:खों की औषधि नाम है। अत: वह रचना करने वाला तथा पालन करने वाला दया करके जिज्ञासु को सतगुरू से मिलाता है। सतगुरू जीव के अहं को काटता है और नाम द्वारा साईं से मिला देता है। जिस सच को हम कहना जानते हैं, इससे आगे एक 'सदैव सच' है जो साईं का स्वरूप है, सतगुरू उस सच तक पहुंचा देता है[१]।

अत: शेख जी! यह है ईश्वर की दया था न्याय का ढंग कि सीमाबद्ध कर्मों को असीम फल नहीं लग सकता और कुकर्मों में जो पीड़ा रखी है, वह औषधि की ओर प्रेरणा करती है, यों कर्म दग्ध हो जाते हैं। सो उस निरंकार का नाम नर्क विचारक है। दूसरा शुभ कर्म है, वह दान है। मनुष्य कमाई करे, खाये, पर दान देकर यह सब कुछ करे। दान दे तो आपा न जतलाये, बल्कि पुण्य करे। यदि लोग बुरा कहें तो प्रसन्न हो। इस नाशवान को नाशवान समझे तो भलाई करना इसमें सार वस्तु है[२]।

पर शेख जी! यह मार्ग सतगुरू से प्राप्त होता है। सतगुरू में साईं का निवास होता है, उसके मिलने से बुरी ओर से मोह हटता है और साईं में लगता है[३] इस सच्चे के साथ मोह हो जाने से उसकी प्राप्ति होती है।

फिर जो इस प्रकार जगत में सत्संग-प्राप्त करके सेवा करते हैं और आपे को सन्तोष में रखते हैं, वे कुकर्म नहीं करते और वाहिगुरू की बड़ाई, स्तुति करते

---

१. नदरि करहि जे आपणी ता नदरी सतिगुरू पाइआ ।।
एहु जोऊ बहुते जनम भरंमिआ ता सतिगुरि सबदु सुणाइआ ।।
सतिगुर जेवडु दाता को नहीं सभि सुणिअहु लोक सबाइआ ।।
जिनि सचो सचु बुझाइआ ।।४।। (आसा दी वार महला १)

२. नाऊ तेरा निरंकार है नाइ लइऐ नरकि न जाईऐ ।।
जीऊ पिंडु सभु तिसदा दे खाजै आखि गवाईऐ ।।
जे लोड़हि चंगा आपणा करि पुंनहु नीचु सदाईऐ ।।
जे जरवाणा परहरै जरु वेस करेदी आईऐ ।।
को रहै न भरीऐ पाइऐ ।।५।। (आसा दी वार महला १)

३. बिनु सतिगुर किनैं न पाइओ बिनु सतिगुर किने न पाइआ ।।
सतिगुर विचि आपु रखिओनु करि परगटु आखि सुणाइआ ।।
सतिगुर मिलिऐ सदा मुकतु है जिनि विचहु मोहु चुकाइआ ।।
उत्तमु एह बीचारु है जिनि सचे सिऊ चिति लाइआ ।।
जग जीवनु दाता पाइआ ।।६।। (आसा दी वार महला १)

हैं, वे सबसे बड़े अर्थात परमेश्वर की प्राप्ति कर लेते हैं[1] । पर जो मूर्ख हैं, संसार में आकर सच की ओर नहीं चलते, उनका संसार में आना व्यर्थ है। पर किसी को बुरा क्यों कहा जाए। सच की प्राप्ति तो सतगुरू से मिलकर ही होती है और यह ईश्वर की देन है। इस अनुकम्पा वाले मनुष्य सच की कमाई करते और 'सच्चे' की आराधना करते हैं[2]। अत: सबके लिए प्रार्थना है कि साईं यह दान सभी को प्रदान करे।

शेरव – आप धन्य हैं।

गुरू जी – हे शेरव! मैं यह बातें साईं के भय में कह रहा हूं। मैं कुछ नहीं, उस सच्चे के द्वार का सेवक मात्र हूं, दाढी एक निम्न जाति है; दूसरे लोग उच्च जाति के कहलाते हैं। मैं तो उसकी स्तुति करने वाले, उसके प्रेम-ध्यान में मगन रहने वालों के दर्शन का इच्छुक हूं। प्रेम करने वाले भक्त उसके द्वार पर सम्मान प्राप्त करते हैं जो कीर्तन में जीवित हैं, क्योंकि इस मार्ग पर ही प्यार सफल होता है। प्यार अथवा भक्ति ही मार्ग है। स्तुति से मन प्रसन्न होकर साईं के मार्ग पर चलता है; पर कई लोग बिना इस कर्म के अहंकार करते हैं, कई शुभ कर्मों के बिना अपनी मति को आगे रखते हैं, पर उन्हें कोई आश्रय नहीं मिलता, अत: शेरव जी! जगत में निवास करते हुए, परमेश्वर के प्रेमियों की संगत करें, मैं तो प्रतिदिन यही दान मांगता हूं[3]। यह सर्वोत्तम विचार है।

यह बातें सच तथा सच के सम्बन्ध में वहां पर रहते हुए 'आसा दी वार' की पौड़ियों में रची गईं । यह 'आसा दी वार' की पहली ९ पौड़ियां हैं। जब मरदाने ने कण्ठस्थ करके इन्हें गायन किया और बीच में गुरू बाबा ने शलोक गायन किय, तो आयचर्यजनक आनन्द का समां बंध गया, शेरव सुनता और निहाल होता था।

---

१. सेव कीती संतोखीई जिनी सचो सचु धिआइआ ॥
ओनी मंदे पैरु न रखिओ करि सुकृितु धरमु कमाइआ ॥
ओनी दुनीआ तोड़े बंधना अंनु पाणी थोड़ा खाइआ ॥
तूं बखसीसी अगला नित देवहि चड़हि सवाइआ ॥
वडिआई वडा पाइआ ॥७॥ (आसा दी वार महला १)

२. सचा साहिबु एकु तूं जिनि सचो सचु वरताइआ ॥
जिसु तू देहि तिसु मिलै सचु ता तिनी सचु कमाइआ ॥
सतिगुरू मिलिऐ सचु पाइआ जिनकै हिरदै सचु वसाइआ ॥
मूरख सचु न जाणनी मनमुखी जनमु गवाइआ ॥
विचि दुनीआ काहे आइआ ॥८॥

३. भगत तेरै मनि भावदे दरि सोहनि कीरति गावदे ॥
नानक करमा बाहरे दरि ढोअ न लहनी धावदे ।
इकि मूलु न बुझनि आपणा अणहोदा आपु गणइदे ॥
हऊ ढाढी का नीच जाति हेरि उत्तम जाति सदाइदे ॥
तिन मंगा जि तुझै धिआइदे ॥९॥ (आसा दी वार महला १)

इस 'वार' (वाणी) को एक बार शेख अमृत वेला में सुनकर चाहता था कि गुरू बाबा वहां पर और कुछ समय रुकें, पर गुरू बाबा को अपना प्रेम सन्देश सुनाने लिए कई और स्थानों पर जाने की अधीरता थी, सो यहां से विदा होने के लिए तैयार हो गये। तब शेख उठ खड़ा हुआ और ससत्कार विदा करने लगा और यह कहा, 'नानक! तूने खुदा की प्राप्ति की है, तुझ और खुदा में कोई अन्तर नहीं। पर तू दयालु बन जिससे हमारी भी खुदा के साथ निभ जाये।" तब बाबा ने कहा, 'शेख ब्रह्म! खुदा तेरा उद्धार स्वयं करेगा'। तब पीर ने कहा, 'जी वचन दें'। तब बाबा ने कहा, 'जा वचन है'। शेख उठ खड़ा हुआ। शेख ने बाबा को विदा किया। बाबा जी उठकर चल दिये। (पुरातन जन्म साखी)

यों एक तपस्वी गद्दीदार को तथा प्रसिद्ध फकीर को, उसके तपों हठों तथा विचारों में पड़ी हुई त्रुटियों को हटाकर गुरू बाबा जी चल पड़े। गुरू जी का यह ढंग बहुत ही अच्छा था कि गद्दीदारों को ठीक करके अनेकों अनुयायीओं को भला कर देते थे। यदि एक फकीर के दस हज़ार अनुयायी हैं, तो दस हज़ार के लिए बहुत से समय की आवश्यकता होती है और यदि उनका गुरू भूल में से मुक्त हो गया तो उससे सबको लाभ होगा। साथ ही मुसलमान फ़कीरों में जो धर्म की कट्टरता तथा हिन्दुओं के साथ घृणा थी, वह प्रजा के लिए अति दुखदाई थी। गुरू बाबा उन्हें ऊंचा आदर्श देकर प्यार में ले आता और घृणा से निकाल लेता था, कि प्रजा आपस में सुखी रहे।

इधर शेख भी सच का खोजी था। डेरेदार, गद्दीदार, भेष वाले तथा दार्शनिक विद्या के अभिमानी लोग चाहे सच के इच्छुक हों, पर मान की चढ़त ऐसी होती है कि न तो अन्दर का दुख किसी के आगे प्रकट कर सकते हैं और न ही अपनी त्रुटियों तथा आवश्यकताओं का भरोसा दिलवा सकते हैं। ये लोग गृहस्थियों के आगे, चाहे वह कितना महापुरुष क्यों न हो, अपना मान सदैव ऊंचा रखने का यत्न करते हैं। पर धन्य है शेख ब्रह्म जिसने अन्त में इस बात पर विजय प्राप्त कर ली और कहा, हे गुरू नानक! मुझे एक छुरी दे, जिससे मैं अपने मान का वध कर दूं, तो गुरू बाबा की दया के कारण सुखी हो गया और वर्षों की बाधायें दूर हो गईं और बेखटके गुरू बाबा के आगे झुक गया।

'धन्य गुरू नानक देव'।

श्री गुरू नानक प्रकाश में शेख ब्रह्म वाले प्रसंग के अन्त में लिखा है:-

भयो मुरीद शेख तब गुरू को ॥
बंदे चरण प्रेम का उर को ॥
कितक दिवस तिन राख्यो डेरा ॥
नितप्रति करही भाऊ धनेरा ॥

ऐतिहासिक पक्ष

जहां पर 'आसा दी वार' की नौ पौड़ियों का उच्चारण हुआ, वहां पर कहा जाता है कि 'नानकसर' नामक गुरुद्वारा अब तक बना हुआ है (पाकिस्तान बनने से पहले)। यहां के ग्रन्थी (पुजारी) महाराज रणजीत सिंह जी से पहले के पुश्त-दर-पुश्त चले आते हैं।

गुरूद्वारा समाधि की भांति गुंबददार सा बना हुआ है, पक्का सफेद चूने का भवन है, अन्दर का स्थान लगभग बारह फुट चौकोर है। बीच में एक छोटा-सा चबूतरा है उसके ऊपर श्री गुरू साहिब का प्रकाश होता है।

यह स्थान वन में है, पाकपट्टन नगर से कोई तीन-चार मील की दूरी पर। पट्टन से छोटी-सी सड़क गुरुद्वारा तक जाती है। रेलवे की पटरी से कोई एक सौ कदम की दूरी पर यह गुरुद्वारा है। कार्तिक पूर्णमासी पर पहले यहां मेला लगा करता था।

इस गुरुद्वारे के साथ कुछ भूमि जागीर भी है और एक पक्का कूआं भी है। कार्तिक पूर्णमासी पर पहले यहां मेला लगा करता था। यहां पर पुजारियों के पांच-सात घर हैं। पुरातन जन्मसाखी में लिखा है कि 'आसा दी वार' की ९ पौड़ियां यहां पर और १५ दुनीचन्द के प्रति उच्चारण हुईं। पहले रचना पौड़ियों की हुई, श्लोक बाद में इनके साथ लगाये गये, क्यांकि महला २ के श्लोक भी 'आसा दी वार' में हैं और दूसरे गुरू अर्जुन देव जी ने 'आसा दी वार' के आरम्भ में लिखा है 'श्लोक भी महले पहले के लिखे', यदि श्लोक पहले सम्मिलित थे तो इसके लिखने की आवश्यकता नहीं थी। तीसरी बात यह कि वार की रचना पौड़ियों का संकेत थीं और श्लोक ढाढी लोग पहले गायन किया करते थे।

पुरातन जन्मसाखी में दो ही गोष्ठियां लिखी हैं-एक फ़रीद के साथ और दूसरी शेख ब्रह्म के साथ। पर जन्मसाखी के कर्ता जी को पता है कि पहले फ़रीद हो चुका है और उसकी गद्दी पर शेख ब्रह्म विराजमान है और उसे यह भी पता है कि शेख ब्रह्म भी फ़रीद है। फिर पहली भेंट की उसे स्मृति है, इस बात का पता भी दूसरी गोष्ठी से चल जाता है। जब वह अपने चेले से कहता है कि, "बेटा! जिनका कहा हुआ यह श्लोक है, उसका तूने दर्शन किया है, वह खुदा का फकीर है।" भाई मनी सिंह जी लिखित जन्मसाखी में उल्लेख आता है कि गुरू जी ने कहा - 'मरदाना! हमें पट्टन जाना है, क्योंकि शेख ब्रह्म को उपदेश दिया था, देखें कि उसे उपदेश याद है कि भूल गया है।' जन्मसाखियों की यही गवाही है कि शेख ब्रह्म के साथ दो बार मुलाकात हुई

२. तपों हठों की कहानियां जो कई फकीरों के साथ लगाकर बताते हैं,

पुरातन हैं और पुरातन साहित्य में मिलती हैं। जैसे कि पहली वार्ता, चिड़ियों को मारकर दोबारा जीवित करने की, बौद्ध जातकों में भी है और महाभारत में पितृ भक्त – तुलाधार जी के प्रसंग में भी लिखी है।

चिड़ियों वाला तथा कुएं में लटकने वाला प्रसंग पहले शेख फ़रीद के साथ हुआ भी बताते हैं। वास्तव में कई प्रसंग शेख फ़रीद तथा उनके पोते अलाउद्दीन (फ़रीद सानी) के तथा दशम या बारहवें गद्दीदार शेख इब्राहीम (फ़रीद सालस) के मिल जुल गये हैं। गुरू ग्रन्थ साहब में जो वाणी है, वह शेख ब्रह्म की है। कई इस वाणी को पहले फ़रीद की वाणी कहते हैं, पर यह संभव कम है। यह लम्बी चर्चा है, इसके लिए 'खालसा ट्रैक्ट सोसायटी' का ट्रैक्ट नं० ४९३ – ४९४ 'जीवन चरित्र शेख फ़रीद' देखिये।

□ □

गीत

(यहां पर गीत का अनुवाद प्रस्तुत है)

पाठक जी! इस गुरूओं के गुरू नानक को 'गुरू' देखो, भरोसे, प्यार, श्रद्धा, आकर्षण तथा उमंग भरे प्यार के साथ उसकी ओर देखो और कहो–'हे गुरू नानक', और फिर कहो :–

'हे प्यारे गुरू नानक! आज तू गुरू होकर आना। हमारे हृदय में आकर निवास करना, और हमारे हृदय का स्वामी बनना।

मैं तुझे केवल नानक ही नहीं समझता, बल्कि अपना गुरू समझता हूं। तू मेरा अपना गुरू है, मेरे हृदय में अपने चरण रखना। हे गुरू जी! तेरा दर्शन, मैं तुझे गुरू रूप देखकर करता हूं। मैं तुझे हृदय में बिठाता हूं और तुझ पर आपा न्योछावर करता हूं। तू मेरा गुरू है, मुझे अपना बनाना, मैं तुझे अपना ही समझता हूं और कोई दूरी नहीं देखता। मैं आपे के साथ अपना सर्वस्व तुझ पर ही टिकाता हूं, तू सदैव मेरा है, मेरा है, मैं यही आलाप करता हूं।। हे गुरू जी 'मैं तेरा हूं', यह मैं दूसरा वाक्य गाता हूं, सदैव 'तेरा, तेरा, तेरा' जपता हूं। 'तू सदैव मेरा ही है और 'मैं' सदैव तेरा हूं, इस प्रकार की ऐसी पक्की गांठ बंध जाये जो कभी भी न टूटे। तू मेरा गुरू नानक है, सदैव तू ही मेरा गुरू है, तू मेरा अपना गुरू है और मुझे सदैव अपना ही बनाना। हे प्यारे! मुझे तेरा ही ध्यान लगा रहे और तेरी ही शरण प्राप्त हो। हे प्यारे गुरू मैं तेरा ही प्यारा नाम जपता रहूं। मुझे तू अपने विरद के कारण अपने सम्मुख ही रखना। मुझे जगत् में अपने सम्मुख बसाना और सम्मुख रखकर ही बुलाना।

□ □